कक्षा 12

भूविज्ञान

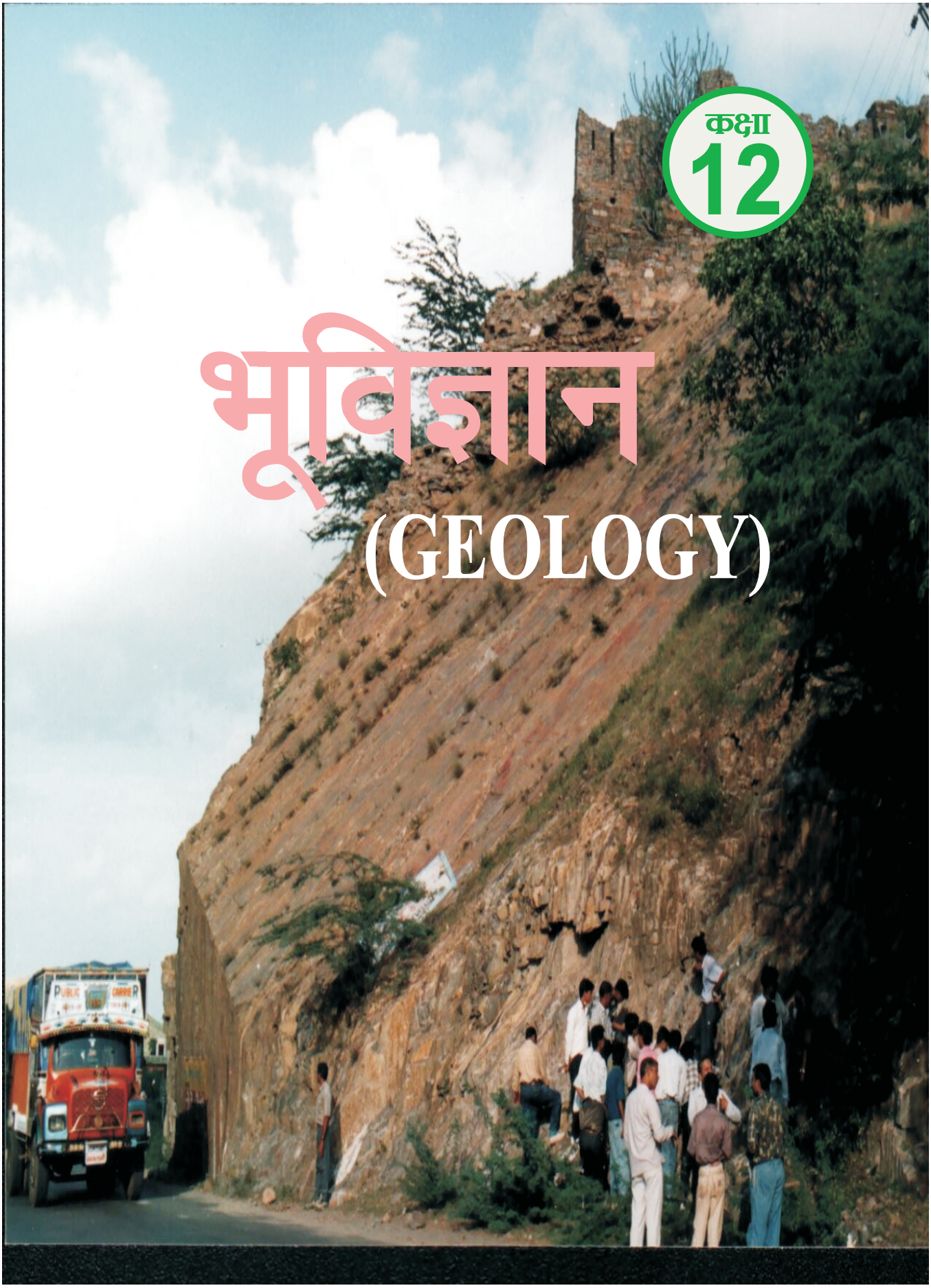

भूविज्ञान

कक्षा–12

माध्यमिक शिक्षा बोर्ड राजस्थान, अजमेर

पाठ्य पुस्तक निर्माण समिति

पुस्तक – भूविज्ञान कक्षा – 12

संयोजक :– डॉ. प्रकाश कटारिया, सेवानिवृत्त आचार्य
मोहनलाल सुखाड़िया विश्वविद्यालय, उदयपुर

लेखकगण :–

1. डॉ. प्रकाश कटारिया, सेवानिवृत्त आचार्य
   मोहनलाल सुखाड़िया विश्वविद्यालय, उदयपुर

2. डॉ. एम. एल. नागोरी, आचार्य
   मोहनलाल सुखाड़िया विश्वविद्यालय, उदयपुर

3. डॉ. कमलकांत शर्मा, प्राचार्य
   राजकीय महाविद्यालय, शिवगंज

4. डॉ. सुरजा राम जाखड़, सह–आचार्य
   जय नारायण व्यास विश्वविद्यालय, जोधपुर

5. डॉ. रितेश पुरोहित, व्याख्याता
   राजकीय महाविद्यालय, सिरोही

6. डॉ. अरूण व्यास, व्याख्याता
   राजकीय बांगड़ महाविद्यालय, डीडवाना (नागौर)

पाठ्यक्रम निर्माण समिति

पुस्तक – भूविज्ञान कक्षा – 12

संयोजक :– डॉ. प्रकाश कटारिया, सेवानिवृत्त आचार्य
मोहनलाल सुखाड़िया विश्वविद्यालय, उदयपुर

लेखकगण :– 1. डॉ. सुरजा राम जाखड़, सह–आचार्य
जय नारायण व्यास विश्वविद्यालय, जोधपुर

2. डॉ. एम. एल. नागोरी, आचार्य
मोहनलाल सुखाड़िया विश्वविद्यालय, उदयपुर

प्रस्तावना

यह पुस्तक माध्यमिक शिक्षा बोर्ड, अजमेर द्वारा स्वीकृत नए पाठ्यक्रम अनुसार कक्षा 12 के लिए भूविज्ञान विषय को समझने एवं सृजनात्मक ज्ञानार्जन हेतु लिखी गई है। विषय पर हिन्दी में पाठ्यपुस्तकें अत्यन्त कम उपलब्ध होने से विद्यार्थियों को पाठ्य–सामग्री हेतु कोई असुविधा न हो इस उद्देश्य को ध्यान में रखते हुए पुस्तक लेखन किया गया है। कक्षा 11 की पुस्तक की निरन्तरता में विषय का विस्तार प्रारम्भिक जानकारी के साथ सरल तरीके से करने का प्रयास किया गया है।

भूविज्ञान विषय स्कूल पाठ्यक्रमों में पहले सम्मिलित नहीं था अब इसे जोड़ा गया है जो कि दूरदृष्टि युक्त एवं स्वागत योग्य निर्णय है। यह विषय शैलों, खनिजों एवं प्राकृतिक शक्तियों को समझने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाने का कार्य करेगा। मानव विकास के साथ आधारभूत ढांचागत विकास कार्यों, तथा कृषि एवं उद्योगों को कच्ची सामग्री भी खनिजों से ही मिलती है।

भूविज्ञान विषय के परिचय के साथ पृथ्वी की उत्पत्ति, प्राकृतिक शक्तियों के कार्य, क्रिस्टलों, खनिजों, शैलों, जीवाश्मों, स्तरिकी, आर्थिक भूविज्ञान, व्यवहारिक भूविज्ञान आदि की जानकारियों का विवरण सात अध्यायों में दिया गया है। विषय जानकारी की दृष्टि से वस्तुनिष्ठात्मक, अतिलघुत्तरात्मक, लघुत्तरात्मक एवं निबन्धात्मक प्रश्नों का समावेश प्रत्येक अध्याय में तथा प्रायोगिक भूविज्ञान को पुस्तक के अन्त में समाहित किया गया है।

पाठ्य पुस्तक में तकनीकी शब्दों का समावेश हिन्दी भाषा की मानक शब्दावली के आधार पर किया गया है। पुस्तक लेखन में कठिन वैज्ञानिक शब्दों को हिन्दी के साथ अंग्रेजी में भी यथास्थान पर दिया गया है। पुस्तक को समृद्ध बनाने हेतु विभिन्न पाठ्य पुस्तकों, संदर्भित पुस्तकों एवं शोध–पत्रों का उपयोग किया गया है, जिनका व्यक्तिशः उल्लेख पुस्तक में नहीं किया गया है परन्तु हम उन सभी लेखकोंके प्रति हृदय से आभार प्रकट करते हैं। आशा है छात्रों एवं शिक्षकों की विषय सम्बन्धी प्रारम्भिक आवश्यकताएँ इस पुस्तक से पूरी हो सकेगी। भरसक प्रयासों के बावजूद विषय–वस्तु में त्रुटियाँ अवश्य रह गयी होगी जिनके लिए हम उत्तरदायी हैं तथा इनके निवारण के लिए लेखकों, शिक्षकों, छात्रों एवं अन्य विद्वानों के सुझाव आमंत्रित हैं।

– संयोजक एवं लेखकगण

भूविज्ञान

विषय कोड–43

इस विषय में दो प्रश्नपत्र–सैद्धान्तिक एवं प्रायोगिक की परीक्षा होगी। परीक्षार्थी को दोनों पत्रों में पृथक–पृथक उत्तीर्ण होना अनिवार्य है। विषय की परीक्षा योजना निम्नानुसार हैं –

प्रश्नपत्र	समय(घंटे)	प्रश्नपत्र के लिए अंक	सत्रांक	पूर्णांक
एकपत्र	3.15	56	14	
प्रायोगिक	3.00	30	–	100

समय 3.15 घण्टे **पूर्णांक–56**

इकाई	**का नाम**	**अंक**
1.	भौतिक भूविज्ञान	6
2.	क्रिस्टल विज्ञान एवं खनिज विज्ञान	6
3.	शैल विज्ञान	10
4.	जीवाश्म विज्ञान	6
5.	संस्तरण विज्ञान : भारत का भू वैज्ञानिक अध्ययन	8
6.	आर्थिक भूविज्ञान	8
7.	पर्यावरण भूविज्ञान	6
8.	अभियांत्रिकी भूविज्ञान	6

Details of the Syllabus

1.. भौतिक भूविज्ञान : **6**

वायु व नदी के भू वैज्ञानिक कार्य, महाद्वीपीय विस्थापन, प्लेट विवर्तनिकी, भूकम्प व ज्वालामुखी, वलन, भ्रंश एवं विषयम विन्यास

2.. क्रिस्टल विज्ञान एवं खनिज विज्ञान **6**

सूचकांक पद्धतियाँ : मिलर व वीज की पद्धतियाँ, संस्पर्श कोणमापी क्रिस्टल समुदायों का क्रिस्टल वर्गों में वर्गीकरण के आधार एवं निम्न क्रिस्टल वर्गों का अध्ययन : गैलेना टाइप, जिर्कन टाईप, बैराइट टाइप, जिप्सम टाइप, एक्जीनाइट टाइप, बैरिल टाइप। सिलिकेट संरचनाएँ, विभिन्न सिलिकेट खनिज समूहों का अध्ययन : ऑलिविन समूह, पाइरोक्सिन समूह, एम्फीबोल समूह, अभ्रक समूह, फेल्सपार समूह, एल्यूमिनो सिलिकेट

3.. शैल विज्ञान **10**

आग्नेय शैलः मैगमा – परिभाषा, उत्पत्ति एवं भौतिक गुण एवं रासायनिक संगठन, आग्नेय शैल राशियों की आकृतियाँ मैग्मा का क्रिस्टलन, आग्नेय शैलोंके वर्गीकरण के आधार एवं टैरिल का सारणीकृत वर्गीकरण। आग्नेय शैलों का अध्ययन : गैब्रो, डायोराइट, सायनाइट, रायोलाइट, एण्डेसाइट। अवसादी शैल विज्ञान : अवसादीकरण अपरदन, परिवहन निक्षेपण,

अश्मिभवन एवं डाईजेनेसिस, अवसादी शैलों का खनिजीय संगठन।
अवसादी शैलों का अध्ययन संगुटिकाश्म, संकोणाश्म। कायान्तरित शैल
विज्ञान : कायान्तरण के कारण, प्रकार, कायान्तरित शैलों का खनिज
संगठन। कायान्तरित शैलों का अध्ययन स्लेट फिलाइट, शिस्ट नीस तथा मिग्मेटाइट

4.. जीवाश्म विज्ञान : **6**

निम्न समूहों की आकारिकी एवं भू वैज्ञानिक इतिहास का अध्ययन
इकाइनोइडिया, सिफेलोपोडा, फोरामिनिफेरा निम्नलिखित पादप
जीवाश्मों का अध्ययन :– ग्लोसोप्टेरिस, गेंगेमोप्टेरिस, वर्टीब्रेरीया,
टिलोफाइलमआदमी का जैव विकास

5.. संस्तरण विज्ञान : भारत का भू वैज्ञानिक अध्ययन : **8**

आद्यकल्प : राजस्थानप्राकजैविक महाकल्प : अरावली महासमूह देहली
महासमूह, विन्ध्यन महासमूहपुराजैवी महाकल्प : निम्न गोंडवाना समूह
मध्यजीवी महाकल्प : राजस्थान, उत्तर गोंडवाना समूह नूतन जीवी
महाकल्प : राजस्थान, शिवालिक महासमूह, हिमालय पर्वतव थार रेगिस्तान की उत्पति।

6.. आर्थिक भूविज्ञान : **8**

भारत में खनिज निक्षेपों का वितरण – लोहा सीसा, जस्ता,
तांबा, कोयला, पेट्रोलियम, रॉकफॉस्फेट, जिप्सम,
खनन एवं खनिज अन्वेषण :–
खनन : विवृत खनन एव भूमिगत खनन की प्रमुख विधियों का परिचय, विस्फोटकों का परिचय।
खनिज अन्वेषण : छिद्रण के प्रकार, हीरक
छिद्रण का परिचय एवं खनिज अन्वेषण में इसका प्रयोग।

7.. पर्यावरण भूविज्ञान : 6

भूमिगत जल प्रदूषण – कारण एवं निवारण, खनन एवं पर्यावरण खनिज
आधारित उद्योग एवं पर्यावरण प्राकृतिक आपदायें एवं पर्यावरण एवं आपदा प्रबंधन।
भू जल विज्ञान :–
जल भृत के प्रकार, भू जल का उर्ध्व वितरण, भू जल के अन्वेषण की
विधियाँ, राजस्थान में भू जल वितरण, उपयोग एवं प्रबंधन।

8.. अभियांत्रिकी भूविज्ञान : **6**

बांध, सुरंग, पुल एवं सड़क निर्माण में भूविज्ञान की भूमिका राजस्थान के खनिज
एवं खनिज आधारित उद्योग :– पेट्रोलियम, लिग्नाइट, सीमेंट, मार्बल, ग्रेनाइट, सैडस्टोन

भूविज्ञान (प्रायोगिक)

समय : 3 घण्टे पूर्णांकः 30

इकाई	**विषय वस्तु**	**अंक**
1.	खनिज का हस्त नमूनों में अध्ययन :– आलीवीन, गारनेट, बायोटाइट, मस्कोवाइट, जेस्पर, कायनाइट।	03
2.	आग्नेय शैलोंके हस्त नमूनों का अध्ययन :– डायोराइट, ग्रेब्रो, रायोलाइट, सायनाइट, डोलेराइट।	03

3.	अवसादी शैलोंके हस्त नमूनों का अध्ययन :– संगुटीकाश्म, संकोणाश्म, शैल, ग्रेवेक, आरकोस	03
4.	कायान्तरित शैलों के हस्त नमूनों का अध्ययन :– नाइस, माइका–शिस्ठ, स्लेट, चार्नोकाइट, मिग्मेटाइट	03
5.	धात्वीक एवं गैर धात्वीक खनिजों के हस्त नमूनों में अध्ययनः– गेलेना, स्फेलेराइट, चालकों पाइराइट, जिप्सम, लिग्नाइट, रॉक फास्फेट	03
6.	जीवाश्मों के नमूनों का अध्ययन एवं नामांकित चित्र :– सिडेरीस, माईक्रेस्टर, बेलेमनाइट, नोटयूलस, न्यूम्यूलाइटस, एसीलिना, ग्लोसोपटेरीस, टीलोफाइलम	03
7.	भारत के मानचित्र में निम्न खनिजों का वितरण :– लोहा, ताम्बा, सीसा, जस्ता, कोयला, पेट्रोलियम, रॉक फास्फेट	02
8.	भारत के मानचित्र में निम्न शैल समूहों का भौगोलिक वितरण :– अरावली, देहली, विन्ध्यन, गोंडवाना	02
9.	घन एवं अष्ठफलक का क्लाइनोग्राफीक प्रोजेक्शन बनाना :–	02
10.	वास्तविक नति, आभासी नति एवं नति लम्ब ज्ञात करना :–	02
11.	सत्र का प्रायोगिक रिकार्ड :	02
12	मौखिक	02

निर्धारित पुस्तक–

भू–विज्ञान माध्यमिक शिक्षा बोर्ड. राजस्थान. अजमेर।

विषय सूची

सैद्धान्तिक

1. भौतिक भू–विज्ञान एवं संरचनात्मक भू–विज्ञान (Physical Geology and Structural Geology) 1– 32
2. क्रिस्टल एवं खनिज विज्ञान (Crystallography and Mineralogy) 33 – 56
3. शैल विज्ञान (Petrology) 57 – 82
4. जीवाश्म विज्ञान (Paleontology) 83 – 99
5. स्तरिकी (Stratigraphy) 100 – 128
6. आर्थिक भूविज्ञान, खनिज अन्वेषण एवं खनन (Economic Geology, Mineral Exploration and Mining) 129 – 144
7. व्यावहारिक भू–विज्ञान (Applied Geology) 145 – 161

प्रायोगिक भू–विज्ञान

1. खनिजोंके हस्त नमूनों का अध्ययन 162 – 163
2. आग्नेय शैलों के हस्त नमूनों का अध्ययन 164 – 165
3. अवसादी शैलों के हस्त नमूनों का अध्ययन 166 – 167
4. कायान्तरित शैलोंके हस्त नमूनों का अध्ययन 168 – 169
5. धात्विक एवं गैर धात्विक खनिजों के हस्त नमूनों का अध्ययन 170
6. जीवाश्मों के नमूनों का अध्ययन एवं नामांकित चित्र 171 – 173
7. भारत के मानचित्र में खनिजों का वितरण 174 – 176
8. राजस्थान के मानचित्र में शैल समूहों का भौगोलिक वितरण 177 – 180
9. घन, अष्टफलक, प्रिज्म, डोम एवं पिरामिड का अध्ययन 181 – 183
10. वास्तविक नति, आभासी नति एवं नति लम्ब ज्ञात करना 184 – 185

अध्याय – 1

भौतिक भू–विज्ञान एवं संरचनात्मक भू–विज्ञान

(Physical Geology and Structural Geology)

इस अध्याय में भौतिक भू–विज्ञान के अन्तर्गत वायु व नदी के भूवैज्ञानिक कार्य, भूकम्प व ज्वालामुखी तथा समस्थिति के बारे में जानकारी दी गई है। इसके अलावा महाद्वीपीय विस्थापन के सिद्धांत व प्लेट विवर्तनिकी के सिद्धांत की व्याख्या की गई है और हिमालय पर्वत श्रृंखला व थार के रेगिस्तान की उत्पत्ति को समझाया गया है। इस अध्याय में संरचनात्मक भूविज्ञान के तहत वलन, भ्रंश और विषम विन्यास के बारे में जानकारियां दी गई है।

वायु (पवन) के भूवैज्ञानिक कार्य (Geological Work of Wind)

पृथ्वी की भूपर्पटी के शैलों पर क्रियाशील विभिन्न भौतिक एवं रासायनिक शक्तियों के फलस्वरूप शैलों का विखंडन होता है व शैल क्रमशः बड़े से छोटे आकार के होते जाते है। भौतिक शक्तियों द्वारा होने वाले परिवर्तन में शैलों के संघटन में बदलाव नही होता है, यह प्रक्रम विघटन (Disintegration) कहलाता है। वही दुसरी ओर रासायनिक तथा जीवाण्विक प्रतिक्रियाओं के फलस्वरूप होने वाले परिवर्तन में शैलों का संघटन परिवर्तित हो जाता है, यह प्रक्रम अपघटन (Decomposition) कहलाता है। पृथ्वी की सतह तथा इससे कुछ गहराई तक स्थित शैलों पर विभिन्न भूवैज्ञानिक कारकों यथा वायु (पवन) (Wind), सरिता (नदी) (River), हिमनद (Glacier) भूमिगत जल (Groundwater) महासागर (Ocean) द्वारा अपघटन तथा विघटन के संयुक्त प्रक्रम से विखण्डित शैल कण अपने मूल स्थान पर ही रह जाते है तथा स्थानान्तरित नहीं होते तब इस प्रक्रिया को अपक्षय (Weathering) कहते है। परन्तु अपक्षय के साथ यदि अपक्षीण शैल कणों का विभिन्न भूवैज्ञानिक कारकों द्वारा स्थानान्तरण हो जाए तब यह प्रक्रम अपरदन (Erosion) कहलाता है। भूवैज्ञानिक कारकों द्वारा पृथ्वी की भूपर्पटी की शैलों पर भूवैज्ञानिक कार्यों के अन्तर्गत अपरदन (Erosion), परिवहन (Transportation) एवं निक्षेपण (Deposition) के कार्य होते है।

वायु (पवन) द्वारा पृथ्वी की सतह पर स्थित शैलों पर अपरदन, परिवहन एवं निक्षेपण के विभिन्न भूवैज्ञानिक कार्य सतत रूप से होते है। इन कार्यों को वनस्पति – आवरण रहित एवं घने सतहीय अबद्ध शैल कणों वाले क्षेत्रों में देखा जा सकता है। वायु (पवन) का भूवैज्ञानिक कार्य अर्ध शुष्क एवं शुष्क क्षेत्रों में अधिक सक्रिय होता है।

पृथ्वी के भू–धरातल पर विभिन्न कटिबन्धों में विभिन्न वायुमण्डलीय दाबों की परिस्थितियों में पवन के एक क्षेत्र से दूसरे अन्यत्र क्षेत्र में भिन्न भिन्न वेग से प्रवाहित होने के फलस्वरूप आंधी, तूफान, चक्रवात, बवंडर (Tornado) इत्यादि की उत्पत्ति होती है।

वायु (पवन) द्वारा अपरदन (Wind Erosion)

वायु द्वारा अपरदन कार्य मुख्यतः भौतिक या यांत्रिक (Physical or Mechanical) रूपों में ही होता है तथा निम्नलिखित तीन विधियों से सम्पन्न होता है:–

1. **अपवाहन** (Deflation) : इस प्रक्रम में वायु के वेग के साथ अत्याधिक मात्रा में बालू के कण एक स्थान से दूसरे स्थान तक हवा के साथ उड़कर परिवहित हो जाते है तथा यह प्रक्रम अपवाहन (Deflation) कहलाता है। यह वायु का प्रमुख भूवैज्ञानिक कार्य है, इसमें मरूस्थली एवं अर्द्ध मरूस्थली वनस्पति रहित क्षेत्रों में धूल व सूक्ष्म शैल कण वायु के साथ परिवहित होते है तथा स्थूल शैल कण पीछे ही रह जाते है। इस प्रकार मरूस्थल में पथरीली सतह अनावृत हो जाती है तथा इस प्रक्रम द्वारा शैल कणों की छँटाई का कार्य होता है। भूसतह के पास निम्न स्तर में वायु के साथ शैल कणों में स्थूल कणों की बहुतायत होती है परन्तु ऊंचाई बढ़ने के साथ ही सूक्ष्म शैल कणों की प्रचुरता हो

जाती है। गर्मी के मौसम में अंधड़ (Storm) के दौरान शैल कणों का वायु द्वारा कई किलोमीटर दूरी तक परिवहन होता है तथा इस प्रक्रम के कारण अपवाहन के फलस्वरूप भौमजल स्तर (Groundwater level) तक विभिन्न गहराईयों की द्रोणियों का निर्माण हो जाता है तथा मरूस्थलीय व मैदानी क्षेत्र से उपजाऊ मिट्टी के वायु द्वारा अपवाहन होने से जमीन बंजर हो जाती है।

2. **अपघर्षण** (Abrasion) : वायु द्वारा अपने साथ उड़ाकर लाए गये परिवाहित बालू कण अनावृत्त शैल–संस्तरों से वेग के साथ टकराने के फलस्वरूप शैलों की बाहरी असमान सतह अपघर्षण के कारण समतल व चिकनी हो जाती है तथा यह प्रक्रम पवन अपघर्षण (Wind Abrasion) कहलाता है। यह प्रक्रिया विभिन्न कारकों यथा बालू–कणों की प्रचुरता व कठोरता एवं इनकी माप व आकार, वायु के वेग और शैल–संस्तरों की कठोरता पर निर्भर करती है।

पवन–अपघर्षण के कारण कठोरता में विभिन्नता युक्त शैल – संस्तरों के अपरदन की दर में विभेद रहता है। कठोर शैलों के नीचे कम कठोर शैल–संस्तर होने पर इन नीचे स्थित शैल–संस्तरों का वायु द्वारा उड़ाकर लाये गये शैल एवं बालू–कणों द्वारा अपघर्षण के फलस्वरूप अधिक अपरदन हो जाता है जबकि ऊपर के कठोर शैलों का अपरदन कम होता है। यह प्रक्रिया अद्योरदन (Under Cutting) कहलाती है।

शैलों में संधि तल (Joint Planes) की मौजूदगी में अपघर्षण की क्रियाशीलता बढ़ जाती है व इस कारण संधि तल का माप बढ़ जाता है और अंत में संधित शैल खण्ड अलग अलग हो जाते है। वायु अपघर्षण के कारण चूना पत्थर (Limestone) व ग्रेनाइट शैलों की बाह्य सतह क्रमशः चिकनी व गर्तमय/चिकनी हो जाती है। आग्नेय शैलों की अपेक्षा अवसादी शैलों पर वायु अपघर्षण की क्रियाशीलता अधिक होती है।

3. **संनिघर्षण** (Attrition) : वायु के द्वारा उड़कर परिवहित हो रहे शैल कण एवं बालू कण आपस में टकराते रहते है जिससे इनकी आकृति व साईज में लगातार परिवर्तन होता रहता है तथा ये कण टूटकर छोटे आकार के हो जाते है और इनकी सतह चिकनी व आकृति गोल हो जाती है, यह प्रक्रिया पवन संनिघर्षण कहलाती है। पवन संनिघर्षण प्रक्रिया के लिए अनुकूल परिस्थितियों के तहत वायु तेज वेग के साथ चलती रहनी चाहिए ताकि बालू कण अधिक समय तक उड़ते हुए आपस में टकराते हुए अधिक दूरी तक परिवहित होते रहे तथा इनका निक्षेपण नहीं होना चाहिए।

वायु अपरदन निम्नलिखित कारकों से प्रभावित होता है –

1. वायु द्वारा अपरदन के लिए शुष्क जलवायु अनुकूल होती है। दिन व रात के तापमान में मरूस्थलीय जलवायु में अधिक अंतर होने के कारण दिन में अधिक तापमान के कारण शैलों का प्रसार होता है वहीं रात में कम तापमान होने के कारण शैलों का संकुचन होता है। शैलों के इस प्रकार के असमान प्रसार व संकुचन के फलस्वरूप इनमें दरारें निर्मित हो जाती है और दरारों पर बालू कणों द्वारा तीव्रता से अपरदन होता है।
2. वायु की गति व दिशा से भी वायु अपरदन प्रभावित होता है। अधिक गति होने पर वायु अपने साथ अधिक मात्रा में शैल व बालू कणों को परिवहित करती है तथा इनमें परस्पर संनिघर्षण भी अधिक होगा। अत्याधिक वेग के फलस्वरूप वायु के साथ उड़ने वाले बालू कण शैलों की अनावरित सतहों पर अधिक तीव्रता से टकराते हुए अपरदन का कार्य करते है। वायु की दिशा में बदलाव होने पर शैलों पर विभिन्न दिशाओं में अपरदन होता है।
3. शैल व शैल कणों के लक्षण भी वायु अपरदन को प्रभावित करते है। संधि एवं दरार युक्त शैलों पर बालू कण व शैल कण सरलतापूर्वक अपरदन का कार्य करते है। आग्नेय शैल की तुलना में अवसादी शैलों पर वायु अपरदन का कार्य सुगमता से होता है। वायु के साथ परिवहित बड़े शैल कणों द्वारा भूसतह के पास स्थित शैलों का अपरदन का कार्य अधिक होता है।

वायु (पवन) द्वारा परिवहन (Transportation by Wind)

वायु के द्वारा शैल कणों व बालू कणों का परिवहन निलम्बित अवस्था में या सतह पर लुढकते हुए होता है। परिवहन वायु के वेग व शैल कणों के आकार एवं घनत्व पर निर्भर करता है। वायु के वेग के साथ सूक्ष्म व कम घनत्व वाले शैल कणों का परिवहन कई किलोमीटर की दूरी तक हो जाता है। वायु के वेग, गति में परिवर्तन तथा वायु के बहने की दिशा में अवरोध आ जाने पर परिवहन का कार्य प्रभावित होता है। वायु के तीव्र वेग से बहने पर शैल कण अधिक मात्रा में अधिक दूरी तक परिवहित होते है। वायु की गति में कमी होने पर पहले बड़े शैल कणों व फिर सूक्ष्म शैल कणों का निक्षेपण हो जाता है। वायु के बहाव की दिशा में अवरोध यथा पेड़, पहाड़, इमारत इत्यादि के आने पर परिवहित हो रहे शैल कणों का निक्षेपण हो जाता है।

वायु (पवन) द्वारा निक्षेपण (Wind Deposition)

वायु की गति में बाधा होने के कारण वेग में परिवर्तन के फलस्वरूप परिवहित हो रहे शैल कणों का निक्षेपण प्रारम्भ हो जाता है तथा ये निक्षेप वातोढ निक्षेप (Aeolian Deposits)

कहलाते है। ये निक्षेप वायु के पुनः प्रवाहित होने पर अन्य स्थान को स्थानान्तरित हो जाते है। इन निक्षेपों में शैल कणों की छंटाई को देखा जा सकता है जो अवसादों के आकार एवं भार के अनुसार कणों के व्यवस्थित होने से होता है। बड़े आकार के व अधिक आपेक्षिक घनत्व वाले शैल कण पहले निपेक्षित होते है तथा इनके पश्चात छोटे कण जिनका आपेक्षिक घनत्व कम होता है निपेक्षित होते है परन्तु अति सूक्ष्म व हल्के कण वायु के साथ बहुत समय तक अर्थात लम्बी दूरी तक तैरते रहते है व वायुमंडल में ऊंचाई तक उड़ाकर ले जाये जाते है और वर्षा होने पर वर्षा जल के साथ पुनः भूसतह पर जमा होते है। वायु के वेग में कमी होने पर, वायु प्रवाह की दिशा में अवरोध होने पर और भूसतह में असमानता वाले क्षेत्रों में वायु प्रवाह के दौरान अनुकूल परिस्थितियों में वायु द्वारा निक्षेपण कार्य होता है।

वातोढ़ स्थलरूप (Aeolian Landforms)

वायु (पवन) के भूवैज्ञानिक कार्य यथा अपरदन, परिवहन और निक्षेपण द्वारा निर्मित स्थलरूप वातोढ़ स्थलरूप कहलाते है। मरूस्थली क्षेत्रों में इनकी बहुतायत देखी जा सकती है। प्रमुख वातोढ़ स्थलरूप संरचनाओं की जानकारी निम्नानुसार है –

वायु अपरदन से निर्मित संरचनायें

1. **वायुघृष्टाश्म** (Ventifacts) : वायु के एक ही दिशा में प्रवाहित होने पर अपघर्षण के कारण शैल खंडों पर वक्राकार समतल फलकों का निर्माण होता है तत्पश्चात् शैल खण्डों के विस्थापन या वायु की दिशा में परिवर्तन उपरान्त अपघर्षण से ही दूसरें फलक निर्मित होते है व प्रक्रिया के जारी रहने पर फलकों का निर्माण होता रहता है। ये फलक एक दूसरें से निश्चित कोण पर मिलकर तीक्ष्ण किनारें (Sharp Edges) बनाते हैं। वायु अपघर्षण द्वारा निर्मित ये फलक वायुघृष्टाश्म (Ventifacts) या ड्राइकाण्टर (Dreikanter) कहलाते है। कठोर खनिज क्वार्ट्ज की गुटिकाओं (Quartz Pebbles) पर इन संरचनाओं को देखा जा सकता है।

2. **छत्रक** (Mushroom) या **पीठिका शैल** (Pedestal Rock) : ये संरचनाएं वायु के खुरचाव, नाली निर्माण तथा अवखनन (Down Cutting) से निर्मित होती है। इस संरचना में आधार पर स्थित एक पतले स्तम्भ पर एक सपाट चट्टानी खण्ड स्थित रहता है। यह प्राकृतिक बनावट श्रृंग कहलाती है। जब मुलायम शैल–संस्तर के ऊपर कठोर शैल–संस्तर पाये जाते है तो भेददर्शी अपरदन के कारण ऊपरी कठोर शैल कम तथा नीचे स्थित मुलायम शैल अपेक्षाकृत अधिक अपरदित होती है। वायु की दिशा मे भी परिवर्तन होता रहता है। अतः विभिन्न दिशाओं में वायु द्वारा निरन्तर अपघर्षण के फलस्वरूप कालान्तर में शैलखण्डों का निचला स्तर ऊपरी स्तर की अपेक्षा अधिक अपरदित हो जाता है। फलतः विशाल शैल खण्ड पतले स्तम्भ पर आधारित रहते है व संकरे स्तम्भ के ऊपर चौड़ा समतल शैल खण्ड विरामित रहता है, ऐसी संरचना को छत्रक (Mushroom) या पीठिका शैल (Pedestal Rock) कहते है (चित्र 1.1)।

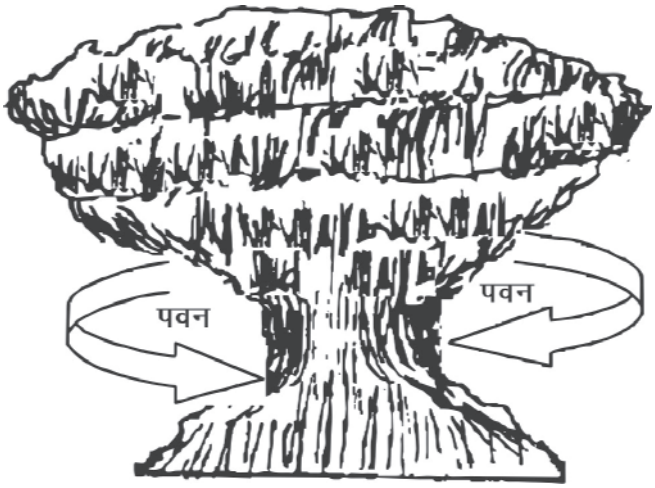

चित्र 1.1 : छत्रक या पीठिका शैल

3. **यारडांग** (Yardangs) : वायु के सदैव एक ही दिशा में प्रवाहित होने पर यदि उस क्षेत्र विशेष में, कठोर व मुलायम शैलों की एकान्तर क्रम में पट्टियां प्रवाहित वायु के समान्तर स्थित होती है तो विचित्र आकार व रूप की दृश्य भूमि का निर्माण होता है। वायु अपघर्षण के कारण कठोर शैलों के कम अपरदन के कारण कटक/स्तम्भ तथा मुलायम शैलों के अधिक अपरदन के कारण खांच निर्मित होते है। वायु अपघर्षण से क्षेत्र में कठोर शैल–स्तम्भ की आकृति के शिखर (Ridge) चिकने, नुकीले व गोल हो जाते है। दो शिखरों के मध्य में अपरदन के ही कारण पतले खांच (Furrow) निर्मित होते है तथा कालान्तर में क्षेत्र विशेष में चट्टानी पसलियों की भांति दृश्य भूमि प्रतीत होती है। इन्हें यारडांग कहते है। इनकी ऊंचाई 6–16 मीटर तथा चौड़ाई कई सौ मीटर तक हो सकती है।

4. **द्वीपाभ गिरि** (Inselberg) : वायु द्वारा अपघर्षण व अपवाहन द्वारा शैलों के अपरदन हो जाने से शुष्क व अर्द्ध शुष्क जलवायु वाले उन क्षेत्रों में जहां ग्रेनाइट पाई जाती है वहां पूरा क्षेत्र समतल मैदान में परिवर्तित हो जाता है तथा इस समतल स्थल पर कहीं–कहीं कठोर शैल के छोटे गुम्बद के सदृश्य आकृतियों के छोटे–छोटे टीलें मरूस्थल के रेत में द्वीप जैसे दिखाई पड़ते है। इनके किनारे खड़ी ढाल युक्त तथा शिखर गोलाई लिए होते है, इन टीलों को द्वीपाभ गिरी (Inselberg)

कहते है। इन्सेलबर्ग जर्मन भाषा का शब्द है जिसका अर्थ पर्वत द्वीप होता है (चित्र 1.2)।

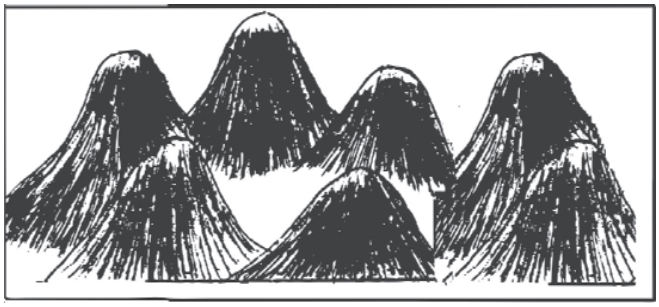

चित्र 1.2 : द्वीपाभ गिरी (इन्सेलबर्ग)

वायु निक्षेपण से निर्मित संरचनायें

1. **लोएस** (Loess) : यह वायूढ़ निक्षेप सूक्ष्म कणों से निर्मित होता है जो रेत (Sand) के कणों से छोटे मगर मृतिका (Clay) से बड़े होते है। वायु द्वारा परिवहित धूल कण मरूस्थलों के किनारे या पर्वतों की ढालों पर जमा हो जाते है व अति सूक्ष्म कणिक जमाव निर्मित होते है जिन्हें लोएस कहते है। इनका रंग पीला या हल्का भूरा होता है। यह विभिन्न मोटाई (कुछ मीटर से लेकर 100 मीटर या अधिक) की एक ढीली–ढाली राशि होती है। इसमें स्तरण का अभाव होता है। इसमें मृतिका, क्वार्ट्ज, फेल्सपार, अभ्रक, कैल्साइट इत्यादि के सूक्ष्म कण विद्यमान रहते है। लोएस के जमाव उत्तरी चीन, मध्य एशिया, मध्य यूरोप, संयुक्त राज्य अमेरिका और अर्जेंटीना में पाये जाते है।

2. **बालू टिब्बें** (Sand Dunes) : बालू के एकत्र होने से बालुका टिब्बा का निर्माण मरूस्थलों में होता है। इन टिब्बों के शिखर गोल होते है। सामान्यतः टीब्बें एक साथ पाये जाते है। वायु के प्रवाहित होने की दिशा में ऊंची नीची भूमि, पेड़ों–झाड़ियों के अवरोध से वायु के मार्ग में बाधा के कारण वेग में कमी हो जाती है, जिस कारण वायु की परिवहन क्षमता कम हो जाती है फलस्वरूप बालू कणों का निक्षेपण प्रारम्भ हो जाता है। बालू कणों के जमाव से अवरोध बढ़ने पर क्रमशः और अधिक बालूकणों का निक्षेपण निरन्तर चलता रहता है व अत्याधिक निक्षेपण से टीलों का निर्माण होता है। बालू टिब्बों की ऊंचाई मरूस्थलों में 30 मीटर से 90 मीटर तक होती है। मरूस्थल का 1/3 से 1/4 तक क्षेत्र बालू टिब्बों से आच्छादित रहता है।

बालू टिब्बों की रचना के लिए बालू की प्रचुरता, बालू–संचयन के लिए स्थान, वायु का तीव्र वेग, अद्योभौमिक जल स्तर की निम्न स्थिति तथा दिशा एवं वायु के मार्ग में अवरोध आवश्यक होते है। बालू टिब्बा की संरचना या बनावट में पवनाभिमुख (Windward side) की ओर लम्बा एवं उत्तल मंद ढाल और पवनाविमुख दिशा (Leeward side) की ओर खड़ा व अवतल अधिक ढाल रहता है। इसमें पवनविमुख दिशा में पवन–भंवर से बालू राशि में गुफा के समान आकृति का निर्माण हो जाता है। यह पवनविमुख पार्श्व सर्पण फलक (Slip face) कहलाता है । बालू के कण पवनाभिमुख पार्श्व से उड़ाकर ले जाये जाते है व बालू टिब्बों के शीर्ष में गिरते है व लुढक कर पवनविमुख पार्श्व के ढाल पर एकत्रित होते है। पवनविमुख ढाल पर बालू के कण जिस कोण पर रूकते है, वह विश्राम कोण (Angle of repose) कहलाता है। यह झुकाव 20° से 40° तक होता है तथा बालू के कणों पर निर्भर करता है। बालू टिब्बों में क्रॉस संस्तरण (Cross Bedding) तथा तरंग चिन्ह (Ripple Marks) पाये जाते है।

बालू टिब्बों को आकार के आधार पर तीन प्रकार में विभेदित किया गया है –

1. अनुदैर्ध्य बालुका टिब्बा (Longitudinal Sand dune)
2. अनुप्रस्थ बालुका टिब्बा (Transverse Sand dune)
3. परवलयिक बालुका टिब्बा (Parabolic Sand dune)

अनुदैर्ध्य बालुका टिब्बा (Longitudinal Sand dune) : ये टिब्बें मरूस्थल व आर्द्र क्षेत्रों मे बनते है। बालू की प्रचुरता तथा वनस्पति के अभाव में इनकी उत्पत्ति होती है। इनमें बालूकणों का एकत्रीकरण श्रेणी की भांति लम्बवत् होता है। ये श्रेणियां प्रायः समानान्तर होती है तथा दांत के आकार में होती है जिसे सीफ (Seif) कहते हैं। भारत में मानसूनी हवाओं द्वारा समुद्री तटों पर इस प्रकार के टिब्बों का निर्माण होता है। राजस्थान के मरूस्थल भाग में इस तरह के टिब्बें मिलते है। इन टिब्बों का निर्माण वायु की दिशा के अनुकूल होता है।

अनुप्रस्थ बालुका टिब्बा (Transverse Sand dune) : ये टिब्बें तरंग चिन्ह की आकृति के बड़े रूप में दृष्टिगत होते हैं तथा वायु के मार्ग में बाधा आ जाने पर बालूकणों का निक्षेपण होने की दिशा में लम्बरूप निर्मित होते है। इनका विस्तार वायु की दिशा के लम्बवत् होता है। टिब्बों की समान्तर कतारों के मध्य एक छोटी पट्टी होती है जिसमें वायु के हल्के झंवर पैदा हो जाते हैं जो बारीक बालू को उड़ाकर मध्य भाग को गहरा करते रहते हैं। इनका मन्द ढाल वायु की दिशा में और खड़ा ढाल प्रतिपाती दिशा में होता है। विशाल मात्रा में बालुका राशि के उड़ने से प्रायः वनस्पति पूर्णतः नष्ट हो जाती है। बालू का टीला जहां अकेला होता है वहां निरन्तर एक ही दिशा में बहने वाली हवा टीले के दोनों पार्श्वों में टीले के नुकीले ओर लम्बे दो सिरे बना देती है। इनका ढाल पवनाभिमुख की ओर उत्तल और पवनाविमुख की ओर अवतल होता है। ऐसे टीले चापाकार टीब्बा (Barchan) कहलाते है। बरखान का अरबी भाषा में अर्थ अर्द्ध चन्द्राकार होता है। ये राजस्थान के मरूस्थल में पाये जाते हैं। बरखान अनुप्रस्थ

टिब्बा का रूप है। इनके विस्तृत किनारों को श्रृंग (Horn) कहते हैं जो पवन के बहने की दिशा सूचित करते है। इनकी ऊंचाई 1–2 मीटर से 15 मीटर तक होती है (चित्र 1.3)।

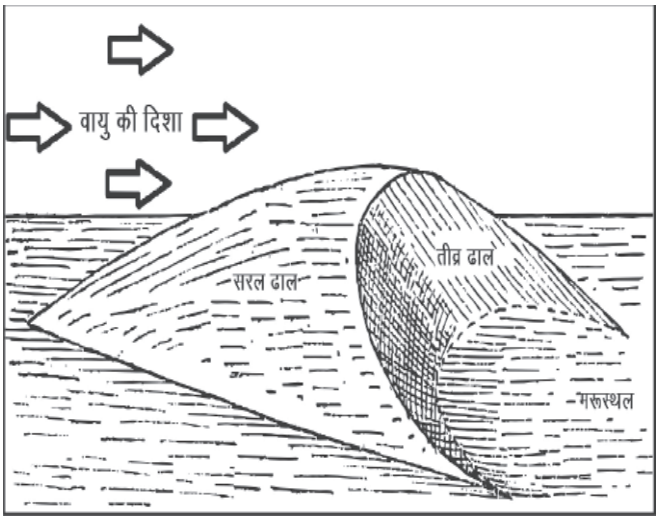

चित्र 1.3 : चापाकार टीब्बा
(अनुप्रस्थ बालुका टिब्बा–बरखान)

परवलयिक बालुका टिब्बा (Parabolic Sand dune) : इस प्रकार के बालू टिब्बों में पवनाभिमुख ढाल पर मन्द ढाल होता है या घर्षण के फलस्वरूप इन पर गड्ढे बन जाते हैं। पवनविमुख ढाल तीव्र होता है जहां बालू कणों का निक्षेप होता है। समुद्र तटीय भागों में पाये जाने वाले वातगत टिब्बें (Blow out Sand dunes) इसके उदाहरण है।

नदी के भूवैज्ञानिक कार्य
(Geological Work of River)

मानव की विकास गाथा में नदियों की प्रभावशाली भूमिका रही है व अधिकांश पुरातन मानव सभ्यताओं का विकास नदियों के किनारे ही हुआ था। वर्तमान काल में नदियों का उपयोग सिंचाई, पेयजल योजनाओं, विद्युत उत्पादन, परिवहन, मत्स्य उद्योग इत्यादि में किया जाता है।

पर्वतीय अंचलों में वर्षा जल, हिमनद के पिघलने से उपलब्ध जल, झील–झरने या भूमिगत जल के विभिन्न स्त्रोतों से सतत् जल की उपलब्धता रहती है तथा थलाकृति की असमानता के फलस्वरूप प्रारंभिक ढाल उपलब्ध हो जाती है। सतत् जल व प्रारंभिक ढाल की उपलब्धता नदी की उत्पत्ति के लिए आवश्यक कारक है। पर्वतीय अंचलों में उपलब्ध ढालों के लघुपथ से जल प्रवाहित होकर छोटी जल धाराएं या अवनालिकाएं (Gullies) बनाता है जो निम्न ढालों पर आपस में मिलकर छोटी सरिता का रूप लेती है। छोटी सरिताएं आपस में मिलकर बड़ी सरिता का निर्माण करती है तथा इस प्रकार पर्वतीय अंचल में एक शाखन–अपवाह प्रतिरूप (Branching Drainage Pattern) विकसित होता है। बड़ी सरिताएं आपस में मिलकर नदी का निर्माण करती है। मुख्य नदी, सहायक नदियों व सरिताओं का सम्मिलित प्रतिरूप नदी तंत्र (River System) कहलाता है। वर्ष पर्यन्त जल प्रवाहित होने वाली नदियों का उद्गम पर्वतीय अंचल से हिमनद के पिघलने से या विशाल भूमिगत जल स्त्रोत से जल प्राप्ति के कारण मुख्यतः होता है तथा इन्हें स्थायी नदी कहते हैं। अन्य नदियों में मुख्यतः वर्षा जल ही प्रवाहित होता है अतः यह ग्रीष्म ऋतु में सूख जाती है, इन्हे आन्तरायिक नदी (Intermittent River) कहते हैं। अधिकांश नदियां पर्वतीय क्षेत्र से होकर मैदानी भागों में बहती हुई अंत में समुद्र में मिल जाती है, इन्हें समुद्री नदी (Marine River) कहते हैं। वहीं दूसरी ओर मरूस्थल, झील या अनूप में विलीन होने वाली नदियां महाद्वीपीय नदी (Continental River) कहलाती है।

नदी प्रवाह में जल समतल जलमार्ग में वाहिकाओं के पार्श्व के समान्तर सीधी सरल रेखा में प्रवाहित होता है तब इसे स्तरीय प्रवाह (Laminar Flow) कहते हैं। वहीं जल वेग वृद्धि की स्थिति में वाहिका की अनियमितताओं के संस्पर्श में जलवेग में परिवर्तन के साथ जल प्रवाह चक्रीय धारा के रूप में प्रवाहित होता है। इस प्रकार का जल प्रवाह प्रक्षुब्ध–प्रवाह (Turbulent Flow) कहलाता है।

नदी तंत्र के विकास की चार प्रमुख अवस्थाएं क्रमशः प्रारम्भिक अवस्था (Infant Stage), तरूणावस्था (Youth Stage), प्रौढ़ावस्था (Mature Stage) एवं वृद्धावस्था (Old Stage) है। नदी इन चारों अवस्थाओं में अलग–अलग व्यवहार प्रदर्शित करती है।

प्रारम्भिक अवस्था में नदी अपने उद्गम स्थल अर्थात पर्वतीय अंचल में अधिक ढाल वाले क्षेत्र में प्रक्षुब्ध प्रवाह के साथ तेज गति से बहती हुई मुख्यतः अवखनन (Down Cutting) का कार्य करती है तथा 'V' आकृति की घाटी का निर्माण करती है। पर्वतीय क्षेत्र में नदीपथ में असमानताओं के कारण नदी जल प्रपात (Water fall), क्षिप्रिका (Rapid), सोपानी पात (Cascade), महाखड्ड (Gorge), गंभीर खड्ड (Canyon), एवं तंग घाटियों (Narrow Valleys) का निर्माण करती है। इस अवस्था में सहायक नदियों का भी विकास होता है।

तरूणावस्था में भी नदी पर्वतीय प्रदेश में अधिक ढाल के कारण तीव्र वेग से प्रवाहित होती हुई मुख्यतः अवखनन का कार्य करती है तथा नदी घाटी क्रमशः गहरी होती जाती है। नदी प्रवाह के साथ निम्न ढालों की ओर अपरदित पदार्थों का परिवहन होता है। इस अवस्था में सहायक नदियों के विकास के साथ नदी अपहरण भी होता है।

प्रौढ़ावस्था में नदी की लम्बी परिच्छेदिका कम अनियमितता वाली होती है तथा नदी का कार्य अपरदित पदार्थों का परिवहन तथा पार्श्व अपरदन होता है। इस अवस्था में जल प्रपात नहीं पाये जाते तथा बाढ़ अधिक आती हैं, नदियां अधिक गहरी होती है। नदियां पर्वतीय क्षेत्र से नीचे उतर कर मैदानी भाग में आ जाती है तथा प्रवणता में कमी के कारण इनके वेग में कमी आ जाती है। इस कारण नदी के अपरदन व परिवहन क्षमता में कमी होने लगती है तथा वाहित अवसादों का निक्षेपण प्रारंभ हो जाता है एवं जलोढ़ शंकु (Alluvial Cone) व जलोढ़ पंखों (Alluvial Fans) का निर्माण होता है। नदी घाटी का फैलाव होता है तथा घाटी तल समतल होने लगता है। इस अवस्था में नदी अपने दोनों किनारों पर बाढ़ के समय लाए गए अवसादों को विशाल क्षेत्र में निक्षेपित कर बाढ़–कृत मैदान (Flood Plain) अर्थात् कछार का निर्माण करती है। प्रौढ़ावस्था में नदी अधिकतर स्तरित प्रवाह से बहती है मगर थलाकृति की अनियमितता के कारण नदी वक्राकार रूप में बहने लगती है, इसे विसर्पण (Meandering) कहते हैं (चित्र 1.4)।

भूभाग की मूल में अनियमितता अथवा घाटी–तल के शैलों के संघटन व संरचना अथवा अवसादों के निक्षेपण अथवा अन्य कारणों से जब नदी के मार्ग में अवरोध पैदा हो जाते हैं तो नदी मार्ग बदल घुमावदार रास्ते से प्रवाहित होने लगती है तथा वक्राकार बहाव के फलस्वरूप नदी के प्रवाह में वक्र के अवतल पार्श्व में उत्तल पार्श्व की तुलना में वेग अधिक होने के कारण अपरदन होता है, वहीं उत्तल पार्श्व में अवसादों का निक्षेपण होता है। वक्रों के अवतल और उत्तल पार्श्वों में अपरदन की भिन्नता के कारण वक्रता क्रमशतः बढ़ती जाती है एवं वक्र पाशकुण्डली (Loop) का रूप ले लेता है। धीरे–धीरे पाश कुण्डली की ग्रीवा संकरी होती जाती है। कुछ अल्प समयावधि के लिए जब नदी के वेग में वृद्धि हो जाती है तब पाशकुण्डली की संकरी ग्रीवा अपरदित हो जाती है तथा नदी पुनः सीधी प्रवाहित होने लग जाती है। अलग हुई पाशकुण्डली झील में परिवर्तित हो जाती है, इस प्रकार की झील 'झाड़ झील' या 'चाप झील' (Ox-bow or Horse shoe lake) कहलाती है (चित्र 1.5)।

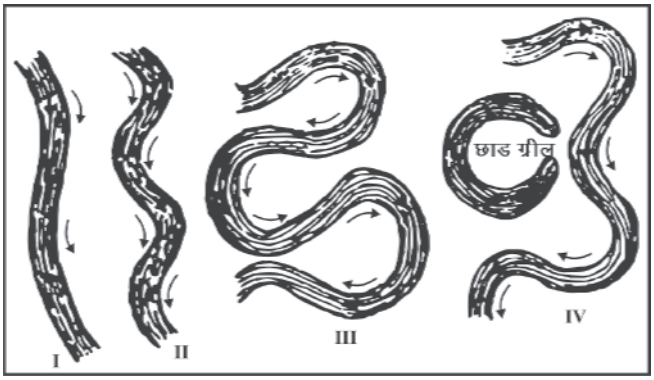

चित्र 1.5 : झाड़ झील या चाप झील

वृद्धावस्था में नदी समुद्र तल के नजदीक अपने साथ वाहित अपरदित पदार्थ तथा जलोढक (Alluvium) से समतल और मंद ढाल वाले क्षेत्र का निर्माण करती है। मंद गति से प्रवाहित नदी अन्ततः समुद्र में मिलकर विलीन हो जाती है। नदी एवं समुद्र के संगम स्थल पर ज्वारनदमुख (Estuary) या डेल्टा (Delta) बनता है (चित्र 1.6)।

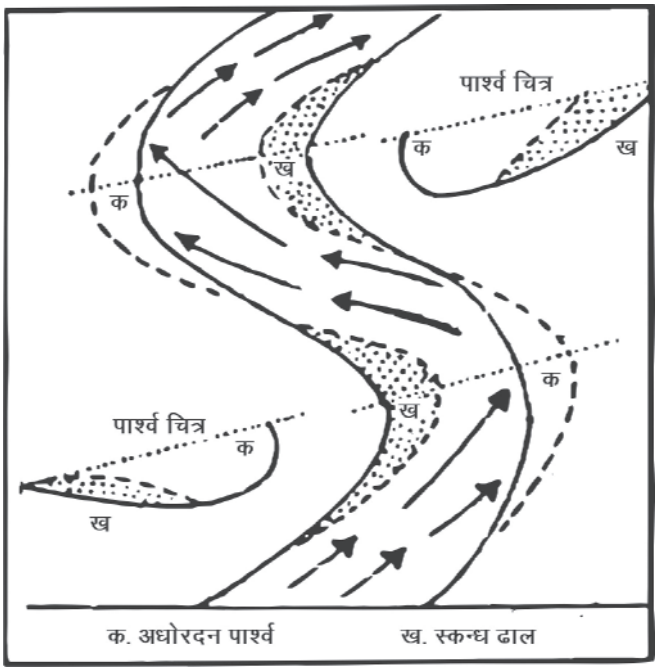

चित्र 1.4 : नदी का विसर्पण

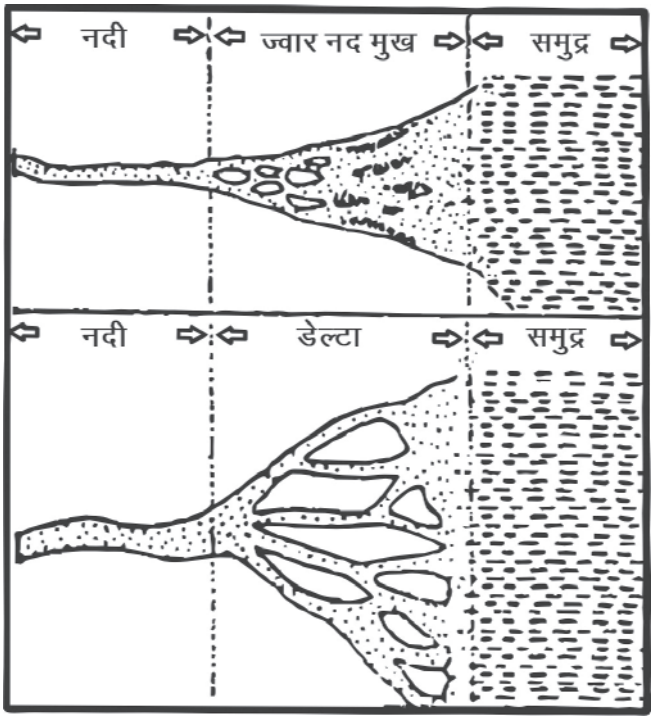

चित्र 1.6 : ज्वारनदमुख तथा डेल्टा

नदी तंत्र के विकास के उपरोक्त पूर्ण क्रम को नदीय चक्र (Fluvial Cycle) कहते हैं। नदी के जल स्तर की समुद्र सतह से ऊँचाई को नदी के उद्गम से मुख तक की लम्बाई के विरूद्ध आलेखित करने पर निर्मित वक्ररेखा को नदी परिच्छेदिका (River Profile) कहते हैं।

उत्पत्ति तथा विकास के आधार पर नदियों को निम्न प्रकार से वर्गीकृत किया जाता है–

1. **अनुवर्ती नदी** (Consequent River) : इन नदियों का प्रवाह नव निर्मित भूधरातल के प्रारम्भिक ढाल प्रवाह द्वारा नियंत्रित होता है। उदाहरण – कृष्णा, कावेरी, गोदावरी।

2. **अ–अनुवर्ती नदी** (Inconsequent River) : इन नदियों के प्रवाह का अधःस्थ शैल–संस्तर की संरचना से कोई संबंध नहीं रहता है और भूधरातल की वर्तमान संरचना इन नदियों के प्रवाह को नियंत्रित नहीं करते है। उदाहरण – गंगा, बह्मपुत्र, सिंधु।

3. **परवर्ती नदी** (Subsequent River) : यह मुख्य नदी द्वारा निर्मित घाटी की ढालों पर विकसित सहायक नदी है जो मुख्य नदी के प्रवाह की दिशा में ही प्रवाहित होकर अन्ततः मुख्य नदी से मिल जाती है। उदाहरण – गंगा नदी की सहायक नदियां कोशी व गण्डक।

4. **प्रत्यनुवर्ती नदी** (Obsequent River) – यह भी सहायक नदी का प्रकार है, जो मुख्य नदी द्वारा निर्मित घाटी के ढालों पर ही विकसित होती है परन्तु इस नदी का प्रवाह मुख्य नदी की विरूद्ध दिशा में होता है।

सहायक सरिताओं और मुख्य नदी के सामूहिक रूप में बहाव से किसी क्षेत्र में निर्मित होने वाले विन्यास को अपवाह–प्ररूप (Drainage Pattern) कहते हैं। नदी के भूवैज्ञानिक कार्य द्वारा भूसतह पर विशेष प्रकार के अपवाह प्ररूप निर्मित होते हैं जो क्षेत्र विशेष, प्रारम्भिक ढाल, शैलों के संघटन, कठोरता के अलावा क्षेत्र में उपस्थित भ्रंशों, वलनों, संधियों तथा पटल विरूपण जैसे घटकों पर निर्भर करते हैं। मुख्य अपवाह प्ररूपों में द्रमाकृतिक, जालीनुमा, समकोणिक, अरीय, वलयाकार, समान्तर तथा कंटकीय प्ररूप महत्वपूर्ण है।

नदी के भूवैज्ञानिक कार्य

नदियों द्वारा भूवैज्ञानिक कार्य के तहत अपरदन, परिवहन तथा निक्षेपण होता है। नदी में जल प्रवाह के तीव्र वेग के फलस्वरूप अपरदन तथा परिवहन के कार्य होते हैं तथा वेग में कमी होने पर मुख्यतः निक्षेपण कार्य होने लगता है।

नदी द्वारा अपरदन (River Erosion)

नदियों द्वारा अपरदन दो प्रकार से होता है– बलकृत अपरदन तथा रासायनिक अपरदन। बलकृत अपरदन में नदी अपने किनारों को अपनी जल धारा की शक्ति से ही काटती है तथा रासायनिक अपरदन में नदी के तल का घुलनशील पदार्थ नदी के जल में घुलकर प्रवाहित होने लगता है।

नदी द्वारा अपरदन कार्य निम्नलिखित चार विधियों द्वारा होता है–

1. जलीय/द्रवचालित क्रिया (Hydraulic Action)
2. अपघर्षण क्रिया (Abrasion)
3. संनिघर्षण क्रिया (Attrition)
4. संक्षारण क्रिया (Corrosion)

1. **जलीय/द्रवचालित क्रिया :** इस क्रिया में नदी का प्रवाहित जल नदी के तल तथा किनारों की शैलों को असंहत कर विघटित कर देता है और बलकृत अपरदन की सामग्री को जल में बहा देता है।

2. **अपघर्षण क्रिया :** इस क्रिया में नदी के तल तथा किनारों की शैलों का नदी भार से पारस्परिक भौतिक रगड़ होता है। नदी के तेज जल प्रवाह के साथ–साथ शैल कणों का परिवहन होता है जो नदी तल व किनारों से लगातार टकराते हैं व घर्षण क्रिया से शैलों का बलकृत अपरदन करते है, इसके फलस्वरूप नदी तल व किनारे क्रमशः समतल रूप प्राप्त करते हैं। नदी तल के अप्रतिरोधी शैलों के लगातार अपघर्षण से वृत्ताकार या दीर्घवृत्ताकार गर्तों का निर्माण होता है, इन्हें जलज–गर्तिका (Pot Holes) कहते हैं। ये संरचनाएँ नदी जल की सर्पिल धारा में फँसे हुए शैलकणों के नदी तल के एक ही स्थान पर लगातार अपघर्षण करते रहने के फलस्वरूप निर्मित होती है। इस प्रक्रिया में नदी तल का अवखनन होता है। बालुकाश्म (Sandstone), चूनापत्थर (Limestone) व शेल (Shale) जैसी अप्रतिरोधी चट्टानों में जलज गर्तिकाओं का निर्माण होता है।

3. **संनिघर्षण क्रिया** : नदी के जल में प्रवाह में प्रवाहित शैल कणों द्वारा अनवरत अपघर्षण का कार्य होता रहता है तथा ये शैल कण स्वयं भी लगातार घर्षण के कारण खण्डित होते रहते है व अन्ततः चिकने व निष्कोण हो जाते है। इस प्रकार अपघर्षणकारी शैल कणों के विघटन की प्रक्रिया को संनिघर्षण कहते हैं, इसके फलस्वरूप नदी द्वारा वाहित शैलकणों की आकृति गोलाकार हो जाती है।

4. **संक्षारण क्रिया :** नदी द्वारा रासायनिक अपरदन भी होता है चूंकि जल बढ़िया घोलक होने के साथ एक प्रमुख रासायनिक कारक भी है अतः विलयन शक्ति द्वारा शैलों का अपरदन व रासायनिक प्रतिक्रिया द्वारा अपघटन होता है।

विलयन क्रिया और रासायनिक प्रतिक्रिया का यह संयुक्त प्रक्रम संक्षारण क्रिया कहलाता है। इस प्रक्रिया द्वारा नदी तल व नदी के किनारों के शैल क्रमशतः अपरदित होते रहते है।

नदी द्वारा अपरदन का कार्य निम्नलिखित कारकों द्वारा प्रभावित होता है–

1. नदी में जल की मात्रा
2. नदी के जल की प्रवाह गति
3. नदी के जल का भार
4. नदी के तल की बनावट
5. नदी घाटी का विकास व ढाल की प्रवृत्ति
6. नदी द्वारा वाहित शैल पदार्थों की कठोरता

नदी द्वारा परिवहन (Transportation by River)

नदियों में विद्यमान विभिन्न आकार व प्रकार के अपरदित पदार्थों का जल के प्रवाह के साथ परिवहन करती है। यह दो प्रकार यथा बलकृत परिवहन तथा घुलित पदार्थों का परिवहन द्वारा होता है। नदी परिवहन पांच विधियों –कर्षण (Traction), उत्परिवर्तन (Saltation), निलम्बन (Suspension), घोल (Solution) और प्लवन (Floatation) द्वारा होता है। नदी द्वारा परिवहित अपरदित तथा घुलित पदार्थों की कुल मात्रा को नद भार (Load of River) कहते हैं। नदी अपने नदभार को अपने उद्‌गम स्थल से परिवहित करती है व अन्ततः इसे समुद्र में विसर्जित करती है। बलकृत परिवहन नदी प्रवाह के वेग, भंवर एवं धाराओं वाहित शैल पदार्थों के आकार, साईज व घनत्व पर निर्भर करता है। नदी के वेग का दुगुना होने पर इसकी परिवहन क्षमता 32 गुना तक बढ़ जाती है। नदी परिवहन के दौरान वाहित शैल पदार्थों की छंटाई (Sorting) होती है, बड़े व अधिक घनत्व वाले शैल कण कम दूरी तक और छोटे व कम घनत्व वाले शैल कण अधिक दूरी तक परिवहित होते हैं। नदी में भंवर और धाराओं की मदद से तथा नदी के जल के आयतन में बढ़ोतरी होने से इसकी परिवहन क्षमता बढ़ जाती है। नदी के जल की विलयन क्षमता भी इसके परिवहन को प्रभावित करती है। नदी के जल में मुख्य रूप से कैल्शियम एवं मेग्नेशियम के कार्बोनेट तथा कैल्शियम, मेग्नेशियम, पोटेशियम, सोडियम आदि के सल्फेट घुलित अवस्था में रहते हैं व नदी जल के साथ परिवहित होकर अन्ततः समुद्र में मिलते है तथा समुद्र की लवणता में बढ़ोतरी करते हैं। इनकी मात्रा बढ़ने से जल के घनत्व में वृद्धि होती है जिसके फलस्वरूप पदार्थों की उत्पलावकता बढ़ जाती है जो नदी की परिवहन क्षमता को बढ़ाती है।

नदी द्वारा निक्षेपण (River Deposition)

नदी द्वारा अपरदन तथा परिवहन का कार्य साथ–साथ चलता रहता है परन्तु नदी के वेग में कमी होने पर निक्षेपण की प्रक्रिया प्रारम्भ हो जाती है। अपरदन की पूरक प्रक्रिया निक्षेपण होती है। नदी में जल की मात्रा में, धारा–वेग में तथा ढाल प्रवणता में कमी होने पर निक्षेपण प्रारम्भ होता है। नदी–प्रवाह में अवरोध, नदी जल में फैलाव और नद–भार में वृद्धि भी निक्षेपण में सहायक होती है। नदी के निक्षेपण से नदी घाटी में निम्न प्रकार के रूप एवं आकृतियां बनती हैं–

1. जलोढ़ शंकु या पंखा (Alluvial Cone or Fan)
2. बालुका पुलिन (Sand Banks)
3. प्राकृतिक तट बांध अथवा प्राकृतिक बांध (Natural Levees or Natural Embankment)
4. बाढ़कृत मैदान (Flood Plain)
5. डेल्टा (Delta)

1. **जलोढ़ शंकु या पंखा :** नदियाँ जब मैदानी क्षेत्र में प्रविष्ठ होती है तो इनकी गति मन्द होने के कारण परिवहन क्षमता में कमी हो जाती है जिसके फलस्वरूप मोटी बजरी, बालू, शैलकण इत्यादि के शंकु के आकार के टीलों के रूप में एकत्र हो जाते हैं। ऐसे अनेक टीले एक में मिलते हैं तो उनकी आकृति पंखे के समान दृष्टिगत होती है। सूक्ष्म कण अथवा रेत के कछारी शंकु बने होते हैं। छोटी–छोटी नदियां अधिक ढालू शंकु बनाती है। जलोढ़ पंखा मिलकर यदि कई किलोमीटर विस्तृत मैदान का निर्माण करते है तब इसे निरापद जलौढ़ मैदान या बाजदा (Piedmont Alluvial Plain or Bajada) कहते हैं। जलोढ़ पंख शुष्क तथा अर्द्ध शुष्क प्रदेशों में तथा हिमालय क्षेत्र में मिलते हैं।

2. **बालुका पुलिन :** नदियों की घाटी के मध्य में बाढ़ की स्थिति में विभिन्न प्रकार से अवसाद जमा हो जाते हैं और बालू के अवरोधी पुलिन बन जाते हैं। इस प्रकार के नदी निक्षेपण से धीरे–धीरे नदी की तलहटी निकटवर्ती समीपस्थ मैदानों की अपेक्षा ऊँची हो जाती है।

3. **तट बांध :** नदी की मध्यवर्ती घाटी में निक्षेपण की प्रक्रिया होती है। बाढ़ की स्थिति होने पर नदी के प्रवाह की दिशा में जहां–जहां घुमावदार मोड़ पड़ते है वहां–वहां इसके किनारों पर मोटी बजरी, बालू और कंकड़–पत्थरों का जमाव होने लगता है तथा नदी के किनारे की भूमि आस–पास की भूमि से अधिक ऊँची होकर कालान्तर में 5 से 7 मीटर ऊँचाई का ऊँचा कगार बनाती है, इसे तट बांध कहते हैं। बाढ़ के समय नदी के पानी को ये कगार रोकते हैं, अतः इन्हें प्राकृतिक बांध भी कहते हैं।

4. **बाढ़कृत मैदान :** बाढ़ की परिस्थितियों में नदी के समीपस्थ क्षेत्र में मिट्टी के बारीक कणों के निक्षेपित होने से बाढ़ का समतल व लहरदार मैदान बनता है इनका उच्चावच कम होता है। इनमें सरिता मार्ग में जल मार्ग रोधिका (Channel Bars) तथा विसर्प (Meanders) के भीतरी भाग में विसर्पी रोधिका (Point Bars) पाये जाते हैं।

5. **डेल्टा** – नदी का वेग इसके किनारों पर नदी के मध्य भाग में वेग की तुलना में कम होता है फलस्वरूप मध्य भाग का जल समुद्र में अधिक दूरी तक प्रवाहित होता है व अवसाद समुद्र में सुदूर तक जिह्वा के आकार में जमा होता है परन्तु किनारों पर जल के वेग में कमी होने के कारण अवसाद समुद्र के संगम पर ही समाप्त हो जाता है। नदी का जल कई धाराओं में बहकर समुद्र में मिलता है तथा नदियों के मुहाने पर ग्रीक भाषा के अक्षर डेल्टा (Δ) की आकृति के त्रिभुजाकार मैदान बन जाते हैं, इन्हें डेल्टा कहते हैं। डेल्टा स्थिर जल में नदी जनित अवसाद के तीव्र निक्षेपण के फलस्वरूप निर्मित होते हैं। डेल्टा नदी के अन्तिम भाग का वह समतल मैदान है जिसका निर्माण समुद्र के भीतर नदी द्वारा प्रवाहित अवसाद से होता है और इसमें नदी का जल अनेक धाराओं द्वारा समुद्र में पहुंचता है। डेल्टा के मैदान का ढाल समुद्र की ओर रहता है।

भूकम्प (Earthquake)

पृथ्वी के अन्दर होने वाली घटना के फलस्वरूप जब भूधरातल का कोई भाग अकस्मात कुछ क्षणों के लिए कांप उठता है तो इसे भूकम्प कहते हैं, यह प्रक्रिया भूधरातल तथा इसके नीचे स्थित शैलों के प्रत्यास्थ (Elastic) या गुरुत्व साम्यावस्था (Gravitation equilibrium) की अल्पकालिक गड़बड़ी के कारण उत्पन्न होती है परन्तु तीव्रता से होने पर भारी जान–माल का नुकसान करती है। पृथ्वी की गहराई में जहाँ पर शैलों में विक्षोभ होता है वहीं से ही पृथ्वी में कम्पन होता है। विक्षोभ होने वाले स्थान से दूरी के साथ ही कम्पन कम होता जाता है और साथ ही साथ विध्वंस भी कम होता जाता है। ज्वालामुखी विस्फोट, भ्रंशन के कारण शैल संस्तरों के विस्थापन से, भूस्खलन इत्यादि से भी भूकम्प उत्पन्न हो सकते हैं। भूकम्प के दौरान तीन तरह की भूकम्पीय तंरगों का संचारण होता है।

भूकम्पीय तरंगे पृथ्वी की गहराईयों से ही उत्पन्न होती है तथा क्रमशः फैलती हुई भू–धरातल पर संचारित होती है। पृथ्वी की गहराई में जिस स्थान पर से भूकम्पीय तरंगे उत्पन्न होती है वह स्थान भूकम्प का उद्‌गम केन्द्र (Focus) या अवकेन्द्र (Hypocentre) कहलाता है। यह उद्‌गम केन्द्र एक बिन्दु के रूप में नहीं होकर, एक विभिन्न लम्बाई का रैखिक स्थल होता है। उद्‌गम केन्द्र के ठीक ऊपर भूधरातल पर जो स्थान होता है उसे भूकम्प का अधिकेन्द्र (Epicentre) कहते हैं। भूधरातल पर भूकम्प के एक ही समय पर पहुँचने वाले स्थानों को जोड़ने वाली रेखा सह भूकम्प–रेखा (Homoseismal or Co-Seismal line) कहलाती है। भूधरातल पर समान तीव्रता वाले स्थानों को जोड़ने वाली रेखा को समभूकम्प रेखा (Isoseismal line) कहते हैं (चित्र 1.7)।

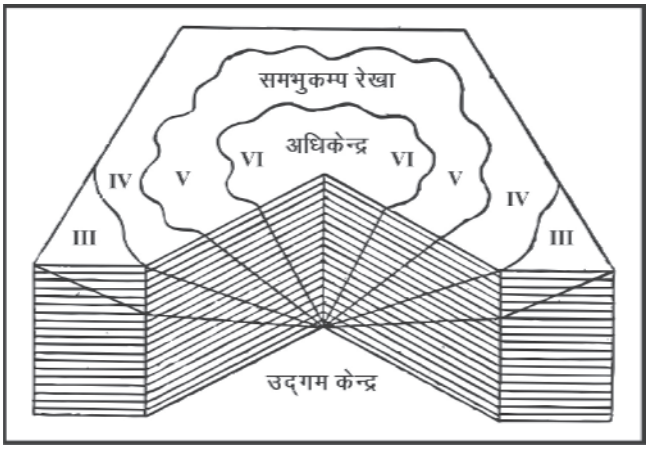

चित्र 1.7 : भूकम्प का उद्‌गम केन्द्र, अधिकेन्द्र व समभूकम्प रेखा

भूकम्प का उद्‌गम केन्द्र जब महासागर के ठीक नीचे होता है तो इन परिस्थितियों में प्रघाती तंरगे स्थल मण्डल से निकलकर समुद्र जल में से होती हुई सतह पर फैलती है व इन्हें समुद्री–कम्प (Sea quakes) कहते हैं। इनसे समुद्र सतह पर तरंगे उत्पन्न होती है। अन्तः समुद्री भूकम्प के कारण समुद्री तल के कुछ भागों में हलचल एवं विस्थापन होने के कारण समुद्र में भंयकर तूफान के साथ विशाल जल तरंगे तीव्र वेग से गतिमान होती है, ये भयंकर समुद्री तूफानी तरंगे जापानी भाषा में 'सुनामी' (Tsunami) कहलाती है। परिमाण –8 या इससे अधिक मान वाले अन्तः समुद्री भूकम्प ही सुनामी तरंगो को उत्पन्न करते हैं। सुनामी तरंगे प्रायः 400 से 800 किलोमीटर प्रति घण्टे के वेग से हजारों किलोमीटर की दूरी तय करती है। खुले समुद्र में ये तरंगे लम्बी होती है परन्तु इनकी ऊंचाई अधिक नहीं होती है वही दूसरी ओर समुद्र तटों के निकटस्थ क्षेत्रों में सुनामी तरंगे विकराल रूप में होती है व भंयकर जान–माल का नुकसान करती है।

भूकम्पीय तरंगे (Seismic Waves)

भूकम्पीय अभिलेखन के अध्ययन से ज्ञात हुआ है कि मुख्यतः तीन तरह की भूकम्पीय तरंगे ध्वनि एवं प्रकाश तरंगों की ही भांति संचारित होती है। तीन मुख्य भूकम्पीय तरंगों की जानकारी निम्नानुसार है–

1. **प्राथमिक तरंग** (Primary Wave) : भूकम्प अभिलेखन प्रेक्षण स्थल से जब भूकम्प की उत्पत्ति 10° से 50° पर होती है

तो सबसे पहले प्राथमिक तरंगे पहुंचती है। इनकी गति 8 से 15 किलोमीटर प्रति सैकण्ड तक होती है। भूकम्प अभिलेख का पहला भाग प्राथमिक तरंग कहलाता है, ये तरंगे अनुदैर्ध्य और संपीडन प्रवृति की होती है जो ध्वनि तरंगों के अनुरूप व्यवहार करती है। इनमें कणों का कम्पन्न आगे–पीछे होता है। ये तरंगे ठोस, द्रव व गैस तीनों माध्यमों में गमन कर सकती है।

2. **द्वितीयक तरंग** (Secondary Wave) : भूकम्प अभिलेखन प्रेक्षण स्थल पर प्राथमिक तरंगों के पश्चात द्वितीयक तरंगे पहुंचती है, इनकी गति 5 से 6.5 किलोमीटर प्रति सैकेण्ड होती है। ये तरंगे अनुप्रस्थ तथा अपरूपण प्रवृति की होती है। ये तरंगे प्रकाश तरंगों के अनुरूप होती है अतः इनमें कणों का विस्थापन संचरण दिशा के लम्बवत् होता है तथा केवल ठोस माध्यम में ही संचारित होती है। प्राथमिक व द्वितीयक तरंगे पृथ्वी की गहराईयों में उत्पन्न होती है तथा प्रकाशकीय नियमों के अनुसार अपवर्तन (Refraction) एवं परावर्तन (Reflection) के नियमों का पालन करती है।

3. **पृष्ठीय तरंग/सतही तरंग या दीर्घ तरंग** (Long Wave) : भूकम्प अभिलेखन प्रेक्षण स्थल के तीसरे भाग पर दीर्घ तरंग पहुँचती है। ये पृष्ठीय (सतही) तरंगे धरातल पर ही संचारित होती है, इनकी गति 3 से 5 किलोमीटर प्रति सैकेण्ड होती है परन्तु भूकम्प के कारण धरातल पर इन्हीं तरंगो की वजह से भयंकर जान–माल का नुकसान होता है। दीर्घ तरंगो के पश्चात पश्च–प्रघात तरंगो (After Shock Waves) का संचारण होता है। दीर्घ तरंगों की तुलना में इनका वेग कम होता है तथा ये तरंगे कई दिनों या महिनों तक आती रहती है।

भूकम्पों की उत्पत्ति (Origin of Earthquakes)

भूकम्पों की उत्पत्ति मुख्यतः विवर्तनिक तथा अविवर्तनिक कारणों से होती है। अधिकांश भूकम्पों की उत्पत्ति के लिए विवर्तनिक कारण जिम्मेवार होते हैं। विवर्तनिक हलचलों के कारण पृथ्वी के भूपर्पटी (Crust) के कुछ भागों के शैल संस्तरों का अकस्मात विस्थापन होता है, यह प्रक्रिया भ्रंशन कहलाती है। इस प्रक्रिया के दौरान जनित आवेग के कारण भूसतह के अन्दर कम्पन होता है जो धरातल के अन्य भागों में कम्पित लहरों के रूप में फैल भूकम्प की उत्पति करता है। यह प्रक्रिया एच.एफ. रीड ने 'प्रत्यास्थ प्रतिक्षेप सिद्धांत' (Elastic Rebound Theory) के द्वारा समझायी। इसके अनुसार भूपर्पटी से संलग्न भागों के विरूद्ध दिशाओं में अतिमंद गति से स्थानान्तरण के फलस्वरूप संचित प्रतिबल जब एक निश्चित सीमा से अधिक हो जाता है तथा विकृति को सहन करने की शक्ति से परे हो जाता है तब अकस्मात भूभागों के विस्थापन होने से प्रत्यास्थ विकृति की मुक्ति होती है तथा इस तरह शैलों के भ्रंशन के फलस्वरूप भूकम्पों की उत्पत्ति होती है। चित्र 1.8 के द्वारा प्रत्यास्थ प्रतिक्षेप सिद्धांत को समझा जा सकता है। इस सिद्धांत के अनुसार चित्र 'अ' में दर्शित भूखण्ड पर ऊर्ध्वाधर प्रतिबल क्रियाशील है जिनके द्वारा प्रतिबल क्रमशः संचित हो रहा है। चित्र 'ब' के अनुसार ऊर्ध्वाधर प्रतिबल के क्रमशः संचित होते रहने के कारण इसमें मोड़ उत्पन्न हो जाता है। यह संचित प्रतिबल जब प्रत्यास्थ सीमा से अधिक हो जाता है तब चित्र 'स' के अनुसार भूखण्ड भंग हो जाता है तथा एक भाग भ्रंश (Fault) से नीचे की ओर तथा दूसरा भाग भ्रंश के ऊपर की ओर विस्थापित हो जाता है।

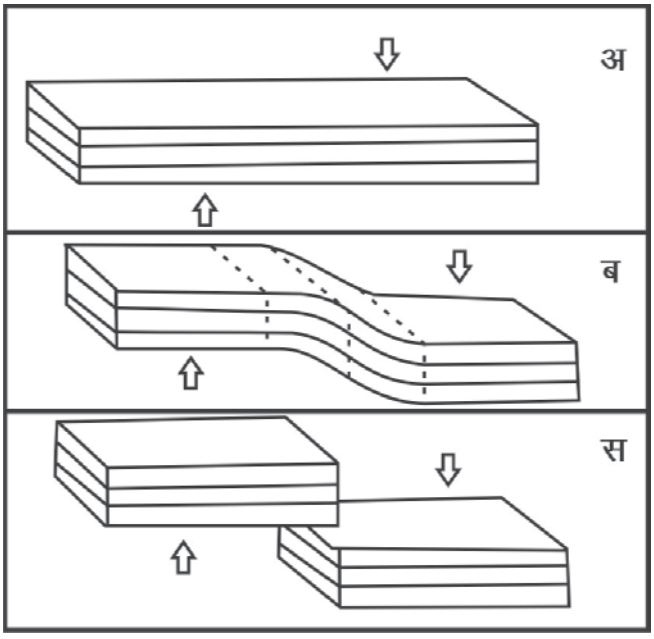

चित्र 1.8 : प्रत्यास्थ प्रतिक्षेप सिद्धांत

अविवर्तनिक कारणों यथा ज्वालामुखी उद्गार, भूस्खलन, अवधाव, कन्दराओं की छत निपात, परमाणु विस्फोट, खनन, अत्यधिक भूजल दोहन जैसी घटनाएं भी भूकम्पों को कभी–कभी जन्म देती है। इन भूकम्पों की तीव्रता कम होती है तथा इनका अभिलेखन भूकम्पलेखी (Seismograph) द्वारा किया जा सकता है।

भूकम्पों के उद्गम केन्द्रों की गहराई के आधार पर भूकम्पों को निम्न तीन प्रकार में वर्गीकृत किया गया है–

1. सामान्य भूकम्प : उद्गम केन्द्र की गहराई 50 किलोमीटर तक।
2. मध्यवर्ती भूकम्प : उद्गम केन्द्र की गहराई 50-250 किलोमीटर तक।
3. गंभीर भूकम्प : उद्गम केन्द्र की गहराई 250-800 किलोमीटर तक।

भूकम्पलेखी (Seismograph)

भूकम्प के अतिक्षीण से लेकर तीव्र प्रघातों के अभिलेखन हेतु प्रयुक्त यंत्र को भूकम्पलेखी (Seismograph) कहते हैं (चित्र 1.9)।

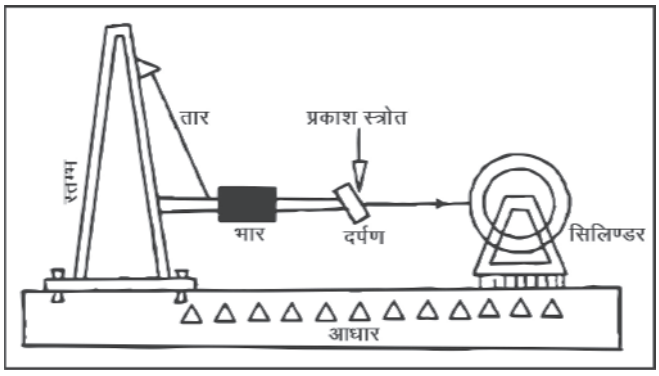

चित्र 1.9 : भूकम्पलेखी यंत्र

इस यंत्र में एक गहरी नींव पर निर्मित मजबूत स्तम्भ से एक झड़ कीलकित (Pivoted) रहती है। छड़ के दूसरी ओर वजनी भार संलग्न रहता है जो क्षैतिज तल में सफलतापूर्वक हिल–डुल सकता है। भूकम्प आने पर स्तम्भ भी हिलता है। छड़ में संलग्न भार अपने वजन के कारण स्थिर अवस्था में रहने की कोशिश करता है। भूकम्प आने पर छड़ के अंतिम सिरे तथा भूकम्पलेखी के शेष भाग के तुलनात्मक दोलन को अभिलेखित किया जाता है। छड़ के अन्तिम सिरे में एक दर्पण संलग्न रहता है तथा कुछ दूरी पर एक लम्बे स्क्रू पर घुमने वाले ड्रम पर फोटोग्राफी वाला कागज लिपटा रहता है। ड्रम घुमने पर इसके ऊपर लिपटी हुई फोटोग्राफी शीट प्रकाश किरण के लम्बरूप घूमती है। भूकम्प के दौरान इस फोटोग्राफी शीट पर प्रकाश किरण द्वारा भूकम्प की तरंगे अभिलेखित हो जाती है। बिना भूकम्प की सामान्य स्थिति

चित्र 1.10 : ब्रोड बेंड डिजीटल भूकम्प अभिलेखी यंत्र

में फोटोग्राफी शीट पर सीधी सरल रेखा खिंचती रहती है परन्तु भूकम्प के अतिक्षीण प्रघात की स्थिति में भी यह वजन कम्पित हो जाता है व फोटो शीट पर भूकम्पीय तरंगो के अनुरूप तरंगे खिंचती रहती है व भूकम्पीय तरंगो का अभिलेखन हो जाता है इसे भूकम्प–अभिलेख (Seismogram) कहते हैं। विभिन्न भूकम्पीय प्रेक्षण स्थलों पर भूकम्प अभिलेखी यंत्रों (Seismographs) की स्थापना की जाती है तथा ये भूकम्पों का लगातार अभिलेखन करते रहते हैं। वर्तमान में उच्च तकनीक वाले आधुनिक भूकम्पलेखी यंत्रों – ब्रोड बेंड डिजिटल भूकम्प अभिलेखी यंत्र (Broad-band Digital Seismograph) (चित्र 1.10) द्वारा भूकम्पों के बारे में जानकारी प्राप्त होती है।

भूकम्प की तीव्रता

भूकम्प के कारण भूधरातल पर होने वाले विध्वंस में जानमाल के नुकसान के आधार पर भूकम्प की तीव्रता का आकलन किया जा सकता है। इस आधार पर धरातल पर होने वाली क्षति के आकलन अनुसार रोसी व फोरेल ने भूकम्पों को विभिन्न तीव्रता के भिन्न–भिन्न 10 प्रघात प्रकारों तथा मरकाली ने 12 प्रघात प्रकारों वाले अलग–अलग पैमाने निर्धारित किए। मरकाली ने अपने पैमाने में धरातल पर उत्पन्न त्वरण से कम्पन की तीव्रता का मापन किया। भूकम्पीय तीव्रता, भूकम्प के कारण होने वाले त्वरण के लॉगरिथम के अनुपाती होती है, इस आधार पर वैज्ञानिक रिक्टर ने भूकम्प की तीव्रता का पैमाना प्रस्तुत किया इसे रिक्टर स्केल कहते हैं। भूकम्प द्वारा संस्तरों के विस्थापन से निर्मुक्त होने वाली ऊर्जा से भूकम्प की तीव्रता का परिमाण (Magnitude) का सम्बन्ध रहता है। इस पैमाने पर सर्वाधिक तीव्रता 8.9 से अधिक चिली में 22 मई, 1960 में आये भूकम्प की आंकी गई थी। भूकम्प की ऊर्जा को अर्ग में मापा जाता है। यह प्रायः 10^{10} (भूकम्प के तीव्रता पैमाने पर परिमाण – 1) से 10^{26} (परिमाण – 9) तक होती है।

भूकम्पों का वितरण

पृथ्वी पर कोई भी क्षेत्र भूकम्प से अछूता नहीं है। पृथ्वी पर आने वाले भूकम्पों के 95 फीसदी भूकम्प दो कटिबन्धों में ही अधिकतया आए हैं। पहला कटिबंध प्रशांत महासागर को चारों ओर से घेरता हुआ है, इसे परि–प्रशांत कटिबंध (Circum Pacific Belt) कहते हैं। यह कटिबंध 40000 किलोमीटर लम्बाई व 150–350 किलोमीटर चौड़ाई तक विस्तृत है। पृथ्वी पर आने वाले अधिकांश भूकम्प इसी कटिबंध क्षेत्र में आते हैं। दूसरा कटिबंध पूर्व से पश्चिम की ओर फैला हुआ है। इस कटिबंध का विस्तार दक्षिणी एशिया माइनर, भूमध्य सागर क्षेत्र आजोर, पश्चिमी द्वीप समूह, मध्य अमेरिका, हवाई द्वीप व पूर्वी द्वीप समूह से होते हुए म्यांमार, हिमालय तथा आल्पस क्षेत्र तक है। इस कटिबंध को भूमध्यी–भूकम्पी कटिबंध (Mediterranean Seismic Belt) कहते हैं। इन दोनों कटिबंधों के अलावा मध्य अटलांटिक कटक क्षेत्र,

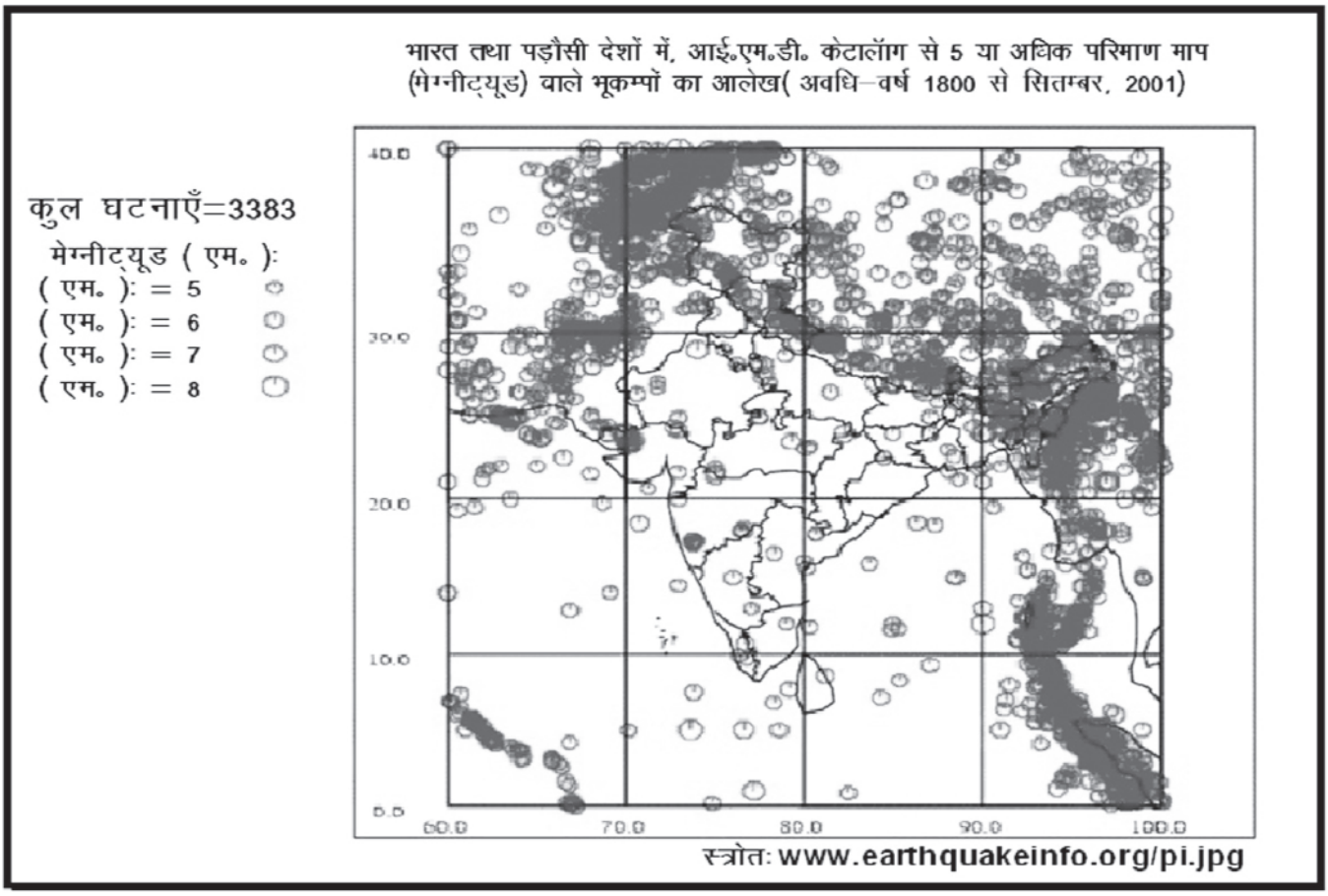

चित्र 1.11 : भारत में भूकम्पों का वितरण

पूर्वी अफ्रीका की रिफ्ट घाटी क्षेत्र और प्रशांत महासागर एवं हिन्द महासागर क्षेत्र में भी भूकम्प आते रहते हैं। विश्व में हर वर्ष करीब 10 लाख भूकम्पन होते हैं किंतु इनमें से 95 फीसदी की तीव्रता 2 से कम होने के कारण ये हमें महसूस नहीं होते तथा केवल भूकम्पलेखी द्वारा दर्ज किये जाते हैं। एशियाई देश भी भूकम्पों से प्रभावित है। पृथ्वी की गहराई में होने वाली आंतरिक हलचलों के पृष्ठीय रूप भूकम्प तथा ज्वालामुखी है अतः पृथ्वी के ज्वालामुखी कटिबंध एवं भूकम्पीय कटिबंध एक ही है।

भारत में असम से कश्मीर तक विस्तृत हिमालय पर्वतीय क्षेत्र भूकम्प की दृष्टि से अतिसंवेदनशील है। गंगा–यमुना तथा बह्मपुत्र नदियों के मैदानी क्षेत्र तथा भारत के दक्षिणी प्रायद्वीपीय क्षेत्र भी भूकम्प से प्रभावित है। कच्छ–अंजार (गुजरात) असम, अंडमान–निकोबार द्वीप समूह, जम्मू कश्मीर, शिलांग पठार, पूर्वोत्तर प्रदेश, हिमाचल, जबलपुर, कोयना–लाटूर (महाराष्ट्र), उत्तरकाशी में भूकम्पों ने विनाश किया है (चित्र 1.11)।

अतिसंवेदनशील भूकम्प प्रभावित क्षेत्रों में नवीन तकनीक से भूकम्परोधी इमारतों के निर्माण से नुकसान से बचाव किया जा सकता है। स्टील ढांचे तथा प्रबलीकृत कंक्रीट के इस्तेमाल से तथा लकड़ी के तख्तों के उपयोग से भूकम्परोधी भवनों का निर्माण किया जा सकता है। इन भूकम्प प्रभावित क्षेत्रों के मकानों में यथासंभव खिड़कियों–दरवाजों की संख्या कम रखनी चाहिए।

भूकम्पीय तीव्रता की माप तथा उनके लगभग समान परिमाणों को तालिका – 1.1 (भूकम्प की तीव्रता का मरकाली पैमाना) में बताया गया है।

भारतीय मानक संस्थान ने भारत में आए भूकम्पों की तीव्रता को अभिलेखित करते हुये तथा भूकम्पीय क्षेत्रों को दर्शाते हुए मानचित्र प्रकाशन के द्वारा भारत को निम्नलिखित पांच भूकम्पीय प्रक्षेत्रों का निर्धारण किया है–

प्रक्षेत्र – I भूकम्पीय तीव्रता 5 या कम

प्रक्षेत्र – II भूकम्पीय तीव्रता 6

प्रक्षेत्र – III भूकम्पीय तीव्रता 7

प्रक्षेत्र – IV भूकम्पीय तीव्रता 8

प्रक्षेत्र – V भूकम्पीय तीव्रता 9 या अधिक

भारतीय मानक ब्यूरो द्वारा 1984 में भारत को भूकम्पीय आधार पर 5 खण्डों में बांटा गया था। खण्ड V के क्षेत्र भूकम्प

तालिका 1.1 : भूकम्प की तीव्रता का मरकाली पैमाना

तीव्रता (संशोधित मरकाली पैमाना)	प्रघात का प्रकार	भूमि का अधिकतम त्वरण (मि. मि. प्रति सेकेण्ड	अधिकतम ज्ञात तीव्रता का समान परिमाण
I	मात्र यंत्रों द्वारा ही ज्ञात	10	
II	मंद	25	3.5 – 4.2
III	हल्का	50	
IV	सामान्य	100	4.3 – 4.8
V	थोड़ा शक्तिशाली	250	
VI	शक्तिशाली	500	4.9 – 5.4
VII	अधिक शक्तिशाली	1000	5.5 – 6.1
VIII	विनाशकारी	2500	6.2 – 6.9
IX	विनिष्टकारी	5000	
X	विध्वंसकारी	7500	7.0 – 7.3
XI	अत्यन्त विध्वंसकारी	9800	7.4 – 8.1
XII	प्रलयकारी	> 9800	> 8.1

के लिहाज से सर्वाधिक संवेदनशील माने जाते हैं वहीं खण्ड I के क्षेत्र में भूकम्प की सम्भावना सामान्यत क्षीण मानी जाती है। राजस्थान का क्षेत्र खण्ड III, II व I में था। वर्ष 2000 में भारतीय मानक ब्यूरो द्वारा नया वर्गीकरण जारी किया गया, जिसमें खण्ड I हटा दिया गया व इसमें आने वाला क्षेत्र खण्ड II में वर्गीकृत किया गया है अर्थात राजस्थान का वर्तमान में कोई भी क्षेत्र भूकम्प की दृष्टि से क्षीण नहीं माना गया है।

भारतीय मानक ब्यूरो द्वारा वर्ष 2000 के वर्गीकरण के अनुसार राजस्थान का क्षेत्र खण्ड IV, III व II में आता है। बाडमेर व सिरोही जिलों का पश्चिमी भाग तथा अलवर जिले का उत्तरी सेक्शन खण्ड IV में, बाड़मेर, सिरोही व अलवर जिलों का शेष भाग, बीकानेर, जैसलमेर, पूर्वोत्तर जिले झुंझुनूं, सीकर, भरतपुर को खण्ड III में तथा तथा प्रदेश का शेष भाग खण्ड II में पड़ता है।

ज्वालामुखी (Volcano)

भूपटल पर गहरे छिद्र या दरार जिसके माध्यम से होकर भूगर्भ की उष्ण गैसे तरल द्रव, शैल खण्ड इत्यादि सामान्यत प्रचंड विस्फोट के साथ बाहर निष्कासित होकर भूपृष्ठ पर फैल जाते है ज्वालामुखी कहलाते हैं। ज्वालामुखी उद्‌गार में निष्काषित पदार्थ बहुधा मुख के चारों ओर शंकुरूपी आकृति में जमा हो जाता है। इन्हें ज्वालामुखी शंकु (Volcanic Cone) कहते हैं। ये ज्वालामुखी शंकु विभिन्न आकार व प्रकार के होते हैं तथा इनमें क्रमिक अथवा अधिक ढाल होती है, ऊंचाई कुछ मीटर से लेकर कई हजार मीटर तक तथा आधार का व्यास कुछ मीटर से लेकर कई किलोमीटर तक होता है। ज्वालामुखी शंकु का ऊपरी भाग जब कालान्तर में ध्वस्त हो जाता है तो विशाल वृत्ताकार गर्त का निर्माण होता है, इसे ज्वालामुखी कुण्ड (Caldera) कहते हैं। ज्वालामुखी छिद्र या दरार के ऊपरी भाग को ज्वालामुखी विवर या ज्वालामुख (Crater) कहते हैं। ज्वालामुखी विवर का व्यास कुछ मीटर से लेकर कई किलोमीटर तक होता है। इसके मध्य भाग में एक नलिका होती है जिससे लावा, शैलखण्ड व गैसीय पदार्थ भूधरातल पर निष्कासित होते हैं, ज्वालामुखी नाल (Volcanic Pipe or Neck) कहलाती है। ज्वालामुखी की मुख्य नाल से शाखाएं निकलती हैं जो ज्वालामुखी शंकु को विभिन्न जगहों से भेदती है। इनसे भी लावा निष्कासित होता है तथा इनके मुख के पास अपेक्षाकृत छोटे विवर व शंकुओं का निर्माण हो जाता है, इन्हें गौण शंकु (Parasitic Cones) या पार्श्व ज्वालामुखी (Leteral Volcano) कहते हैं। वे सभी क्रियायें जो भूगर्भ से भूपटल की ओर प्रवाहित होने वाले लावा की गति से संबंधित होती है, ज्वालामुखी उद्‌भव (Volcanism) कहलाती है। यह प्रक्रिया दो प्रकार में वर्गीकृत है – 1. अन्तर्वेधी (Intrusive) तथा 2. बहिर्वेधी (Extrusive)

अन्तर्वेधी क्रिया में भूगर्भ का लावा भू–धरातल तक नहीं पहुंचता है, बल्कि धरातल के नीचे ही रूककर ठण्डा होकर ठोस बन जाता है। इस कारण भूपृष्ठ में महास्कंध (Bathylith), छत्रक (Lacolith), मसूर शैल (Phacolith), न्यू टुब्ज शैल (Lopolith), स्कन्ध तथा वृत्त स्कन्ध (Stocks and Bosses), लावा पट्ट (Sills) इत्यादि विभिन्न संरचनाओं का निर्माण होता है।

बर्हिवेधी क्रिया में भूगर्भ के पदार्थ धरातल पर बाहर निकल आते हैं और शंकुओं की रचना करते हैं। भूगर्भ से विभिन्न पदार्थों का निष्कासन ज्वालामुखीय उद्भेदन (Volcanic Eruption) कहलाता है। इस क्रिया के अन्तर्गत गरम सोतें, उष्णोंछालिका, वाष्पमुख और दरार उद्गार आते हैं।

ज्वालामुखी उद्गार तीन प्रकार के होते हैं –

1. विदरी उद्गार (Fissure Eruption)
2. केन्द्रीय उद्गार (Central Eruption)
3. निःसृत उद्गार (Effusive Eruption)

विदरी उद्गार में गर्म लावा या मेग्मा धरातल के दीर्घ विदरों से निष्कासित होता है जबकि केन्द्रीय उद्गार में तप्त लावा, शैल खण्ड व गैसीय पदार्थ इत्यादि का निष्कासन केन्द्रीय मुख से होता है। निःसृत उद्गार पृथ्वी के ठण्डे होने की द्वितीय दशा से संबंधित होता है। इसमें पृथ्वी की मोटी पपड़ी को मेग्मा (तप्त द्रवित ज्वालामुखी पदार्थ जो भूगर्भ में पृथ्वी की सतह के नीचे प्रवाहित होता है) तोड़कर बाहर नहीं निकल पाने के कारण निर्बल व दरार वाले क्षेत्रों में प्रवाहित होता है तथा इस शांत स्वभाव के उद्गार में भीषणता नहीं होती है।

दक्षिण भारत का लावा क्षेत्र तथा संयुक्त राज्य अमेरिका का स्नेक नदी का प्रदेश विदरी उद्गार के तथा सिसली टापू का एटना, जापान का फ्यूजीयामा एवं इटली का विसूवियस केन्द्रीय उद्गार के और सामोआ, हवाई व आइसलैंड के ज्वालामुखी निःसृत उद्गार के उदाहरण है।

गैस की मात्रा एवं दबाव और लावा (तप्त द्रवित ज्वालामुखी पदार्थ जो भूगर्भ से विस्फोट के साथ बाहर आकर पृथ्वी की भूसतह पर प्रवाहित होता है) के गुणधर्म के आधार पर केन्द्रीय उद्गार निम्नलिखित छः प्रारूपों में होता है–

1. **हवाई प्ररूप** (Hawaiin Type) : हवाई द्वीप में इस प्रकार के प्ररूप में बिना विस्फोट के तरल लावा के उद्गार शान्त रूप से प्रवाहित होते हैं। इनका फैलाव विस्तृत होता है तथा इनमें गैस की मात्रा कम होती है ।

2. **स्ट्रोम्बोलियन प्ररूप** (Strombolian Type) : साधारण विस्फोट वाले इन उद्गारों में कम गतिशील प्रज्वलित लावा का निष्कासन एक निश्चित अन्तराल के पश्चात होता रहता है। यदाकदा इसमें विस्फोट के साथ प्रज्वलित गैस के बादल भी निकलते हैं।

3. **वल्केनियन प्ररूप** (Vulcanian Type) : विस्फोटक प्रवृति के इस उद्गार में लावा की श्यानता अधिक होने के कारण विवर में ही संपीडित हो जाती है। इस आवरण के नीचे गैसें इकट्ठी हो जाती है तथा कुछ समयावधि उपरान्त ऊपरी आवरण को फोड़कर विस्फोट के साथ उद्गार से काले–भूरे रंग के गोभी के फूल के आकार के विशाल बादल ऊँचाईयों की ओर उठते हुए दृष्टिगत होते हैं। ये प्ररूप भी आवर्ती प्रवृति के होते हैं।

4. **विसुवियस प्ररूप** (Visuvias Type) : इस प्ररूप में भी गोभी के फूल के सदृश्य प्रज्वलित गैस के विशाल बादल उठते हैं किंतु इनमें दीर्घ अवधि की निष्क्रियता अथवा अति अल्प सक्रियता के पश्चात तेज विस्फोट के साथ लावा तथा गैसों का उद्गार होता है। इसमें अधिक ज्वालामुखक्षिप्त पदार्थ में राख भी निष्कासित होती हैं।

5. **प्लिनियन प्ररूप** (Plinian Type) : यह विसुवियस प्ररूप का ही उद्गार है तथा इसमें प्रचण्ड विस्फोटन के साथ विशाल गैसों का निष्कासन गोलाकार बादलों के रूप में फैल जाता है।

6. **पीलियन प्ररूप** (Pelean Type) : सर्वाधिक प्रचण्ड विस्फोटक उद्गार वाले इस प्ररूप में लावा की श्यानता अधिक होती है अतः इस कारण ज्वालामुखी नाल को अवरूद्ध कर देती है। गैसयुक्त लावा के आघात से ज्वालामुखी शंकु के पार्श्व फट जाने से इन दरारों से प्रज्वलित गैस युक्त लावा अवघाव से समान शंकु की ढालों पर लुढ़कता है। केन्द्रीय उद्गार के छः प्रारूपों को चित्र 1.12 में दर्शाया गया है।

ज्वालामुखी तीन प्रकार के होते हैं। लगातार उद्गार वाले ज्वालामुखी क्रियाशील ज्वालामुखी (Active Volcano) कहलाते हैं। वही दूसरी ओर कई ज्वालामुखी कुछ समयावधि के अन्तराल में उद्गीर्ण होते हैं, प्रसुप्त ज्वालामुखी (Dormant Volcano) कहलाते हैं। तीसरे प्रकार के ज्वालामुखी में वर्तमान में उद्गार नहीं होता है, इन्हें निर्वापित या विलुप्त ज्वालामुखी (Extinct Volcano) कहते हैं, परन्तु यदा कदा इनसे भी अचानक उद्गार हो जाते हैं। जब ज्वालामुखी महासागर की तली में विभिन्न गहराईयों में मिलते हैं तो उन्हें समुद्री ज्वालामुखी (Submarine Volcano) कहते हैं। ज्वालामुखी उद्गार में गैसीय पदार्थ में जल वाष्पए गैसें H_2S, SO_2, HCl, CO_2, HE, H, N, O तथा बोरिक अम्ल के अलावा लोह, पोटेशियम व अन्य धातुओं के वाष्पशील क्लोराइड निकलते हैं। ज्वालामुखी का लावा इसमें उपलब्ध सिलिका की मात्रा के अनुसार अधिसिलिक (Acidic), मध्यसिलिक (Intermediate) और क्षारीय (Alkaline) होता है। ज्वालामुखी के दौरान उद्गीर्ण होने वाले ठोस पदार्थ विभिन्न आकार के होते हैं, जिन्हें बढ़ते हुए क्रम में ज्वालामुखी धूल, ज्वालामुखी सिण्डर (2.5 सेमी से कम व्यास), ज्वालामुखी अश्मक या लैपिली, ज्वालामुखी बम (2.5 सेमी से कई मीटर तक व्यास) कहते हैं, ये ज्वालामुखक्षिप्त पदार्थ (Volcanic Pyroclastic) कहलाते हैं।

पृथ्वी की गहराई में तापमान में वृद्धि होने के कारण 40 से 60 किलोमीटर की गहराई में कई हजार फैरनहाइट ताप रहने के

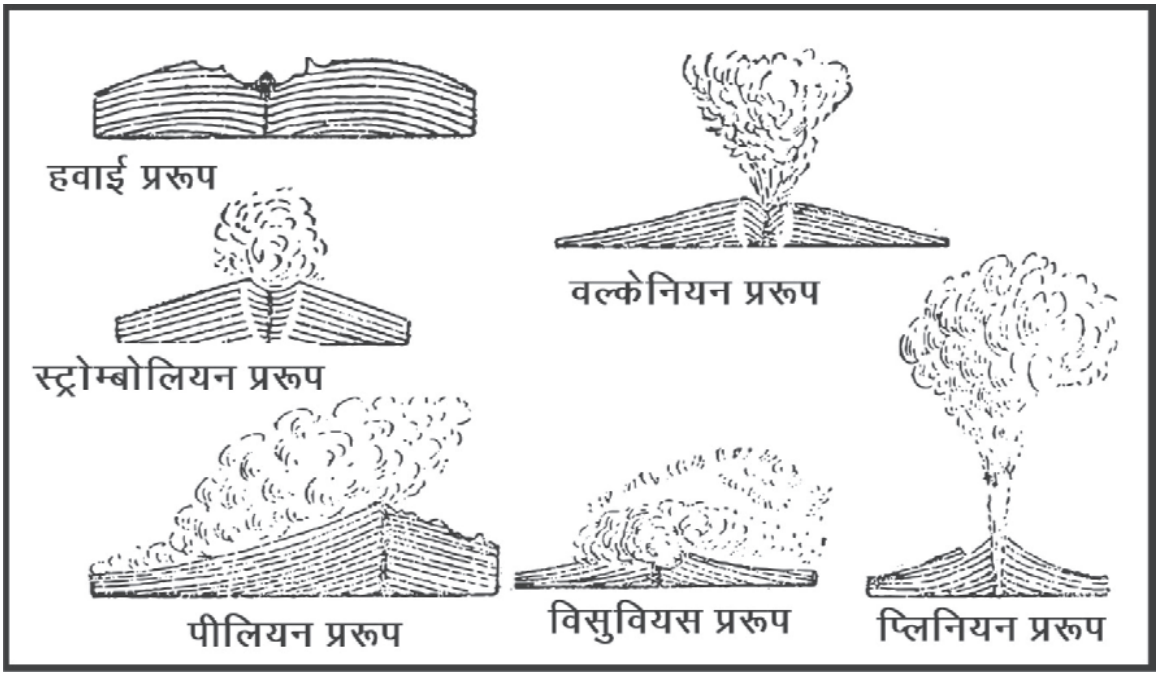

चित्र 1.12 : केन्द्रीय उद्गार के छः प्रारूपों

कारण शैल पिघली अवस्था में रहते हैं परन्तु गहराई में दाब वृद्धि के कारण इनका गलनांक भी बढ़ जाता है। पटल विरूपण के कारण इन तप्त शैलों पर दबाव कम हो जाता है व ये पिघल कर मैग्मा में बदल जाती है जो दरारों के माध्यम से भूधरातल पर लावा के रूप में प्रवाहित होते है अतः पटल विरूपण (Diastrophism) के कारण ही भूसंचलन वाले क्षेत्रों में ज्वालामुखी आते हैं। पृथ्वी की आंतरिक हलचल की बाह्य अभिव्यक्ति के रूप भूकम्प व ज्वालामुखी है अतः पृथ्वी पर जहां भूकम्प के क्षेत्र है उन्ही दो कटिबंधों यथा परिप्रशान्त कटिबंध तथा भूमध्यीय कटिबंध क्षेत्रों में ज्वालामुखियों का भौगोलिक वितरण है। ज्वालामुखी उद्गारों के कारण अपार जन–धन की हानि होती है तथा विशाल मात्रा के ज्वालामुखियों ने कई शहरों व सभ्यताओं को लील दिया है।

समस्थिति (Isostasy)

वर्ष 1889 में अमेरिकी वैज्ञानिक सी.ई. डटन ने ''समस्थिति'' शब्द का पहली बार प्रयोग किया। अंग्रेजी शब्द Isostasy की उत्पत्ति ग्रीक शब्द 'Isostasios' से हुई जिसका अर्थ Inequipose अर्थात ''समस्थिति'' है। सन्तुलन की वह स्थिति जो कि भपर्पटी के भिन्न–भिन्न ऊँचाईयों के विशाल भूखण्ड यथा पर्वत, पठार, मैदान तथा समुद्री तल के बीच पाई जाती है समस्थिति कहलाती है, इसमें इन भूखण्डों की आपस में संतुलित रहने की स्थिति बनी रहती है। भूगणितीय निरीक्षणों के अनुसार पर्वतीय क्षेत्रों में गुरुत्व असंगतियां सामान्यतः प्रबल ऋणात्मक तथा सागरीय क्षेत्रों में प्रबल धनात्मक होती है, अर्थात पर्वतों के नीचे औसत द्रव्यामान घनत्व कम तथा महासागरों के नीचे अधिक रहता है। वर्ष 1855 में जे.एच. प्राट तथा सी.बी. ऐरी ने स्वतंत्र रूप से हिमालय तथा भारत के अन्य भागों में साहुल रेखा निरीक्षणों को प्रकाशित किया जिनके आधार पर समस्थिति के सिद्धांत का प्रतिपादन हुआ। ऐरी के अनुसार पर्वत मालाओं में विशाल मूल होते हैं जो पर्वत की ऊंचाई से कई गुना बड़ी होती है व पृथ्वी के भीतर अंदर तक फैली रहती है। सम्पूर्ण पर्वत पिण्ड अधःस्थित अधिक घनत्व वाले पिण्ड पर तैरता है। मैदान और कम ऊँचाई वाले क्षेत्रों का घनत्व अपेक्षाकृत अधिक होता है। इस तरह अधिक आयतन पर कम घनत्व वाले पर्वत पिण्ड तथा कम आयतन पर अधिक घनत्व वाले मैदानी क्षेत्रों के बीच समस्थितिक संतुलन होता है। प्राट के अनुसार भूपर्पटी के भिन्न–भिन्न भागों का घनत्व भी विभिन्न रहता है। अतः भूपर्पटी का निचला भाग अधःस्तर में एक समान गहराई तक डूबा रहता है। पर्वत प्रदेश की ऊंचाई कम घनत्व का प्रतीक है जो समुद्र तल के अधिक घनत्व वाले भाग के कारण सन्तुलित अवस्था में रहता है।

महाद्वीपीय विस्थापन (Continental Drift)

पृथ्वी की प्रमुख स्थलाकृतियाँ महाद्वीप तथा महासागर है, पृथ्वी की कुल सतह का तीन–चौथाई भाग महासागरों से घिरा हुआ है व शेष एक चौथाई भाग में महाद्वीपों का फैलाव मिलता है। महाद्वीप सदैव थल के भाग व महासागर हमेशा जल के भाग ही रहे हैं परन्तु भूपटलीय हलचलों के कारण महाद्वीपों के तटीय भागों का सामयिक रूप से निमज्जन या निर्गमन अवश्य होता रहा है। भूपर्पटी की संरचना में को देखने से प्रतीत होता है कि महाद्वीपीय सिएल (SiAl) खण्डों के अधःस्थित सिमै (SiMa) में

विस्थापन संभव है। भूपर्पटी के आंतरिक बलों की वजह से इन भूखण्डों का क्षैतिज तल में विस्थापन असंभव प्रतीत नहीं होता है। अमेरिका के एफ.बी. टेलर (1908) एवं जर्मनी के अल्फ्रेड वेगनर (1910) महाद्वीपीय विस्थापन सिद्धांत के जनक माने जाते हैं।

टेलर का महाद्वीपीय विस्थापन सिद्धांत

टेलर ने अपने सिद्धांत में महाद्वीपों के विस्थापन को ही पृथ्वी की प्रमुख पर्वत मालाओं के वितरण का प्रमुख कारण बताया। टेलर की परिकल्पना अनुसार प्रारम्भ में उत्तरी गोलार्द्ध में लारेंशिया तथा दक्षिणी गोलार्द्ध में गोंडवाना नामक दो विशाल भूखण्ड मुख्यतः ध्रुवों के पास स्थित थे तथा इन दोनों के मध्य एक संकरा व विशाल महासागर स्थित था। ज्वारीय बलों के कारण दोनों भूखण्डों के विघटित भाग भूमध्य रेखा की ओर विस्थापित हुए जिसके फलस्वरूप अटलाण्टिक तथा हिन्द महासागर का निर्माण हुआ। महाखण्डों के विभिन्न भागों की विषुवतीय गति के कारण उनके अग्रभाग में जहाँ पर सबसे कम प्रतिरोध था, पर्वत मालाओं की उत्पत्ति हुई। टेलर के सिद्धांत में पृथ्वी को प्रारम्भ में चन्द्र विहिन माना गया। क्रिटेशस युग में पृथ्वी के टूटे हुए भाग से चन्द्रमा की उत्पत्ति होना माना गया। सूर्य व चन्द्रमा के आकर्षण के फलस्वरूप ही विशाल ज्वारीय बलों की उत्पत्ति मानी गई, जिसके कारण पृथ्वी का घूर्णन वेग प्रभावित होता है। दोनों महाखण्डों के विभिन्न भाग विषुवत रेखा की ओर विस्थापित होने के कारण इनके अग्र भागों में पर्वत मालओं की उत्पत्ति हुई।

पर्वत मालाओं के निर्माण के लिए यथेष्ट 30–70 किलोमीटर से अधिक मात्रा में हजारों किलोमीटर का विस्थापन पृथ्वी के प्रारम्भ में चन्द्रविहिन होने व ज्वारीय बलों से महाखण्डों के विस्थापन व पृथ्वी के घूर्णनकाल काल को प्रभावित करने की धारणाएं सही साबित नहीं होने के कारण टेलर का सिद्धांत अधिक प्रचलन में नहीं रहा।

वेगनर का महाद्वीपीय विस्थापन सिद्धांत

वेगनर ने अपने सिद्धांत में पुराजीवी महाकल्प में अत्यन्त विशाल सिएल (SiAl) भूखण्ड ''पेन्जिया'' (Pangaea) की परिकल्पना की। पेन्जिया का ग्रीक भाषा में अर्थ सम्पूर्ण पृथ्वी है। पेन्जिया के चारों ओर फैला विस्तृत महासागर ''पैंथालसा'' (Penthalassa) था। सिलूरियन कल्प में आन्तरिक बलों के कारण पेन्जिया में विराट दरारें पड़ना शुरू हुई इससे विशाल भूखण्ड दो भागों में विभक्त हो गया। विभाजन से उत्तर में लॉरेंशिया तथा दक्षिण में गोंडवाना महाखण्ड अस्तित्व में आये तथा इन दोनों सरकते महाखण्डों के मध्य में टेथिस महासागर का निर्माण हुआ। कालान्तर में इन महाखण्डों के अधिक टुकड़े हुए तथा क्रमशः विस्थापन के फलस्वरूप वर्तमान महाद्वीपों का निर्माण हुआ। वेगनर के अनुसार इन भ्रमणशील महाद्वीपों की दो प्रकार की गतियां थी। ये गतियां ध्रुवों से प्रारंभ हुई तथा एक विषुवतीय गति व दूसरी पश्चिमवर्ती गति थी।

वेगनर ने महाद्वीपों के ध्रुवों से विस्थापित होने को ध्रुवों से गमन (Polflutcht) बताया। वेगनर ने महाद्वीपीय विस्थापन की क्रियाविधि में अफ्रीका को स्थिर मानकर अन्य महाद्वीपों के विस्थापन का उल्लेख किया। क्रिटेशस कल्प के प्रारम्भ में अमेरिका महाद्वीप का पश्चिमवर्त्ती विस्थापन शुरू हुआ। मध्य जुरैसिक में आस्ट्रेलिया तथा अण्टार्कटिका महाद्वीप अलग हुए तथा आस्ट्रेलिया व मलागासी, अफ्रीका से दक्षिण–पूर्व की ओर विस्थापित हुए। आदि नूतन युग (Eocene) में भारत का विस्थापन हुआ तथा उत्तर अमेरिका व यूरोप एक दूसरे से अत्यन्त नूतन युग (Pleistocene) में अलग हुए। महाद्वीपों के विस्थापन का क्रम आज भी क्रियाशील माना जाता है तथा विस्थापन की गति सदैव परिवर्तनशील रही है। पृथ्वी के आन्तरिक ताप के कारण उत्पन्न आन्तरिक बल इस विस्थापन की क्रिया को नियंत्रित करते हैं, अतः पर्वतन व विस्थापन में घनिष्ट संबंध माना जाता है तथा पर्वतन व विस्थापन की तीव्रता को भी समकालीन माना गया है। पृथ्वी के आन्तरिक भागों में उत्पन्न संवहन धाराओं को ही विस्थापन की क्रिया का प्रमुख कारण आज माना जाता है।

महाद्वीपों की विषुवतीय गति के फलस्वरूप आल्प्स और हिमालय पर्वत श्रृंखलाओं की उत्पत्ति हुई। पश्चिमवर्ती गति के कारण रॉकी एवं एण्डीज पर्वत श्रेणियों की उत्पत्ति हुई। प्रशांत महासागर को आद्यमहासागर माना गया है अतः विस्थापन के समय यह अपरिवर्तित रहा। उत्तर अमेरिका और दक्षिण अमेरिका तथा अफ्रीका व यूरोप के विस्थापन से अटलाण्टिक महासागरों का निर्माण हुआ तथा अण्टार्कटिका, आस्ट्रेलिया व भारत–अफ्रीका

चित्र 1.13 : समुद्री तटों में समरूपता

के अलग होने से हिन्द महासागर निर्मित हुआ, वहीं भारत के अफ्रीका से अलग होने के कारण अरब सागर अस्तित्व में आया। महाद्वीपीय विस्थापन के सिद्धांत से पृथ्वी की अनेक प्रक्रियाओं का समाधान हुआ अतः यह सिद्धांत प्रमाणित हुआ।

महाद्वीपीय विस्थापन के प्रमाण के रूप में वेगनर ने अफ्रीका व दक्षिण अमेरिका के समुद्री तटों की समरूपता (चित्र 1.13), महासागरों की असमानता, महाद्वीपों की भूवैज्ञानिक समरूपता तथा इन पर पाये जाने वाले जीवाश्मों की समरूपता, विभिन्न महाद्वीपों की पुरा–जलवायु सम्बन्धी एकरूपता, महाद्वीपीय विस्थापन के पुराचुम्बकत्व सम्बन्धी प्रमाणों को महाद्वीपीय सिद्धांत का आधार बनाया। वेगनर के महाद्वीपीय विस्थापन के सिद्धांत को चित्र 1.14 में दर्शाया गया है।

प्लेट विवर्तनिकी (Plate Tectonics)

भूकम्पी तरंगो के अध्ययन एवं विश्लेषण से प्राप्त तथ्यों की मदद से प्लेट विवर्तनिकी सिद्धांत का प्रतिपादन हुआ, इसके द्वारा भूवैज्ञानिक प्रक्रमों की पुष्टि के साथ पृथ्वी के पृष्ठीय–लक्षण, विवर्तनिक प्रक्रियाओं तथा भूपर्पटी के विकास से जुड़े जटिल सवालों के उचित हल मिलते है। भूविज्ञान के क्षेत्र में महाद्वीपीय विस्थापन (Continental Drift) तथा सागर तल विस्तार (Sea Floor Spreading) में संबंध स्थापित हो जाने से प्लेट विवर्तनिकी की क्रांतिकारी अवधारणा ने जन्म लिया। प्लेट विवर्तनिकी पृथ्वी के बाहरी स्थलमंडल का प्रतिरूप है। यह कई बड़ी–बड़ी प्लेटों से लक्षित है जो महाद्वीपीय व सागरीय भूपर्पटी से निर्मित है। समुद्र तल विस्तार सिद्धांत के अनुसार ये प्लेटे सतत् रूप से आपेक्षिक गतिशीलता प्रदर्शित करती है तथा इनके बीच भूकंपीय परिसीमा क्षेत्र निर्मित होते हैं। प्लेटें पृथ्वी के बाह्य भाग (भूपर्पटी तथा प्रावार का ऊपरी भाग) के दृढ खण्डों से निर्मित होती है, जिसकी मोटाई 100–150 किलोमीटर तक होती है। ये प्लेटें स्थलमण्डल (Lithosphere) में मन्द गति से ऊपर फिसलती है। प्लेटें एक–दूसरे के सापेक्ष लगातार गतिशील रहती है। डब्ल्यू.जे. मारगन ने छः बड़ी प्लेटे यथा पैसेफिक, अमेरिकन, अफ्रीकन, यूरेशियन, इण्डियन तथा अण्टार्कटिका प्लेटे बताई। इन छः प्लेटों के अलावा कालान्तर में शोधकर्ताओं ने 12–20 प्लेटों की जानकारी दी (चित्र 1.15)। इन प्लेटों के संचलन की गति 1 से 6 सेन्टीमीटर प्रतिवर्ष तक होती है तथा सामान्यतः भूकम्पीयता, ज्वालामुखीयता एवं विवर्तनिकी गतिविधियां इन्हीं प्लेटों के किनारों के आस–पास पाई जाती हैं। प्लेटों के संचलन के लिए पृथ्वी की गहराई में उठने वाली तापीय संवहन तरंगो, नवनिर्मित महासागरीय पर्पटी के निर्माण प्रक्रिया तथा कटक एवं खाई के बीच गुरुत्वीय अंतर जैसे कारकों को जिम्मेवार माना गया है।

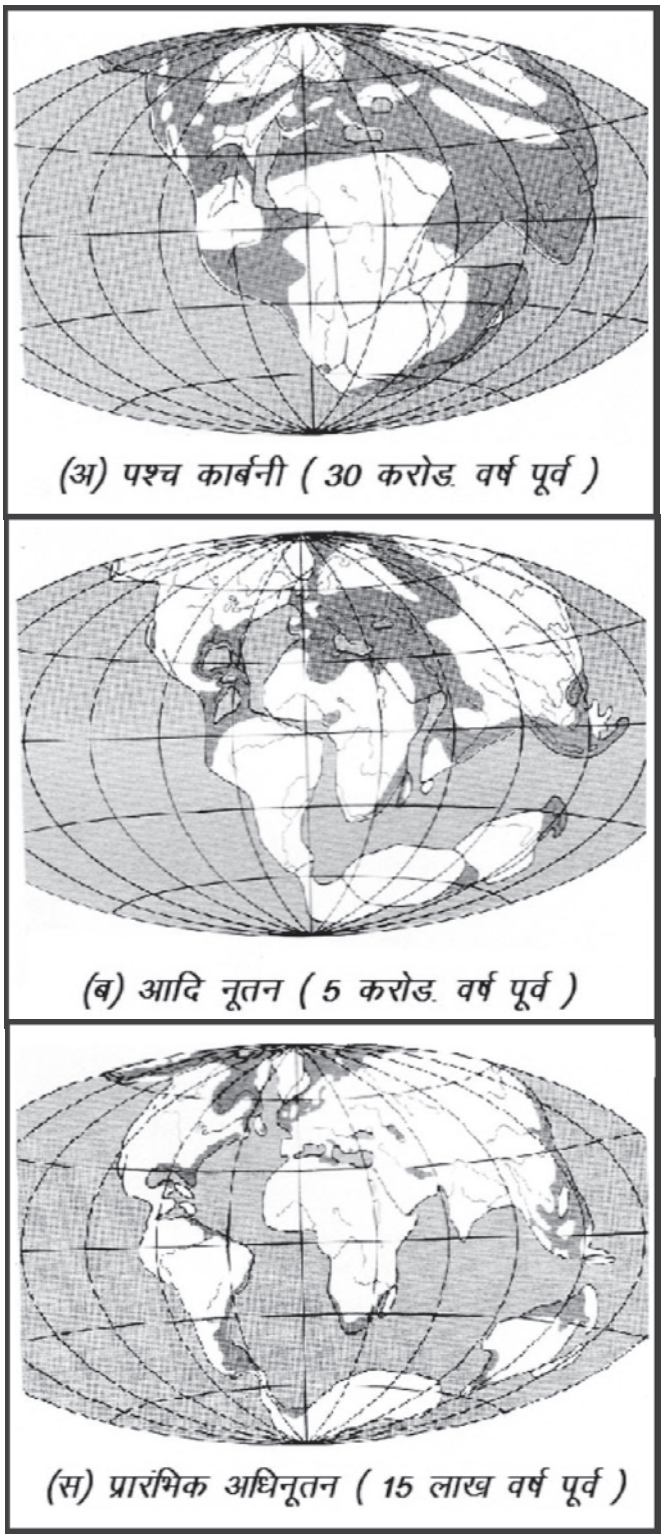

चित्र 1.14 : अल्फ्रेड वेगनर का महाद्वीपीय विस्थापन सिद्धांत

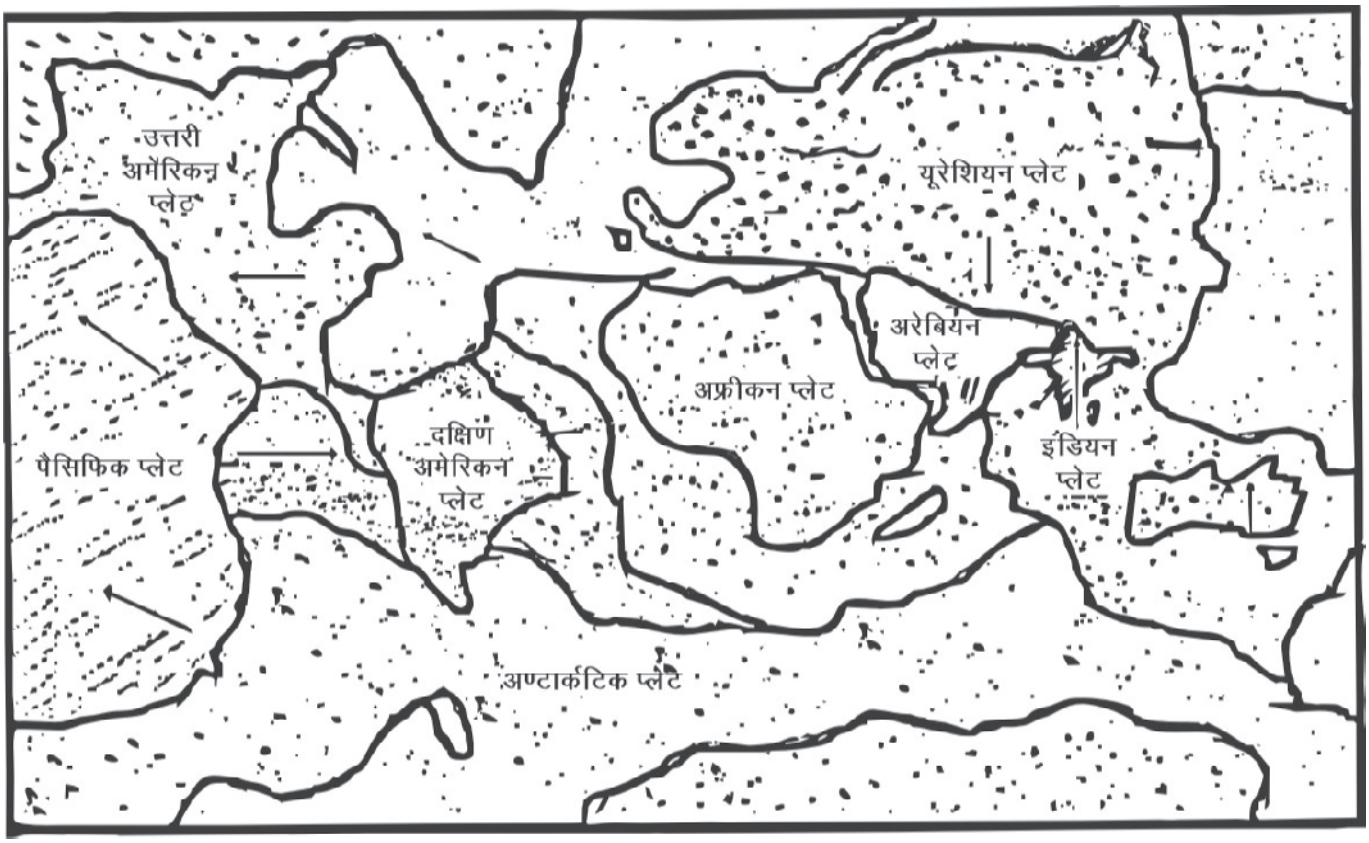

चित्र 1.15 : मुख्य प्लेटें तथा इनकी संचलन की दिशा

प्लेट किनारे या प्लेट सीमायें निम्न तीन प्रकार की होती हैं–

1. रचनात्मक प्लेट किनारा (Constructive Plate Margin) या अपसारी प्लेट सीमायें (Divergent Plate Boundaries)
2. विनाशात्मक प्लेट किनारा (Destructive Plate Margin) या अभिसारी प्लेट सीमायें (Convergent Plate Boundaries)
3 संरक्षी प्लेट किनारा (Conservative Plate Margin) या पारवर्ती प्लेट सीमायें (Transcurrent Plate Boundaries)

1. **रचनात्मक प्लेट किनारा :** इसमें दो प्लेटों के एक–दूसरे से विपरीत दिशा में संचलन होने के फलस्वरूप विदरों का निर्माण होता है। प्लेट किनारों के सहारे पृथ्वी की गहराई में उपस्थित मैग्मा ऊपर की ओर आता है तथा नई भूपर्पटी का निर्माण करता है, यह प्रक्रिया सामान्यतः मध्य महासागरीय कटकों (Mid Oceanic Ridge) के निकट होती है। महासागरीय अपसरण (Oceanic Divergence) की यह प्रक्रिया ही महासागर तट प्रसारण (Oceanic Floor Spreading) कहलाती है। रचनात्मक किनारों पर ही ज्वालामुखी दिखाई पड़ते हैं जिनसे मध्य महासागरीय कटकों का निर्माण होता है। प्लेटों के महाद्वीपीय अपसरण (Continental Divergence) में प्रारंभिक अवस्था में प्लेट के नीचे उपस्थित शैल पदार्थ प्रावार से महाद्वीपीय प्लेट की ओर नीचे से ऊपर उठता है जिस कारण एक स्तम्भ (Column) का निर्माण होता है जिसे प्रावार पिच्छ (Mantle Plume) कहते हैं। इसके साथ भूपर्पटी पतला होने लगती है तथा कार्यरत तनाव बल के कारण प्लेट में दरार बनने के साथ ही रिफ्ट घाटी (Rift Valley) का निर्माण होता है। धीमी गति वाली इस प्रक्रिया में कालान्तर में प्लेट के एक स्थान में घाटी चौड़ी होती है तथा दूसरे स्थान में महासागरीय कटकों (Mid Oceanic Ridges) का निर्माण होता है।

2. **विनाशात्मक प्लेट किनारा :** इसमें दो प्लेटें एक दूसरे की ओर सरकती हुई टकराती है व एक प्लेट दूसरी प्लेट के नीचे की ओर सरकती जाती है। प्लेटों के महासागरीय-महासागरीय पर्पटी के अभिसरण (Ocean-Ocean convergence) होने पर एक प्लेट दूसरी प्लेट के नीचे घुसकर मुड़ जाती है, यह प्रक्रिया क्षेपण (Subduction) कहलाती है तथा इस कारण निर्मित क्षेत्र क्षेपण क्षेत्र (Subduction Zone) कहलाता है। इसे बेनी ऑफ जोन (Benihoff zone) भी कहते हैं, इसके परिणामस्वरूप गहरी खाईयाँ (Trenches) निर्मित होती है। महासागरीय पर्पटी–महाद्वीपीय पर्पटी के अभिसरण (Ocean crust-Continental crust convergence) के विघटन क्षेत्र में ज्वालामुखी चाप का निर्माण होता है। इस प्रक्रिया में युवा पर्वत श्रेणियों का भी निर्माण

होता है। महाद्वीपीय–महाद्वीपीय पर्पटी के अभिसरण (Continent-continent convergence) में एक महाद्वीपीय पर्पटी का दूसरे महाद्वीपीय पर्पटी के नीचे क्षेपण (Under thrusting) होने के परिणामस्वरूप हिमालय, आल्प्स, एण्डीज तथा रॉकी पर्वत श्रेणियों का निर्माण हुआ। इन्हीं प्लेटों के किनारे पर सर्वाधिक भूकम्प आते है।

3. **संरक्षी प्लेट किनारा :** इसमें दो प्लेटें एक दूसरे के सहारे अगल–बगल में रगड़ती हुई संचरण करती है तथा इस कारण पारवर्ती भ्रंश या रूपांतरण भ्रंश (Transcurrent fault or Transform fault) के साथ नए पदार्थ का निर्माण होता है।

उपरोक्त तीनों प्लेट किनारों के संचलन से प्लेट विर्वतनिकी का सिद्धांत विविध भूवैज्ञानिक प्रक्रमों को समझाने में मददगार साबित हुआ है।

संरचनात्मक भूविज्ञान (Structural Geology)

कक्षा 11 में नति, नतिलम्ब इत्यादि के बारे में वर्णन किया जा चुका है, शेष संरचनात्मक भूविज्ञान के महत्वपूर्ण घटकों के बारे में निम्न जानकारी दी जा रही है।

वलन (Fold)

भूपर्पटी के शैल संस्तरों पर जब दो विरूद्ध दिशाओं से प्रतिबल कार्यरत होता है तब इनमें तंरगित संरचनाओं का निर्माण होता है, इन्हें वलन (Fold) कहते हैं। वलन का एक भाग उत्तल तथा दूसरा भाग अवतल रहता है। उत्तल भाग के शीर्ष स्थल को वलन का शीर्ष (Crest) तथा अवतल भाग के आधार स्थल को वलन की द्रोणिका (Trough) कहते हैं। वलन के शीर्ष से द्रोणी तक के पार्श्व भाग को वलन पाद (Limb of Fold) कहते हैं। वलन के दोनों पादों (Limbs) को दो बराबर भागों में विभक्त करने वाले काल्पनिक तल को अक्षीय तल (Axial Plane) कहते हैं। वलन के अक्षीय तल तथा संस्तर (Bed) के प्रतिच्छेदन (Intersection) को वलन अक्ष (Fold Axis) कहते हैं। वलन का वह भाग जो कि संस्तरों के उत्संवलन (Upwarping) के कारण निर्मित होता है, अपनति (Anticline) कहलाता है, यह ऊपर की ओर उत्तल होता है तथा इसमें दोनों पादों की नति (Dip) एक दूसरे से विपरीत दिशा में होती है। अपनति के क्रोड में सबसे पुराने संस्तर मिलते हैं और उससे दूर क्रमशः नवीन संस्तर पाये जाते है। इसके विपरीत वलन का वह भाग जो संस्तरों के अवसंवलन (Downwarping) के कारण बनता है, अभिनति (Syncline) कहलाता है, यह ऊपर की ओर अवतल होता है तथा इसमें दोनों पादों की नति एक दूसरे की ओर होती है। अभिनति के क्रोड में सबसे नवीन संस्तर पाये जाते हैं तथा ओर दूर जाने पर क्रमशः प्राचीन संस्तर मिलते हैं। वलन के विभिन्न भागों को चित्र 1.16 में दर्शित किया गया है।

वलन के पाद की नति, वलन अक्ष की स्थिति तथा वलन के पादों की मोटाई के आधार पर वलनों का वर्गीकरण किया जाता है। विभिन्न प्रकार के वलनों का वर्णन निम्नानुसार है–

1. **सममित वलन** (Symmetrical Fold) : इस प्रकार के वलन में दोनों पादों की नति एक समान होती है तथा इन वलनों को यदि अक्षीय तल से काटा जाए तो दोनों भाग बराबर होते हैं।
2. **असममित वलन** (Asymmetrical Fold) : इन वलनों में दोनों पादों में नति की मात्रा एक समान नहीं होती है तथा

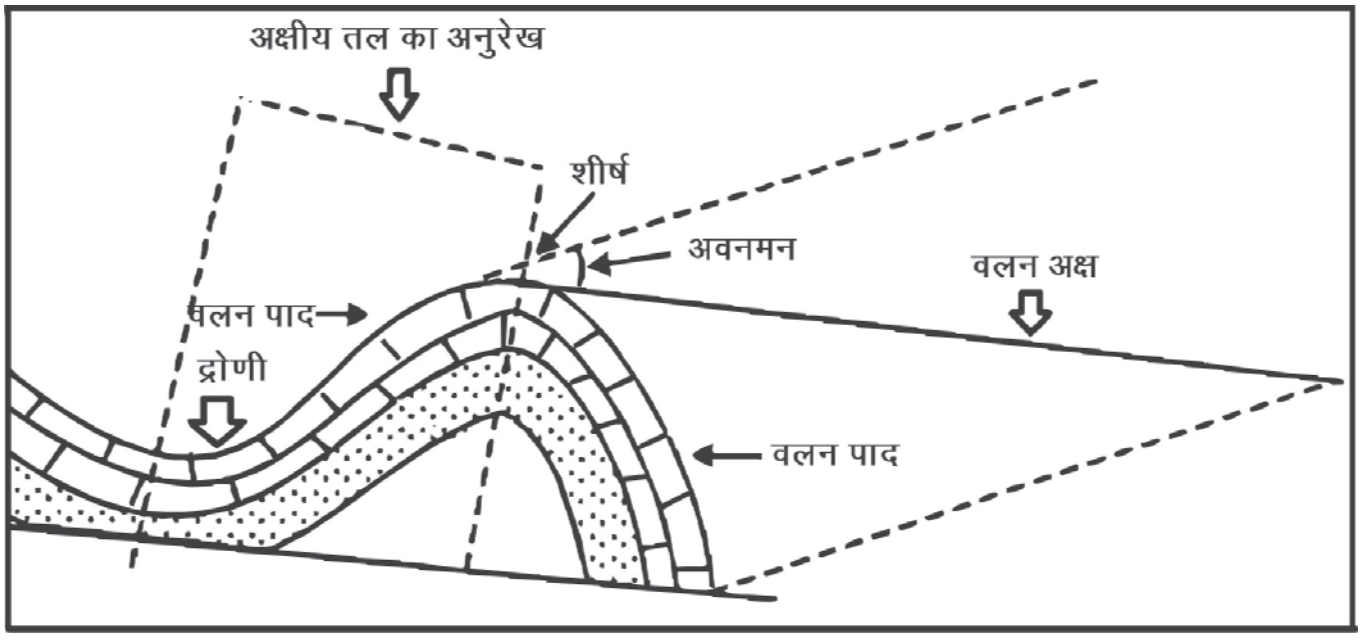

चित्र 1.16 : वलन के विभिन्न भाग

अक्षीय तल से काटने पर ये वलन दो असमान भागों में बंटता है।

3. **समनत वलन** (Isoclinal Fold) : ऐसे वलनों के दोनों पादों की नति एक समान होती है। यदि वलन अक्ष व वलन के दोनों पाद ऊर्ध्वाधर हो तो इन्हें ऊर्ध्वाधर समनत वलन (Vertical Isoclinal Fold) कहते हैं। यदि वलन अक्ष और वलन के दोनों पाद आनत हो तो इन्हें आनत समनत वलन (Inclined Isoclinal Fold) कहते हैं।

4. **प्रतिवलित वलन** (Overturned Fold) : ऐसे वलन जिसमें अक्षीय तल के अत्याधिक झुकाव के कारण वलन के दोनों पादों की नति एक ही दिशा में हो जाती है, प्रतिवलित वलन कहलाते हैं।

5. **श्यान वलन** (Recumbent Fold) : जब वलन की तीव्रता इतनी अधिक हो जाती है कि वलन के पाद प्रतिवलित होकर क्षैतिज अवस्था में आ जाते हैं तथा वलन का अक्षीय तल भी क्षैतिज होता है, श्यान वलन कहलाता है। इस प्रकार के वलनों में शैल संस्तरों का अध्यासन क्रम (Order of Superposition) बदल जाता है।

6. **नैपे** (Nappe) : संस्तरों में प्रतिवलन निर्मित होने के उपरान्त भी यदि प्रतिबल क्रियाशील रहता है तो संस्तरों में विभंग निर्मित हो जाते हैं, तत्पश्चात भी प्रतिबल की क्रियाशीलता पर विभंग तलों से संस्तर पृथक होकर बहुत दूर तक विस्थापित हो जाते हैं, यह सरंचना नैपे कहलाती है।

7. **संवृत वलन** (Closed Fold) : जब संस्तर गतिशील होते है तथा प्रतिबलों की क्रियाशीलता के कारण संस्तर खिसक जाते हैं और वलन शीर्ष व द्रोणी वाले क्षेत्रों में पाद मोटे हो जाते हैं तथा बीच में पतले रहते हैं, ऐसे वलन संवृत वलन कहलाते हैं।

8. **विवृत वलन** (Open Fold) : वलन के शीर्ष व द्रोणी तथा सभी स्थानों पर यदि पादों की मोटाई एक समान हो तो इन्हें विवृत वलन कहते हैं।

9. **कोणीय वलन** (Chevron Fold) : वलन जिनके अक्षीय तल कोणीय होते है तथा दोनों पाद तीक्ष्ण कोण पर आपस में मिलते है, कोणीय वलन कहलाते हैं।

10. **पंखा वलन** (Fan Fold) : प्रतिबलों की तीव्रता के फलस्वरूप वलन के दोनों पाद प्रतिवलित होकर एक–दूसरे के करीब आ जाते हैं इस कारण इनके अपनति पाद की नति एक दूसरे की ओर तथा अभिनति पाद की नति एक दूसरे के विरूद्ध दिशा में हो जाती है तो ऐसे वलनों को पंखा वलन कहते हैं। इस प्रकार के वलनों में संस्तर का अध्यासन क्रम उलट जाता है।

11. **कर्षज वलन** (Drag Fold) : दो समर्थ संस्तरों (Competent Beds) के मध्य एक असमर्थ संस्तर (Incompetent beds) होने पर तथा इस स्थिति में असमर्थ संस्तर के दोनो ओर से विरूद्ध दिशाओं में प्रतिबल क्रियाशील होने पर असमर्थ संस्तर में छोटे–छोटे वलनों का निर्माण हो जाता है इन्हें कर्षज वलन कहते हैं। इनका निर्माण संस्तरों पर कर्षज प्रवाह के कारण उक्त परिस्थितियों में बड़े आकार के वलनों में होता है।

12. **एकनतिक वलन** (Monocline Fold) : क्षैतिज अथवा कम नति वाले संस्तरों की नति जब एक पाद में एकदम से अधिक हो जाती है तथा इस कारण संस्तरों का यह भाग अधिक ऊंचाई में स्थित रहता है तो ऐसे निर्मित वलनों को एकनतिक वलन कहते हैं। ये अभिनति अथवा अपनति के पाद का एक भाग होता है तथा ऐसे वलन में संस्तरों की एक ही दिशा में नति होती है।

13. **अवनमित वलन** (Plunging Fold) : वलन के अक्षीय तल का क्षैतिज तल से झुकाव को वलन का अवनमन (Plunge of the fold) कहते हैं तथा अवनमन युक्त वलन को अवनमित वलन कहते हैं।

14. **अतितनुवलन** (Supratenuous Fold) : अवसादन (Sedimentation) क्रिया के साथ में वलन निर्माण के दौरान अपनति की शीर्ष व अभिनति की द्रोणी पर संस्तरों की मोटाई क्रमशः कम व अधिक हो जाती है, क्योंकि शीर्ष पर कम और द्रोणी पर अधिक अवसादन होता है, ऐसे वलन अतितनुवलन कहलाते हैं।

15. **गुम्बद तथा द्रोणी** (Dome and Basin) : इनकी आकृतियां गोल या अंडाकार होती है। गुम्बद अपनति के समान होता है व इसमें संस्तरों की नति की दिशा अंदर से बाहर की ओर होती है। अलग–अलग दिशाओं में गमन करने वाली दो अपनतियों के मिलने से गुम्बद का निर्माण होता है। इसके विपरीत द्रोणी अभिनति के समान होती है, इसमें संस्तरों की नति की दिशा बाहर से अंदर की ओर रहती है। अलग–अलग दिशाओं में गमन करने वाले दो अभिनतियों के मिलने से द्रोणी का निर्माण होता है।

विभिन्न प्रकार के वलनों को चित्र 1.17 में दर्शाया गया है।

भ्रंश (Fault)

संस्तरों का विभंग पर हुए विस्थापन (Displacement) को भ्रंश (Fault) कहते हैं तथा यह प्रक्रिया भ्रंशन (Faulting) कहलाती है। संस्तर तल (Bedding Plane) पर दो विभिन्न दिशाओं से प्रतिबल लगता है तब विभंग तल पर संस्तर विस्थापित हो जाते है तथा शैलों में भ्रंश निर्मित होते हैं। भ्रंश से संबंधित महत्वपूर्ण परिभाषाएँ निम्नलिखित हैं–

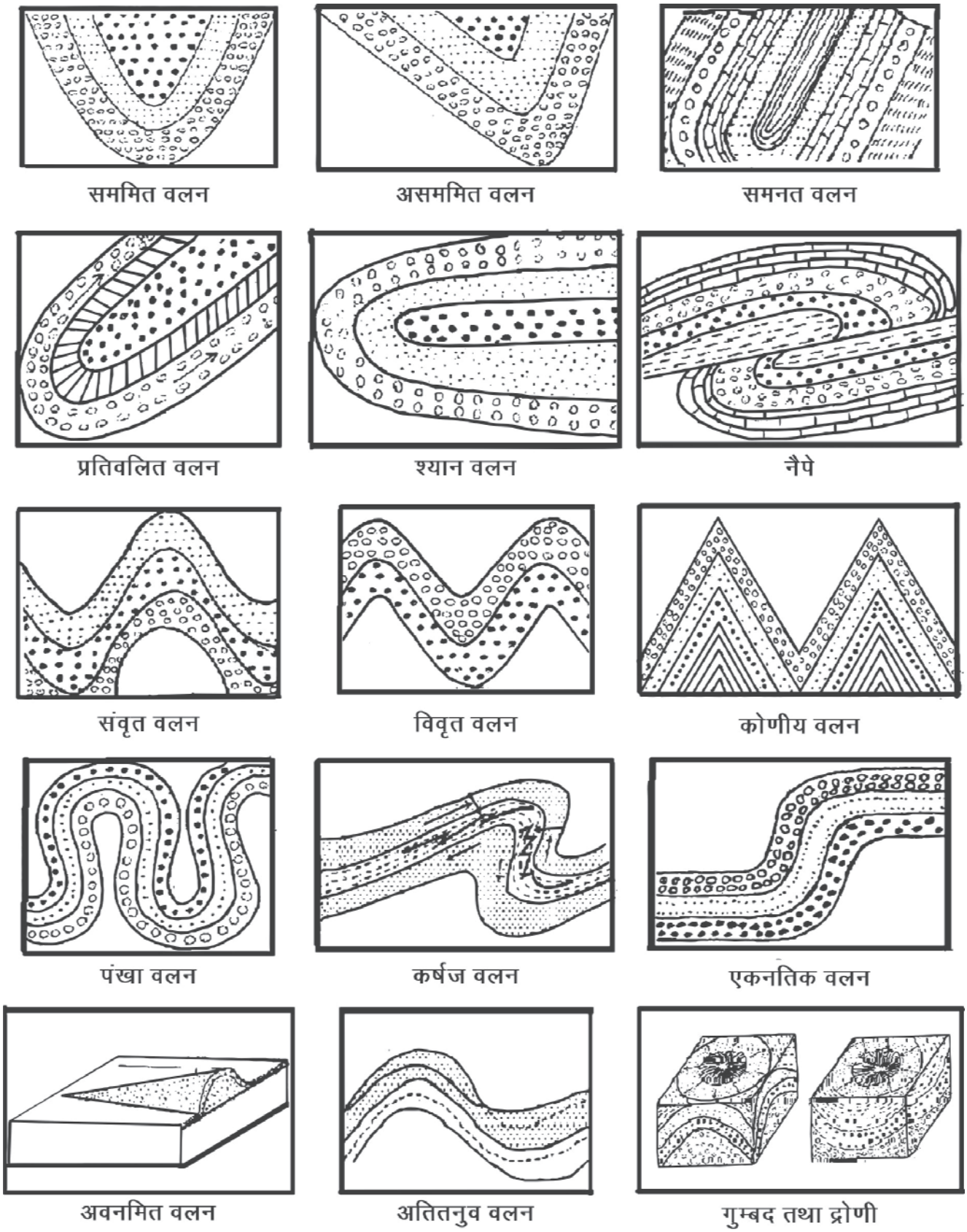

चित्र 1.17 : वलनों के विभिन्न प्रकार

1. **भ्रंश तल** (Fault Plane) : जिस तल पर संस्तरों का विस्थापन होता है वह तल भ्रंश तल कहलाता है।
2. **आधार भित्ति** (Foot Wall) : भ्रंशन के कारण शैल खण्ड विस्थापित हो जाते है। वह शैल खंड जो कि भ्रंशतल के नीचे स्थित रहती है, आधार भित्ति कहलाती है।
3. **ऊपरि भित्ति** (Hanging Wall) : वह शैलखंड जो कि भ्रंश तल के उपर स्थित रहती है, ऊपरि भित्ति कहलाती है।
4. **भ्रंश का उन्नमन** (Hade of a Fault) : ऊर्ध्वाधर तल (Vertical Plane) तथा भ्रंश तल के बीच के कोण को भ्रंश का उन्नमन कहते हैं।
5. **अवपात पार्श्व** (Downthrow Side) : भ्रंश का वह पार्श्व जहाँ कि संस्तर भ्रंश तल के दूसरे पार्श्व में स्थित संस्तरों की तुलना में अधिक विस्थापित हो जाते हैं, अवपात पार्श्व कहलाता है। विस्थापन के फलस्वरूप नवीन संस्तर (Younger Bed) प्राचीन संस्तरों (Older Beds) के सम्पर्क में आ जाते हैं।
6. **भ्रंशपात** (Throw of a Fault) : भ्रंशन के कारण संस्तरों के ऊर्ध्वाधर विस्थापन को भ्रंशपात कहते हैं।
7. **भ्रंश का अनुप्रस्थ विस्थापन – हीव** (Heave of a Fault) : भ्रंशन के कारण संस्तरों के क्षैतिज विस्थापन को भ्रंश का अनुप्रस्थ विस्थापन ''हीव'' कहते हैं।
8. **भ्रंश की नति** (Dip of a Fault) : क्षैतिज तल (Horizontal plane) तथा भ्रंश तल (Fault plane) के बीच के कोण को भ्रंश की नति कहते हैं।
9. **भ्रंश का नतिलम्ब** (Strike of a Fault) : भ्रंश की नति की दिशा के लम्बरूप वह काल्पनिक रेखा जो कि भ्रंशतल के एक ही ऊँचाई वाले बिन्दुओं को मिलाती है, भ्रंश का नतिलम्ब कहलाती है। भ्रंशतल तथा क्षैतिज तल की प्रतिच्छेदन रेखा को ही भ्रंश का नतिलम्ब कहते है।
10. **भ्रंश अनुरेख या भ्रंश दृश्यांश या भ्रंश रेखा** (Fault trace or Fault outcrop or Fault line) : भ्रंश तल और भूमि तल के प्रतिच्छेदन को भ्रंश अनुरेख या भ्रंश दृश्यांश या भ्रंश रेखा कहते हैं।
11. **भ्रंश का सर्पण** (Slip of a fault) : भ्रंशतल पर संस्तरों के विस्थापन की दूरी को भ्रंश का सर्पण कहते हैं। भ्रंश के अधिकतम सर्पण को नेट सर्पण (Net Slip) कहते हैं। भ्रंश के नति की तथा नतिलम्ब की दिशा में हुए विस्थापन को क्रमशः नति सर्पण (Dip Slip) तथा नतिलम्ब सर्पण (Strike Slip) कहते हैं।

भ्रंश के विभिन्न भागों को चित्र 1.18 में दर्शाया गया है।

भ्रंशों का वर्गीकरण (Classification of Faults)

विभिन्न आधारों पर भ्रंशों को निम्नानुसार वर्गीकरण किया गया है–

1. भ्रंश की नति की मात्रा के आधार पर : भ्रंश की नति की मात्रा के आधार पर निम्न प्रकार के भ्रंश वर्गीकृत किये गये हैं–

अ. **उच्च कोण नति भ्रंश** (High angle dip fault) : भ्रंश जिनकी नति 45° से अधिक होती है, उच्च कोण नति भ्रंश कहलाते हैं, ये भ्रंश सामान्य भ्रंश (Normal Fault) होते हैं।

ब. **निम्न कोण नति भ्रंश** (Low angle dip fault) : – भ्रंश जिनकी नति 45° से कम होती है, निम्न कोण नति भ्रंश कहलाते हैं, ये भ्रंश क्षेप भ्रंश (Thrust Fault) होते हैं।

2. भ्रंश खण्ड के संचलन के आधार पर : भ्रंश खण्ड के संचलन के आधार पर अर्थात भ्रंशों के ऊपरिभित्ति या आधारभित्ति के ऊपर अथवा नीचे विस्थापन होने के आधार पर निम्न प्रकार के भ्रंश वर्गीकृत किये गये हैं–

अ. **सामान्य भ्रंश** (Normal Fault) : भ्रंश जिनमें ऊपरिभित्ति, आधारभित्ति की तुलना में नीचे विस्थापित हो जाती है जिससे भ्रंश के अवपात पार्श्व में संस्तर नीचे चले जाते है, सामान्य भ्रंश कहलाते हैं। ऐसे भ्रंशों का उन्नमन तथा अवपात पार्श्व एक ही ओर रहते हैं। इन्हें गुरूत्वीय भ्रंश (Gravity Fault) भी कहते हैं।

ब. **क्षेप भ्रंश या उत्क्रमित भ्रंश** (Thrust Fault of Reversed Fault) : भ्रंश जिनमें ऊपरिभित्ति, आधार भित्ति की अपेक्षा ऊपर चली जाती है जिससे भ्रंश का अवपात पार्श्व तथा उन्नमन एक दूसरे के विरूद्ध दिशा में रहते हैं, क्षेप भ्रंश या उत्क्रमित भ्रंश कहलाते हैं। क्षेप भ्रंश की नति की मात्रा 45° से अधिक होने पर इन्हें उत्क्रमित भ्रंश, 45° से कम होने पर क्षेप भ्रंश तथा 10° से कम होने पर अधिक्षेप भ्रंश (Over thrust fault) कहते हैं।

स. **अनुप्रस्थ भ्रंश** (Transverse Fault) : वे भ्रंश जो क्षेत्रीय संरचनाओं के अनुप्रस्थ निर्मित होते हैं, अनुप्रस्थ भ्रंश कहलाते हैं।

द. **अनुदैर्ध्य भ्रंश** (Longitudinal Fault) : वे भ्रंश जो क्षेत्रीय संरचनाओं के समान्तर होते हैं, अनुदैर्ध्य भ्रंश कहलाते हैं।

य. **ऊर्ध्वाधर भ्रंश** (Vertical Fault) : जब संस्तरों का विस्थापन, भ्रंश तल पर ऊर्ध्वाधर रूप में होता है तब निर्मित भ्रंश ऊर्ध्वाधर भ्रंश कहलाते हैं। इन भ्रंशों में आधारभित्ति ऊपर या नीचे विस्थापित हो सकती है।

3. भ्रशों की प्रकृति के आधार पर : भ्रंशों की प्रकृति के आधार पर वर्गीकरण में भ्रंश का संबंध इनके संस्तरों की नति

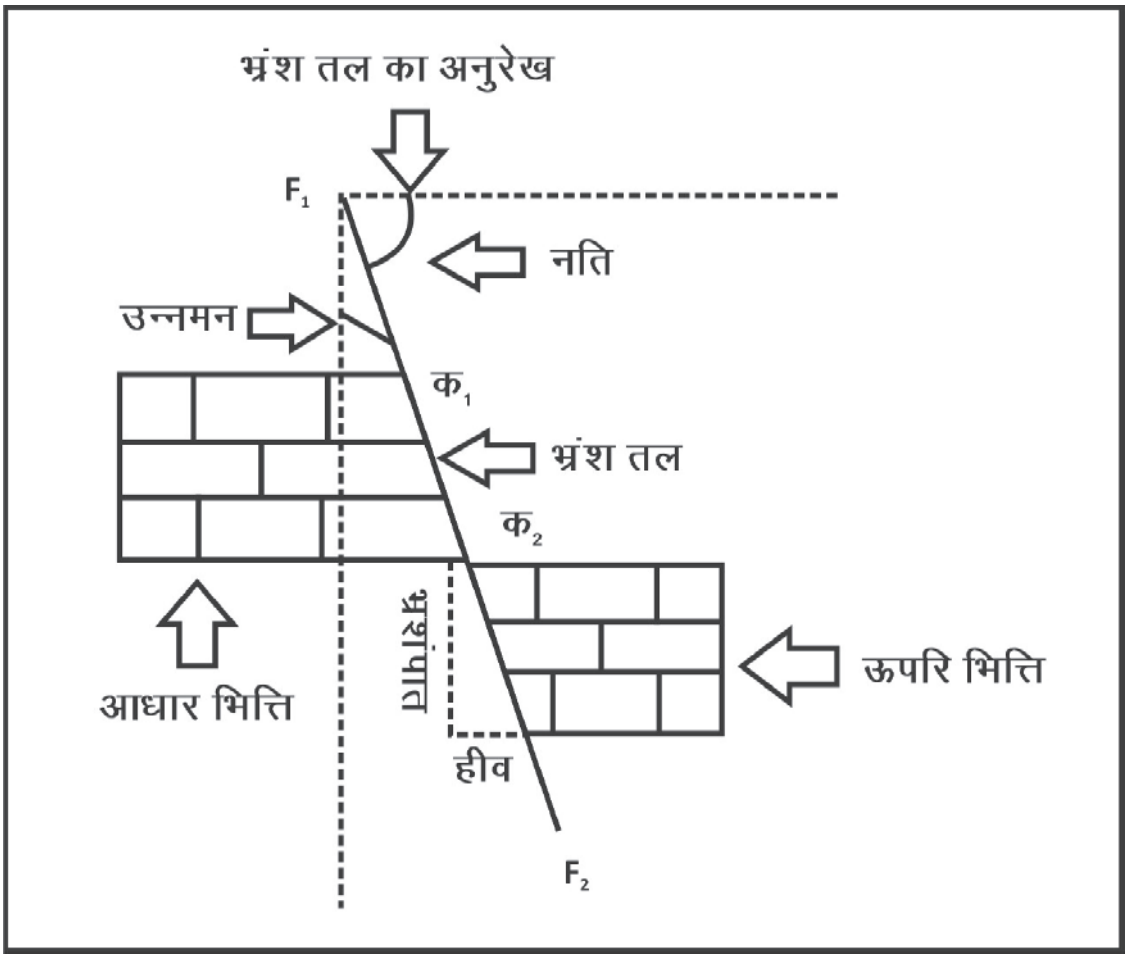

चित्र 1.18 : भ्रंश के विभिन्न भाग

तथा नतिलम्ब से किया जाता है, तदानुसार निम्न तीन प्रकार के भ्रंश वर्गीकृत किये जाते हैं–

अ. **नति भ्रंश** (Dip Fault) : वे भ्रंश जो कि संस्तरों की नति के समान्तर निर्मित होते है नति भ्रंश कहलाते हैं, इन भ्रंशों में विस्थापन नति की दिशा के समान्तर होता है।

ब. **नतिलम्ब भ्रंश** (Strike Fault) : वे भ्रंश जो कि संस्तरों की नतिलम्ब के समान्तर निर्मित होते हैं तथा जिनमें विस्थापन नतिलम्ब की दिशा के समान्तर होता है, नतिलम्ब भ्रंश कहलाते हैं।

स. **तिर्यक भ्रंश** (Oblique Fault) : वे भ्रंश जो कि संस्तरों के नतिलम्ब व नति दोनों के ही समान्तर नहीं होते हैं, तिर्यक भ्रंश कहलाते हैं।

4. नेट सर्पण के आधार पर : नेट सर्पण के आधार पर भ्रंशों को निम्नानुसार वर्गीकरण किया जाता है–

अ. **नति सर्पण भ्रंश** (Dip Slip Fault) : भ्रंश की नति की दिशा में ही नेट सर्पण की दिशा होने पर इन्हें नति सर्पण भ्रंश कहते हैं। इनमें विस्थापन केवल नति की दिशा में होता है तथा नतिलम्ब की दिशा में सर्पण शून्य रहता है।

ब. **नतिलम्ब सर्पण भ्रंश** (Strike Slip Fault) : भ्रंश का नतिलम्ब और नेट सर्पण एक ही दिशा में हो तो इसे नतिलम्ब सर्पण भ्रंश कहते हैं। इनमें संस्तर का विस्थापन केवल नतिलम्ब की ही दिशा में होता है तथा नति की दिशा में सर्पण शून्य रहता है।

स. **तिर्यक सर्पण भ्रंश** (Oblique Slip Fault) : भ्रंश का नेट सर्पण जब भ्रंश की नति या नतिलम्ब की दिशा में नहीं होता है तब इसे नेट सर्पण भ्रंश कहते हैं। इन भ्रंशों में नेटसर्पण, नतिलम्ब व नति दोनों के ही दिशा के सन्दर्भ में किया जाता है।

5. भ्रंशों का क्षेत्र में इनके विन्यास के आधार पर – क्षेत्र में भ्रंशों के विन्यास के अनुसार इनको निम्नानुसार वर्गीकृत किया जाता है–

अ. **अरीय भ्रंश** (Radial Fault) : वे भ्रंश जो कि एक बिन्दु से

विकीर्णित होते हैं अर्थात अरीय ढंग से व्यवस्थित रहते हैं, अरीय भ्रंश कहलाते हैं।

ब. **समान्तर भ्रंश** (Parallel Fault) : भ्रंश जब आपस में समान्तर होते हैं तथा इनके नतिलम्ब व नति में परिवर्तन नहीं होता है तब इन्हें समान्तर भ्रंश कहते हैं।

स. **सोपानी भ्रंश** (En-echelon Fault) : समान्तर भ्रंशों में जब एक भ्रंश के समाप्त होने के पहले कुछ ही दूरी पर दूसरा भ्रंश प्रारम्भ हो जाता है तथा इसी तरह तीसरा भ्रंश भी हो जाए तब भ्रंश एक–दूसरे का अतिव्यापन करते हो तो ऐसे भ्रंश सोपानी भ्रंश कहलाते हैं।

द. **परिधीय भ्रंश** (Peripheral Fault) : वे भ्रंश जो कि वक्राकार या चापाकार होते हैं तथा वृत्ताकार परिधि में स्थित होते हैं, परिधीय भ्रंश कहलाते हैं।

य. **होर्स्ट** (Horst) – जब दो सामान्य भ्रंशों का उन्नमन (Hade) एक–दूसरे के विरूद्ध दिशा में रहता है तथा उनका अवपात पार्श्व (Down Throw Side) विरूद्ध दिशा में हो तथा उनके बीच का भूखण्ड अपने स्थान पर ऊँचाई में स्थिर हो तो होर्स्ट का निर्माण होता है। दूसरे शब्दों में जब दो सामान्य भ्रंश जब अपसारी (Divergent) दिशाओं में होते हैं तथा दोनों पार्श्वों में स्थित भ्रंशित खण्डों का अधोमुखी विस्थापन होता है तब मध्य स्थित भाग उत्थित खण्ड के रूप में दिखाई पड़ता है, कटक भ्रंश (Ridge Fault) कहलाता है। इस प्रकार के उत्खण्ड भ्रंश जर्मन भाषा में होर्स्ट कहलाते हैं।

ल. **ग्राबेन** (Graben) : जब दो सामान्य भ्रंशों का उन्नमन एक–दूसरे की ओर हो तथा इनका अवपात पार्श्व एक ही दिशा में हो तथा दोनों भ्रंशों के बीच का भूखण्ड नीचे की ओर विस्थापित हो तो ऐसे भ्रंश को द्रोणिका भ्रंश (Trough Fault) कहते हैं। दूसरे शब्दों में दो सामान्य भ्रंश अभिसारी (Convergent) दिशाओं में होने से तथा उनके मध्य स्थित भ्रंशित खण्ड के अधोमुखी विस्थापन के फलस्वरूप द्रोणिका निर्मित होती है, द्रोणिका भ्रंश कहलाते हैं जिन्हें जर्मन भाषा में ग्राबेन कहते हैं।

व. **सीढ़ीनुमा भ्रंशन** (Step Faulting) : एक से अधिक सामान्य भ्रंश जब एक–दूसरे के समान्तर हो तथा इन सभी भ्रंशों का अवपात पार्श्व एक ही ओर हो तो ऐसे भ्रंशन सीढ़ीनुमा भ्रंशन कहलाते हैं। इसमें संस्तर नीचे चले जाने के कारण सीढ़ीनुमा आकृति निर्मित करते हैं।

विभिन्न प्रकार के भ्रंशों को चित्र 1.19 में दर्शाया गया है।

विषमविन्यास (Unconformity)

शैल संस्तरों के संस्तरण तल आपस में जब समान्तर हो तथा इनके नतिलम्ब और नति एक समान हो और संस्तर एक के ऊपर एक परतों में अबाध गति से अवसादों के निक्षेपण से जमते है तब इन्हें समविन्यासी (Conformable) संबंध कहते हैं। इसके विपरित जब अवसादन की प्रक्रिया में अवरोध आ जाता है तथा संस्तरों की अपरदन की क्रिया होने लगती है व कालान्तर में संस्तर के अपरदित सतह पर पुनः अन्य स्तरों का निक्षेपण होने लगता है व दोनों श्रेणियों के नतिलम्ब व नति में भी परिवर्तन होता है तब इन श्रेणियों के आपस के सम्बन्ध को विषमविन्यस्त (Unconformable) सम्बन्ध कहते हैं। अवसादन में रूकावट के फलस्वरूप दो विभिन्न शैल समूहों में पायी जाने वाली इस विषमता को विषमविन्यास (Unconformity) कहते हैं। दोनों शैल समूहों के संस्पर्श तल को ''विषमविन्यास तल'' (Plane of Unconformity) कहते हैं। यह तल अनियमित होता है जिसके नीचे प्राचीन शैल श्रेणी तथा ऊपर नवीन शैल श्रेणी के संस्तर पाए जाते हैं, इस प्रकार दोनों शैल समूह विषमविन्यास तल पर सम्पर्क में आते हैं। यह तल निक्षेपण नहीं होने वाला तल या अपरदन तल होता है।

विभिन्न प्रकार के शैलों के विवर्तनिक इतिहास (Tectonic History) के आधार पर विभिन्न प्रकार के विषमविन्यासों का वर्गीकरण निम्नानुसार किया गया है –

1. कोणीय विषमविन्यास (Angular Unconformity)
2. अपसमविन्यास (Disconformity)
3. स्थानीय विषमविन्यास (Local Unconformity)
4. असमविन्यास (Non conformity)

1. **कोणीय विषमविन्यास** (Angular Unconformity) : प्राचीन शैल संस्तरों के आनत (Inclined) या वलित (Folded) होने के पश्चात नवीन शैल संस्तरों के निक्षेपित होने से, प्राचीन तथा नवीन शैल संस्तरों की नति में असमानता होती है तथा इन संस्तरों की नति के कोण भिन्न–भिन्न होते हैं। इस प्रकार के विषमविन्यास को कोणीय विषमविन्यास कहते हैं।

2. **अपसमविन्यास** (Disconformity) : विषमविन्यास तल के ऊपर स्थित नवीन शैल श्रेणी तथा नीचे स्थित प्राचीन शैल श्रेणी जब समान्तर हो तो इस तरह का विषम विन्यास अपसमविन्यास कहलाता है। इसमें विषमविन्यास तल अपरदन पृष्ठ का द्योतक होता है।

3. **स्थानीय विषम विन्यास** (Local Unconformity) : बहुत कम समय में निर्मित अपसमविन्यास की तरह विषमविन्यास तल के नीचे और ऊपर संस्तर समान्तर सीमित क्षेत्र में स्थानीय रूप में पाये जाने वाले विषमविन्यास को स्थानीय विषमविन्यास कहते हैं।

4. **असमविन्यास** (Nonconformity) : इस प्रकार के

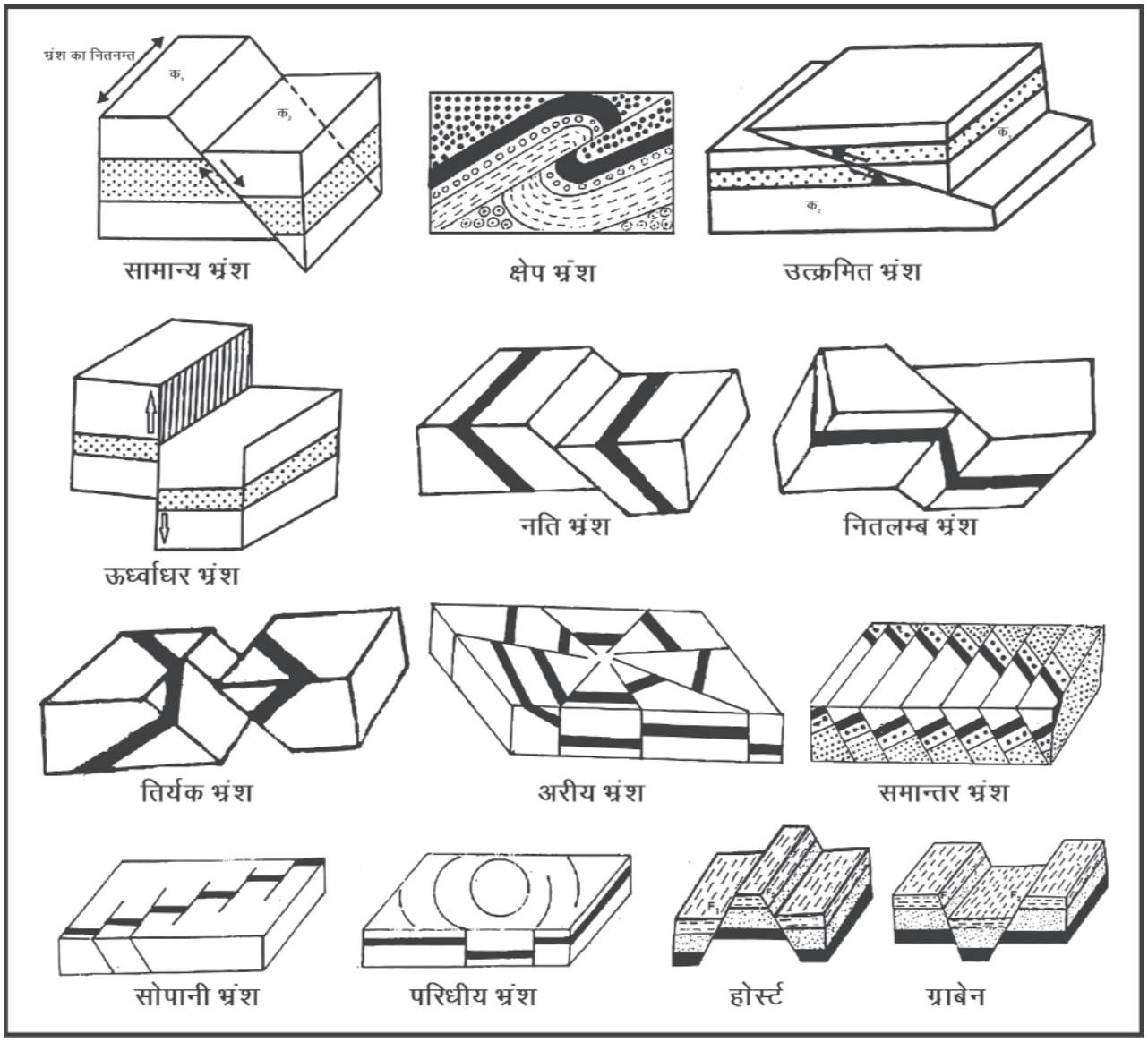

चित्र 1.19 : भ्रंशों के विभिन्न प्रकार

विषमविन्यास में प्राचीन श्रेणी आग्नेय शैल द्वारा निर्मित होते है तथा विषमविन्यास तल के ऊपर नवीन श्रेणी के संस्तरित अवसादी संस्तर (Stratified Sedimentany Beds) अथवा लावा प्रवाह (Lava Flows) द्वारा निर्मित होते है। इसके अलावा असमविन्यास में विषमविन्यास तल के नीचे प्राचीन शैल श्रेणी अवसादी शैलों व ऊपर नवीन शैल लावा प्रवाह अथवा नीचे, प्राचीन व ऊपर नवीन शैल दोनों ही लावा प्रवाह हो सकते हैं। विभिन्न प्रकार के विषमविन्यास चित्र 1.20 में दर्शाये गए हैं।

हिमालय पर्वत की उत्पत्ति
(Origin of the Himalaya Mountain)

हिमालय पर्वत की उत्पत्ति तृतीय महाकल्प (Tertiary Era) के दौरान हुई परन्तु इसमें कैम्ब्रियन से लेकर आदिनूतन युग (Cambrian to Eocene) तक के शैल पाये जाते हैं। हिमालय पर्वत, वलित पर्वत (Folded Mountain) का उदाहरण है अर्थात् हिमालय की उत्पत्ति एक जटिल वलित पर्वत की उत्पति का प्रतीक है।

महाद्वीपीय विस्थापन के सिद्धांत के अनुसार वर्तमान महाद्वीपों व महासागरों का निर्माण पुराजीवी महाकल्प में दक्षिण ध्रुव के आसपास एक विशाल भूखण्ड पेन्जिया से हुआ, जिसके चारों ओर पेंथालसा महासागर फैला हुआ था। 44 करोड़ वर्षों पूर्व सिलूरियन कल्प में आन्तरिक बलों के कारण पेन्जिया में बड़ी बड़ी दरारें पड़ी व यह दो भागों में विभाजित हो गया। उत्तर दिशा में लारेशिया व दक्षिण में गोंडवाना महाखण्ड अस्तित्व में आए

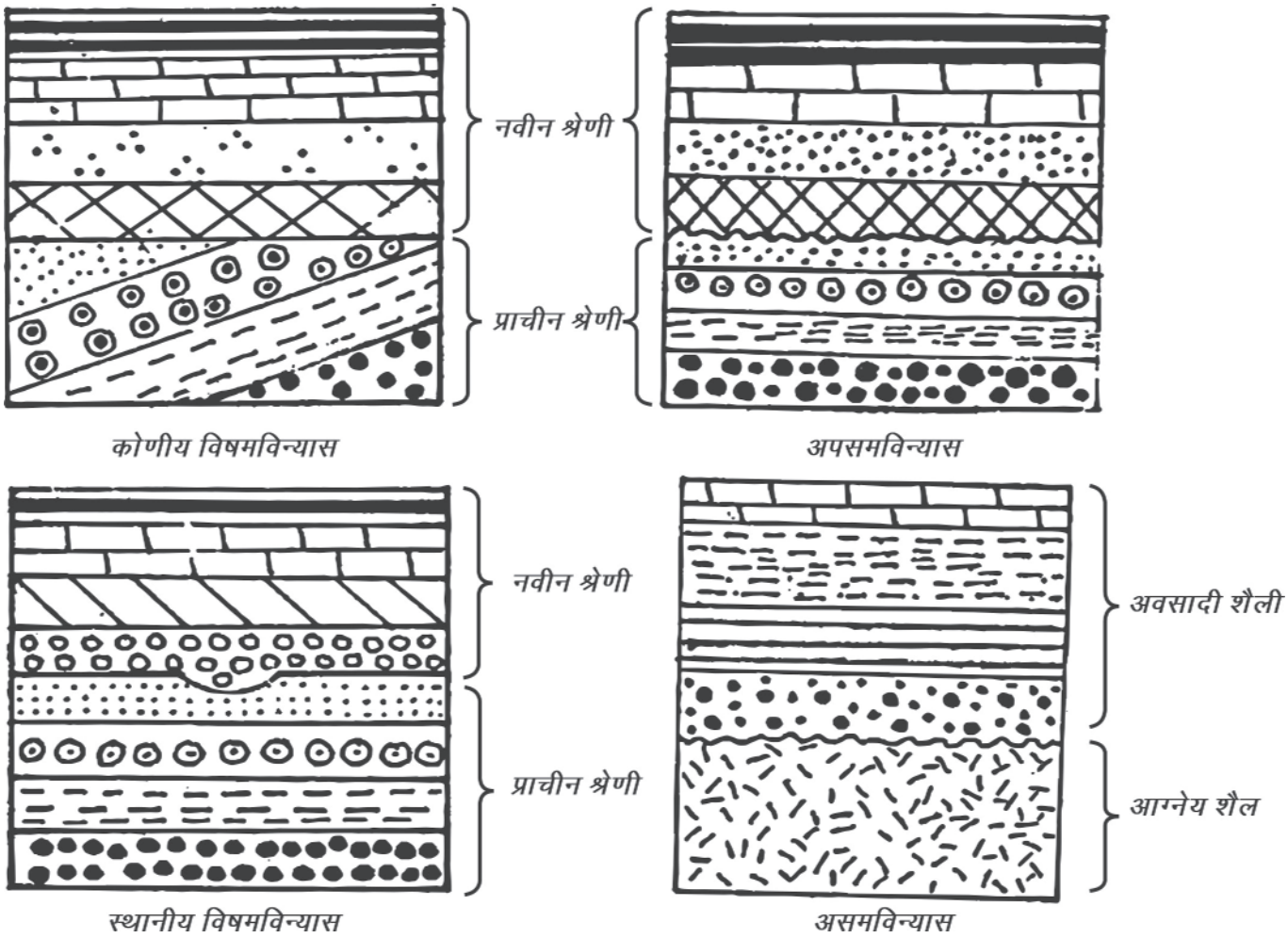

चित्र 1.20 : विषमविन्यास के विभिन्न प्रकार

तथा इनके मध्य टेथिस महासागर निर्मित हुआ। कालांतर में लारेशिया के विखंडन व विस्थापन से ग्रीनलैंड, यूरेशिया, व उत्तरी अमेरिका तथा गोंडवाना महाखण्ड से दक्षिण अमेरिका, अफ्रीका, अंटार्कटिका, आस्ट्रेलिया व भारतीय उपमहाद्वीप के रूप में वर्तमान महाद्वीपों व महासागरों की स्थापना हुई। टेथिस सागर में जमे स्तरित अवसादों पर संपीडन बलों के कारण वलनीकरण ओर भ्रंशन प्रक्रियाओं के फलस्वरूप हिमालय पर्वत माला की उत्पत्ति हुई। हिमालय पर्वत की सर्वाधिक ऊंची चोटी माउंट एवरेस्ट की ऊंचाई औसत समुद्र तल से 8848 मीटर है और यह विवर्तनिक हलचलों के कारण बढ़ रही है। हिमालय की आयु कालगणना के अनुसार 45 करोड़ वर्ष आंकी गई हैं और इस की वर्तमान ऊंचाई की स्थिति 5.5 करोड़ वर्ष पूर्व अर्जित की गई थी।

हिमालय के एक ओर दक्षिण में डेकन के पठार तथा दूसरी ओर उत्तर में तिब्बत के पठार के रूप में दृढ़ भूमियां है। इनके बीच में टेथिस सागर पूर्व काल में रहा था जिसमें लगातार अवसादों का निक्षेपण हुआ। इन दोनों दृढ़ भूमियों से टेथिस सागर पर दाब की क्रियाशीलता के फलस्वरूप अवसादों के वलित होने से हिमालय पर्वत की उत्पत्ति हुई। मध्यपुराजीवी महाकल्प (Middle Palaeozoic Era) के दौरान उत्तर में लारेशिया व दक्षिण में गोंडवाणा महाद्वीपों के मध्य, पूर्व से पश्चिम तक विस्तरित संकरे समुद्र टेथिस (Tethys) में महाद्वीपों से अपरदित अवसादों का निक्षेपण करोड़ों वर्षों तक होता गया। जुरैसिक काल के उत्तरार्द्ध में लगभग (18 करोड़ वर्ष पूर्व) गोंडवाना महाद्वीप का विघटन तथा विस्थापन होने के कारण सम्पीड़न बलों की उत्पत्ति हुई। लारेशिया महाद्वीप का भी विस्थापन हुआ। इस कारण टेथिस सागर में निक्षेपित स्तरित अवसादों पर सम्पीड़न बल के प्रयोग से वलन, क्षेपण तथा भ्रंशन के फलस्वरूप हिमालय पर्वत की उत्पत्ति हुई। अतः महाद्वीपों के विस्थापन को हिमालय की उत्पत्ति का मुख्य कारण माना जा सकता है। हिमालय पर्वत की शैलों में उपलब्ध जीवाश्मीय प्रमाण संकेत करते है कि इनका निर्माण उथले सागरों में ही हुआ जिन्हें भू–अभिनति (Geosyncline) कहते हैं। प्रायद्वीपीय भारत का मध्य एशिया की ओर अधःक्षेप (Under Thrust) होने के फलस्वरूप टेथिस सागर के अवसादों का उत्थापन हुआ और हिमालय पर्वत की उत्पत्ति हुई।

हिमालय पर्वत माला का उत्थान (Upliftment) चार विभिन्न कालों में हुआ। उत्तर आदिनूतन काल (Late Eocene) (लगभग 6 करोड़ वर्ष पूर्व) में प्रथम भू–संचलन के कारण मध्य हिमालय भाग ऊपर उठा तथा इसके उत्तर व दक्षिण भाग में अवशिष्ट टेथिस सागर में निक्षेपित होते रहे। दूसरा तीव्रतम भू–संचलन मध्य नूतन युग (Miocene) (2 करोड़ वर्ष पूर्व) में हुआ तथा इसके कारण उत्तरी भाग की पर्वत–श्रेणियों में उत्थान हुआ। इस प्रभावशाली तीव्र आवेग के कारण दक्षिण के कुछ स्थानों को छोड़कर अधिकांशः टेथिस का लोप हो गया था। दक्षिण के गिरीपद क्षेत्र के संकरे व लम्बे समुद्री भाग में शिवालिक अवसादों का निक्षेपण होता रहा। तीसरा भू–संचलन अतिनूतन युग (Pliocene) (1 करोड़ वर्ष पूर्व) के दौरान हुआ जिसके कारण सम्पूर्ण टेथिस सागर विलुप्त हो गया तथा शिवालिक पर्वत श्रेणी का उत्थान हुआ। इसी आवेग के कारण हिमालय की ऊंचाई में ओर उत्तरोत्तर वृद्धि हुई। चौथा तथा अंतिम भू–संचलन अत्यन्त नूतन युग (Pleistocene) (25 लाख वर्ष पूर्व) में हुआ जिसके फलस्वरूप हिमालय पर्वत विश्व की सर्वोच्च चोटी बन गई तथा भारतीय प्लेट के संचलन के कारण इसकी ऊंचाई में वर्तमान में भी लगातार शनै–शनै वृद्धि होती जा रही है।

थार रेगिस्तान की उत्पत्ति
(Origin of the Thar Desert)

थार का रेगिस्ताान भारत देश के उत्तर पश्चिम में मुख्यतः राजस्थान राज्य में तथा कुछ भाग हरियाणा, पंजाब व गुजरात राज्यो में और पड़ौसी देश पाकिस्तान के सिंध व पंजाब प्रान्तों में फैला हुआ है (चित्र 1.21)। लहरदार रेतीले टिब्बों युक्त करीब दो लाख वर्ग किलोमीटर क्षेत्रफल में इसका फैलाव है। इसकी सतह असमान व ऊँची–नीची है जिसमें विभिन्न आकार प्रकार के छोटे–बड़े रेतीले टिब्बे, रेत के विशाल मैदान तथा छोटे बंजर पहाड़ सम्मिलित है। पुराने टिब्बे अर्द्ध स्थिर व स्थिर है जिनकी ऊंचाई करीब 150 मीटर तक है। पश्चिम राजस्थान के रेगिस्तान में खारे पानी की झीलें (प्लाया) पचपदरा, डीडवाना, लूणकरणसर व सांभर में मौजूद हैं। इस क्षेत्र में मिट्टी की विभिन्न सात श्रेणियां मिलती हैं जो खुरदरी, चूनेदार व शुष्क हैं। इस क्षेत्र के पश्चिमी भाग में वार्षिक वर्षा 100 मिलीमीटर या कम तथा पूर्वी भाग में 500 मिलीमीटर होती है तथा कुल वर्षा का 90 फीसदी भाग दक्षिण–पश्चिम मानसून अवधि (जुलाई से सितम्बर माह) में बरसता है। मई–जून माह में तापमान 47° सेल्सियस से भी ऊपर चला जाता है तथा 150 किलोमीटर प्रति घण्टा की गति से तेज धूल भरी आँधियां चलती हैं। सर्दी के मौसम में तापमान जमाव बिन्दु के करीब चला जाता है। थार का रेगिस्तान लगातार उत्तर पूर्व दिशा की ओर फैलता जा रहा है तथा इस क्षेत्र में मरूद्भिद् वनस्पति पाई जाती है। राजस्थान के 63 फीसदी क्षेत्र में मरूस्थल विस्तृत है तथा पश्चिमी राजस्थान के बीकानेर, बाड़मेर, जैसलमेर, जोधपुर व चुरू जिले में मरूस्थलीय दशाओं को प्रभावी रूप से देखा जा सकता है।

थार का रेगिस्ताान विश्व के नवीनतम मरूस्थलों में से एक है तथा इसकी उत्पत्ति में भूगर्भीय हलचलों, जलवायु परिवर्तन (वर्षा में कमी, तापमान में वृद्धि), वनस्पति आवरण में कमी, स्थलाकृति में बदलाव (पर्वतोत्थान, सरस्वती नदी के विलुप्तीकरण), मानसूनी हवाओं द्वारा परिवाहित अवसाद (बालू) के जमाव इत्यादि के साथ मानव की गतिविधियों (Anthropogenic Activities) का भी महत्वपूर्ण योगदान रहा है। इसकी उत्पत्ति को संक्षेप में निम्नानुसार समझा जा सकता है–

– थार के रेगिस्तान (मरूस्थल) में प्रायद्वीपीय व प्रायद्वीपेत्तर दोनों क्षेत्रों की विशेषताएं मिलती हैं। यह क्षेत्र तृतीयक कल्प (Tertiary Period) के दौरान टेथिस सागर से भी संबंधित रहा। बालूकाश्म (Sandstone) तथा चूनापत्थर (Limestone) के संस्तर तथा इनमें समुद्री जीवाश्मों की उपस्थिति इसकी पुष्टि करते हैं।

– आदि नूतन कल्प (Eocene Period) के दौरान एक विशाल नदी 'इण्डोबह्म' शिवालिक नदी प्रायद्वीप क्षेत्र के उत्तर में शिवालिक गिरिपीढ की जगह बहती थी। पूर्व से पश्चिम दिशा की ओर हजारों किलोमीटर लम्बाई में बहने वाली यह नदी वर्तमान सिंधु की निचली घाटी में स्थित समुद्र में मिलती थी। उस कालावधि (आदि नूतन कल्प) में हिमालय श्रृंखला की दक्षिणी श्रेणियां टेथिस सागर के भीतर ही थी मगर अरावली से असम तक प्रायद्वीपीय पर्वत–पठार क्रम श्रृंखलाबद्ध रूप में विद्यमान थे। ऊपरी तृतीयक काल के अन्तिम समय में भूगर्भीय हलचलों के फलस्वरूप पश्चिम के धंसे हुये क्षेत्र में उभार प्रक्रिया (Upliftment Process) प्रारम्भ हुई तथा प्रायद्वीपीय भारत के उत्तरी–पूर्वी भाग में ध्वंस (Collapse) हुआ जिसके कारण ''राजमहल–शिलांग अन्तर'' (Gap) का निर्माण हुआ। धरातलीय स्थलाकृति स्वरूप में हुए इन बदलावों की वजह से मरूस्थलीय क्षेत्र समुद्री आवरण से मुक्त हो गया। शिवालिक श्रेणी के उत्थान के फलस्वरूप इंडोबह्म–क्रम की बहाव की दिशा में परिवर्तन हुआ तथा यह बंगाल की खाड़ी में मिलने लगी। सरस्वती नदी भी बाद में उत्तर पंजाब प्रदेश में उठाव के साथ क्रमशः पूर्वोत्तर होकर अन्ततः यमुना के रूप में गंगा नदी में मिल गई परन्तु इसकी मूल घाटी पूर्णतः शुष्क नहीं हुई व इसमें बाद में भी पानी का बहाव रहा। परन्तु प्रदेश में भीषण गर्मी व शुष्कता के बढने के साथ ही इसकी जलधारा भी सूख गई। हनुमानगढ़ क्षेत्र में ''घग्घर पेटे'' को सरस्वती की शुष्क घाटी माना जाता है। मध्य नूतन

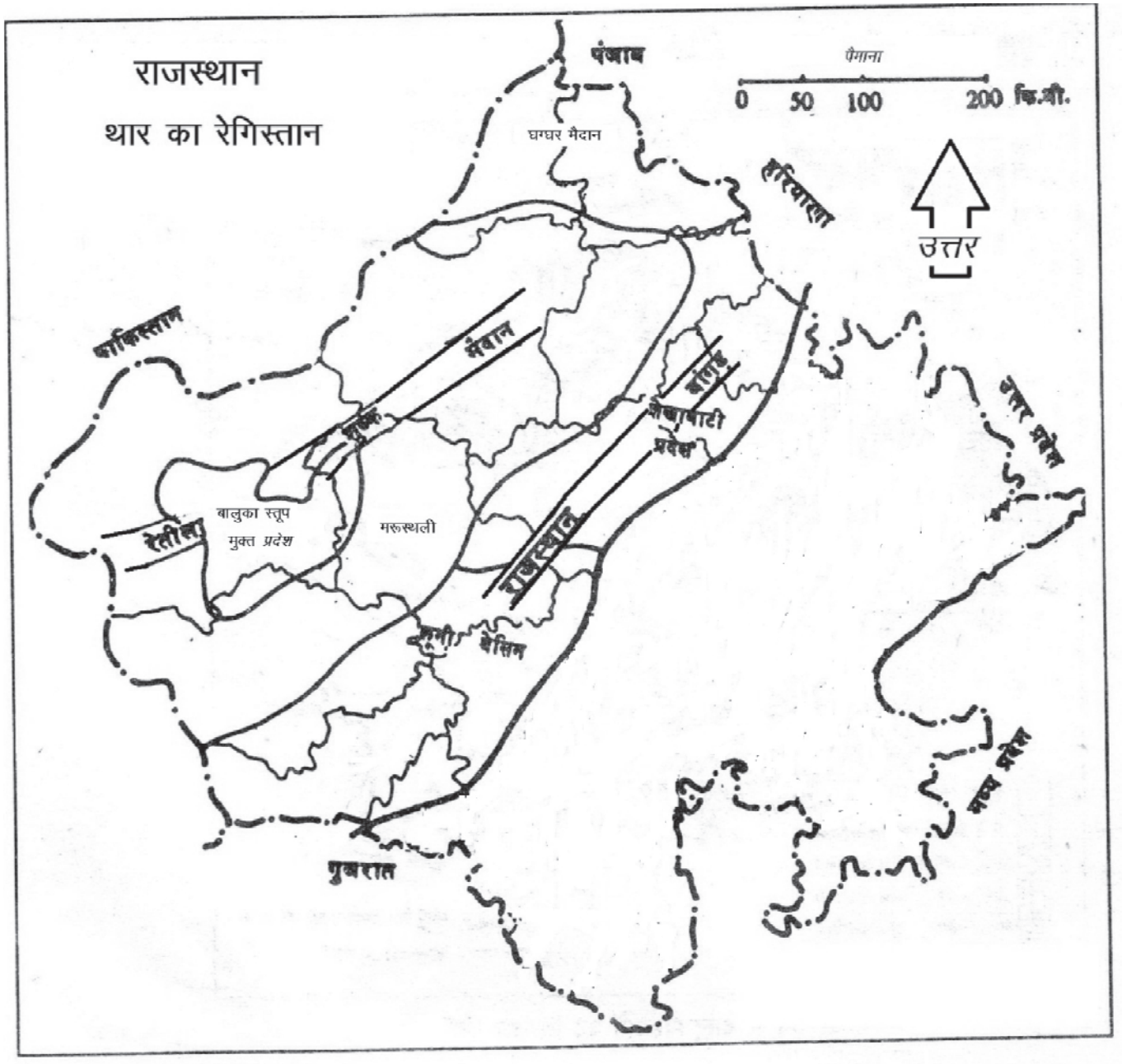

चित्र 1.21 : थार का रेगिस्ताान

(Miocene) कल्प के दौरान हिमालय की मुख्य श्रृंखला के उत्थान के साथ भारतीय उपमहाद्वीप में मानसूनी जलवायु व्यवस्था का विकास हो रहा था। अत्यन्त नूतन (Pleistocene) कल्प के दौरान के हिमयुग (Ice Age) का भी जलवायु पर प्रभाव पड़ा। अन्तिम हिम आवरण वर्तमान से 7 हजार वर्ष पूर्व तक रहा तथा उस वक्त तक मरूस्थलीय दशाएँ नहीं रही होगी। इस अवधि उपरान्त ही शुष्क दशाओं की परिस्थितियों में वृद्धि हुई जो निरन्तर आज भी जारी है। गर्मी बढ़ने के कारण तापवृद्धि के साथ भारत का उत्तर पश्चिमी भाग क्रमशः कम दबाव केन्द्र बनता गया तथा दक्षिण पश्चिमी मानसूनी हवाओं को अपनी ओर खींचने लगा। तापमान में बढ़ोतरी व धरातलीय स्वरूप के मिश्रित प्रभावों से निरन्तर वर्षा में कमी के कारण मरूस्थलीय परिस्थितियों में वृद्धि होने लगी। गर्मी ऋतु में तापमान 45° सेल्सियस से भी ऊपर चला जाता है जिसके फलस्वरूप वायु दाब तथा सापेक्षिक आर्द्रता घट जाते है। इस क्षेत्र में ऊंचे पर्वत के अवरोध की अनुपस्थिति तथा प्रवाह में आर्द्रता की कमी के कारण वर्षा की मात्रा में कमी हो जाती है।

अफगानिस्तान पठार से आने वाली गर्म पश्चिमी हवाएं भी ताप वृद्धि व सापेक्षिक आर्द्रता को घटाकर वर्षा में कमी करती है तथा लगातार सूखे की स्थितियां रहती हैं।

- हजारों वर्षों से निरन्तर इस क्षेत्र में वर्षा की मात्रा में कमी व तापमान में वृद्धि के कारण चट्टानों का यांत्रिक विखण्डन होने लगा। जल की कमी के कारण वनस्पति आवरण भी कम होने लगा। दक्षिण–पश्चिमी मानसूनी हवाएं लाखों टन बालू प्रतिवर्ष 'कच्छ के रन' से अपने साथ उड़ाकर पश्चिम राजस्थान में लाकर जमा करती रही है जिसके फलस्वरूप क्षेत्र में बालुका स्तूपों के एकत्रीकरण व स्थानान्तरण के प्रक्रम अनवरत जारी है। मानव द्वारा जंगलों की अंधाधुंध कटाई से वन क्षेत्र में कमी ने भी मरूस्थल के फैलाव में भूमिका निर्वाहित की है।
- चतुर्थ कल्प (Quarternary Period) में अधिकतर समय जलवायु परिस्थितियां शुष्क (Dry) रही तथा शुष्कता (Aridity) चतुर्थ कल्प के प्रारम्भ से होना शुरू हो गई। रेतीले टिब्बों की बालू की थर्मोल्यूमिनिसेंस डेटिंग (टी.एल. डेटिंग) दो लाख वर्षों पूर्व गर्म व शुष्क परिस्थितियों के प्रसार/फैलाव का संकेत करती है। तीव्र दक्षिण पश्चिम मानसून हवाओं के समय में वायूढ़ गतिविधि थार के रेगिस्तान में चक्रीय रूप में विभिन्न अंतरालों यथा 115-110 हजार वर्ष पूर्व, 75 हजार वर्ष पूर्व, 55 हजार वर्ष पूर्व, 30-25 हजार वर्ष पूर्व, 16 हजार वर्ष पूर्व, 14-10 हजार वर्ष पूर्व, 5-3.5 हजार वर्ष पूर्व, 2 हजार वर्ष पूर्व, 800 वर्ष पूर्व तथा 600 वर्ष पूर्व घटित हुई थी। अन्तिम हिम अधिकता (Last Glacial Maxima) के दौरान (15 हजार वर्ष पूर्व) उच्च शुष्कता की अवधि में वायूढ़ गतिविधि अधिक मजबूत नहीं रही। 8-5.5 हजार वर्ष पूर्व की समयावधि में उल्लेखनीय वर्षा हुई।
- शुष्कता की लम्बी समयावधि के बीच अधिक वर्षा व आद्रता के दौर 40-20 हजार वर्ष पूर्व, 18-13 हजार वर्ष पूर्व, 10-4 हजार वर्ष पूर्व रहे। 8-3.5 हजार वर्ष पूर्व की समयावधि में वर्षा वर्तमान से 50 सेन्टीमीटर ज्यादा होती थी। थार के रेगिस्तान में बालू–रेत के विस्तीर्ण आवरण पर निर्मित मृदा बहुत उपजाऊ है तथा मानसून की बारिश, पोषक तत्वों से भरपूर इस मृदायुक्त रेगिस्तान की धरा को घास व झाड़ियों से हरितिमा प्रदान करती है। पोषक तत्व मिट्टी में नदियों, पर्वतों से बहते हुए अपने साथ लेकर आती है।
- चतुर्थ कल्प के अत्यन्त नूतन (Pleistocene) काल में निचले पाषाण काल (Lower Palaeolithic) के मानव निर्मित हस्त औजार (Artefacts) यथा गण्डासे (Chopper), खुरचियाँ, विद्राणियाँ (Cleavers) व हस्तकुठार (Hand axes) नागौर जिले के डीडवाना में '16 आर' जीवाश्मीय टीब्बे की ट्रेंच व आस पास के क्षेत्रों में मिले है जो रेगिस्तान के इस क्षेत्र में 8 लाख वर्ष पूर्व होमो इरेक्टस के आबादित होने तथा उस वक्त इस क्षेत्र में नदी प्रवाह तंत्र की उपस्थिति का संकेत करते हैं।
- थार के रेगिस्तान में रेतीले टिब्बों (बालुका स्तूप) के निर्माण की प्रक्रिया मध्य अत्यन्त नूतन (Middle Pleistocene) अर्थात् चार लाख वर्षों पूर्व से लेकर वर्तमान से छः हजार वर्ष पूर्व तक जारी रही। दो लाख वर्ष पुराने अवशेष थार रेगिस्तान में मिलते हैं परन्तु वायुढ़ गतिविधियों का शीर्षकाल इस अवधि में के काफी पश्चात् प्रारम्भ हुआ। अन्तिम हिम अधिकता के पश्चात् (14–12 हजार वर्ष पूर्व) वायुढ़ गतिविधियों में वृद्धि हुई।
- पिछले दस हजार वर्षों में अभिनव काल (Holocene) में हिमालय में घटित हुई नवविवर्तनिक हलचलों के प्रभाव से थार के रेगिस्ताान का क्षेत्र भी अछूता नहीं रहा तथा इसी प्रभाव से सरस्वती नदी प्रदेश में पश्चिम दिशा में स्थानान्तरित होकर अन्ततः इस क्षेत्र से विलुप्त हो गई। नदी विलुप्तीकरण के लिए क्षेत्र में किसी बड़े भूकम्प तथा उपस्थित भ्रंशों में भूसंचलन की महत्ती भूमिका रही। 8–5 हजार वर्ष पूर्व सरस्वती के विलुप्त होने से हड़प्पाकालीन नगर भी उजड़ गये। भारतीय प्लेट की उत्तर पूर्व दिशा में गतिशीलता व यूरेशियाई प्लेट से भिड़न्त भी इन परिवर्तनों के लिए जिम्मेवार है। विलुप्त सरस्वती व इसकी सहायक नदी दृष्द्वती के अवशेष पश्चिम राजस्थान की खारे पानी की झीलों के रूप में दृष्टिगत है।
- 10–5 हजार वर्ष पूर्व की समयावधि (पूर्व वैदिक काल से महाभारत काल तक) में दक्षिण पश्चिम मानसून बहुत सक्रिय रहा जिसके कारण इस क्षेत्र में भारी वर्षा हुआ करती थी। सुदूर संवेदी तकनीक से प्राप्त आकाशी चित्रों (Aerial Photographs) में पश्चिम राजस्थान में विलुप्त सरस्वती व इसकी सहायक दृष्द्वती नदी के 5 पुरा जल प्रवाह तंत्र (Palaeochannels) दिखाई पड़ते हैं जो कच्छ की खाड़ी में आकर मिलते हैं। इनकी चौड़ाई कुछ सौ मीटर से लेकर 10 किलोमीटर तक है। अभिनव काल (Holocene) में करीब 6–5 हजार वर्ष पूर्व भूगर्भीय हलचलों, जलवायु परिवर्तन, पर्वतोत्थान, सरस्वती नदी के विलुप्तीकरण, वर्षा में कमी, तापमान में वृद्धि, वनस्पति आवरण में कमी, मानसूनी हवाओं द्वारा परिवाहित अवसाद बालू के जमाव इत्यादि

विभिन्न कारणों के संयुक्त प्रभाव से विभिन्न आकार व प्रकार के रेतीले टिब्बों का विस्तृत क्षेत्र में फैलाव होने लगा। 5–3 हजार वर्ष पूर्व की समयावधि में शुष्क जलवायु में बढ़ोतरी के फलस्वरूप 3900 वर्ष पूर्व सिंधु घाटी सभ्यता (मोहनजोदड़ो) का अंत हो गया। वायूढ़ अभिवृद्धि थार के रेगिस्तान में 600 वर्षों पूर्व तक जारी रही तथा अनुदैर्ध्य बालुका – टिब्बा, अनुप्रस्थ बालुका – टिब्बा, परवलयिक बालुका टिब्बा इत्यादि विभिन्न प्रकार के टिब्बों से निर्मित थार का रेगिस्ताान का प्रसार आज भी निरन्तर जारी है।

महत्वपूर्ण बिन्दु

1. भूवैज्ञानिक कारकों द्वारा पृथ्वी की भूपर्पटी की शैलों पर भूवैज्ञानिक कार्यों के अन्तर्गत अपरदन (Erosion), परिवहन (Transportation) एवं निक्षेपण (Deposition) के कार्य होते हैं।
2. वायु (पवन) तथा नदी द्वारा पृथ्वी की सतह पर स्थित शैलों पर अपरदन, परिवहन एवं निक्षेपण के विभिन्न भूवैज्ञानिक कार्य सतत् रूप से होते है।
3. वायु (पवन) के भूवैज्ञानिक कार्य यथा अपरदन, परिवहन और निक्षेपण द्वारा निर्मित स्थलरूप वातोढ़ स्थलरूप कहलाते हैं।
4. मुख्य नदी, सहायक नदियों व सरिताओं का सम्मिलित प्रतिरूप नदी तंत्र (River System) कहलाता है।
5. नदी तंत्र के विकास की चार प्रमुख अवस्थाएं क्रमशः प्रारम्भिक अवस्था (Infant Stage), तरूणावस्था (Youth Stage), प्रौढ़ावस्था (Mature Stage) एवं वृद्धावस्था (Old Stage) है।
6. नदी एवं समुद्र के संगम स्थल पर ज्वारनदमुख (Estuary) या डेल्टा (Delta) बनता है।
7. सहायक सरिताओं और मुख्य नदी के सामूहिक रूप में बहाव से किसी क्षेत्र में निर्मित होने वाले विन्यास को अपवाह–प्ररूप (Drainage Pattern) कहते हैं। मुख्य अपवाह प्ररूपों में द्रमाकृतिक, जालीनुमा, समकोणिक, अरीय, वलयाकार, समान्तर तथा कंटकीय प्ररूप महत्वपूर्ण है।
8. पृथ्वी के अन्दर होने वाली घटना के फलस्वरूप जब भूधरातल का कोई भाग अकस्मात कुछ क्षणों के लिए कांप उठता है तो इसे भूकम्प कहते हैं। भूकम्प के दौरान तीन तरह की भूकम्पीय तरंगों का संचारण होता है।
9. भूकम्पों की उत्पत्ति मुख्यतः विवर्तनिक तथा अविवर्तनिक कारणों से होती है।
10. पृथ्वी पर आने वाले भूकम्पों के 95 फीसदी भूकम्प दो कटिबन्धों यथा परि–प्रशांत कटिबंध (Circum Pacific Belt) व भूमध्यी–भूकम्पी कटिबंध (Mediterranean Seismic Belt) में ही अधिकतया आए हैं।
11. भूपटल पर गहरे छिद्र या दरार जिसके माध्यम से होकर भूगर्भ की उष्ण गैसे तरल द्रव, शैल खण्ड इत्यादि सामान्यत प्रचंड विस्फोट के साथ बाहर निष्कासित होकर भूपृष्ठ पर फैल जाते हैं ज्वालामुखी कहलाते हैं।
12. भूगर्भ से भूपटल की ओर प्रवाहित होने वाले लावा की गति से संबंधित अन्तर्वेधी (Intrusive) तथा बहिर्वेधी (Extrusive) क्रियायें ज्वालामुखी उद्भव (Volcanism) कहलाती है।
13. भूपर्पटी के भिन्न–भिन्न ऊँचाईयों के विशाल भूखण्ड यथा पर्वत, पठार, मैदान तथा समुद्री तल के बीच पाई जाने वाली सन्तुलन की स्थिति समस्थिति कहलाती है।
14. वेगनर के महाद्वीपीय विस्थापन सिद्धांत में पुराजीवी महाकल्प में अत्यन्त विशाल सिएल (Sial) भूखण्ड ''पेन्जिया'' (Pangaea) तथा इसके चारों ओर फैले विस्तृत महासागर ''पैथालसा'' (Penthalassa) की परिकल्पना की गई थी।
15. सिलूरियन कल्प में पेन्जिया के विभाजन से उत्तर में लॉरेंशिया तथा दक्षिण में गोंडवाना महाखण्ड तथा इनके मध्य में टेथिस महासागर अस्तित्व में आये।
16. प्लेट विवर्तनिकी सिद्धांत के द्वारा भूवैज्ञानिक प्रक्रमों की पुष्टि के साथ पृथ्वी के पृष्ठीय–लक्षण, विवर्तनिक प्रक्रियाओं तथा भूपर्पटी के विकास से सम्बन्धित मुद्दों को समझा जा सकता है।
17. भूपर्पटी के शैल संस्तरों पर जब दो विरूद्ध दिशाओं से प्रतिबल कार्यरत होता है तब इनमें तरंगित संरचनाओं का निर्माण होता है, इन्हें वलन (Fold) कहते हैं।
18. संस्तरों का विभंग पर हुए विस्थापन (Displacement) को भ्रंश (Fault) कहते हैं तथा यह प्रक्रिया भ्रंशन (Faulting) कहलाती है।
19. अवसादन में रूकावट के फलस्वरूप दो विभिन्न शैल समूहों में पायी जाने वाली विषमता को विषमविन्यास (Unconformity) कहते हैं।
20. हिमालय पर्वत की उत्पत्ति तृतीय महाकल्प (Tertiary Era) के दौरान हुई। हिमालय पर्वत, वलित पर्वत (Folded Mountain) का उदाहरण है।
21. प्रायद्वीपीय भारत का मध्य एशिया की ओर अधःक्षेप (Under Thrust) होने के फलस्वरूप टेथिस सागर के अवसादों का

उत्थापन हुआ और हिमालय पर्वत की उत्पत्ति हुई।

22. थार का रेगिस्ताान भारत देश के उत्तर पश्चिम में मुख्यतः राजस्थान राज्य में तथा कुछ भाग हरियाणा, पंजाब व गुजरात राज्यों में और पड़ौसी देश पाकिस्तान के सिंध व पंजाब प्रान्तों में फैला हुआ है।

23. थार के रेगिस्तान की उत्पत्ति में भूगर्भीय हलचलों, जलवायु परिवर्तन (वर्षा में कमी, तापमान में वृद्धि), वनस्पति आवरण में कमी, स्थलाकृति में बदलाव (पर्वतोत्थान, सरस्वती नदी के विलुप्तीकरण), मानसूनी हवाओं द्वारा परिवाहित अवसाद (बालू) के जमाव इत्यादि के साथ मानव की गतिविधियों (Anthropogenic Activities) का महत्वपूर्ण योगदान रहा है।

24. थार के रेगिस्तान में रेतीले टिब्बों (बालुका स्तूप) के निर्माण की प्रक्रिया मध्य अत्यन्त नूतन (Middle Pleistocene) अर्थात् चार लाख वर्षों पूर्व से लेकर वर्तमान से छः हजार वर्ष पूर्व तक जारी रही। दो लाख वर्ष पुराने अवशेष थार रेगिस्तान में मिलते हैं। वायुढ़ गतिविधियों का शीर्षकाल इस अवधि के काफी पश्चात् प्रारम्भ हुआ। वायूढ़ अभिवृद्धि थार के रेगिस्तान में 600 वर्षों पूर्व तक जारी रही तथा विभिन्न प्रकार के टिब्बों से निर्मित थार का रेगिस्ताान का प्रसार आज भी निरन्तर जारी है।

अभ्यासार्थ प्रश्न

वस्तुनिष्ठ प्रश्न

1. भौतिक शक्तियों द्वारा होने वाले परिवर्तन जिसमें शैलों के संघटन में बदलाव नहीं होता है, यह प्रक्रम कहलाता है?
   (अ) विघटन (ब) अपघटन
   (स) अपरदन (द) निक्षेपण

2. वायु की गति में बाधा होने के कारण परिवहित शैल कणों के निक्षेपण कणों के निक्षेपण से निर्मित निक्षेप कहलाते हैं?
   (अ) जलोढ निक्षेप (ब) डेल्टा
   (स) वातोढ निक्षेप (द) हिमोढ निक्षेप

3. ग्रीष्म ऋतु में सूख जाने वाली नदी कहलाती है?
   (अ) आन्तरायिक नदी (ब) स्थायी नदी
   (स) समुद्री नदी (द) महाद्वीपीय नदी

4. नदी एवं समुद्र के संगम स्थल पर कौनसी रचनाएं बनती हैं?
   (अ) ज्वारनदमुख
   (ब) डेल्टा
   (स) ज्वारनदमुख व डेल्टा
   (द) झील

5. पृथ्वी की गहराई में जिस स्थान से भूकम्पीय तरंगें उत्पन्न होती हैं वह स्थान कहलाता है?
   (अ) भूकम्प का अभिकेन्द्र
   (ब) भूकम्पीय तरंग केन्द्र
   (स) समुद्री–कम्प
   (द) भूकम्प का उद्‌गम केन्द्र

6. कुछ समयावधि के अन्तराल में उद्‌गीर्ण होने वाले ज्वालामुखी कहलाते हैं?
   (अ) क्रियाशील ज्वालामुखी
   (ब) प्रसुप्त ज्वालामुखी
   (स) निर्वापित ज्वालामुखी
   (द) विलुप्त ज्वालामुखी

7. पेन्जिया के चारों ओर फैला विस्तृत महासागर कौनसा था?
   (अ) पैंथालसा (ब) अटलाण्टिक महासागर
   (स) प्रशांत महासागर (द) हिन्द महासागर

8. प्लेटों की मोटाई कितनी होती है?
   (अ) 200–250 कि.मी. (ब) 300–350 कि.मी.
   (स) 10–75 कि.मी. (द) 100–150 कि.मी.

9. संस्तरों के उत्संवलन के कारण निर्मित वलन का भाग कहलाता है?
   (अ) द्रोणिका (ब) अभिनति
   (स) अपनति (द) अक्षीय तल

10. ऊर्ध्वाधर तल तथा भ्रंश तल के बीच के कोण को कहते हैं?
    (अ) भ्रंशपात (ब) अवपात पार्श्व
    (स) भ्रंश अनुरेख (द) भ्रंश का उन्नमन

11. विषमविन्यास तल के ऊपर स्थित नवीन शैल श्रेणी तथा नीचे स्थित प्राचीन शैल श्रेणी जब समान्तर हो तो इस तरह का विषम विन्यास कहलाता है?
    (अ) कोणीय विषमविन्यास
    (ब) अपसमविन्यास
    (स) स्थानीय विषमविन्यास
    (द) असमविन्यास

12. हिमालय की वर्तमान ऊँचाई की स्थिति कब अर्जित की गई थी?
    (अ) 25 करोड़ वर्ष पूर्व (ब) 15 करोड़ वर्ष पूर्व
    (स) 5.5 करोड़ वर्ष पूर्व (द) 55 करोड़ वर्ष पूर्व

13. राजस्थान के कितने फीसदी क्षेत्र में मरूस्थल विस्तृत है?
    (अ) 12 फीसदी क्षेत्र में (ब) 63 फीसदी क्षेत्र में
    (स) 34 फीसदी क्षेत्र में (द) 45 फीसदी क्षेत्र में

अतिलघुत्तरात्मक प्रश्न

1. पीठिका शैल किसे कहते हैं?
2. नदी विसर्पण किसे कहते हैं?
3. डेल्टा को परिभाषित कीजिए।
4. समभूकम्प रेखा किसे कहते हैं?
5. ज्वालामुखी कुण्ड को परिभाषित कीजिए।
6. समस्थिति शब्द का पहली बार प्रयोग किसने किया?
7. महाद्वीपों की कौनसी गति के फलस्वरूप आल्प्स और हिमालय पर्वत श्रृंखलाओं की उत्पत्ति हुई?
8. बेनी ऑफ जोन किसे कहते हैं?
9. वलन अक्ष किसे कहते हैं?
10. श्यान वलन को परिभाषित कीजिए।
11. आधार भित्ति को परिभाषित कीजिए।
12. होर्स्ट को परिभाषित कीजिए।
13. विषमविन्यास को परिभाषित कीजिए।
14. हिमालय पर्वत की उत्पत्ति कौनसे महाकल्प के दौरान हुई?
15. थार के रेगिस्तान का फैलाव कहां तक है?

लघुत्तरात्मक प्रश्न

1. वायु द्वारा अपरदन कार्य पर टिप्पणी लिखिए।
2. वायु अपरदन किन कारकों से प्रभावित होता है?
3. वायुघृष्टाश्म, यारडांग व द्वीपाभ गिरि पर टिप्पणियां लिखिए।
4. बालू टिब्बों पर टिप्पणी लिखिए।
5. झाड़ झील या चाप झील पर टिप्पणी लिखिए।
6. भूकम्पीय तरंगों पर टिप्पणी लिखिए।
7. भूकम्पलेखी पर टिप्पणी लिखिए।
8. विभिन्न प्रकार के ज्वालामुखियों पर टिप्पणी लिखिए।
9. समस्थिति पर टिप्पणी लिखिए।
10. टेलर के महाद्वीपीय विस्थापन सिद्धांत को समझाइये।
11. विनाशात्मक प्लेट किनारा पर टिप्पणी लिखिए।
12. वलन के विभिन्न भागों पर टिप्पणी लिखिए।
13. भ्रंश के विभिन्न भागों पर टिप्पणी लिखिए।
14. विभिन्न प्रकार के विषमविन्यासों पर टिप्पणियां लिखिए।
15. हिमालय पर्वत की उत्पत्ति को समझाइये।

निबंधात्मक प्रश्न

1. नदी तंत्र के विकास की चार प्रमुख अवस्थाओं का वर्णन कीजिए।
2. नदी के निक्षेपण से नदी घाटी में निर्मित विभिन्न प्रकार के रूप एवं आकृतियों का वर्णन कीजिए।
3. भूकम्प की तीव्रता के मरकाली पैमाना तथा भूकम्प के वितरण पर टिप्पणियां लिखिए।
4. ज्वालामुखी के केन्द्रीय उद्‌गार का वर्णन कीजिए।
5. वेगनर के महाद्वीपीय विस्थापन सिद्धांत को समझाइये।
6. प्लेट विवर्तनिकी सिद्धांत को समझाइये।
7. विभिन्न प्रकार के वलनों का वर्णन कीजिए।
8. भ्रंशों के वर्गीकरण को समझाइये।
9. थार रेगिस्तान की उत्पत्ति को समझाइये।

उत्तरमाला : 1 (अ) 2 (स) 3 (अ) 4 (स) (5) द 6 (ब) 7 (अ) 8 (द) 9 (स) 10 (द) 11 (ब) 12 (स) 13 (ब)

अध्याय – 2

क्रिस्टल एवं खनिज विज्ञान

(Crystallography and Mineralogy)

खनिज विज्ञान भूविज्ञान की वह शाखा है जिसमें खनिजों के रासायनिक, भौतिक एवं प्रकाशीय गुणों का अध्ययन किया जाता है। प्रकृति में पाये जाने वाले खनिजों की आंतरिक परमाणु संरचना के कारण विभिन्न बाह्य आकृतियां बनती हैं, जिन्हें हम क्रिस्टल कहते हैं। विज्ञान की वह शाखा जिसके तहत क्रिस्टलों की प्रकृति, उत्पत्ति, उनकी आंतरिक संरचना एवं बाह्य आकृति का अध्ययन किया जाता है उसे क्रिस्टल विज्ञान कहते हैं।

संस्पर्श कोणमापी (Contact Goniometer)

इस कोणमापी से क्रिस्टलों का अंतराफलक (interfacial) कोण मापा जाता है। यह कोणमापी चाँदे (protector) के समान अर्द्धगोलाकार एवं 0° से 180° तक अंकित होता है। इसकी दो पट्टीनुमा भुजाएं होती हैं जो कि स्क्रू द्वारा चाँदें से जुड़ी होती है। एक भुजा स्थिर होती है तो दूसरी भुजा उसकी धुरी पर घुमाई जा सकती है। चित्र 2.1 में दर्शाये अनुसार क्रिस्टल को निकटवर्ती फलकों के साथ दोनों भुजाओं के ठीक से संपर्क में किया जाता है। हमें इन दोनों फलकों के बीच का कोण जो कि आंतरिक कोण कहलाता है का मान प्राप्त होता है। जब इस कोण का मान 180° से घटा दिया जाता है तब अंतराफलक कोण प्राप्त होता है।

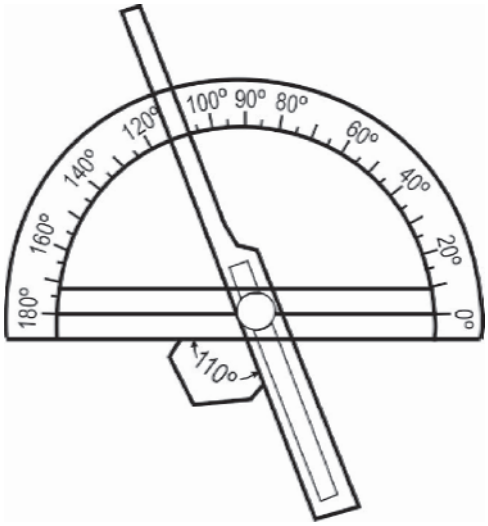

चित्र 2.1 : संस्पर्शकोण मापी एवं उससे अंतराफलक कोण का मापन

अंतःखंडी अनुपात (Parameter)

क्रिस्टल की अक्षों को क्रिस्टल के विभिन्न फलक क्रिस्टल के केन्द्र से कितनी दूरी पर काटते हैं, इन काटों के अनुपात को अंतःखंडी अनुपात या प्राचल (Parameter) कहते हैं।

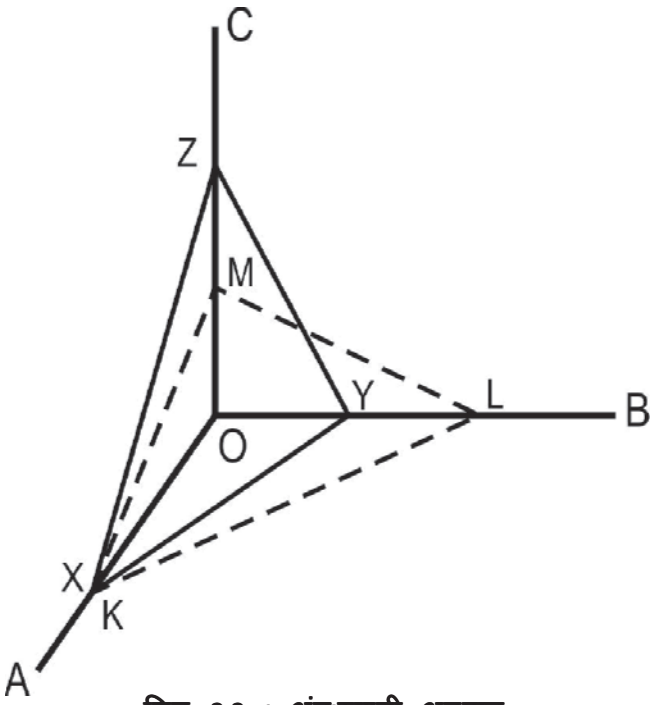

चित्र 2.2 : अंतःखण्डी अनुपात

उपरोक्त चित्र 2.2 में OA, OB और OC क्रिस्टलीय अक्ष है तथा XYZ एक क्रिस्टलीय फलक है जो तीनों अक्षों को क्रमशः OX, OY, OZ दूरियों पर काटता है अतः फलक XYZ का अंतःखंड़ी अनुपात (Parameter) OX, OY, OZ के अनुपात में होगा। इन्हें इस प्रकार लिख सकते हैं –

$$OX : OY : OZ$$

यदि इस क्रिस्टल में उपस्थित दूसरी आकृति का फलक KLM को ले जो इन अक्षों को क्रमशः OK, OL, और OM दूरियों पर काटता है। अगर इन दूरियों को OX, OY और OZ के संबंध से जान ले तो फलक KLM की स्थिति का पता चल जाता है। OK=OX, OL=2OY और OM=½OZ हो तो फलक XYZ में KLM का अंतःखंडी अनुपात $\frac{1}{1},\frac{2}{1},\frac{1}{2}$ होगा। इस फलक के अंतःखंडी अनुपात को 1A, 2B, ½C, अक्षीय चिन्हों के साथ भी लिख सकते हैं।

क्रिस्टल नामांकन पद्धति
(Notation System of Crystals)

क्रिस्टल के फलक का उसके अक्षों से संबंध को संक्षेप में लिखने के तरीके को क्रिस्टल नामांकन पद्धति कहते हैं। इनमें जो सर्व–प्रचलित पद्धतियाँ हैं वो अंतःखंडी अनुपात या प्राचल (Parametral) एवं अक्षांक (Indices) प्रणाली है। इसमें वाईस की पद्धति प्राचल प्रणाली है और मिलर की अक्षांक प्रणाली है।

वाईस (Weiss) **की प्राचल प्रणाली** : इसके अनुसार यदि तीन अक्ष असमान हों तब उनको a, b, c कहते हैं और इसके अनुसार क्रिस्टल का फलक जिस अक्ष पर जो विच्छेद बनाता है वह उस अक्ष के साथ लिखा जाता है। अगर क्रिस्टल का फलक किसी क्रिस्टलीय अक्ष के समानान्तर (parallel) हो, मतलब अक्ष को अनंत दूरी पर काटता हो तब उसे अनंत चिन्ह (α) के द्वारा प्रदर्शित करते हैं। उदाहरण के लिये यदि एक फलक अक्ष 'a' को इकाई दूरी पर काटता है और अक्ष 'b' को 2 इकाई दूरी पर काटता है एवं अक्ष 'c' के समानान्तर है तब वाईस संकेत के अनुसार इस प्रकार से लिखते हैं। a, 2b, α c

मिलर (Miller) **की अक्षांक प्रणाली :** इस विधि में वाईस प्रणाली के अंतःखंडी अनुपात के सूचकांक का व्युतक्रम (reciprocal) लेते हैं। इसमें ऊपर वाले दिये गये अंकों के साथ a, b, c अक्षों के चिन्ह नहीं लिखते हैं। जैसा कि नीचे लिखा गया है।

a	2b	αc
1	$\frac{1}{2}$	0
2	1	0

मिलर संकेत को अंशों में नहीं लिखते हैं। मिलर संकेत का अंक जितना अधिक होगा, फलक द्वारा काटी गयी दूरी उतनी ही कम होगी। इसमें यह ध्यान में रखने योग्य बात है कि a की दूरी सबसे पहले, b की उसके बाद और c की सबके बाद में लिखी जायेगी। यहाँ पर यह भी ध्यान में रखने योग्य बात है कि यदि क्रिस्टल का पार्श्व अक्ष के ऋण सिरे को काट रहा है तब उस अक्ष वाले अंक के ऊपर ऋण का चिन्ह अंकित कर देते हैं।

क्रिस्टल समुदायों एवं वर्गों का वर्गीकरण
(Classification of crystal system and classes)

क्रिस्टलों का समुदायों में वर्गीकरण का आधार उनके अक्षों की लंबाई का अनुपात एवं कोणीय अनुपातों पर आधारित है। क्रिस्टल समुदायों के वर्गों का वर्गीकरण सममिति तत्त्वों पर आधारित है। समान सममिति तत्त्वों (अवयवों) वाले क्रिस्टल एक ही क्रिस्टल वर्ग में आते हैं। सममिति अवयवों के आधार पर क्रिस्टलों को 32 वर्गों में बाँटा गया है। इन 32 वर्गों में से 11 वर्ग मुख्य है। क्रिस्टल अक्षों के आपसी संबंध एवं सममिति अवयवों की संख्या इत्यादि के साथ यह वर्गीकरण निम्नलिखित तालिका 2.1 में दर्शाया गया है।

तालिका 2.1 : क्रिस्टल समुदायों एवं क्रिस्टल वर्गों का वर्गीकरण

क्रिस्टल समुदाय	सममिति के अक्षों की संख्या						सममिति केन्द्र
	अक्षों की संख्या और उनके संबंध	सममिति के तल	द्विमुखी अक्ष	त्रिकोण अक्ष	चतुष्कोणीय अक्ष	षट्कोण अक्ष	
घनीय समुदाय	$a_1=a_2=a_3$ समकोण पर						
(क) गैलेना टाइप		9	6	4	3	x	1
(ख) पाइराइट टाइप		3	3	4	x	x	1
(ग) टेट्राहेड्राइट टाइप		6	3	4	x	x	x

चतुष्कोणी समुदाय जरकन टाइप	$a_1=a_2$, c तीनों समकोण पर	9 5	6 4	4 x	3 1	x x	1 1
षट्कोणिक समुदाय (क) बेरिल टाइप (ख) कैल्साइट टाइप (ग) टूरमलीन टाइप (घ) क्वार्ट्ज टाइप	$a_1=a_2=a_3$ क्षैतिज 120° के कोण पर, c ऊर्ध्वाधर	 7 3 3 x	 6 3 x 3	 x 1 1 1	 x x x x	 1 x x x	 1 1 x x
विषमलंबाक्ष समुदाय बेराइट टाइप	0.8152: 1: 1.3136 a, b, c तीनों समकोण पर	3	3	x	x	x	1
एकनत समुदाय जिप्सम टाइप	0.690 : 1 : 0.412 $\beta = 80° 42'$ a, b, c तीन अक्ष एक ऊर्ध्वाधर और एक क्षैतिज अक्ष समकोण पर, तीसरा पहले दो वाले तल के साथ तिर्यक् कोण बनाता है।	1	1	x	x	x	1
त्रिप्रवण समुदाय एक्सीनाइट टाइप	a, b, c तीनों तीनों अक्ष असमान और समकोण पर कोई भी नहीं 0.49 : 1 : 0.48 $\alpha = 82° 54'$ $\beta = 91° 52'$	x	x	x	x	x	1

घनीय या समलंबाक्ष समुदाय
(Cubic or Isometric System)

इस समुदाय में वे सभी क्रिस्टल आते हैं जिनकी आकृतियों के फलकों का संबंध तीनों अक्षों a, b, c से होता है। ये तीनों अक्ष बराबर होने के कारण केवल आपस में अंर्तबदल हो सकते हैं एवं केवल 'a' द्वारा अंकित किये जा सकते हैं अतः ये a_1, a_2 और a_3 भी कहलाते हैं। ये तीनों अक्ष आपस में समकोण बनाते हुए क्रिस्टल केन्द्र पर मिलते हैं। घनीय समुदाय के अक्षों को चित्र 2.3 में उनके धनात्मक एवं ऋणात्मक चिन्हों के साथ दिखाया गया है। इनका अक्षीय अनुपात $a_1 : a_2 : a_3 = 1:1:1$ होता है एवं

इनका कोणीय अनुपात (angular ratio) $\alpha = \beta = \gamma = 90°$ है।

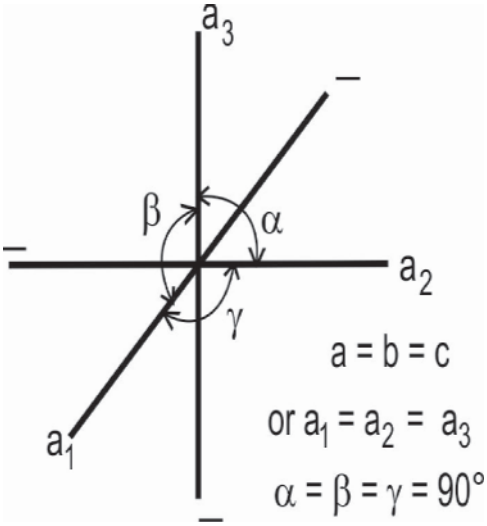

चित्र 2.3 : घनीय समुदाय के अक्ष

घनीय समुदाय में पाँच सममिति वर्ग होते हैं पर हम सामान्य वर्ग जिसे गैलेना टाइप भी कहते हैं का अध्ययन करेंगे।

सामान्य वर्ग – गैलेना टाइप : इसमें 9 सममिति तल (चित्र 2.4–2.5) और 13 सममिति अक्ष (चित्र 2.6–2.8) तथा सममिति केन्द्र होता हैं। घन की आकृति से ये सभी सममिति तत्व ज्ञात किये जा सकते हैं।

9 सममिति तल	अक्षीय 3	(2 क्षैतिज, 1 उर्ध्वाधर)
	विकर्ण 6	
13 सममिति अक्ष	3^{iv}	(क्रिस्टलीय अक्ष)
	4^{iii}	
	6^{ii}	

सममिति केन्द्र भी होता है।

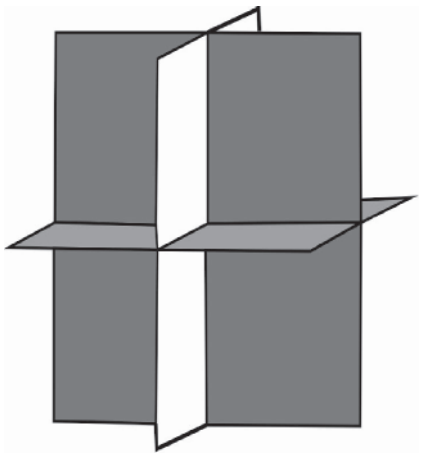

चित्र 2.4 : तीन अक्षीय सममिति तल

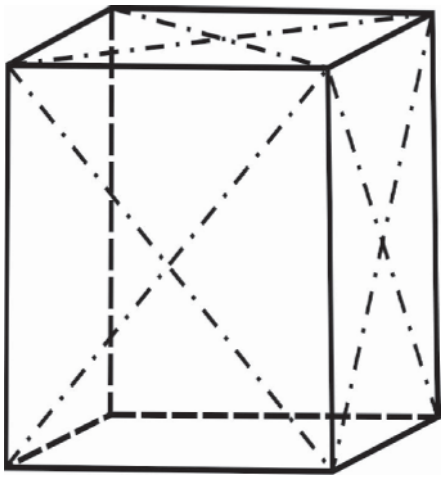

चित्र 2.5 : विकर्ण सममिति तल

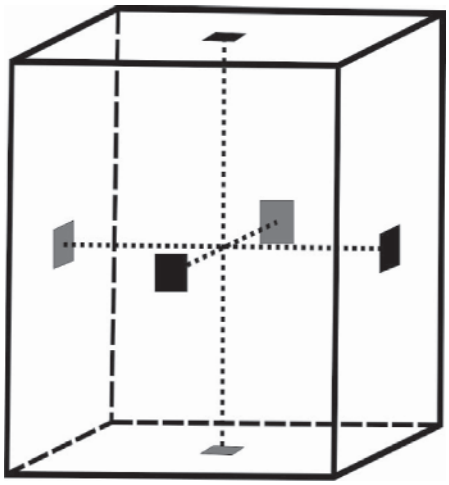

चित्र 2.6 : तीन चतुर्थमुखी सममिति अक्ष

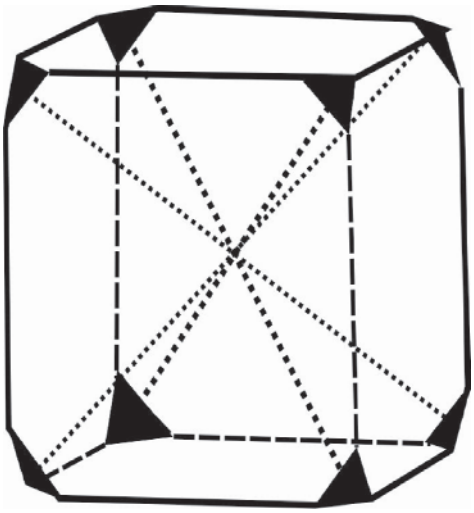

चित्र 2.7 : चार त्रिमुखी (त्रिकोण) सममिति अक्ष

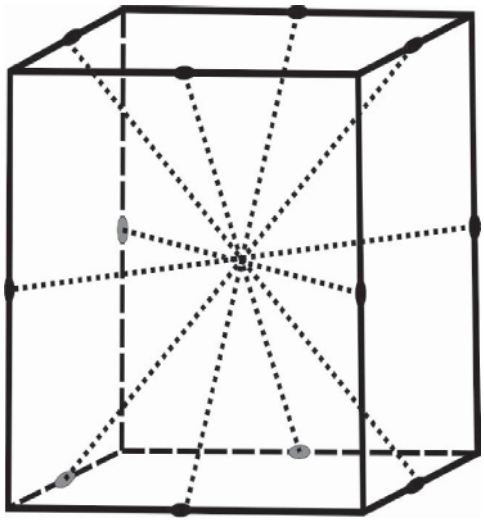

चित्र 2.8 : छः द्विमुखी सममिति अक्ष

मुख्य और सामान्य आकृतियाँ

(1) **घन** (Cube) : इसमें छः एक से वर्गाकार फलक होते हैं। प्रत्येक फलक एक क्रिस्टलीय अक्ष को काटता है और अन्य दो अक्षों के समानान्तर होता है। इस आकृति का सामान्य संकेत (100) हैं। इस आकृति में निम्न छः फलक 100 (सम्मुख फलक), $\bar{1}00$ (पश्च फलक), 010 (दायां फलक), $0\bar{1}0$ (बायां फलक), 001 (ऊपरी फलक), $00\bar{1}$ (आधार या तली फलक) होते हैं (चित्र 2.9)।

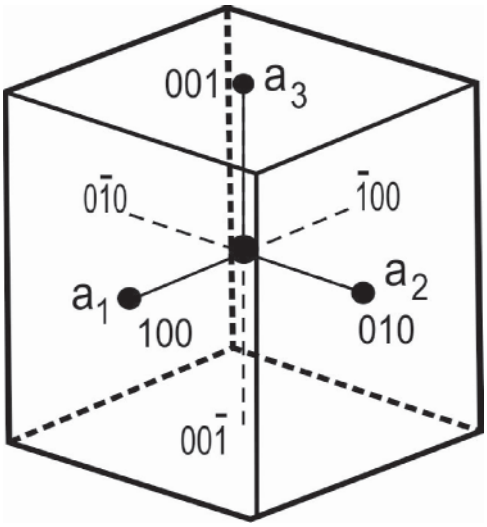

चित्र 2.9 : घन

(2) **द्वादशफलक** (Rhombdodecahedron) : यह आकृति 12 एक जैसे समचतुर्भुजीय (Rhomb shape) फलकों से बनी होती है। ये फलक दो अक्षों को समान दूरी पर काटते हैं और तीसरे अक्ष के समानान्तर होते हैं। इस आकृति का सामान्य संकेत (110) है (चित्र 2.10)।

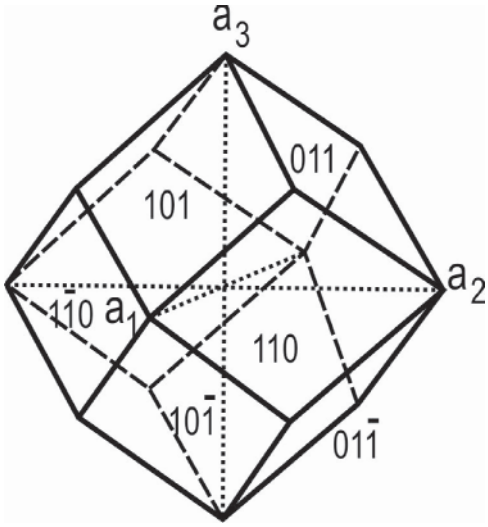

चित्र 2.10 : द्वादशफलक

(3) **अष्टफलक** (Octahedron) : यह ठोस 8 समान समबाहु त्रिभुजाकार फलकों से बना है। इसमें प्रत्येक फलक तीनों अक्षों को केन्द्र से समान दूरी पर काटता है। इसका मिलर संकेत या सूचकांक (111) है। यह गैलेना टाइप वर्ग की इकाई (unit) आकृति है (चित्र 2.11)।

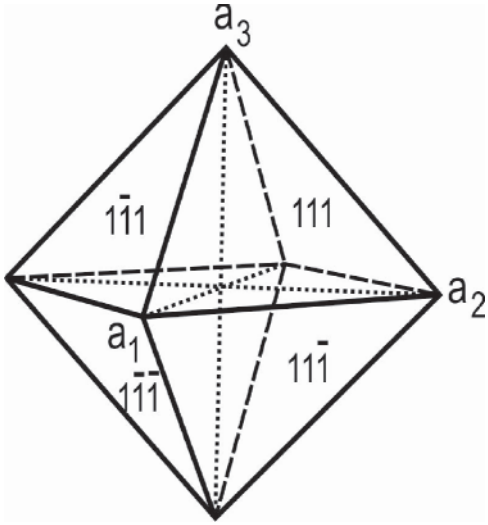

चित्र 2.11 : अष्टफलक

(4) **चतुःष्टक फलक** (Tetrahexahedron) : इसमें 24 एक जैसे समद्विबाहु (Isoscalene) त्रिभुजाकार फलक होते है। इसका प्रत्येक फलक दो अक्षों को भिन्न–भिन्न दूरी पर काटता है और तीसरे अक्ष के समानांतर होता है। इस आकृति का संकेत hko और मिलर सूचकांक (210) है। घन के हर एक फलक में 4 पिरैमिड फलक पाये जाते हैं, इस कारण इसका नाम चतुःष्टक फलक है (चित्र 2.12)।

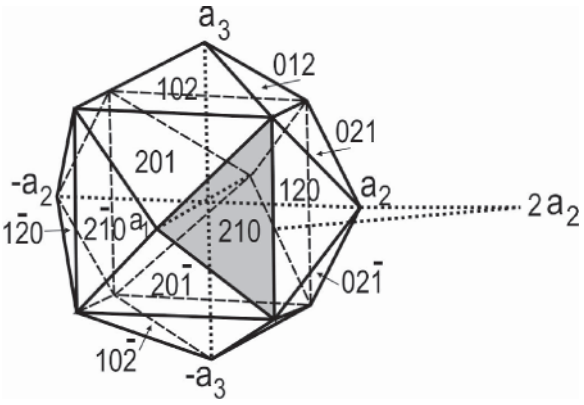

चित्र 2.12 : चतु:ष्ट्क फलक

(5) **त्रयष्टक फलक** (Trisoctahedron) : इसमें 24 समद्विबाहु त्रिभुजाकार फलक होते हैं। इसका प्रत्येक फलक दो अक्षों को समान दूरी पर काटता है और तीसरे अक्ष को दुगुनी दूरी पर। इसका मिलर संकेत hhl या (221) है। इसमें 8 अष्टफलक दिखाई देते है और प्रत्येक फलक में 3 फलकों वाले पिरैमिड होते है। इस प्रकार कुल फलकों की संख्या 24 होती है (चित्र 2.13)।

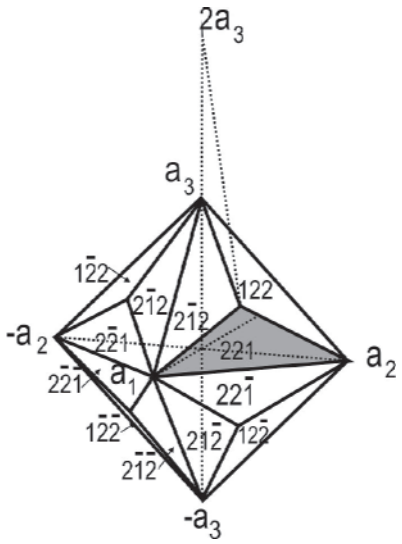

चित्र 2.13 : त्रयष्ट्क फलक

(6) **समलम्ब पार्श्वक** (Trapezohedron) : इसमें 24 समान फलक होते हैं। हर एक फलक समलंबाभ (Trapezoid) होता है। हर एक फलक दो अक्षों को समान (दुगुनी) दूरी पर और तीसरे अक्ष को इकाई दूरी पर काटता है। इसका सामान्य संकेत (211) होता है (चित्र 2.14)।

(7) **षडष्टक फलक** (Hexoctahedron) : इसमें 48 समान फलक होते हैं। हर एक फलक विषमबाहु (scalene) त्रिभुज होता है। हर एक फलक तीनों अक्षों को असमान दूरी पर काटता

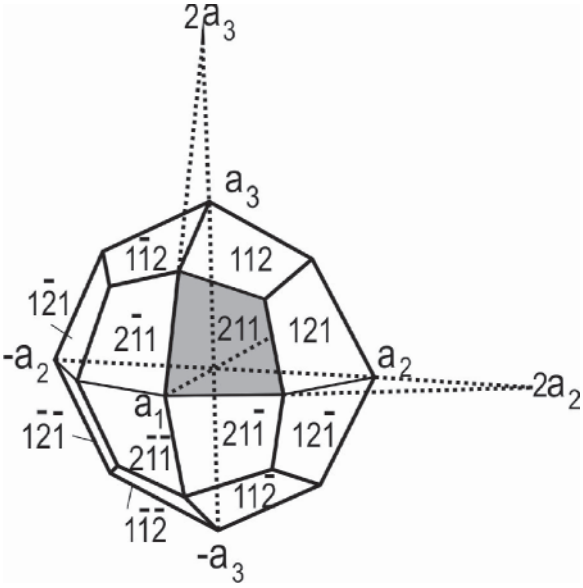

चित्र 2.14 : समलम्ब पार्श्वक

है। इसका संकेत hkl या सामान्य संकेत (321) है (चित्र 2.15)। इस आकृति से गैलेना टाइप की अन्य सभी आकृतियाँ प्राप्त की जा सकती हैं इसलिए यह इस वर्ग की सामान्य आकृति एवं अन्य छः विशिष्ट आकृतियाँ कहलाती हैं।

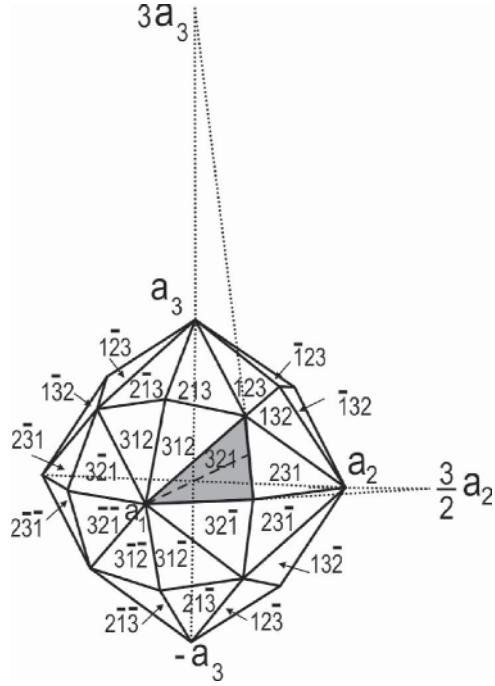

चित्र 2.15 : षडष्टक फलक

चतुष्कोणीय समुदाय (Tetragonal System)

इस वर्ग में दो क्षैतिज अक्ष बराबर होते हैं तथा तीसरा ऊर्ध्वाधर अक्ष 'c' इन दोनों अक्षों से छोटा या बड़ा होता है। ये

तीनों अक्ष एक दूसरे के साथ समकोण बनाते है (चित्र 2.16)। दोनों क्षैतिज अक्ष बराबर होने के कारण इनको क्रमशः 'a_1' और 'a_2' कहते है तथा ये आपस में अदल–बदल सकते हैं। इस

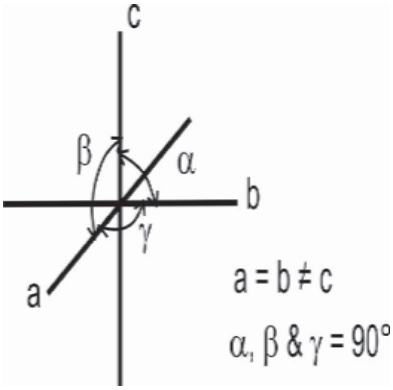

चित्र 2.16 : चतुष्कोणीय समुदाय के अक्ष

समुदाय में सात सममिति वर्ग है। इसमें केवल एक जरकॉन सामान्य वर्ग है जिसमें अधिकतम सममिति होती है। उसे यहाँ वर्णित किया गया है। द्विचतुष्कोणीय पिरैमिड के नाम पर इसे द्विचतुष्कोणीय पिरेमिड वर्ग (Ditetragonal dipyramidal class) भी कहते हैं।

सामान्य वर्ग – जरकॉन टाइप

(Normal Class or Zircon Type)

इस वर्ग के सममिति अवयव इस प्रकार है :–

सममिति तल 5 (चित्र 2.17): 3 अक्षीय
(1 क्षैतिज, ऊर्ध्वाधर तल)

2 विकर्ण ऊर्ध्वाधर तल

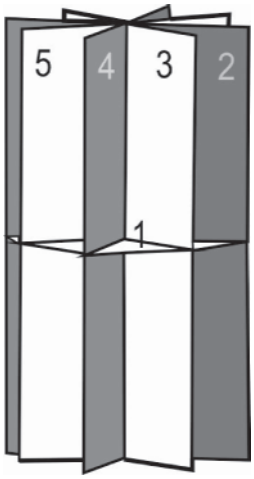

चित्र 2.17 : जरकॉन टाइप के पाँच सममिति तल

सममिति अक्ष 5 (चित्र 2.18): 4^{ii} (2 क्षैतिज, क्रिस्टलीय अक्ष और 2 विकीर्ण ऊर्ध्वाधर)

1^{iv} (ऊर्ध्वाधर क्रिस्टली अक्ष)

सममिति केन्द्र होता है

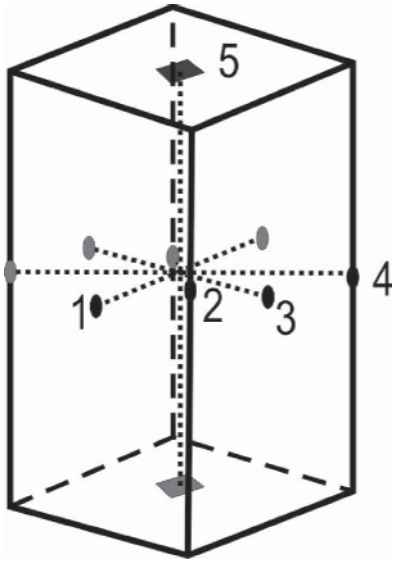

चित्र 2.18 : जरकन टाइप की अक्षीय सममिति (चित्र में संख्या 5 वाला अक्ष चतुर्थमुखी है एवं अन्य चार द्विमुखी अक्ष है)

सामान्य आकृतियाँ

(1) **आधार पिनेकॉइड** (Basal Pinacoid) : इसके फलक किसी भी क्रिस्टल में स्वतंत्र रूप में नहीं पाये जाते हैं। यह दो फलकों वाली खुली आकृति होती है। इसके फलक दोनों क्षैतिज अक्षों के समानांतर होते हैं और केवल ऊर्ध्वाधर अक्ष को काटते हैं। इसका मिलर सूचकांक (001) हैं (चित्र 2.19)।

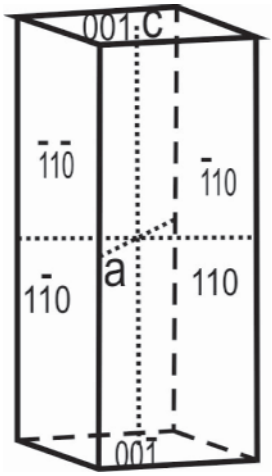

चित्र 2.19 : प्रथमक्रम का चतुष्कोणीय प्रिज्म

(2) **प्रथम क्रम का चतुष्कोणीय प्रिज्म** (Tetragonal Prism of First Order) : यह 4 फलकों वाली एक विवृत (open) आकृति है जिसमें प्रत्येक फलक दोनों क्षैतिज अक्षों को एकांक दूरियों पर काटता है और ऊर्ध्वाधर अक्ष के समानांतर होता है। क्षैतिज अक्ष फलकों के किनारों से गुजरती है। इसका सूचकांक (110) है (चित्र 2.19)।

(3) **द्वितीयक्रम का चतुष्कोणीय प्रिज्म** (Tetragonal Prism of Second Order) : यह 4 फलकों की खुली आकृति है जिसमें प्रत्येक फलक क्षैतिज अक्षों में से किसी एक क्षैतिज अक्ष एवं ऊर्ध्वाधर अक्ष के समानांतर होता है। दूसरी क्षैतिज अक्ष के फलकों को काटते हुए उनके केन्द्र से गुजरती है। इसका सूचकांक (100) है। (चित्र 2.20)।

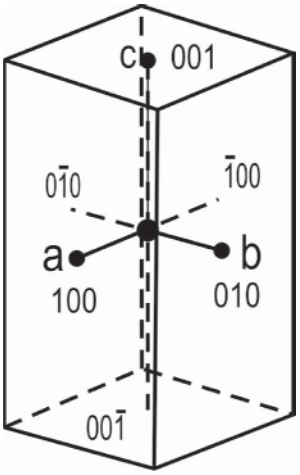

चित्र 2.20 : द्वितीयक्रम का चतुष्कोणीय प्रिज्म

(4) **द्विचतुष्कोणीय प्रिज्म** (Ditetragonal Prism) : यह 8 फलकों की विवृत आकृति है। इसमें प्रत्येक फलक दोनों क्षैतिज अक्षों को असमान दूरी पर काटता है तथा ऊर्ध्वाधर अक्ष के समानांतर होते है। इसका सूचकांक hko या (210) है (चित्र 2.21)।

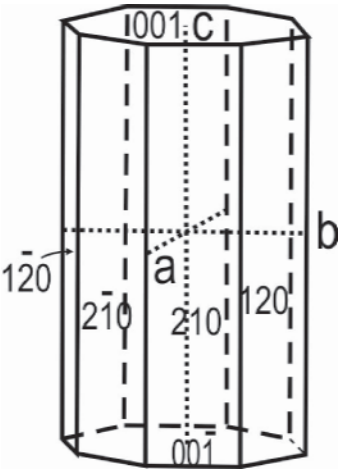

चित्र 2.21 : द्विचतुष्कोणीय प्रिज्म

(5) **प्रथमक्रम चतुष्कोणीय द्विपिरैमिड** (Tetragonal Bipyramid of First Order) : यह 8 फलकों वाली बंद (closed) आकृति है। प्रत्येक फलक समद्विबाहु त्रिभुज होते हैं। इसका हर एक फलक ऊर्ध्वाधर अक्ष को असमान दूरी पर तथा दोनों क्षैतिज अक्षों को समान दूरी पर काटता है। इसमें क्षैतिज क्रिस्टलीय अक्ष क्षैतिज किनारों के प्रतिच्छेदन से गुजरती है। इसकी सामान्य आकृति का सूचकांक (111) है (चित्र 2.22)।

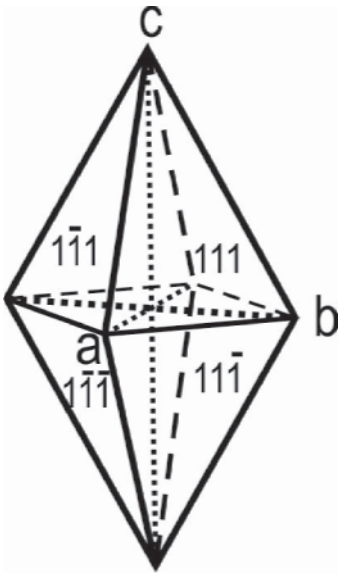

चित्र 2.22 : प्रथमक्रम चतुष्कोणीय द्विपिरैमिड

(6) **द्वितीयक्रम चतुष्कोणीय द्विपिरैमिड** (Tetragonal Bipyramid of Second Order) : यह 8 फलकों की संवृत (closed) आकृति है। प्रत्येक फलक समद्विबाहु त्रिभुज होती है। इसका प्रत्येक फलक ऊर्ध्वाधर अक्ष तथा एक क्षैतिज अक्ष को काटता है तथा दूसरे क्षैतिज अक्ष के समानांतर रहता है। इस पिरैमिड में क्षैतिज क्रिस्टलीय अक्ष, क्षैतिज किनारों के मध्य में रहती है। इसका सूचकांक (101) है (चित्र 2.23)।

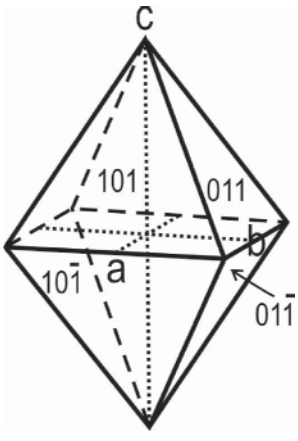

चित्र 2.23 : द्वितीयक्रम चतुष्कोणीय द्विपिरैमिड

(7) **द्विचतुष्कोणीय द्विपिरैमिड** (Ditetragonal bipyramid) : यह 16 समद्विबाहु त्रिभुजाकार फलकों की संवृत आकृति है। इसका प्रत्येक फलक तीनों अक्षों को असमान दूरी पर काटता है। इसका सामान्य सूचकांक hkl और (212) है (चित्र 2.24)।

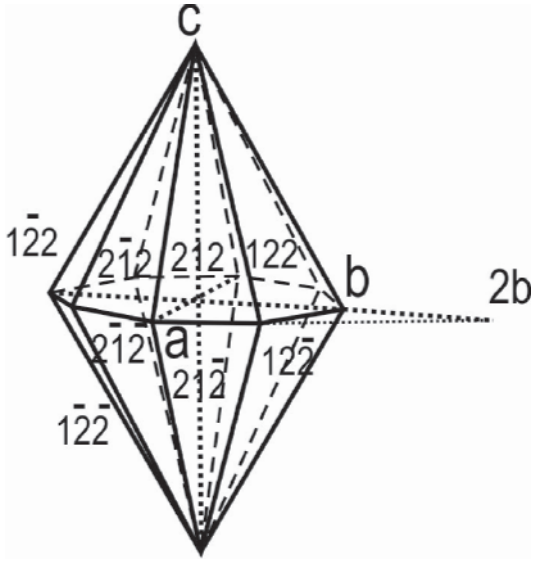

चित्र 2.24 : द्विचतुष्कोणीय द्विपिरैमिड

षटकोणीय समुदाय (Hexagonal System)

इस समुदाय में पाये जाने वाले क्रिस्टलों में चार क्रिस्टलीय अक्ष होती है। इसमें तीन क्षैतिज अक्ष होती है। ये तीनों अक्ष समान होती है और एक दूसरे के साथ 120° का कोण बनाती है। चौथी अक्ष ऊर्ध्वाधर 'c' होती है (चित्र 2.25)। यह अक्ष क्षैतिज की अपेक्षा छोटी या बड़ी हो सकती है। तीनों क्षैतिज अक्ष समान होने के कारण a_1, a_2, और a_3 संकेतों के द्वारा दर्शाये जाते हैं एवं ये आपस में अंतर्बदल होते हैं। a_1 अक्ष प्रेक्षक के सामने की ओर से पीछे की तरफ, a_3 अक्ष क्रिस्टल के पीछे से सामने प्रेक्षक के दांई ओर से गुजरती है। 'a_2' अक्ष प्रेक्षक के सामने क्रिस्टल में दाएं से बाएं होकर गुजरती है। 'a_2' अक्ष में क्रिस्टल के सामने की दिशा ऋण होता है। इन तीनों अक्षों के मिलर संकेतों का योग हमेशा शून्य (Zero) होता है। इस समुदाय की सामान्य वर्ग (बैरील टाइप) को यहाँ वर्णित किया गया है जिसके सममिति अवयव इस प्रकार है।

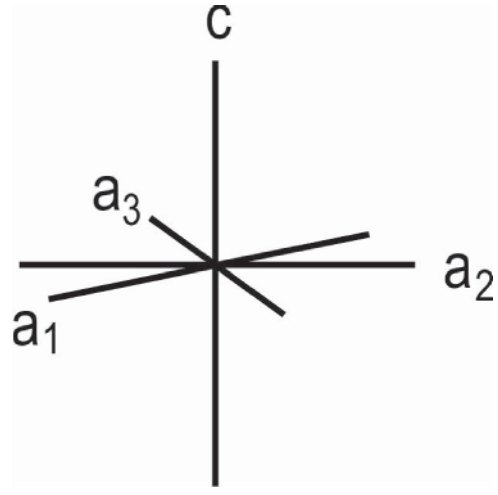

चित्र 2.25 : षट्कोणीय समुदाय के अक्ष

बैरील टाइप

(Beryl type or Dihexagonal dipyramidal Class) :

बैरील टाइप सममिति, चतुष्कोणीय समुदाय के जरकॉन टाइप सममिति के अनुरूप रहती है। इसमें 7 सममिति तल (चित्र 2.26) और 7 सममिति अक्ष (चित्र 2.27) होती है।

सममिति

सममिति तल 7: 4 अक्षीय (1 क्षैतिज, 3 ऊर्ध्वाधर)
3 विकीर्ण ऊर्ध्वाधर

सममिति अक्ष 7: 6^{ii} (क्षैतिज, 3 क्रिस्टलीय अक्ष, 3 विकीर्ण अक्ष)
1^{vi} (ऊर्ध्वाधर क्रिस्टलीय अक्ष)

सममिति केन्द्र होता है।

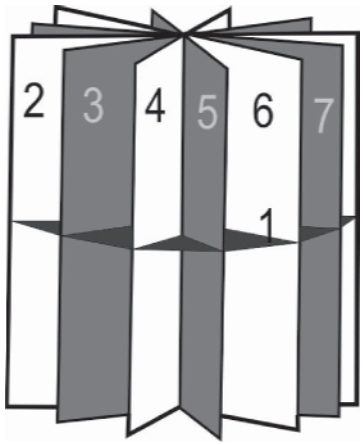

चित्र 2.26 : बैरिल टाइप वर्ग के सममिति तल

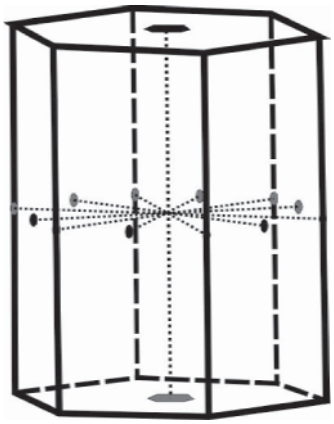

चित्र 2.27 : बैरिल टाइप वर्ग के सममिति अक्ष

सामान्य आकृतियाँ

(1) **आधार पिनेकाइड** (Basal Pinacoid) : यह एक खुली आकृति है जिसमें केवल दो फलक होते हैं। हर एक फलक केवल ऊर्ध्वाधर अक्ष को काटता है और अन्य तीनों क्षैतिज अक्षों के समानांतर होता है। इसके फलकों का संकेत 0001 और $000\bar{1}$ है (चित्र 2.28)।

(2) **द्वितीयक्रम के षट्कोणीय प्रिज्म** (Hexagonal Prism of Second Order) : यह छः प्रिज्मीय फलकों की विवृत आकृति है। इसमें क्षैतिज क्रिस्टलीय अक्ष, विपरीत समानांतर फलकों के मध्य को जोड़ती है। इसका हर एक फलक ऊर्ध्वाधर अक्ष के समानांतर रहता है तथा एक क्षैतिज अक्ष को एकांक दूरी पर और अन्य दो क्षैतिज अक्षों को दुगनी दूरी पर काटता है। इसका सूचकांक है (चित्र 2.28)।

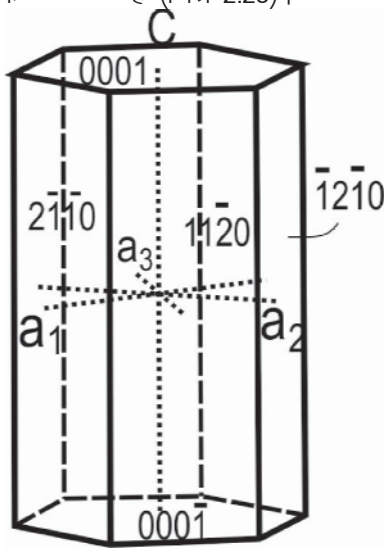

चित्र 2.28 : द्वितीयक्रम के षट्कोणीय प्रिज्म

(3) **प्रथमक्रम के षट्कोणीय प्रिज्म** (Hexagonal Prism of First Order) : यह छः प्रिज्मीय फलकों की एक विवृत आकृति है। इसका हर एक फलक ऊर्ध्वाधर अक्ष और एक क्षैतिज अक्ष के समांतर होता है तथा अन्य क्षैतिज अक्षों को समान दूरी पर काटता है। क्रिस्टलीय अक्ष, ऊर्ध्वाधर किनारों के केन्द्र से गुजरती है। इसके फलकों का 'वाइस' संकेत $1a_1, \infty 1a_2, 1a_3, \infty c$ और 'मिलर' संकेत $(10\bar{1}0)$ है (चित्र 2.29)।

(4) **द्विषट्कोणीय प्रिज्म** (Dihexagonal Prism) : यह 12 प्रिज्मीय फलकों वाली विवृत आकृति है। इसका हर एक फलक ऊर्ध्वाधर अक्ष के समांतर होता है तथा तीनों क्षैतिज अक्षों को असमान दूरी पर काटता है। इसका सामान्य संकेत hiko और सूचकांक $(21\bar{3}0)$ है (चित्र 2.30)।

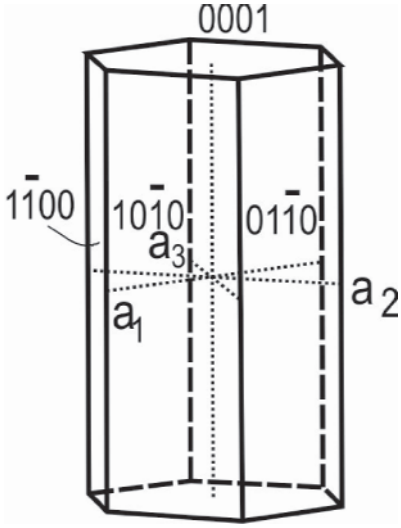

चित्र 2.29 : प्रथमक्रम के षट्कोणीय प्रिज्म

$(11\bar{2}0)$

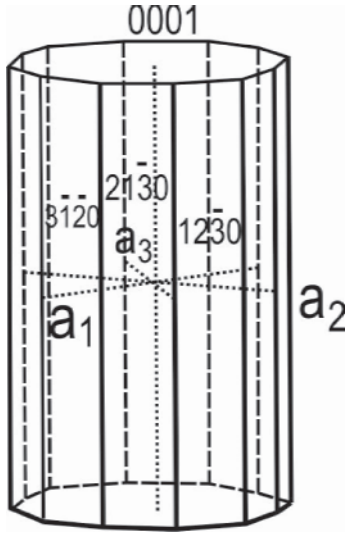

चित्र 2.30 : द्विषट्कोणीय प्रिज्म

(5) **द्वितीयक्रम के षट्कोणीय द्विपिरैमिड** (Hexagonal Bipyramid of Second Order) : यह 12 फलकों की समद्विबाहु त्रिभुजाकार संवृत आकृति है। इसका हर एक फलक ऊर्ध्वाधर अक्ष एवं तीनों क्षैतिज अक्षों को काटता है। जिसमें एक क्षैतिज अक्ष को एकांक दूरी पर तथा अन्य दो क्षैतिज अक्षों को दुगुनी दूरी पर काटता है। इसका सूचकांक $(11\bar{2}1)$ है (चित्र 2.31)।

(6) **प्रथमक्रम के षट्कोणीय द्विपिरैमिड** (Hexagonal Bipyramid of First Order) : यह 12 समद्विबाहु त्रिभुजाकार फलकों की बंद आकृति है। इसका हर एक फलक, ऊर्ध्वाधर अक्ष को तथा दो क्षैतिज अक्षों को समान दूरी पर काटता है और तीसरे क्षैतिज अक्ष के समांतर होता है। इसका सूचकांक $(10\bar{1}1)$ है (चित्र 2.32)।

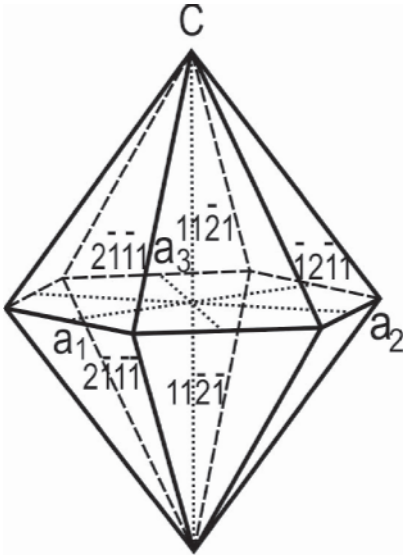

चित्र 2.31 : प्रथमक्रम के षट्कोणीय प्रिज्म

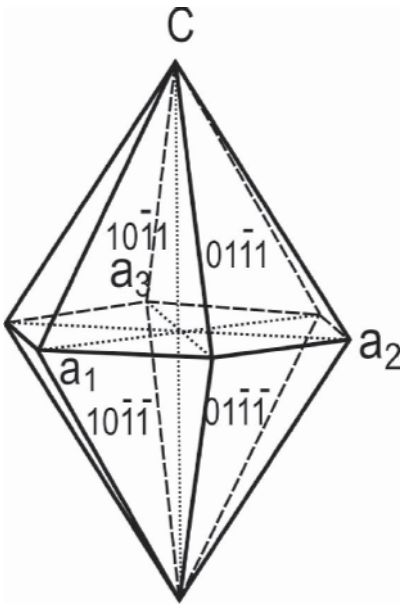

चित्र 2.32 : द्वितीयक्रम के षट्कोणीय प्रिज्म

(7) **द्विषट्कोणीय द्विपिरैमिड** (Dihexagonal Bipyramid) : यह 24 समद्विबाहु त्रिभुजाकार फलकों की संवृत आकृति है। इसका हर एक फलक ऊर्ध्वाधर अक्ष को तथा तीनों क्षैतिज अक्षों को असमान दूरी पर काटता है। इसका सूचकांक है। इस सममिति वर्ग का मुख्य खनिज बैरील है (चित्र 2.33)।

विषमलंबाक्ष समुदाय (Orthorhombic System)

इस समुदाय के क्रिस्टलों में a, b, c तीन असमान अक्ष होते हैं जो कि एक दूसरे के साथ समकोण बनाते हुए, अलग–अलग लंबाइयों के होते हैं। क्षैतिज अक्षों में 'a' अक्ष छोटा और 'b' अक्ष

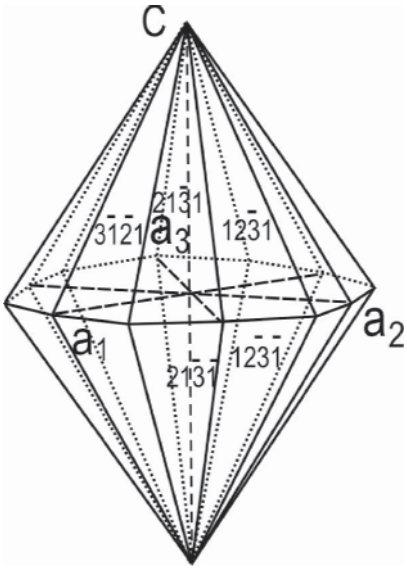

चित्र 2.33 : द्विषट्कोणीय द्विपिरैमिड

'a' की अपेक्षा बड़ा होता है और ये दोनों क्रमशः लघु (Brachy) तथा दीर्घ (Macro) अक्ष कहलाते हैं (चित्र 2.34)। इस समुदाय

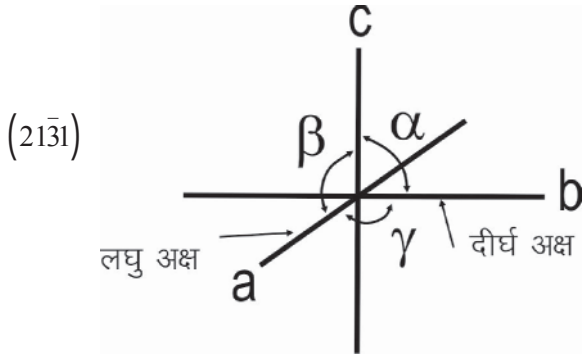

चित्र 2.34 : विषम लंबाक्ष समुदाय के अक्ष

की आकृतियों में जब कोई फलक तीनों अक्षों को काटता है तो 'b' अक्ष की लंबाई को एकांक लंबाई मान लेते हैं। बैराइट क्रिस्टल का अक्षीय अनुपात इस प्रकार है :

$$a : b : c = 0.8152 : 1 : 1.3136$$

इस समुदाय में केवल एक ही मुख्य सममिति वर्ग है। यह बैराइट टाइप की सममिति कहलाती है।

बैराइट टाइप (Barite Type): इसमें तीन सममिति तल होते हैं। हर एक तल में दो क्रिस्टलीय अक्ष पायी जाती है। ये तल क्रिस्टल को दो समान भागों में बाँटते हैं (चित्र 2.35)। हर एक क्रिस्टलीय अक्ष द्विमुखी सममिति की होती है (चित्र 2.36)। इस वर्ग की सममिति ईट की ज्यामितिय समिमिति के समान होती है। बैराइट टाइप वर्ग की सममिति इस प्रकार है :

सममिति तल 3 (अक्षीय तल)

सममिति अक्ष 3^{ii} (क्रिस्टलीय अक्ष)

सममिति केन्द्र भी होता है।

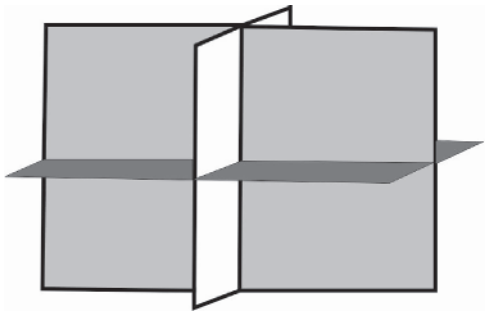

चित्र 2.35 : सममिति तल

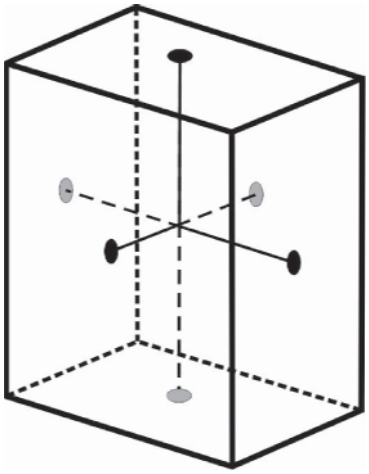

चित्र 2.36 : सममिति अक्ष

सामान्य आकृतियाँ

(1) **आधार पिनेकॉइड** (Basal pinacoid) : यह दो फलकों वाली खुली आकृति है। इसके फलक क्षैतिज अक्षों के समान्तर रहते हैं। केवल ऊर्ध्वाधर अक्ष को काटती है। इसका सामान्य सूचकांक (001) है (चित्र 2.37)।

(2) **दीर्घपट्ट पिनेकॉइड** (Macro-pinacoid) : यह दो फलकों वाली खुली आकृति है। इसके फलक ऊर्ध्वाधर तथा दीर्घ अक्ष के समान्तर रहते हैं और केवल लघु अक्ष को काटते हैं। इसका सूचकांक (100) है (चित्र 2.37)।

दीर्घ पिनेकॉइड (100) एवं लघु पिनेकॉइड (010)

(3) **लघुपट्ट पिनेकॉइड** (Brachy-pinacoid) : यह दो फलकों वाली विवृत आकृति है। इसके फलक ऊर्ध्वाधर तथा लघु अक्ष के समान्तर रहते हैं और केवल दीर्घ अक्ष को काटते हैं। इसका सामान्य सूचकांक (010) है (चित्र 2.37)।

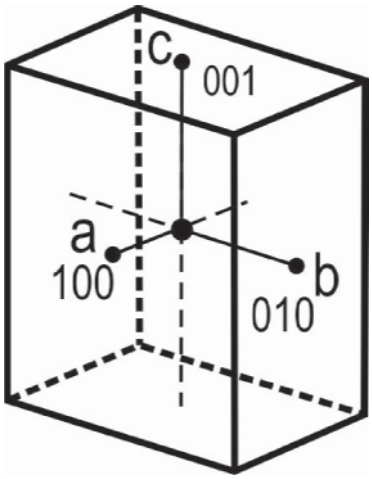

चित्र 2.37 : आधार पिनेकॉइड (001)

(4) **प्रिज्म** (Prism) : यह चार फलकों से बनी हुई विवृत आकृति है। इसका हर एक फलक ऊर्ध्वाधर अक्ष के समान्तर रहता है तथा अन्य दोनों अक्षों को असमान दूरियों पर काटता है। एकांक प्रिज्म का संकेत (110) है (चित्र 2.38)।

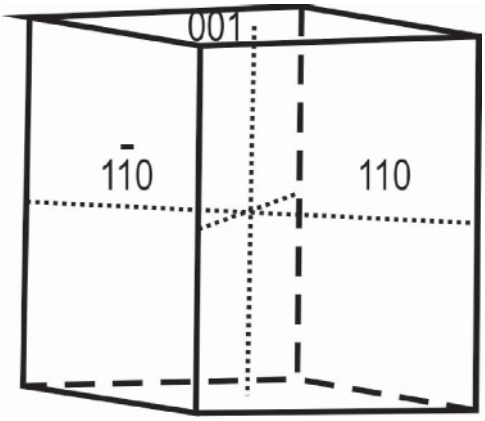

चित्र 2.38 : प्रिज्म

(5) **दीर्घडोम** (Macrodome) : यह चार फलकों की विवृत आकृति है। इसका हर एक फलक दीर्घअक्ष के समान्तर रहता है। अन्य दोनों अक्षों को काटता है। एकांक दीर्घडोम का संकेत (101) है (चित्र 2.39)।

(6) **लघुडोम** (Brachydome) : यह चार फलकों वाली बंद आकृति है जो कि लघुअक्ष के समान्तर रहती है तथा अन्य दोनों अक्षों को काटती है। इसकी एकांक आकृति का संकेत (011) है (चित्र 2.40)।

(7) **पिरैमिड** (Pyramid) : यह आठ फलकों की बंद आकृति है। इसका प्रत्येक फलक विषमबाहु त्रिभुज के आकार का होता है एवं प्रत्येक फलक तीनों अक्षों को असमान दूरियों पर काटते हैं। इसकी एकांक आकृति का संकेत (111) है (चित्र 2.41)।

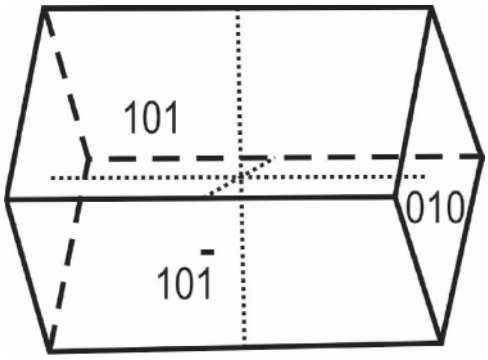

चित्र 2.39. दीर्घडोम

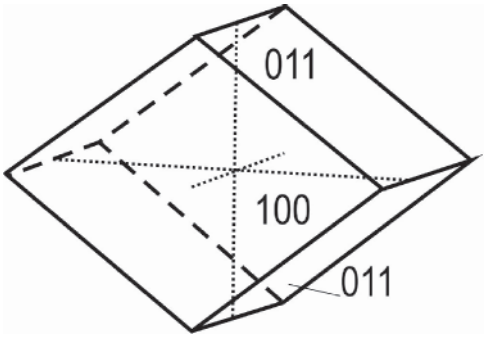

चित्र 2.40 : लघुडोम

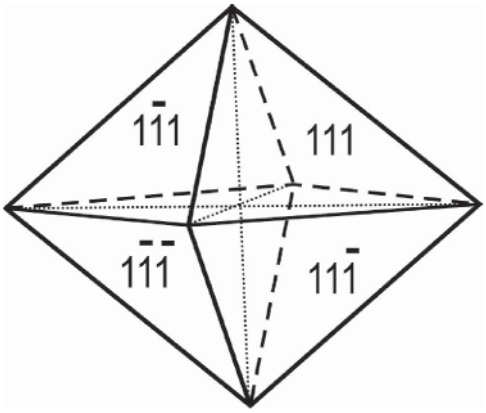

चित्र 2.41 : पिरेमिड

एकनत समुदाय (Monoclinic System)

इस समुदाय में वे सब क्रिस्टल आते हैं जिनकी आकृतियों का संबंध अलग–अलग लंबाई की a, b, c तीनों अक्षों से होता है। इसमें 'a' प्रवण अक्ष (Clino-axis), 'b' ऋजु अक्ष (Ortho- axis) और 'c' ऊर्ध्वाधर अक्ष कहलाती है (चित्र 2.42)। 'a' अक्ष क्रिस्टल के सामने प्रेक्षक की आँख से ऊपर की ओर दूर होती जाती है। यह अक्ष 'c' अक्ष के साथ जिप्सम में 80°42' का न्यूनकोण (acute angle) बनाती है। अक्ष 'b' ऋजुअक्ष दाएं से बाएं जाती है तथा ऊर्ध्वाधर अक्ष के साथ समकोण बनाती है। एकनत समुदाय की, सामान्य वर्ग, जिप्सम टाइप कहलाती है।

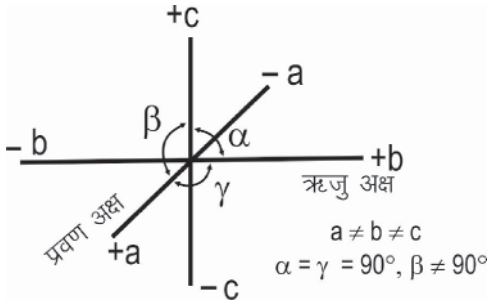

चित्र 2.42 : एकनत समुदाय के अक्ष

जिप्सम का अक्षीय अनुपात इस प्रकार है। जिप्सम a : b : c = 0.69 : 1: 0.41 β = 80°42'

जिप्सम टाइप

(Gypsum Type or Prismatic Class)

इस सममिति वर्ग में केवल एक ही सममिति तल तथा एक ही सममिति अक्ष होती है (चित्र 2.43) जो कि इस प्रकार है :–

सममिति तल 1 (प्रवण अक्ष तथा ऊर्ध्वाधर अक्ष)

सममिति अक्ष 1^{ii} (ऋजु अक्ष) द्विमुखी

सममिति केन्द्र होता है।

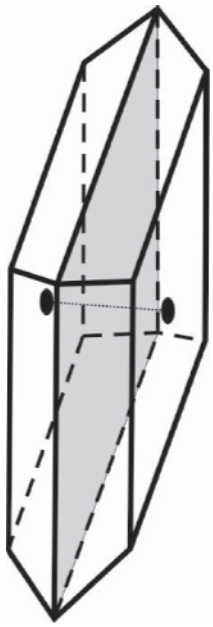

चित्र 2.43 : एकनत समुदाय की सामान्य वर्ग के सममिति तत्व

सामान्य आकृतियाँ

(1) **आधार पिनेकॉइड** (Basal pinacoid) : यह दो फलकों वाली खुली आकृति है। इसके फलक केवल ऊर्ध्वाधर अक्ष को काटते हैं तथा अन्य दोनों अक्षों के समान्तर रहते हैं। इसका सामान्य संकेत (001) है (चित्र 2.44)।

(2) **ऋजु पिनेकॉइड** (Orthopinacoid) : यह दो फलकों वाली खुली आकृति है। इसका हर एक फलक प्रवण अक्ष को काटता है तथा अन्य दोनों अक्षों के समान्तर होता है। इसका सामान्य संकेत (100) है (चित्र 2.44)।

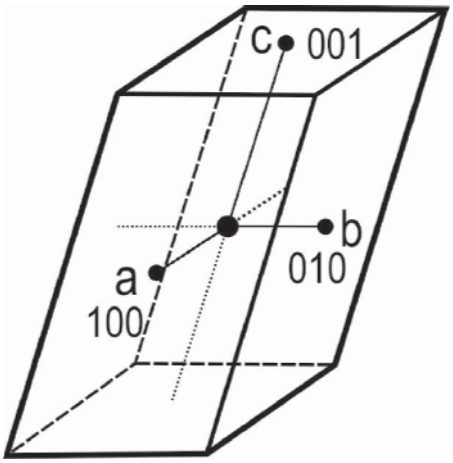

चित्र 2.44 : आधार पिनेकॉइड (001)
ऋजु पिनेकॉइड (100) एवं प्रवण पिनेकॉइड (010)

(3) **प्रवण पिनेकॉइड** (Clinopinacoid) : यह दो फलकों वाली विवृत आकृति है। इसका हर एक फलक ऋजु अक्ष को काटता है तथा प्रवण और ऊर्ध्वाधर अक्ष के समान्तर रहता है। इसकी सामान्य आकृति (010) है (चित्र 2.44)।

(4) **प्रिज्म** (Prism) : यह चार फलकों वाली आकृति है। इसका हर एक फलक ऊर्ध्वाधर अक्ष के समान्तर रहता है तथा अन्य दोनों अक्षों को काटता है। इसकी एकांक आकृति का संकेत (110) है (चित्र 2.45)।

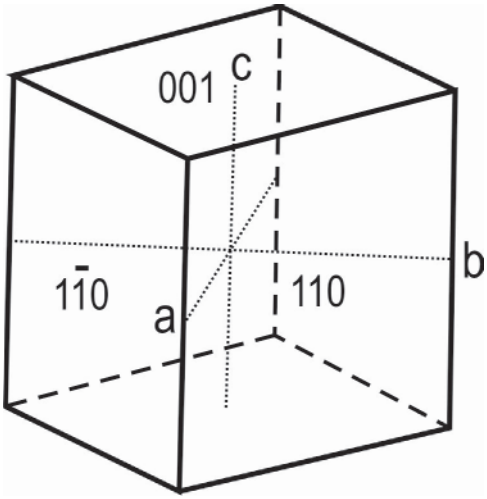

चित्र 2.45 : प्रिज्म

(5) **अर्धऋजु डोम** (Hemi-orthodome) : इसके केवल दो फलक होते है। इसका हर एक फलक ऊर्ध्वाधर तथा प्रवण अक्ष को काटता है तथा ऋजु अक्ष के समान्तर होता है। इसकी सामान्य आकृति (101) है (चित्र 2.46)। अर्धऋजुडोम दो प्रकार के होते हैं, धनात्मक तथा ऋणात्मक।

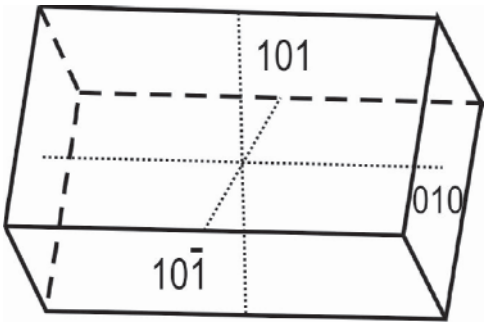

चित्र 2.46 : अर्द्धऋजु डोम

(6) **प्रवणअक्ष डोम** (Clinodome) : यह चार फलकों वाली आकृति है। इसका प्रत्येक फलक ऋजु अक्ष और उर्ध्वाधर अक्ष को काटता है तथा प्रवण अक्ष के समानान्तर होता है। इसका सूचकांक (011) है (चित्र 2.47)।

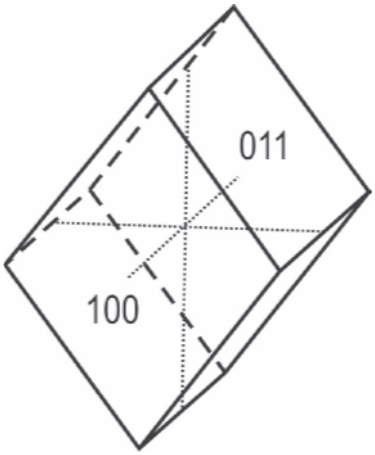

चित्र 2.47 : अर्द्धऋजु डोम

(7) **अर्धपिरैमिड** (Hemi-pyramid) : इसमें केवल चार फलक होते हैं। हर एक फलक तीनों अक्षों को असमान दूरी पर काटता है। एकांक आकृति का संकेत (111) है (चित्र 2.48)। ये दो प्रकार के होते हैं तथा धनात्मक अर्धपिरैमिड और ऋणात्मक अर्धपिरैमिड कहलाते हैं।

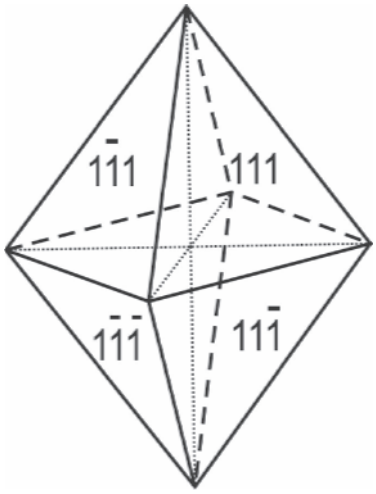

चित्र 2.48 : अर्द्धपिरेमिड

त्रिप्रवण समुदाय (Triclinic System)

इस समुदाय में तीनों अक्ष अलग–अलग लंबाई की होती है और तीनों अक्षों में से कोई भी अक्ष किसी दूसरे अक्ष के साथ 90° का कोण नहीं बनाते हैं। तीनों अक्षों में से किसी एक को 'c' ऊर्ध्वाधर अक्ष मान लिया जाता है। 'a' अक्ष छोटी रहती है और लघु अक्ष कहलाती है। 'b' अक्ष 'a' अक्ष की अपेक्षा बड़ी रहती है तथा दीर्घ अक्ष कहलाती है (चित्र 2.49)। इस समुदाय में न तो

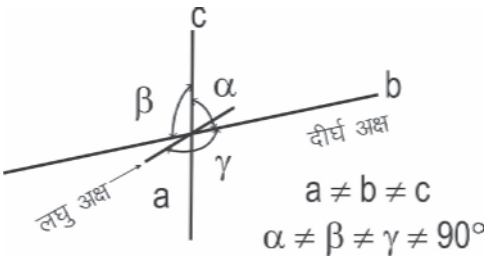

चित्र 2.49 : त्रिप्रवण समुदाय के अक्ष

कोई सममिति तल होता है और न ही कोई सममिति अक्ष। केवल सममिति केन्द्र होता है। इस समुदाय का सामान्य सममिति वर्ग एक्सीनाइट टाइप कहलाता है।

एक्सीनाइट का अक्षीय अनुपात इस प्रकार है :

$a : b : c = 0.49 : 1 : 0.48$

$\alpha = 82°54'$, $\beta = 91°52'$, $\gamma = 131°32'$

एक्सीनाइट टाइप

(Axinite type or pinacoidal Class)

इसमें सभी आकृतियाँ दो फलकों से बनी होती है इसलिए इसे पिनेकॉइडल वर्ग भी कहते हैं। इसके सममिति अवयव इस प्रकार है।

सममिति तल नहीं होता है।

सममिति अक्ष नहीं होता है।

केवल सममिति केन्द्र होता है।

सामान्य आकृतियाँ

(1) **आधार पिनेकॉइड** (Basal pinacoid) : यह दो फलकों वाली खुली आकृति होती है। इसके फलक केवल ऊर्ध्वाधर अक्ष को काटते हैं और अन्य दोनों अक्षों के समान्तर होते है। इसका सामान्य संकेत (001) है (चित्र 2.50)।

(2) **दीर्घपट्ट पिनेकॉइड** (Front pinacoid) : यह दो फलकों वाली आकृति होती है। इसके फलक केवल लघु – अक्ष को काटते हैं तथा अन्य दोनों अक्षों के समान्तर रहते हैं। इसका सामान्य संकेत (100) है (चित्र 2.50)।

(3) **लघुपट्ट पिनेकॉइड** (Side pinacoid) : यह दो फलकों वाली आकृति है। इसके फलक केवल दीर्घ–अक्ष को काटते हैं तथा अन्य दोनों अक्षों के समान्तर होते हैं। इसका सामान्य संकेत (010) हैं (चित्र 2.50)।

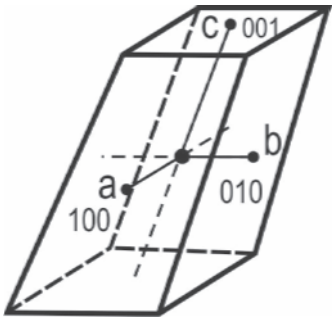

चित्र 2.50 : आधार पिनेकॉइड (001)
दीर्घ पट्ट पिनेकॉइड (100)
एवं लघु पट्ट पिनेकॉइड (010)

(4) **अर्धप्रिज्म** (Hemi Prism) : यह दो फलकों वाली आकृति है। इसके फलक लघु तथा दीर्घ दोनों अक्षों को काटते हैं तथा ऊर्ध्वाधर अक्ष के समान्तर होते हैं। इसका सामान्य संकेत (110) है (चित्र 2.51)।

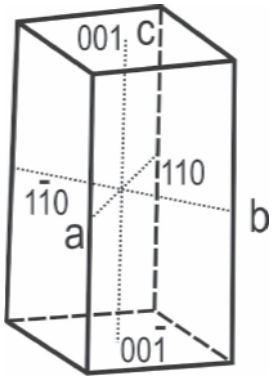

चित्र 2.51 : अर्द्धप्रिज्म

(5) **अर्धदीर्घडोम** (Hemi-macrodome) : इसमें केवल दो फलक होते हैं। हर एक फलक ऊर्ध्वाधर तथा लघु अक्ष को काटता है तथा दीर्घ अक्ष के समान्तर होता है। इस आकृति का संकेत (101) है (चित्र 2.52)।

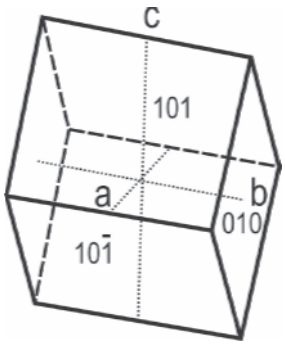

चित्र 2.52 : अर्धदीर्घडोम

(6) **अर्धलघुडोम** (Hemi brachydome) : इसमें दो फलक होते हैं। यह लघु अक्ष के समान्तर होता है और अन्य दोनों अक्षों को काटता है। इस आकृति का संकेत (011) है (चित्र 2.53)।

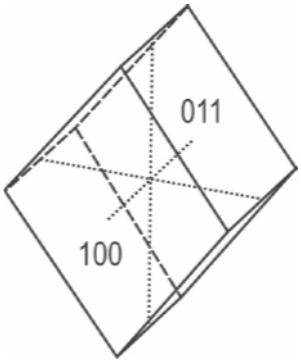

चित्र 2.53 : अर्धलघुडोम

(7) **चतुर्थांश पिरैमिड** (Quarter Pyramid) : इसमें भी केवल दो ही फलक होते हैं। हर एक, फलक तीनों अक्षों को असमान दूरी पर काटता है। इसकी आकृति का संकेत (111) है (चित्र 2.54)।

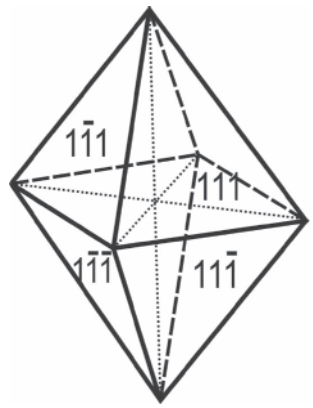

चित्र 2.54 : चतुर्थांश पिरेमिड

सिलिकेट (Silicate)

सिलिकेट ऐसे यौगिक है जो ऋणायनिक सिलिकॉन यौगिकों से बने होते हैं। सिलिकेटों में अनेकों खनिज शामिल होते हैं। इनमें से कुछ खनिज दुर्लभ (Rare) होते हैं और कुछ प्रचुर मात्रा में पाये जाते हैं। भूपटल (Earth Crust) में लगभग 95 प्रतिशत सिलीकेट खनिज हैं जिसमें कि लगभग 60 प्रतिशत फेल्सपार (Feldspar) और 12 प्रतिशत क्वार्ट्ज (Quartz) होता है।

ऐसे बहुत कम तत्व हैं जो कि सिलीकेट खनिज का निर्माण करते हैं। कुछ तत्व ऐसे हैं जो कि स्वतन्त्र सिलीकेट नहीं बनाते हैं परन्तु वे इसके तत्वों के साथ सम्बद्ध रहते हैं। एक ही तत्व के कई प्रकार के सिलीकेट बन सकते हैं। इनकी संरचना बहुत ही जटिल और अस्थिर होती है। इनकी जटिलता के कारण खनिजों की संरचना समझने में बहुत कठिनाई पड़ती थी। एक्सरे के अविष्कार से क्रिस्टलों की संरचना को समझना एवं उनका अध्ययन करना सरल हो गया है। सिलिकेट खनिजों का वर्गीकरण क्रिस्टल संरचना पर ही आधारित है।

संरचना (Structure)

सभी प्रकार के सिलिकेटों में एक सिलीकॉन परमाणु, ऑक्सीजन के 4 परमाणुओं से जुड़ा रहता है। सिलीकॉन और आक्सीजन (Si व O) के बीच का बन्ध इतना मजबूत होता है कि 4 ऑक्सीजन हमेशा ही टेट्राहेड्रॉन के 4 किनारों पर पाये जाते हैं। इनका एक निश्चित आयाम और आकार (Dimension and Shape) होता है।

वर्गीकरण (Classification)

सिलिकेटों का वर्गीकरण क्रिस्टल संरचना तथा आक्सीजन सिलिकॉन की बंधता के आधार पर किया गया है। यह वर्गीकरण निम्न प्रकार की बन्धता पर आधारित है –

1. स्वतन्त्र चतुष्कोणीय सिलिका समूह या नीसोसिलीकेट (Independent Tetrahedral Silica Group or Nesosilicate)
2. द्विचतुष्कोणीय संरचना या सोरोसिलीकेट (Ditetragonal Structure or Sorosilicate)
3. वलीय संरचना या साइक्लोसिलीकेट (Ring Structure or Cyclosilicate)
4. श्रृंखलित संरचना या इनोसिलीकेट (Chain Structure or Inosilicate)
   i. एकल श्रृंखला संरचना (Single Chain Structure) और
   ii. द्विश्रृंखलित संरचना (Double Chain Structure)
5. चादरवत संरचना या फायलोसिलीकेट (Sheet structure or Phyllosilicate)
6. त्रिविमीय जाली या टेक्टोसिलीकेट (Three dimensional network or Tektosilicate)

1. **स्वतन्त्र चतुष्कोणीय सिलीका समूह या नीसोसिलीकेट** (Independent Tetrahedral Silica group or Nesosilicate) : इसमें स्वतन्त्र SiO_4 चतुष्फलक होता है (चित्र 2.55)। इसमें सिलिका (Si) और ऑक्सीजन (O)

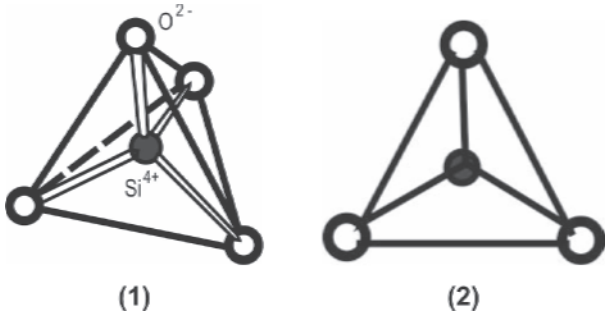

चित्र 2.55 : स्वतंत्र चतुष्फलक संरचना

अनुपात 1 : 4 का होता है। पूरे क्रिस्टल में चतुष्फलक एक नियमित सांचे में बंधे रहते हैं। इस तरह की संरचना ऑलीबीन और गार्नेट (Olivine and Garnet) में पाई जाती है। सिलिकेट का इस प्रकार का विभाजन निसोसिलिकेट कहलाता है। इसमें धात्विक परमाणु भी जुड़े रहते हैं।

2. **द्विचतुष्कोणीय संरचना या सोरोसिलीकेट** (Ditetragonal Structure or Sorosilicate) : इसमें दो SiO_4 चतुष्फलक एक ही ऑक्सीजन पर जुड़े रहते हैं (चित्र 2.56)। इसमें 1 ऑक्सीजन 2 सिलीकॉन से साझा (Shared) करता है। इस प्रकार की संरचना से Si_2O_7 का गठन होता है। यहाँ सिलिका और ऑक्सीजन का अनुपात 2 : 7 का होता है। ऐसे सिलीकेटों को सोरोसिलीकेट (Sorosilicate) भी कहते हैं। उदाहरण – हेमीमार्फाइट (Hemimorphite, $ZnSi_2O_7\ (OH)_2.\ H_2O$)

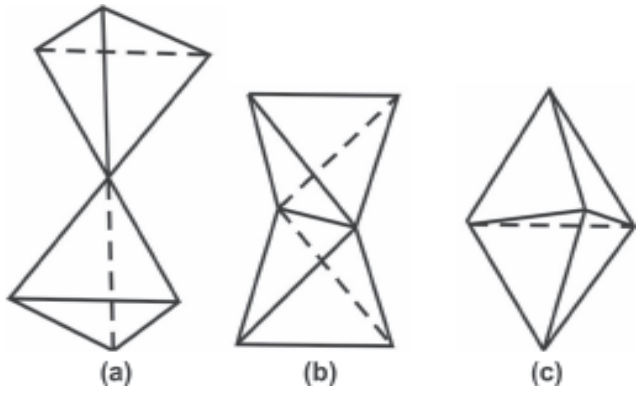

चित्र 2.56 : द्विचतुष्कोणीय संरचना

3. **वलीय संरचना या साइक्लोसिलीकेट** (Ring Structure or Cyclosillicate) : इसमें चतुष्फलक आपस में इस प्रकार से जुड़े रहते हैं कि वलय के आकार में दिखते हैं। इसमें प्रत्येक SiO_4 चतुष्फलक (Tetrahedron) दो सम्मिलित ऑक्सीजन द्वारा बंधे रहते हैं। इस प्रकार के बंधनों से वलय के समान रचना का निर्माण होता है। उदाहरण तीन रिंग वाले चतुष्फलक बेनीटोइट (Benitoite, $BaTi\ Si_3O_9$), चार छल्ले वाले चतुष्फलक, एक्सीनाइट (Axinite, Ca, Mn, $Fe)_3\ Al_2\ (BO_3)\ Si_4\ O_{12}$ (Oh) और छः छल्ले वाले चतुष्फलक बेरिल (Beryl, $BeAl_2$, $(Si6O_{18})$, में पाये जाते हैं (चित्र 2.57)।

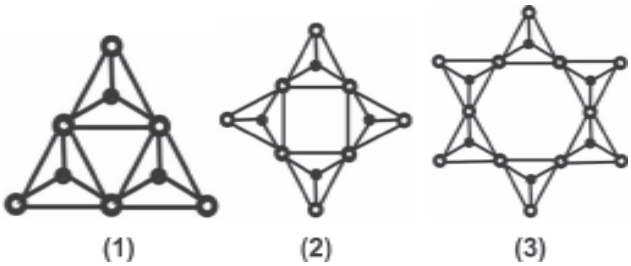

चित्र 2.57 : तीन छल्ले, चार छल्ले एवं छः छल्ले वाले चतुष्फलकों की संरचना

4. **श्रृंखलित संरचना या इनोसिलिकेट** (Chain Structure or Inosilicate) : इसमें प्रत्येक SiO_4 चतुष्फलक एक दूसरे से इस प्रकार बंधे रहते हैं कि एक श्रृंखला (Chain) बन जाती है तथा इस श्रृंखला का विस्तार अनिश्चित होता है। इस प्रकार के सिलिकेटों को इनोसिलिकेट कहते हैं। यह श्रृंखला दो रूपों में पाई जाती है –

i. **एकल श्रृंखला संरचना** (Single Chain Structure) : इसमें SiO_4 चतुष्फलक इस प्रकार बंधे रहते हैं कि एक श्रृंखला बन जाती है (चित्र 2.58) जिसका गठन Si_2O_6 होता है। इसमें सिलीकॉन और ऑक्सीजन का अनुपात 1 : 3 का होता है। ये श्रृंखलायें क्रिस्टल में एक दूसरे के समानान्तर होती है और धात्विक आयन (Metallic Ion) द्वारा जुड़ी रहती है। उदाहरण – पाइरॉक्सीन समूह।

चित्र 2.58 : एकल श्रृंखला संरचना

ii. **द्विश्रृंखलित संरचना** (Double chain Structure) : जब दो एकल श्रृंखला समानान्तर होती है व ऑक्सीजन परमाणु से एक निश्चित अंतराल से सांझा करती है तब

द्विश्रृंखलित संरचना का निर्माण होता है। (चित्र 2.59) इसमें सिलीकॉन और ऑक्सीजन का अनुपात 4 : 11 का होता है।

उदाहरण – एम्फीबोल (ट्रीमोलाइट)

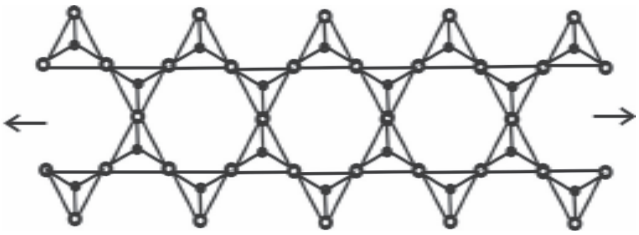

चित्र 2.59 : द्विश्रृंखलित संरचना

5. **चादरवत संरचना या फायलोसिलीकेट** (Sheet Structure or Phyllosilicate) : इसमें हर एक SiO_4 चतुष्फलक के तीन ऑक्सीजन परमाणु दूसरे SiO_4 चतुष्फलक के तीन ऑक्सीजन परमाणु के साथ सम्मिलित होते है। इस प्रकार एक सपाट चादर सी बन जाती है (चित्र 2.60)। इस संरचना का दोनों दिशाओं में विस्तार होता है इन्हें फाइलोसिलिकेट भी कहते हैं इसमें सिलिका और ऑक्सीजन का अनुपात 2 : 5 होता है। उदाहरण – माइका (mica) और टाल्क (talc)। ऐसे सिलिकेटों को फायलोसिलीकेट भी कहते हैं।

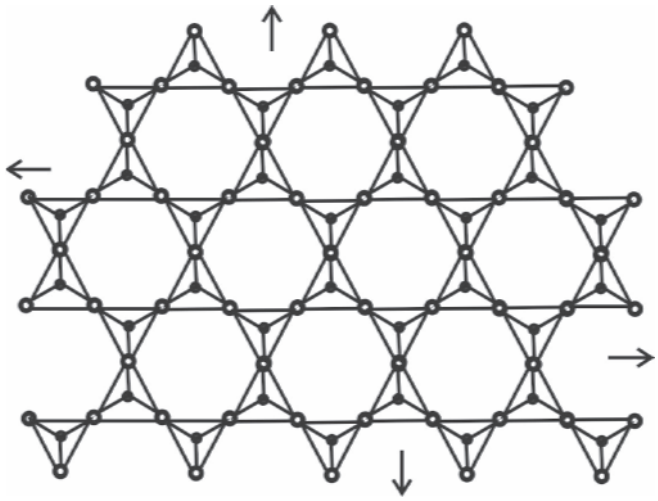

चित्र 2.60 : चादरवत संरचना

6. **त्रिविमीय जाली या टेक्टोसिलिकेट** (Three dimensional network or Tectosilicate) : इसमें प्रत्येक चतुष्फलक, दूसरे चतुष्फलक के चारों कोनों (corner) से जुड़े रहते हैं। इस प्रकार इनके संयोग से त्रिविमीय जाली बन जाती है (चित्र 2.61)। इसमें Si और O का अनुपात 1 : 2 का होता है।

उदाहरण – क्वार्ट्ज (Quartz) एवं फेल्सपार (Feldspar) में इस प्रकार की संरचना पायी जाती है। ऐसे सिलिकेटों को टेक्टोसिलिकेट भी कहते हैं।

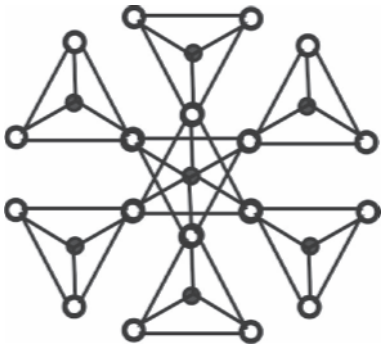

चित्र 2.61 : त्रिविम जाली

महत्वपूर्ण खनिज समूहों का अध्ययन

(Study of Important Mineral Groups)

1. सिलिका समूह (Silica Group)

इसके क्रिस्टल षट्कोणीय समुदाय में आते हैं। भूपटल में सबसे अधिक मिलने वाला खनिज सिलिका है। ये खनिज समूह सिलिकन और आक्सीजन के संयोग से बनते हैं। सिलिका को तीन मुख्य रूपों में वर्गीकृत किया गया है। ये इस प्रकार है :–

(1) **क्रिस्टलीय** (Crystalline) : इसमें क्वार्ट्ज (Quartz), ट्रिडीमाइट (Tridymite) और क्रिस्टोबेलाइट (Cristobalite) शामिल है और ये प्रतिरूपी होते हैं क्वार्ट्ज कई प्रकार के होते हैं जैसे 573°C से नीचे बनने वाले क्वार्ट्ज को निम्न क्वार्ट्ज कहते हैं। 574°C से 870°C के बीच बनने वाले क्वार्ट्ज को उच्च क्वार्ट्ज कहते हैं। साधारणतया सामान्य क्वार्ट्ज को रंगों के आधार पर कई प्रकारों में बाँटा गया है। जैसे रंगहीन एवं पारदर्शी क्वार्ट्ज को रॉक क्रिस्टल कहते हैं। पीले रंग वाले क्वार्ट्ज को सिट्रिन (Citrin), बैंगनी रंग वाले को अमिथिष्ट, सफेद को दूधिया क्वार्ट्ज, भूरे और काले को स्मोकी (Smoky) क्वार्ट्ज एवं गुलाबी रंग वाले को रोज़ (Rose) क्वार्ट्ज कहते हैं।

(2) **गूढ़क्रिस्टलीय** (Cryptocrystalline) : इसमें चलसीडोनी, चर्ट, फ्लिंट, जैस्पर आदि आते हैं। गूढ़ क्रिस्टलीय सिलिका के क्रिस्टलों को सूक्ष्मदर्शी द्वारा ही देखा जा सकता है। चलसीडोनी सिलिका का रूप रेशेदार होता है। अगेट, चलसीडोनी का ही रूप है। जिसमें अलग अलग रंगों की धारियां पायी जाती है। दूसरी गूढ़क्रिस्टलीय सिलिका फ्लिंट एवं चर्ट है। फ्लिंट सामान्यतः काली होती है एवं इसके किनारे बहुत तीखे होते हैं। फ्लिंट के टुकड़ों को आपस में टकराने पर इनमें से चिंगारियां निकलती है। चर्ट हल्के रंगों में मिलती है तथा इसके किनारे फ्लिंट के मुकाबले कम तीखे होते हैं।

(3) **अक्रिस्टलीय या अनाकार** (Amorphous) : इसमें ओपल सिलिका आती हैं। इस अक्रिस्टलीय सिलिका में पानी की मात्रा उपस्थित रहती है।

वायुमंडलीय दबाब पर क्वार्ट्ज 870° तक स्थायी रहता है। ट्रिटीमाइट 870°C से 1470°C तक और क्रिस्टोबेलाइट 1470° से 1713°C तक और 1713°C से क्वथनांक तक तरल सिलिका स्थायी रहता है। दबाव का भी इन पर प्रभाव पड़ता है। सिलिका की तीनों बहुआकृतियों में चतुष्फलक संरचना रहती है। सिलिका आक्सीजन चतुष्फलक आपस में इस प्रकार बंधे रहते हैं कि एक त्रिविम जाली बन जाती है। परन्तु तीनों रूपों में बंधक अलग–अलग होते हैं। इनकी बनावट के अनुसार इनका घनत्व भी अलग–अलग होता है।

भौतिक गुण (Physical Properties)

रासायनिक संगठन (रा.स.) : स्फटिक सिलिकन और ऑक्सीजन का यौगिक SiO_2

क्रिस्टल संरचना (क्रि. स.) : इसके क्रिस्टल षट्कोणीय समुदाय में आते हैं। क्रिस्टल प्रिज्मेटिक होते हैं। यह स्थूल रूप में भी पाया जाता है। गूढ क्रिस्टलीय संरचना अक्रिस्टलीय होती है।

रंग : क्वार्ट्ज रंगहीन, सफेद, दूधिया, गुलाबी, बैंगनी, काला आदि रंगों में होता है। चलसीडोनी विभिन्न भूरे रंगों से आच्छादित होती है। ओपल पीले सफेद रंग में मिलता है।

वर्ण रेखा (व. रे.) : रंगहीन या सफेद

चमक : क्रिस्टलीय सिलिका की काँचाभद्युति होती है बाकी सिलिका की मोम जैसी द्युति होती है।

विदलन : अनुपस्थित

विभंग : शंखाभ

कठोरता : क्वार्ट्ज की 7 एवं चलसीडोनी की 6.5 होती है।

आपेक्षिक घनत्व (आ. घ.) : 2.32 से 2.65

क्वार्ट्ज (स्फटिक) की भिन्न भिन्न किस्मों के नाम रंग के अनुसार है। जैसे गुलाबी स्फटिक (Rosy Quartz), जमुनियाँ स्फटिक (Amethyst), दूधिया स्फटिक (Milky), धूमिल स्फटिक (Smoky), शुद्ध स्फटिक (Rock crystal)।

प्रकाशीय गुण (Optical Properties)

क्रिस्टल व्यवस्था : षट्कोणीय

आकार : ये खनिज पूर्णाकृति क्रिस्टल के रूप में या दानेदार तथा अफलकीय होते हैं।

रंग : रंगहीन।

विदलन : प्रायः नहीं होता। विदलन अपूर्ण समचतुर्भुजीय होता है।

स्पष्टता : कम, n> बालसम।

द्विअपवर्तन : मंद।

व्यतिकरण वर्ण : पहले दर्जे का धूसर या पीला।

यमलन : साधारणतः नहीं पाया जाता है।

विलोपन : पूर्णकृति क्रिस्टलों में समान्तर विलोपन होता है अन्यथा तरंगित रूप में होता है। आधार काट सभी दिशाओं में काले रहते हैं।

क्वार्ट्ज बलुआपत्थर (sandstone) का परमावश्यक अंग है। यह ग्रेनाइट एवं पेग्माटाइट, रायोलाइट जैसी अधिसिलिक (Acidic) आग्नेय शैलों का प्रमुख प्राथमिक अवयव है। यह अनेक कायांतरित शैलों (विशेषतः क्वार्ट्जाइट) मे प्रमुख रूप से खनिज शिराओं में भी मिलता है। सिलिका का उपयोग काँच, सिलिका की ईटें आदि में, शैलक्रिस्टल (Rock Crystal) के रूप में, वैज्ञानिकों के उपकरण आदि बनाने में होता है। रंगीन स्फटिक रत्न पत्थर (Gemstone) के रूप में काम आता है।

2. फेल्सपार समूह (Feldspar Group)

फेल्सपार का शैलकारी खनिजों में महत्वपूर्ण स्थान है तथा यह खनिज समूह समाकृति (Isomorphism) का सर्वोत्कृष्ट उदाहरण है। ये एकनत एवं त्रिप्रवण समुदाय में क्रिस्टलित होते हैं। फेल्सपार खनिज एल्यूमिनियम, पोटेशियम, सोडियम एवं कैल्शियम के सिलीकेट हैं। असाधारण तौर पर कैल्शियम के स्थान पर बेरियम युक्त फेल्सपार को सेलसियन (Celsian-$BaAl_2Si_2O_8$) के नाम से जाना जाता है। फेल्सपार समूह को दो प्रमुख वर्गों 1. पोटाश फेल्सपार तथा 2. सोड़ा तथा लाईम फेल्सपार में वर्गीकृत किया गया है। आर्थोक्लेज, सेनेडिन, माइक्रोक्लीन, सोड़ाआर्थोक्लेज, सोड़ामाइक्रोक्लीन एवं एनोर्थोक्लेज पोटाश फेल्सपार के प्रमुख खनिज है। एलकलि फेल्सपार में आर्थोक्लेज मध्यम तापमान फेल्सपार एवं सेनिडिन उच्च तापमान फेल्सपार है तथा माइक्रोक्लीन निम्न तापमान फेल्सपार है। सोड़ा–लाईम फेल्सपार वर्ग में छः खनिज आते हैं जिनको एल्बाइट, ओलिगोक्लेज, एण्डेसीन, लेब्रोडोराइट, बाइटोनाइट तथा एनार्थाइट कहते हैं। इनमें Na^+ और Ca^{2+} शून्य से लेकर 100 तक किसी भी प्रतिशत में रह सकते हैं। एलबाइट (Ab_{100-90}) में सोडियम 100 से 90 प्रतिशत तथा कैल्शियम 0 से 10 प्रतिशत तक (An_{0-10}) होता है तथा एनोर्थाइट (An_{90-100}) में कैल्शियम 100 से 90 प्रतिशत तक होता है, जिसको निम्नानुसार एनोर्थाइट (An) की बढ़ती मात्रा के साथ दर्शाया गया है।

भौतिक गुण (Physical Properties)

– **क्रि. स.** : एकनत समुदाय। क्रिस्टलों में प्रिज्म और पिनेकॉइड फलक होते है। क्रिस्टल प्रायः यमलित होते हैं। यह स्थूल रूप में भी पाया जाता है तथा सपटल होता है। आर्थोक्लेज एवं इसकी संरचना के खनिज एकनत समुदाय तथा

माइक्रोक्लीन एवं प्लेजियोक्लेज त्रिप्रवण समुदाय में क्रिस्टलित होते हैं।

एलबाइट - ओलिगोक्लेज - एण्डेसिन – लेबरोडोराइट – बिटुवनाइट - एनोर्थाइट
(Albite) (Oligoclase) (Andesine) (Labradorite) (Bytwonite) (Anorthite)
An_{0-10} An_{10-30} An_{30-50} An_{50-70} An_{70-90} An_{90-100}

- **रंग** : सफेद, मटियाला, आर्थोक्लेज खूनी रंग माइक्रोक्लीन हरा रंग एवं प्लेजियोक्लेज सफेद से काले भूरे के बीच होता है।
- **वर्ण रेखा** : सफेद या रंगहीन
- **चमक** : कॉचाभ या मोतिया
- **पारदर्शिता** : पारभाषी से अपारदर्शी
- **विदलन** : आपस में 90° का कोण बनाती हुई दो दिशाओं में उत्तम
- **विभंग** : शंखाभ
- **कठोरता** : 6
- **आ. घ.** : 2.57 से 3

प्रकाशीय गुण (Optical Properties)

- **क्रि. स.** : एकनत एवं त्रिप्रवण
- **रंग** : प्रायः रंगहीन। परिवर्तन के कारण धुँधले भी दिखाई देते है।
- **आकार** : ये खनिज पूर्णाकृतिक और अपूर्णाकृतिक क्रिस्टलों के रूप में पाया जाता है।
- **विदलन** : (001) के समान्तर उत्तम, (010) के समान्तर पूर्ण (विदलन दो दिशाओं में एक–दूसरे पर समलंब बनाती हुई)
- **स्पष्टता** : कम, कनाडा बालसम की अपेक्षा कम।
- **द्विअपवर्तनांक** : मंद।
- **विलोपन** : उपस्थित होता है (001) पर समान्तर होता है। (010) पर 50 डिग्री से 70° तक का कोण बनाते है।
- **परिवर्तन** : ये सरलतापूर्वक सेरीसाइट और केओलिन में परिवर्तित हो जाते हैं।
- **यमलन** : (001) युगलित अक्ष। साधारण यमलन उपस्थित होता है।
- **व्यतिकरण वर्ण** : प्रथम दर्जे के धूसर और श्वेत होते हैं।

यह मुख्यतः काँच बनाने में, चीनी मिट्टी उद्योग में, बर्तनों पर इनेमल (enamel) करने के लिए, कृत्रिम दाँत, घर्षण वस्तुएँ आदि बनाने के काम आते हैं। कुछ रंगीन फेल्सपार रत्न पत्थर कहलाते हैं।

3. माइका (अभ्रक) वर्ग (Mica Group)

इस समूह में कई खनिज होते हैं पर मुख्यरूप से बायोटाइट या मस्कोवाइट होता है। माइका में पूर्ण आधार विदलन होता है। जिसके कारण यह पतले पत्रकों में टूट जाते हैं। ये पत्रक लचीले तथा प्रत्यास्थ (elastic) होते हैं। इनमें दीप्तिमान मुक्ताभ चमक पायी जाती है। इसके सब क्रिस्टल एकनत समुदाय में आते हैं। परन्तु इनकी आकृति कृत्रिम षट्कोणी दिखाई देती है। रासायनिक दृष्टि से इस वर्ग के खनिज मुख्यतः पोटेशियम, ऐलुमिनियम, लोहा, मैग्नीशियम और हाइड्रोक्सिल सिलिकेट होते हैं। क्रिस्टल संरचना में चादरवत होती है।

माइका इस प्रकार है :–

1. मस्कोवाइट (Muscovite) : पोटेशियम माइका (सफेद माइका)
2. पैरेगोनाइट (Paragonite) : सोडियम माइका
3. लेपिडोलाइट (Lepidolite) : लीथियम माइका
4. बायोटाइट (Biotite) : लौह, मैग्नीशियम माइका (काला माइका)
5. फ्लोगोपाइट (Phlogopite) : मैग्नीशियम, माइका
6. जिनवाल्डाइट (Zinnwaldite) : लीथियम, बायोटाइट

अभ्रक का आ. घ. : 2.7 से 3.1 के बीच रहता है और औसत कठोरता 2.5 है।

माइका समूह के भौतिक गुण (Physical properties of Mica)

- **क्रि. स.** : इसके क्रिस्टल कृत्रिम षट्कोणी होते हैं और एकनत समुदाय में आते हैं। यह ज्यादातर शल्कित (foliated) होते हैं। इसके लम्बे पत्रक निकलते हैं।
- **रंग** : यह सफेद काला भूरा बादामी एवं पीला होता है।
- **वर्ण रेखा** : रंगहीन या चमकीली
- **चमक** : मुक्ता
- **विदलन** : (001) के समान्तर पूर्ण विदलन होता है। अभ्रक की पतली–पतली परतें अलग हो सकती है। ये परतें लचीली होती है।
- **विभंग** : असम
- **कठोरता** : 2 से 3
- **आ. घ.** : 2.8 से 2.9 तक

माइका के प्रकाशीय गुण (Optical properties of Mica)

आकृति : पत्रित

वर्ण : रंगहीन बादामी पीला जैतूनी हरा या तीव्र हरा। बहुवर्णी

विदलन : 001 के समानान्तर अति उत्तम

स्पष्टता : निम्न से मध्यम

व्यतिकरण वर्ण : द्वितीय क्रम के ऊपरी भाग के

विलोपन : लगभग समानान्तर, अति उत्तम

माइका अनेक आग्नेय एवं कायांतरित शैलों में पाया जाता है। बिजली तथा गर्मी का कुचालक होता है।

4. पाइरॉक्सीन वर्ग (Pyroxene Group)

पाइरॉक्सीन खनिज मुख्यतः लोहा, मैग्नीशियम, कैल्शियम के सिलिकेट हैं। इन अवयवों के अतिरिक्त इनमें थोड़ी–सी मात्रा में ऐलुमिनियम के सिलिकेट का और कभी–कभी सोड़ा या पोटाश का अंश भी होता है। इन सबका रासायनिक संघटन बहुत हद तक बदलता रहता है और इसलिए इस वर्ग में कई समाकृतिक खनिज श्रेणियाँ हैं। इस वर्ग के खनिज विषमलंबाक्ष, और एकनत समुदाय में क्रिस्टलित होते हैं। इनमें एकल श्रृंखला संरचना पायी जाती है। किंतु इनकी संरचना तथा अनेक भौतिक और रासायनिक लक्षणों में अत्यधिक समानता पायी जाती है। पाइरॉक्सीन का विभाजन क्रिस्टल समुदाय के आधार पर इस प्रकार है।

(अ) विषमलंबाक्ष पाइरॉक्सीन

1. एनस्टेटाइट (Enstatite) $Mg_2 Si_2 O_6$
2. हाइपरस्थीन (Hypersthene) $(Mg, Fe)_2 Si_2 O_6$

(ब) एकनत पाइरॉक्सीन

1. क्लाइनो एनस्टेटाइट (Clinoenstatite) – क्लाइनो हायपरस्थीन (Clinohypersthene)
2. डाइऑप्साइड (Diopside) $Ca (Mg, Fe) Si_2 O_6$
3. हैडेनबर्गाइट (Hedenbergite) $(Ca, Fe) Si_2 O_6$
4. औजाइट (Augite) $(Ca, Mg, Fe, Al)_2 (Al, Si)_2 O_6$
5. पिजियोनाइट (Pigeonite) $(Ca, Mg) (Mg, Fe) Si_2 O_6$
6. ईजिरिन (Aegirine) $(Na, Ca) (Fe^{+3}, Fe^{+2}, Mg, Al) Si_2 O_6$
7. जेडाइट (Jadeite) $Na Al Si_2 O_6$
8. स्पोडुमीन (Spodumene) $Li Al Si_2 O_6$

पायरॉक्सीन के भौतिक गुण

क्रि. स. : विषमअक्षीय एवं एकनत समुदाय। बहुधा स्थूल, प्रिज्मीय, रेशेदार तथा सपटल (lamellar) रूप में पाये जाते है।

रंग : हल्का हरा से गहरा हरा, काँस्य पीला, सफेद, काला, भूरा आदि।

वर्ण रेखा : रंगहीन

चमक : काँचभद्युति या मुक्ताद्युति

विदलन : उत्तम, दो दिशाओं में लगभग 90° का कोण बनाता हुआ।

विभंग : असम

कठोरता : 5 से 6

आ. घ. : 3.1 से 3.8 (लोहे की मात्रा के अनुसार आपेक्षिक घनत्व बढ़ता जाता है)। पायरॉक्सीन, एम्फीबोल से थोड़े भारी होते है।

पायरॉक्सीन के प्रकाशीय गुण

क्रि.स. : विषमअक्षीय एवं एकनत समुदाय

रंग : हल्के हरे रंग से गहरे हरे तक। बहुवर्णी भी होते हैं।

आकार : यह खनिज प्रिज्मीय क्रिस्टलों के रूप में पाया जाता है अनुप्रस्थ काट चार भुजीय या अष्टभुजीय होती है

विदलन : दो दिशाओं में उत्तम 87° एवं 93° के कोणों पर (110) के समान्तर, कभी–कभी (010) के और (110) के समान्तर होती है।

स्पष्टता : मंद से उच्च n > बालसम

द्विअपवर्तन : कुछ में मंद, कुछ में तीव्र

व्यतिकरण वर्ण : दूसरे दर्जे एवं तीसरे दर्जे के होते हैं।

विलोपन : समान्तर एवं तिर्यक

5. ऐम्फिबोल वर्ग (Amphibole Group)

पाइरॉक्सीन खनिजों के समान इस वर्ग के खनिजों के भी रासायनिक संघटन और भौतिक लक्षण आपस में बहुत मिलते हैं। ऐम्फिबोल खनिज भी मुख्यतः लोहा, मैग्नीशियम, कैल्शियम का सिलिकेट है। इस वर्ग के कुछ खनिज समाकृतिक हैं। ये खनिज विषमअक्षीय एवं मुख्यतः एकनत समुदायों में क्रिस्टलित होते हैं किंतु बिरले त्रिप्रवण समुदाय में भी क्रिस्टलित होते है। ये सब द्विश्रृंखला संघटन बनाते हैं तथा Si_2O_{11} की रचना करते हैं। इस खनिज वर्ग में मुख्य शैलकर खनिज हॉर्नब्लेण्ड हैं।

एम्फीबोल का विभाजन इस प्रकार है :–

1. विषमअक्षीय ऐम्फिबोल
   (अ) ऐंथोफिलाइट (Anthophyllite) $(Mg, Fe)_7 Si_8O_{22}(OH)_2$
2. एकनत ऐम्फिबोल
   (अ) कमिंगटोनाइट (Cummingotonite) $Mg_7 Si_8O_{22}(OH)_2$ – ग्रुनेराइट (Grunerite) $Mg_7 Si_8O_{22}(OH)_2$
   (ब) ट्रीमोलाइट (Tremolite) $Ca_2Mg_5 Si_8O_{22}(OH)_2$ – ऐक्टिनोलाइट (Actinolite) $Ca_2(Mg, Fe^{+2})_5 Si_8O_{22}(OH)_2$
   (स) हॉर्नब्लैण्ड (Hornblende) श्रेणी $Ca_2(Mg, Fe^{+2})_4 (Al, Fe^{+3})Si_7AlO_{22}(OH)_2$

(द) क्षारीय ऐम्फिबोल

ग्लूकोफेन (Glaucophane) $Na_2(Mg_3Al_2)Si_8O_{22}(OH)_2$

रीबेकाइट (Riebeckite) $Na_2Fe^{+2}3\,Fe^{+3}2Si_8O_{22}(OH)_2$

आर्फवेदसोनाइट (Arfvedsonite) $Na_3(Fe^{+2})_4Fe^{+3}Si_8O_{22}(OH)_2$

एम्फीबोल के भौतिक गुण (Physical Properties)

क्रि. स. : विषमलंबाक्ष एवं एकनत समुदाय। इसके क्रिस्टल प्रिज्मेटिक में या विकीर्ण रेशेदार एवं दानेदार संहत होते हैं।

रंग : भूरी छटा होती है विभिन्न हरे रंग कालापन लिये होते हैं।

वर्ण रेखा : रंगहीन

चमक : काँचद्युति एवं रेशेदार में रेशमी द्युति होती है।

विदलन : प्रिज्म के समान्तर पूर्ण, दो दिशाओं में 56° एवं 124° के कोण पर

कठोरता : 5 से 6

आ. घ. : 2.8 से 3.5

प्रकाशीय गुण

रंग : हरा, भूरा तथा बहुवर्णी

आकार : खनिज प्रिज्मीय क्रिस्टलों के रूप में पाया जाता है। क्रॉस काट–कूटरूपीय षट्कोणीय स्वभाव के होते हैं।

विदलन : दो दिशाओं में (110), 56° एवं 124° के कोणों पर

स्पष्टता : मध्यम से उच्च

अपवर्तनांक : ऊँची n> बालसम

द्विअपवर्तन : साधारण

व्यतिकरण वर्ण : दूसरे दर्जे के

विलोपन : तिर्यक, निम्न (15° से 30°, सामान्यतः 10° से 20°) अनुलंब काटों में विलोप कोण 12° से 30° अनुप्रस्थ काटों में विदलन अनुरेखण पर विलोपन सममित होता है। खनिज छः फलकों वाला होता है।

यमलन : (100) यमल उपस्थित होता है।

6. ऑलीवीन (Olivine)

ऑलीवीन नीसोसिलिकेट/आर्थोसिलिकेट वर्ग में दो खनिजों – फार्स्टेराइट (Forsterite) Mg (SiO_2) और फायलाइट (Fayalite) Fe (SiO_4) का पूर्ण ठोस विलयन होता है और इस वर्ग के सभी खनिज समाकृतिक होते हैं। खनिज रासायनिक रूप से असंतृप्त होने के कारण सामान्य रूप से मुक्त प्राथमिक क्वार्ट्ज के साथ नहीं पाये जाते। आलीवीन उक्त दोनों खनिजों के बीच का खनिज है तथा पूरी श्रृंखला का प्रतिनिधित्व करता है। इनमें स्वतंत्र चतुष्फलकीय क्रिस्टल संरचना होती है। पारदर्शी हरी प्रजाति (पेरीडोट) रत्न के रूप में होता है। फारस्टेराइट कायांतरित डोलोमाईटी चूना पत्थर में मिलता है। सामान्य आलीवीन अल्पसिलिक और न्यूनसिलिक आग्नेय शैलों में (गैब्रो, डोलेराइट, बेसाल्ट, पेरीडोराइट, डयूनाइट ट्राक्टोलाइट आदि में)।

भौतिक गुण

रा. सं. : $(MgFe)_2\,(SiO_4)$

क्रि. स. : विषमलंबाक्ष, बेराइट टाइप

रूप : क्रिस्टल चपटे दीर्घित प्रिज्मीय, प्रायः तीनों प्रिज्म, तीनों पिनेकाइड और पिरामिड संयोजित रहते हैं। प्रायः दानेदार एवं संहत स्थूल रूप में।

रंग : हरे रंग की विभिन्न छटायें, (पीताभ हरा, जैतूनी हरा, धूमिल हरा) बादामी, विरल रूप से पीला (फार्स्टेराइट सफेदी या पीलापन लिये, फायलाइट धूमिल बादामी या काला)

विदलन : लगभग अनुपस्थित

विभग : शंखाभ

चमक : कांचाभ

वर्ण रेखा : रंगहीन

कठोरता : 6.5 से 7

आ. घ. : 3.5 (3.7 से 4.7)

प्रकाशीय गुण

वर्ण : रंगहीन

आकृति : पूर्ण फलकीय, अंशफलकीय या अफलकीय, क्रिस्टल रूपरेखा बहुभुजीय बड़े क्रिस्टल प्रायः पूर्ण फलकीय होते हैं।

विदलन : (100) के समानान्तर अपूर्ण, अनियमित दरारें पायी जाती है।

स्पष्टता : उच्च धनात्मक

व्यतिकरण वर्ण : उच्च द्वितीय क्रम

विलोपन : क्रिस्टल किनारों के समानान्तर पाया जाता है।

महत्वपूर्ण बिन्दु

1. खनिज विज्ञान भूविज्ञान की वह शाखा है जिसमें खनिजों के रासायनिक, भौतिक एवं प्रकाशीय गुणों का अध्ययन किया जाता हैं।

2. विज्ञान की वह शाखा जिसके तहत क्रिस्टलों की प्रकृति, उत्पत्ति, उनकी आंतरिक संरचना एवं बाह्य आकृति का अध्ययन किया जाता है उसे क्रिस्टल विज्ञान कहते हैं।
3. मिलर संकेत का अंक जितना अधिक होगा, फलक द्वारा काटी गयी दूरी उतनी ही कम होगी।
4. क्रिस्टलों का समुदायों में वर्गीकरण का आधार उनके अक्षों की लंबाई का अनुपात एवं कोणीय अनुपातों पर आधारित है।
5. क्रिस्टल समुदायों के वर्गों का वर्गीकरण सममिति तत्त्वों पर आधारित है।
6. समान सममिति तत्त्वों (अवयवों) वाले क्रिस्टल एक ही क्रिस्टल वर्ग में आते हैं।
7. लघुडोम चार फलकों वाली बंद आकृति है जो कि लघुअक्ष के समान्तर रहती है तथा अन्य दोनों अक्षों को काटती है।
8. सभी प्रकार के सिलिकेटों में एक सिलीकॉन परमाणु, ऑक्सीजन के 4 परमाणुओं से जुड़ा रहता है।
9. श्रृंखलित संरचना या इनोसिलिकेट में प्रत्येक SiO_4 चतुष्फलक एक दूसरे से इस प्रकार बंधे रहते हैं कि एक श्रृंखला (Chain) बन जाती है तथा इस श्रृंखला का विस्तार अनिश्चित होता है।
10. त्रिविमीय जाली या टेक्टोसिलिकेट में प्रत्येक चतुष्फलक, दूसरे चतुष्फलक के चारों कोनों (Corner) से जुड़े रहते हैं।
11. 573°C से नीचे बनने वाले क्वार्ट्ज को निम्न क्वार्ट्ज कहते हैं एवं 574°C से 870°C के बीच बनने वाले क्वार्ट्ज को उच्च क्वार्ट्ज कहते हैं।
12. क्वार्ट्ज का रासायनिक संगटन SiO_2 होता है।
13. फेल्सपार समूह में बहुत सदस्य होते हैं। फेल्सपार का सामान्य सूत्र WZ_4O_8 है। यहाँ $W = Na, K, Ca$ और Ba तत्व शामिल है और $Z = Si$ और Al है।
14. एलकलि फेल्सपार जिसमें आर्थोक्लेज मध्यम तापमान फेल्सपार एवं सेनिडिन उच्च तापमान फेल्सपार है।
15. गार्नेट के रासायनिक संगठन का सामान्य सूत्र $R_3^{ii}\ R_2^{iii}(SiO_4)$ हैं। जहाँ R^{ii} = कैल्शियम, मैग्निशियम, लौह या मैंगनीज है एवं R^{iii} = लौह, ऐलुमिनियम, क्रोमियम या टाइटेनियम है।
16. ऐम्फिबोल खनिज द्विश्रृंखला संघटन बनाते हैं तथा Si_2O_{11} की रचना करते हैं।
17. ऐम्फिबोल खनिज ट्रीमोलाइट $Ca_2Mg_5\ Si_8O_{22}(OH)_2$ एवं ऐक्टिनोलाइट $Ca_2(Mg,\ Fe^{+2})_5\ Si_8O_{22}(OH)_2$ का रासायनिक संगटन है।
18. ऐम्फिबोल खनिजों में विदलन प्रिज्म के समान्तर पूर्ण, दो दिशाओं में 56° एवं 124° के कोण पर होता है।
19. डाइऑप्साइड पायरॉक्सीन खनिज का रासायनिक संगटन $Ca\ (Mg, Fe)\ Si_2O_6$ होता है।
20. पायरॉक्सीन में विदलन दो दिशाओं में 87° एवं 93° के कोणों पर उत्तम होता है।
21. पायरॉक्सीन, एम्फीबोल से थोड़े भारी होते है।
22. माइका समूह के ज्यादातर खनिज शल्कित (foliated) होते हैं।
23. माइका समूह की चमक मुक्ता होती है।

अभ्यासार्थ प्रश्न

वस्तुनिष्ठ प्रश्न

1. क्वार्ट्ज की कठोरता कितनी होती है –
   (अ) 5 (ब) 6
   (स) 7 (द) 8
2. ओर्थोक्लेज का रंग कैसा होता है –
   (अ) सफेद (ब) हरा
   (स) भूरा (द) मांस जैसा लाल
3. अष्टफलक का मिलर संकेत क्या है –
   (अ) 111 (ब) 100
   (स) 110 (द) 210
4. काला अभ्रक किसे कहते हैं –
   (अ) मस्कोवाइट (ब) बायोटाइट
   (स) सेरीसाइट (द) फुकसाइट
5. विदलन प्रायः नहीं होता है –
   (अ) क्वार्ट्ज में (ब) फेल्सपार में
   (स) माइका में (द) एम्फिबोल में
6. जरकन टाइप वर्ग में कितने सममिति तल होते हैं –
   (अ) 7 (ब) 5
   (स) 4 (द) 3
7. डोम आकृति किस क्रिस्टल समुदाय से संबंधित है –
   (अ) समलंबाक्ष (ब) विषमलंबाक्ष
   (स) षट्कोणीय (द) चतुष्कोणीय

अतिलघुत्तरात्मक प्रश्न

1. षट्कोणीय समुदाय में कितने अक्ष होते हैं?
2. विषमलंबाक्ष समुदाय के अक्षों का अनुपात लिखिये।
3. गैलेना टाइप वर्ग में त्रिमुखी सममिति अक्ष कितने होते हैं?
4. घन किसे कहते हैं?
5. अष्टफलक क्या होता है?

6. ऑलीवीन किस सिलिकेट संरचना से संबंधित है?
7. क्वार्ट्ज में कौनसा विभंग होता है?
8. फेल्सपार की कठोरता कितनी होती है?
9. बैंगनी रंग के क्वार्ट्ज का क्या नाम है?
10. माइक्रोक्लीन का रंग कैसा होता है?
11. एलबाइट का रासायनिक संघटन लिखो।
12. हाइपरस्थीन किस खनिज समूह से संबंधित है?
13. हॉर्नब्लेन्ड का कौनसा खनिज समूह है?
14. ऑलीवीन का रासायनिक संघटन लिखो।
15. पायरॉक्सीन में व्यतिकरण वर्ग किस क्रम के होते है?

लघुत्तरात्मक प्रश्न

1. प्रवण अक्ष क्या होती है?
2. अर्धप्रिज्म से आप क्या समझते है?
3. बेराइट टाइप वर्ग के सममिति अवयव लिखिये।
4. जरकन टाइप वर्ग के सममिति अक्ष बताइये।
5. किन–किन क्रिस्टल समुदायों में अक्ष आपस में समकोण बनाते हैं।
6. द्विषट्कोणीय द्विपिरैमिड क्या है?
7. दीर्घडोम क्या होता है?
8. पिरैमिड क्या होता है?
9. क्वार्ट्ज के प्रकाशीय गुण लिखो।
10. फेल्सपार के भौतिक गुण लिखो।

निबंधात्मक

1. जरकन टाइप वर्ग के सममिति अवयवों को लिखिये एवं इसकी सामान्य आकृतियों का वर्णन करो।
2. पायरॉक्सीन खनिज वर्ग के सदस्यों का नाम एवं रासायनिक संगटन लिखो। उनके भौतिक एवं प्रकाशीय गुण भी बताइये।
3. प्रथमक्रम एवं द्वितीयक्रम के चतुष्कोणीय प्रिज्मों से आप क्या समझते है, चित्र सहित समझाइये।
4. सिलिकेटों की संरचना वर्गीकरण सहित बताइये।
5. गैलेना टाइप वर्ग के सममिति अवयवों को चित्र सहित समझाइये।

उत्तरमाला : 1 (स) 2 (द) 3 (अ) 4 (ब) (5) अ 6 (ब) 7 (ब)

अध्याय – 3
शैल विज्ञान
(Petrology)

शैल विज्ञान के अंर्तगत शैलों के निर्माण उनके प्रकार, मिलने की अवस्थाओं, संघटन, गठन, एवं संरचना आदि का अध्ययन करते हैं। इन कारणों से शैल विज्ञान भूविज्ञान का एक मूल अंग है। जैसा कि आपको मालूम है शैलें तीन प्रकार की होती है। मैग्मा एवं लावा से निर्मित होने वाली आग्नेय शैलें, अवसादों के समुद्र में जमने से बनने वाली अवसादी शैलें एवं इन शैलों को उचित दाब एवं ताप मिलने पर आंशिक या पूर्ण रूप से खनिजों के पुनः क्रिस्टलित होने वाली शैलों को कायांतरित शैलें कहते है। इन तीनों प्रकार की शैलों का अध्ययन एवं वर्णन हम इस पाठ के अंर्तगत करेंगे।

आग्नेय शैल विज्ञान (Igneous Petrology)

मैग्मा की परिभाषा, उत्पत्ति एवं संघटन
(Definition, Origin & Composition of Magma)

मैग्मा शब्द गर्म, स्थूल, गाढ़ा दलिया जैसा द्रव्यमान (mass) के लिये प्रयुक्त किया जाता है। यह तप्त गतिशील, आंशिक या पूर्णतः द्रवीभूत सिलिकेट संघटन का शैल पदार्थ है जिसमें शैल खंड और निलंबित क्रिस्टल तथा वाष्पशील पदार्थ और गैसें घुली रहती है। मैग्मा जमीन के काफी नीचे रहता है। धरती की सतह पर आने पर इसके वाष्पशील पदार्थ और गैसें निकलकर वायुमण्डल में विलिन हो जाती है। सतह पर पहुंचे इस मैग्मा को ही लावा कहते हैं। मैग्मा की उत्पत्ति का अंदाजा भू–भौतिकी और प्रावार (mantle) शैलों से प्राप्त सूचनाओं एवं कुछ कल्पनाओं पर आधारित है। भूपर्पटी एवं प्रावार लगभग ठोस अवस्था में है। परन्तु स्थानीय रूप से कुछ भागों में ताप, दाब अथवा रासायनिक संघटन में उल्लेखनीय क्षोभ उत्पन्न हो जाने से वहाँ की शैलें पिघल जाती हैं और इस तरह मैग्मा की उत्पत्ति हो जाती है। आग्नेय शैलों के भौतिक, रासायनिक स्थानिक, और कालानुक्रमी गुण धर्मों में उनके निर्माण के लिये उत्तरदायी भू–वैज्ञानिक प्रक्रमों के कारण पर्याप्त विविधता पाई जाती है। आग्नेय शैलों का निर्माण मैग्मा एवं लावा के शीतलन एवं पिंडन (solidification) से होता है। इसलिये मैग्मा के भौतिक और रासायनिक गुण–धर्मों का सामान्य ज्ञान होना आवश्यक है। मैग्मा का प्रत्यक्ष अवलोकन असंभव है किन्तु भौतिक और भौतिक–रसायन संबंधी हमारा ज्ञान, ज्वालामुखी क्रिया के अवलोकन एवं अन्वेषण पर आधारित तर्क संगत निष्कर्षों, शैलकर खनिजों के भौतिक और रासायनिक लक्षणों तथा शैलों और उनके द्रवों तथा संश्लेषित और प्राकृतिक सिलिकेट निकायों के अध्ययन, पर आधारित है।

मैग्मा के गुण–धर्म (Character of Magma)

लावा का तापमान उसके तापदीप्ति वर्ण के मान के आधार पर निर्धारित किया जाता है। बेसाल्टीक लावा का तापमान उदगार के समय 1100° ± 100°C होता है। हवाई द्वीप में किलोआ ज्वालामुखी की लावा झील में सतह के तापमान की तुलना में 10 मीटर की गहराई पर तापमान 3000°C से अधिक था। इसी प्रकार लावा फुहार का तापमान 10 मीटर गहराई के तापमान से केवल 50°C कम था। भू–भौतिक रसायन शालाओं में प्रयोगों द्वारा निर्धारित विभिन्न संघटनों के लिक्विड्स तापमान नीचे दर्शाए गये हैं–

बेसाल्ट – लगभग 1200°C

एन्डेसाइट – लगभग 1050°C

रायोलाइट – लगभग 850°C (मापना सामान्यतः कठिन)

थोलाइटी बेसाल्ट (हवाई द्वीप) – 1150° से 1225°C

बेसाल्टीक ऐन्डेसाइट (पेरिक्यूटिन ज्वालामुखी मैक्सिको) – 1020° से 1110°C

रायोलाइट लावा व प्यूमिस (टो.पो.न्यूजीलैण्ड) – 735° से 890°C

रायोलाइट (केलिफोर्निया) – 790° से 820°

मैग्मीय गैसें और वाष्पशील पदार्थ
(Magmatic gases and volatile matter)

सभी मैग्माओं में मैग्मज गैसें और वाष्पशील पदार्थ घुले रहते हैं। उच्च दाब पर मैग्मा में सन्निहित जल और वाष्पशील पदार्थ की मात्रा कई प्रतिशत हो सकती है किन्तु मैग्मा के सतह की ओर उठने के साथ दाब क्रमशः कम होता जाता है तथा विलीन गैसों का अपविलयन होने लगता है। इस पदार्थ में लगभग 90 प्रतिशत भाग जल का होता है इस जल के अलावा सल्यूरेटेड हाइड्रोजन, हाइड्रोफ्लुओरिक अम्ल, हाइड्रोक्लोरिक अम्ल, कार्बन मोनोऑक्साइड कार्बन डाइऑक्साइड, सल्फरडाइऑक्साइड, हाइड्रोजन, नाइट्रोजन और ऑक्सीजन पाया जाता है। इन वाष्पशील पदार्थों की मात्रा मैग्मा की श्यानता को मंद और तापमान को कम कर सकती है।

श्यानता (Viscosity)

सिलिकेट कांच (पिंडित द्रव) के अध्ययन से यह ज्ञात हुआ है कि क्रिस्टलन के पूर्व मैग्मा में सिलिकेट खनिजों के समान ही सिलिका आक्सीजन–एलुमिना जाल पाये जाते हैं, किन्तु वे अविन्यासित होते हैं। सिलिका और एलुमिना की समृद्धि के साथ इनके बहुलकीकरण के कारण शैल की श्यानता बढ़ती है। विलेयित जल बहुलकीकरण घटाता है अतः उसकी उपस्थिति से श्यानता कम होती है। Na और K का श्यानता पर जल के समान प्रभाव होता है।

रायोलाइटी लावा बेसाल्टी लावा की तुलना में अधिक श्यान होता है। Na, Ca, Mg, और Fe की उपस्थिति श्यानता कम करती है। एक ही संघटन के मैग्मा में तापमान कम होने तथा दाब बढ़ने से निर्जल मैग्माओं की श्यानता में वृद्धि होती है। जल और वाष्पशील पदार्थों की मात्रा में वृद्धि से मैग्मा की श्यानता कम होती है।

घनत्व (Density)

मैग्माओं का घनत्व समतुल्य क्रिस्टलित शैलों की तुलना में 10 प्रतिशत (बेसाल्टी मैग्मा 2.70 से 2.85, ऐन्डेसाइटी मैग्मा 2.40–2.57 और ग्रेनाइटी मैग्मा 2.33 से 2.41) कम होता है।

रासायनिक गुण–धर्म (Chemical character)

मैग्मा के संघटन का अनुमान परोक्ष और अपरोक्ष दोनों विधियों से लगाया जा सकता है। लावा, जो वाष्शील पदार्थ हीन मैग्मा है, रासायनिक विश्लेषण के लिये सुगमता से उपलब्ध है। आग्नेय शैल यद्यपि लावा मैग्मा के पिंडित रूप है किन्तु उनके संघटन के आधार पर यह अनुमान लगाना कठिन है, कि उनकी उत्पत्ति जिस मूल मैग्मा से हुई है उसका संघटन क्या था? लावाओं और शैलों के रासायनिक विश्लेषणों के आधार पर यह कहा जा सकता है कि इसमें दो वर्गों के अवयव पाये जाते हैं।

स्थिर अवयव जो लगभग सभी मैग्माओं में न्यूनाधिक मात्रा में पाये जाते हैं। SiO_2, Al_2O_3, CaO, FeO, MgO, Fe_2O_3, K_2O, Na_2O तथा TiO_2 मुख्य स्थिर घटक हैं, तथा स्थिर घटकों का 98 प्रतिशत से अधिक भाग इन्हीं का होता है। मैग्मा में अस्थायी अवयवों की उपस्थिति आवश्यक नहीं है वाष्पशील तत्व और यौगिक इस वर्ग में आते हैं।

भूपर्पटी का रासायनिक संघटन
(Chemical composition of crust)

भूपर्पटी का ऊपरी भाग प्रायः 15 से 16 किमी की गहरायी तक आग्नेय एवं कायांतरित शैलों से निर्मित है। इनके ऊपर एक पतला आवरण अवसादी शैलों का होता है। आग्नेय शैलों का भाग लगभग 95%, कायांतरित शैलों का 4% एवं अवसादी शैलों का हिस्सा 1% होता है। भूपर्पटी में उपस्थित आग्नेय, अवसादी और उसके आधार पर संगणित भूपर्पटी के संघटन के बारे में प्रमुख भू–रासायनिकों (क्लार्क, वाशिंगटन, फुग्ट, सेडरहोम, गोल्डश्मिट) में मत भिन्नता है। आग्नेय शैलों का क्लार्क और वाशिंगटन द्वारा प्रतिपादित औसत संघटन नीचे सारणी में दिया गया हैं। यही मैग्मों का औसत संघटन है।

SiO_2	–	59.12
TiO_2	–	1.05
Al_2O_3	–	15.34
Fe_2O_3	–	3.08
FeO	–	3.80
MnO	–	0.124
MgO	–	3.49
CaO	–	5.08
Na_2O	–	3.84
K_2O	–	3.19
H_2O	–	1.15
P_2O_5	–	0.30
CO_2	–	010
योग	–	99.664

आग्नेय शैलों में यद्यपि सभी ज्ञात तत्व पाये जाते हैं, किन्तु केवल 9 यथा ऑक्सीजन (46.95%) सिलिकन (27.72%), एल्यूमिनियम (8.13%), लोहा (5.01%), कैल्शियम (3.63%), सोडियम (2.85%), पोटेशियम (2.60%), मैग्निशियम (2.09%), तथा टाइटैनियम (10.63%) सर्वसाधारण माने जा सकते है। यह आपस मे मिलकर समस्त 99.25% भाग बनाते हैं। उनमे से केवल (आक्साइड के रूप में) SiO_2, Al_2O_3, FeO, Fe_2O_3, MgO, CaO, K_2O, Na_2O के द्वारा अधिकतम भाग निर्मित होता है, फिर भी कुछ दुर्लभ तत्वों जैसे हाइड्रोजन फ्लोरिन, क्लोरिन,

गंधक आदि उनके वाष्पशील यौगिकों का शैल की रचना में विशेष महत्व होता है।

मैग्मा का क्रिस्टलन
(Crystallisation of Magma)

मैग्मा के संघटन के बारे में हमें कुछ ज्ञान प्राप्त हो चुका है। मैग्मा 1350–1400°C से ऊपर द्रव अवस्था में रहता है। जैसे ही इसके तापमान में गिरावट आती है तो शीतलन शुरू हो जाता है। शीतलन की प्रक्रिया के साथ ही क्रिस्टलों का बनना प्रारंभ हो जाता है। इस प्रक्रम को ही मैग्मा का क्रिस्टलन कहते हैं। क्रिस्टलन को हम किसी विलयन के अवक्षेपण या पातन (precipitation) प्रक्रम की तरह समझ सकते हैं। अगर मैग्मा के अंदर क्रिस्टलन के समय कोई बाधा न हो तो यह क्रिस्टल लगातार छोटे से बड़े होते जाते हैं। जैसे ही बेसाल्टिक मैग्मा का तापमान 1350–1400°C से नीचे आता है ऑलीवीन $\{(Mg,Fe)_2 SiO_4\}$ खनिजों का क्रिस्टलन शुरू हो जाता है। इसका मतलब मैग्नीशियम एवं लौह युक्त यानि फेरो मैग्नीशियम खनिजों का निर्माण शुरू हो जाता है। जैसे जैसे मैग्मा का शीतलन होता है आलीविन में मैग्नीशियम से लोहे की मात्रा बढ़ती जाती है। यह संघटनात्मक बदलाव आलिविन में परतों के रूप में विद्यमान रहता है जिसे मण्डलन कहते है। मैग्मा का तापमान कुछ और कम होने पर ऑलिविन के साथ दूसरे खनिजों का निर्माण शुरू हो जाता है। जैसे पाइराक्सीन, एम्फीबोल आदि। जैसे ही क्रिस्टल कुछ बड़े बनते है वह गुरूत्वाकर्षण के कारण नीचे बैठना शुरू हो जाते हैं। इस प्रक्रम को गुरूत्वीय पृथक्करण (gravitational segregation) या गुरूत्वीय विभेदन (gravitational differentiation) कहते हैं। ऑलिविन एवं पॉइराक्सीन के फैरोमैग्नीशियम खनिजों का मैग्मा से अलग होने पर शेष मैग्मा के रासायनिक संघटन में कैल्शियम, सोडियम, पोटेशियम एवं एल्यूमिनियम सघनता (concentration) बढ़ जाती है जिसके कारण नये खनिजों का निर्माण शुरू हो जाता है। इस तरह मैग्मा के संघटन में क्रमिक बदलाव लगातार होता रहता है जिसे प्रभाजीकरण (fractionation) या प्रभाजी क्रिस्टलन (fractional crystallisation) कहते हैं। जैसे–जैसे मैग्मा ठंडा होता रहता है उसमें निर्मित होने वाले खनिजों का रासायनिक संघटन एक अनुक्रम में बदलता रहता है। इस तरह खनिजों के निर्माण के अनुक्रम को कनाड़ा के खनिज वैज्ञानिक एन.एल.बोवेन ने बहुत अच्छी तरह समझाया जिसे बोवेन की अभिक्रिया श्रृंखला (Bowen's reaction series) के नाम से जानते हैं। उन्होंने अपनी प्रयोगशाला में मैग्मा के क्रिस्टलीकरण पर प्रयोग किया। बोवेन ने मैग्मा के शीतलन द्वारा खनिजों की एक श्रृंखला प्राप्त की इस श्रृंखला को ही बोवेन की अभिक्रिया श्रृंखला कहते हैं जो कि नीचे दर्शायी गयी है।

उपरोक्त श्रृंखला के खनिजों का भिन्न–भिन्न अनुपातों में संयोग होने पर विभिन्न प्रकार की आग्नेय शैलों का निर्माण होता

है। जैसे ऑलिविन की किसी शैल में अधिकता होने से ड्यूनाइट (Dunite) का निर्माण होता है। ऑलिविन के साथ पाइराक्सीन खनिज के आने पर वह शैल पेरीडोटाइट के नाम से जानी जाती है।

अग्निजात खनिज (Pyrogenetic minerals)

मैग्मा का शीतलन और क्रिस्टलन (crystallisation) जटिल प्रक्रम है, किन्तु खनिजों के क्रिस्टलन को चार भागों में बाँटा जा सकता है–

1. ओर्थो मैग्मीय (Ortho Magmatic)
2. पैग्मेटाइटी (Pegmatitic)
3. वाष्प खनिजीय (Pneumatolite)
4. उष्णजलीय (Hydrothermal)

1. ओर्थो मैग्मीय दशा में मैग्मा के मूल घटक विद्यमान रहते हैं। खनिजों का क्रिस्टलन लगभग 600° से 1300°C के बीच होता है। शैल के सभी आवश्यक और गौण खनिज इसी समय क्रिस्टलित होते हैं। ओर्थो मैग्मीय अवस्था में क्रिस्टलित खनिज अग्निजात/मैग्मीय अथवा आग्नेय कहलाते है।
2. पेग्मेटाइटी अवस्था में क्रिस्टलन 400° से 600°C के बीच होता है। ओर्थो मैग्मीय अवस्था का अवशिष्ट द्रव संलग्न शैलों में प्रवेश कर पेग्मेटाइटों की रचना करता है।
3. वाष्प खनिजीय अवस्था में तापक्रम पेग्मेटाइटी अवस्था से थोड़ा अधिक होता है। इस अवस्था में जल में अनेक तत्व विलीन रहते हैं, जो शैल के संस्पर्श में उनसे अभिक्रिया कर

टूरमलीन, बेरिल आदि खनिजों की रचना करते हैं। अनेक धात्विक निक्षेप भी इस अवस्था में उत्पन्न होते हैं।

4. उष्ण जलीय प्रक्रम में द्रव्य वाष्पशील अवस्था के समान ही होता है किन्तु तापमान अपेक्षाकृत कम होता है तथा ये द्रव्य अभिक्रिया के समान पृथ्वी सतह के अधिक पास तक परिवर्तन करने में समर्थ होते हैं। मैग्मा में सिलिका सबसे अधिक मात्रा में उपस्थित घटक है। आग्नेय खनिजों में क्वार्ट्ज और सिलिकेट खनिज सबसे मुख्य होता है।

5. सिलिकेट खनिजों की संरचना ज्ञात होने के पूर्व सिलिकेट खनिजों का वर्गीकरण सिलिसिक अम्लों के सिद्धांत के आधार पर किया जाता था। सिलिकेट खनिजों का वर्गीकरण संरचना के आधार पर किया जाता है। सैकड़ों सिलिकेट खनिजों में से आग्नेय शैलों में आवश्यक खनिजों के रूप में उपस्थित सिलिकेट खनिजों की संख्या बहुत कम है। प्रमुख आग्नेय खनिज वर्ग और उनकी सिलिकेट संरचना इस प्रकार है–

सिलिकेट संरचना	**खनिज**
स्वतन्त्र चतुष्फलकीय समूह	आलीवीन
एकल श्रंखला संरचना	पायराक्सीन
द्वि श्रृंखला संरचना	एम्फीबोल
त्रिविम जाली संरचना	फेल्सपार, क्वार्टज, फेल्सपेथाइड
चादरवत संरचना	माइका

आग्नेय शैलों में शैलकर खनिजों का वर्गीकरण सिलिका की मात्रा के यथेष्ट होने या कम होने की प्रवृत्ति के अनुसार दो वर्गों में किया जा सकता है।

निम्न सिलिकीयन खनिज	**उच्च सिलिकीयन खनिज**
ल्यूसाइट	ओर्थोक्लेज
नेफलिन	अल्बाइट
ऐनेल्साइट	एनओर्थोक्लेज
ऑलीविन	विषमलंबाक्ष पाइराक्सीन
बायोटाइट	ओजाइट
	ईज़िरिन
	हार्नब्लेंड

आग्नेय शैलों के रूप
(Forms of igneous rocks)

आग्नेय शैलें मैग्मा के जमने से बनती है। मैग्मा पृथ्वी की सतह के नीचे द्रवीभूत शैल पदार्थ है जिसमें गैसें और वाष्पशील पदार्थ घुले रहते हैं। मैग्मा अपनी उत्पत्ति के स्थान से पृथ्वी की सतह की ओर उठता है जिस कारण उसके तापमान और दाब में कमी होती है और वह क्रमशः जमने लगता है। मैग्मा पृथ्वी की सतह के नीचे ही जमकर ठोस शैल की रचना कर सकता है अथवा ज्वालामुखी उद्‌गार के रूप में पृथ्वी की सतह के ऊपर आ सकता है। प्रत्येक ज्वालामुखी उद्‌गार के साथ विशाल भूमिगत क्रिया भी होती है। भूपृष्ट पर ज्वालामुखी क्रिया से लावा प्रवाह उत्पन्न होते हैं। लावा के ठंडा होने से ज्वालामुखी शैलों की रचना होती है। भूपटल पर निर्मित इन आग्नेय राशियों को वहिर्वेधी और भूमिगत संपिडित शैल राशियों को अंतर्वेधी (intrusive) या अंतःक्षिप्त (injected) शैलें कहा जाता है। अंतर्वेधी शैल, अनुवर्त्ती अनाच्छादन (denudation), या पृथ्वी की हलचलों से ही भूपटल पर दिखाई देती हैं। आग्नेय शैल राशियों के रूप मैग्मा के रासायनिक संघटन, तापक्रम, श्यानता, प्रवाह की गति, तथा जिन संस्तरों में वे अंतर्वेधित हो रहे हैं, उनके भौतिक और रासायनिक लक्षणों पर निर्भर होते हैं। आग्नेय शैलों के विभिन्न रूपों का वर्णन नीचे किया जा रहा है।

वहिर्वेधी आग्नेय शैलों के रूप
(Forms of extrusive igneous rocks)

लावा प्रवाह (Lava flow)

आग्नेय शैलों के बहिर्वेधी रूपों का निर्माण भूपटल पर ज्वालामुखी उद्‌गार द्वारा निर्मित होता हैं। लावा प्रवाह का रूप मैग्मा की तरलता रासायनिक संघटन एवं उसके तापमान पर निर्भर करता है। अल्पसिलिक लावा अधिक तरल होने की वजह से बहुत दूर तक प्रवाहित होते हैं जैसे बेसाल्ट जबकि अधिसिलिक लावा अधिक श्यानता होने के कारण उद्‌गार स्थल के आसपास ही ढेर बनाते हैं जैसे रायोलाइट।

ज्वालामुखी उद्‌गार लंबी संकरी दरारों में से विदर उद्‌गार अथवा विसवियस या एटना की भांति शंकु से होता है। विदर उद्‌गार से प्रायः सपाट (tabular) लावा प्रवाह उत्पन्न होते हैं। प्रवाहों की मोटाई, लंबाई और चौड़ाई में अलग–अलग स्थानों पर पर्याप्त भिन्नता पाई जाती है।

ज्वालामुखी के शांत उद्‌गारों में केवल लावा प्रवाह उत्पन्न होते हैं किंतु यदि उद्‌गार में विस्फोटी क्रिया का भी समावेश होता है तब ज्वालामुखी क्षिप्त (pyroclastic) पदार्थ भी पर्याप्त मात्रा में उत्पन्न होते हैं। ज्वालामुखी के समय विस्फोट के कारण भूपर्पटी छिन्न भिन्न होकर वायुमंडल में प्रक्षिप्त हो जाती है इसी के साथ गैसों और वाष्पशील पदार्थ के तेजी से बाहर निकलने के कारण लावा की फुहारें भी वायुमंडल में छिटक जाती है। यह सभी पदार्थ हवा में ठंडे होकर ज्वालामुखी शंकु के चारों और परत के रूप में एकत्रित हो जाते हैं। इस पदार्थ को पाइरोक्लास्ट

(pyroclastic) या ज्वालाश्मचयी (agglomerate) कहते हैं। इसमें उपस्थित खंडों का आकार बड़े कणों से लेकर धूल कण के बराबर हो सकता है। वे छोटे अंगार खंड, जिनका आकार अखरोट एवं मटर के बीच का होता है और जो बड़े खण्डों की अपेक्षा अधिक दूर तक उड़ जाते हैं, उन्हें ज्वालामुखी अश्मक (Lapilli) कहते हैं। सबसे सूक्ष्म कण धूल सदृश्य होते हैं जिसे ज्वालामुखी धूलि (dust) कहते हैं तथा यह ज्वालामुखी पर्वत के आस–पास निक्षेपित हो जाती है। उनके दृढ़ीभवन से स्तरें बन जाती हैं जो ज्वालामुखी टफ (tuff) कहलाती है। इसके लक्षण कई बार आग्नेय शैलों की अपेक्षा अवसादी शैलों से अधिक मिलते हैं।

ज्वालामुखी ग्रीवा (Volcanic neck)

ज्वालामुखी क्रेटर भूपृष्ट से नीचे स्थित मैग्माकक्ष से लगभग बेलनाकार मार्ग द्वारा जुड़ा रहता है। ज्वालामुखी क्रिया समाप्त हो जाने के बाद इस ग्रीवा मार्ग में मैग्नीय शैल अथवा पायराक्लास्टी पदार्थ जमा हो जाता है। जब इन क्षेत्रों में लावा प्रवाह और क्रेटर के पूर्ण अपरदन के फलस्वरूप यह ग्रीवा अनाच्छादित प्रदेशों में गुंबद के रूप में पायी जाती है। इस गुम्बदाकार आकृति को ही ज्वालामुखी ग्रीवा कहते हैं।

ज्वालामुखी शंकु के शीर्ष भाग के केन्द्र में एक वृत्ताकार गर्त उपस्थित रहती है। 1 कि.मी. से कम व्यास का गर्त क्रेटर (crater) और अधिक व्यास का गर्त काल्डेरा (caldera) के नाम से जाना जाता है।

अंतर्वेधी आग्नेय शैलों के रूप

(Forms of intrusive igneous rocks)

पृथ्वी की सतह के नीचे भूपर्पटी के स्तरों के बीच अंतःक्षिप्त मैग्मा के संपिंडन से निर्मित आग्नेय राशि के स्वरूप अंतर्वेधी स्वरूप कहे जाते हैं। यह रूप प्रदेश की भू वैज्ञानिक संरचना एवं संस्तरण तलों के संरचनात्मक लक्षणों (मुख्यतः अवलित, अल्पवलित अथवा वलित संस्तर) तथा शिष्टाभता आदि संरचनात्मक तलों से अंतर्वेधी शैल के संबंध पर निर्भर होते हैं। इस संबंध में दो प्रकार की भू–वैज्ञानिक संरचनाऐं मानी जा सकती है। पहले वे विशाल प्रदेश जहाँ संस्तर तल प्रायः समतल और अवलित हैं। ऐसे क्षेत्रों में तनाव के कारण उर्ध्वाकार विभंग उत्पन्न हो जाते हैं। दूसरे वे प्रदेश जहाँ शैल अत्यधिक वलित और संपीडित हो गये हैं। इसी प्रकार अंतर्वेधी राशि के क्षेत्रीय शैल के संस्तरण से संबंध के आधार पर भी वर्गीकरण किया जा सकता है। यदि मैग्मीय राशि का अंतक्षेपण संस्तर तलों के समानान्तर हुआ है तब शैल रूप अनुस्तर (concordant) और यदि मैग्मीय शैल क्षेत्रीय शैलों के संरचनात्मक तलों को काटते हुए अंतःक्षेपित हुआ है तब इस प्रकार के रूप को अननुस्तरी (transgressive) या अतिक्रामी (discordant) कहा जाता है। प्रमुख अंतर्वेधी राशियों का प्रादेशिक शैल संरचना और अंतःक्षेपण की प्रकृति के आधार पर वर्गीकरण तालिका में दर्शाया गया है (तालिका 3.1) ।

अवलित प्रदेशों में रूप

(Forms of Non-folded Provinces)

सिल (Sill)

'सिल' मैग्मीय शैल का अपेक्षाकृत पतला सपाट स्तर है जो प्रादेशिक शैलों के प्रमुख संरचना तलों जैसे संस्तरण तल, शिस्टाभता, विषम विन्यास आदि के समानान्तर मैग्मा (चित्र 3.1) के अंतःक्षेपण से निर्मित होता है। यह प्रायः अवलित संस्तरणों में पाई जाती है। सिल के ऊपरी और निचले तल समानान्तर होते हैं। मोटाई भी समान होती है, किन्तु मैग्मा के स्रोत से दूरी के साथ ये क्रमशः पतली होती है। सामान्यतः मोटाई लंबाई की तुलना में 1/10 या इससे कम रहती है। अधिक विस्तीर्ण 'सिल' के निर्माण के लिये मैग्मा की अधिक तरलता आवश्यक है इसलिए अधिकांश विस्तृत सिलें डोलेराइट तथा बेसाल्ट की होती है।

तालिका 3.1 : अंतर्वेधी आग्नेय शैलों के रूप

प्रादेशिक संरचना संस्तरण तल से सम्बन्ध	अवलित अथवा अल्पवलित क्षेत्रों में	अधिक वलित
अनुस्तरी (Concordant)	सिल (Sill)	फैकोलिथ (Phacolith)
	लैकोलिथ लोपोलिथ	अनुस्तरी महास्कंध (Batholith)
अननुस्तरी/अतिक्रामी (Discordant)	डाइक, शंकु चादर, ज्वालामुखी ग्रीवा, वलय भित्ति	अननुस्तरी महास्कंध (Batholith) स्कंध, वृत स्कंध
	वलय डाइक	कोनोलिथ

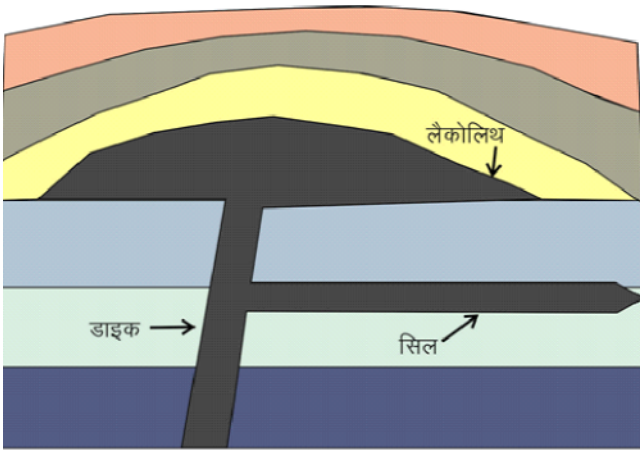

चित्र 3.1 : सिल, डाइक एवं लैकोलिथ

लैकोलिथ (Laccolith)

लैकोलिथ' उल्टे कटोरे के समान आग्नेय शैल रूप है जिनका निचला तल लगभग समतल तथा ऊपरी सतह उत्तल (चित्र 3.1) होता है। इस रूप के निर्माण के लिये यह आवश्यक है कि इस स्तर पर आने वाले मैग्मा की मात्रा इतनी अधिक होती है कि वह पार्श्वों में फैलकर समायोजित नहीं हो पाता है। यह स्थिति एसिडिक मैग्माओं में अधिक पाई जाती है क्योंकि इनकी अधिक श्यानता के कारण वे पार्श्वों में तेजी से नहीं फैल पाते हैं इस कारण गुंबद का आकार ले लेते है। लैकोलिथ का व्यास 1 से 8 कि.मी. तक होता है और अधिकतम मोटाई 1000 मीटर तक होती है। लैकोलिथ के शीर्ष में विभंग उत्पन्न होने पर इससे एक बेलनाकार पिंड ऊपर की ओर निकल जाता है। इस रूप को 'बिस्मैलिथ' (Bysmalith) नाम दिया गया है।

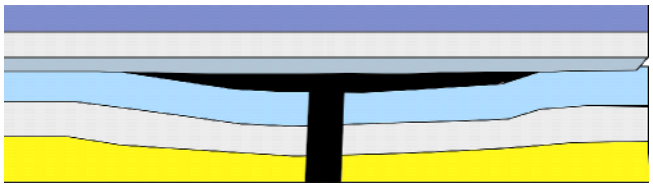

चित्र 3.2 : लोपोलिथ

भित्ती (Dyke)

'डाइक' सँकरी दीर्घित दीवार के समान समानान्तर पार्श्वों वाली आग्नेय राशि है जो आक्रांत शैल के संस्तरों एवं अन्य संरचना तलों को चीरती हुई उर्ध्वाकार (चित्र 3.1) अथवा नत दरारों में अंतर्वेधन से बनती है। इसकी मोटाई कुछ सेन्टीमीटर से लेकर 1 मीटर से अधिक हो सकती है परन्तु ज्यादातर कि मोटाई 3 मीटर से कम होती है। इनकी लंबाई कुछ मीटर से लेकर कई कि.मी तक हो सकती है। किसी भी क्षेत्र में लगभग सभी डाइक समानान्तर अथवा केन्द्र के चारों ओर अरीय होती है। यह पूर्व निर्मित दरार में अंतर्वेधित होती है।

लोपोलिथ (Lopolith)

'लोपोलिथ' यूनानी लोपास (lopas) शब्द से बना है जिसका अर्थ ''प्याला'' होता है। यह विशाल मसूराकार, ऊपरी केन्द्रीय भाग में प्याली के समान धंसी हुई अनुस्तरी आग्नेय (चित्र 3.2) राशि है जो अवलित अथवा अल्पवलित संस्तर वाले क्षेत्रों में पाई जाती है। इनका व्यास सैकड़ों किलोमीटर तक हो सकता है। मोटाई व्यास के दसवें से बीसवें भाग तक होती है।

वलय भित्ति (Ring dyke)

वलय भित्ति चापाकार दृश्यांश वाली ऐसी भित्ति जो पूर्णतया विकसित होने पर संपूर्ण वलयाकार दृश्यांश बनाये तथा नति तीक्ष्ण एवं केन्द्र से बाहर की ओर होती है वलय भित्ति कहलाती है। इनकी त्रिज्या 4–5 कि.मी. तक हो सकती है। भित्तियों के जटिल पुंजों में भित्तियाँ आपस में समानान्तर होती है तथा प्रादेशिक शैल के आवरण भित्तियों को एक दूसरे से अलग करते हैं। वलय भित्तियों का निर्माण पृथ्वी के शंकु आकार के खंडों के मैग्मा कक्ष में निमज्जन के फलस्वरूप उसके चारों और उत्पन्न दरारों में मैग्मा भर जाने से होता है।

शंकु चादर (Cone sheet)

वलय भित्ति के समान चापाकार आकृति वाली भित्तियाँ जो वलय के केन्द्र की ओर 30° से 40° तक नति दर्शाती है शंकु चादर कहलाती है। यह शंकु चादर जटिल संघ के रूप में पाये जाते हैं यह माना जाता है कि इनकी उत्पत्ति उल्टे शीर्ष वाले शंकु आकार के विदरों में मैग्मा के आपूर्णन से हुई है।

वलित प्रदेशों में रूप (Forms of folded provinces)

वलित प्रदेशों में प्रादेशिक शैलों की जटिल संरचना और विभंग तलों की अनियमितता के कारण इन प्रदेशों में आग्नेय अंतर्वेधी राशियों के रूप भी अपेक्षाकृत जटिल होते हैं। इन रूपों में फेकोलिथ और बेथोलिथ प्रमुख हैं। इनके अतिरिक्त भी अनेक रूप पाये जाते हैं।

फेकोलिथ (Phacolith)

यह वक्र उभयोत्तल लेन्स आकार की आग्नेय राशि है जो

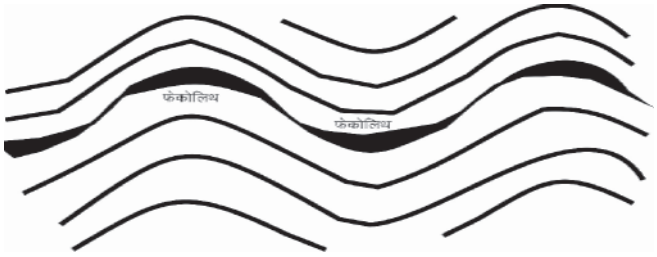

चित्र 3.3 : फैकोलिथ

वलन में संस्तरण के समानान्तर वलनीय शीर्ष व द्रोणियों में निर्मित होते हैं। वलन के शीर्ष व द्रोणियों पर दुर्बलता और तनाव के क्षेत्र बन जाते हैं तथा मध्यवर्ती भुजायें संपीडित हो जाती है इसलिये अंतर्वेधन के समय मैग्मा शीर्ष और द्रोणियाँ (चित्र 3.3) में एकत्रित होने की चेष्टा करता है तथा इस तरह फैकोलिथ की रचना हो जाती है।

महास्कंध (बैथोलिथ, Batholith)

'बैथोलिथ' ज्ञात अंतर्वेधी आग्नेय राशियों मे सबसे बड़ी आकृति है जिनके पार्श्वों का ढाल खड़ा होता है एवं उनकी तली अज्ञात गर्भ तक चली जाती है जिसके कारण सुविज्ञ नही होती है। बैथालिथ पृथ्वी की सतह के बहुत नीचे मैग्मा के ठोस होने से बनी थी किन्तु कालांतर में ऊपरी आवरण में भूपटल पर दिखाई देने लगी है। बैथोलिथ के सामान्य लक्षण इस प्रकार हैं–

1. ये वलित पर्वतन क्षेत्र में स्थित होते हैं।
2. इनका अभिस्थापन पर्वतन क्रिया प्रारंभ होने के पूर्व से लेकर पर्वतन क्रिया के किसी भी चरण में हो सकता है।
3. इनका शीर्ष अनियमित गुंबद के आकार का तथा पार्श्व खडा ढाल दर्शाते हैं।
4. यह गहराई में अज्ञात गर्भ की ओर क्रमशः चौड़े होते जाते हैं।
5. यह प्रायः ग्रेनाइट ग्रेनोडायोराइट शैलों के बने होते हैं।
6. 'बैथोलिथ' का दृश्यांश कम से कम 100 वर्ग कि.मी. होना चाहिए।

स्कंध (Stock) एवं वृत्त स्कंध (Boss)

यह बैथोलिथ का लघु रूप है जो कि अनियमित आकार में होता है तथा स्कंध कहलाता है। इसके दृश्यांश की सीमा 100 वर्ग किलोमीटर से कम होता है। यदि स्कंध का दृश्यांश वृत्ताकार हो तब उसे वृत्त स्कंध कहते हैं। यह भी बैथोलिथ का ही एक रूप है।

आग्नेय शैलों की संरचनाएँ (Structures of igneous rocks)

किसी भी शैल की संरचना और गठन में स्पष्ट भेद करना अत्यधिक कठिन है। संरचना के अंर्तगत कुछ वृहत्ताकार लक्षण सम्मिलित किये जाते हैं। जैसे खंडमय अथवा रज्जुक पृष्ठ, शिरोधानी, प्रवाही पट्ट रचना, संधि आदि। इसके विपरीत गठन के अंर्तगत शैल की क्रिस्टलता, कणों का आकार और आकृति तथा शैल निर्माणी घटकों के पारस्परिक संबंध का अध्ययन किया जाता है।

खंड लावा (Blocky lava), आ–लावा (Aa lava), रज्जुक अथवा पाहोइहोइ लावा (Ropy or Pahoehoe Lava)

अत्यधिक गतिशील लावा प्रवाहों के पृष्टतल कांचाभ, चिकने और अत्यधिक चमकदार होते हैं। ऐसे लावा प्रवाहों की ऊपरी सतह पर डामर/पिंच के समान झुर्रिया रज्जुक व मोटे धागों के रूप बन जाते हैं। लावा की पृष्ट पर फफोले पड़ जाते हैं। इस संरचना को रज्जुक या पाहोइहोइ लावा कहा जाता है। यह अपेक्षाकृत कम क्रिस्टलीय होता है तथा इसमें बहुत अधिक संख्या में नियमित और प्रायः गोलाकार गुहिकाएँ उपस्थित रहती हैं।

''आ'' लावा की सतह अत्यधिक रूक्ष, खुरदरी और खंडित होती है। ऊपरी सतह स्फोटगर्ती संरचना दर्शाती है जिसकी तुलना भट्टी से निकले क्लिंकर से की जा सकती है। क्लिंकर खंडों का व्यास साधारणतः 5 से.मी. से कम होता है। किन्तु कभी–कभी कुछ खंडों का व्यास मीटर में नापा जा सकता।

खंड (block) लावा की सतह खंडित होती है किन्तु खंड 'आ' लावा की तुलना में अपेक्षाकृत कम खुरदरे होते हैं। इस प्रकार के लावा प्रवाहों की सतह अनियमित होती है जिसमें कई मीटर का उच्चावचय हो सकता है। उच्च श्यानता के कारण लावा का प्रवाह खंडित हो जाता है।

''रज्जुक'', ''आ'' और ब्लाक लावा में पूर्ण क्रमण पाया जाता है। सामान्यतः उद्गार के प्रारंभ में रज्जुक लावा पाया जाता है। जो प्रवाह के साथ आगे क्रमशः ''आ'' और ब्लाक लावा में क्रमित होता जाता है। अनेक प्रवाह ''आ'' अथवा ''ब्लाक'' लावा प्रवाह के रूप में भी प्रारंभ होते हैं।

शिरोधान संरचना (Pillow Structure)

यह तरल लावाओं में बनने वाली संरचना है। तरल लावा के ठंडा होने से उसकी ऊपरी सतह पर एक पपड़ी जम जाती है, तथा लावा प्रवाह का ह्रास हो जाता है, फिर इस पपड़ी दरारों में वापिस लावा फूट पड़ता है तो वो वापस बहने लगत है, इस प्रकार प्रत्येक बड़े प्रवाह का स्थान कई छोटे–छोटे प्रवाह ले लेते

चित्र 3.4 : शिरोधान संरचना

हैं, फलतः इन छोटे प्रवाहों से एक और छोटा प्रवाह (बहिर्वेध) निकलता है, जो तुरन्त ही एक शिरोधान यानि तकिये (चित्र 3.4) के रूप में जम जाता है। इसे ही शिरोधान संरचना कहते हैं।

प्रवाही संरचना (Flow structure)

लावा उदगार के समय अथवा उसके तत्काल बाद पूर्णरूप से समांगी नहीं होता इसके स्तर अथवा खंडो में कुछ अंशों तक संघटन, उपस्थित गैसों की मात्रा, क्रिस्टलन की मात्रा, श्यानता आदि में अंतर पाया जाता है। प्रवाह के समय ये स्तर/खंड समानान्तर पट्टियों, धारियों, समानान्तर दीर्घित मसूराकार राशियों, रेखाओं आदि में व्यवस्थित हो जाते हैं। इन भागों में रासायनिक, खनिजीय एवं गठनात्मक अथवा रंग में अल्पभेद होता है। इसे प्रवाही संरचना कहा जाता है। रायोलाइट और ट्रेकाइटी लावा प्रवाहों में यह संरचना अधिक स्पष्ट रूप से प्रदर्शित होती है। तप्त लावा प्रवाह की ऊपरी सतह आक्सीकरण के कारण लाल हो जाती है।

स्फोटगर्ती तथा वातामकी संरचना (Vesicular and Amygdaloidal Structures)

अधिकांशतः लावाओं में अत्यधिक गैसें सन्निहित होती हैं। जो लावा के धरातल पर आने के बाद बाहर निकलने लगती हैं। पर जल्दी ही लावा की ऊपरी सतह ठण्डी होकर ठोस हो जाती हैं जिसकी वजह से गैसें लावा के अन्दर ही बंद हो जाती हैं। पर जहां–जहां गैसे रहती हैं, वहां उनके आयतन के अनुसार गुहिकाएं या स्फोटगर्त उत्पन्न हो जाते हैं, उनकी विभिन्न प्रकार की आकृतियां होती है जैसे बेलनाकार, गोलाकार आदि, इन्हें की स्फोटगर्ती (Vesicular) संरचना कहते हैं (चित्र 3.5)। स्फोटगर्तों में बाद में खनिजों के भर जाने से बनी आकृतियों को वातामक (Amygdale) कहते हैं (चित्र 3.6)। ये आकृतियां कभी–कभी दिखने में बादाम के सदृश्य होती हैं।

चित्र 3.5 : स्फोटगर्ती (Vesicular) संरचना

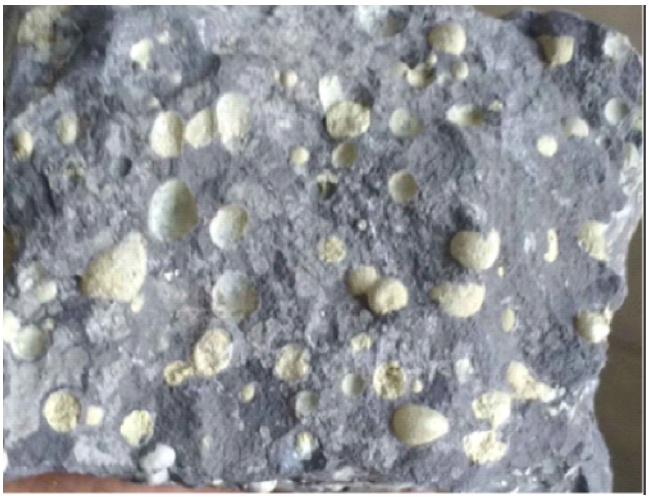

चित्र 3.6 : वातामकी संरचना

स्कोरेशियस और प्यूमिस संरचना (Scoriaceous and pumice structure)

बेसाल्टी लावा की तुलना में अधिसिलिक लावाओं की श्यानता तथा उसमें घुले वाष्पशील पदार्थ की मात्रा अधिक होती है। जिस लावा में गुहिकाएँ अत्यधिक परिमाण में तथा अनियमित आकृति की होती है, ऐसी संरचना को स्कोरेशियस (scoriaceous) संरचना कहते है। यदि गुहिकायें बहुत अधिक और अत्यधिक छोटी होती है तब शैल स्पंज के समान दिखने लगता है। इसे प्यूमिस कहते हैं।

संकेन्द्री/आरबिकुलर संरचना (Concentric/ orbicular structure)

कुछ वितलीय शैलों में कभी–कभी गोलाकार गेंद के समान पृथक्कृत आकृति की संरचनाएँ पाई जाती है जो कुछ से.मी. से कुछ मीटर तक हो सकती है। इनमें फेल्सिक और मैफिक संघटन के संकेन्द्री कवच पाये जाते हैं। प्रत्येक कवच में कणों का विन्यास समकणिक अथवा अरीय होता है।

रापाकिवी संरचना (Rapakivi structure)

रापाकिवी संरचना में भी शैल में गेंद के आकार की आकृतियाँ पाई जाती हैं जिनमें कुछ से.मी. व्यास का केन्द्रीय भाग बड़े पोटाश फेल्सपार कणों का बना होता है, चारों ओर से सोडा प्लेजिओक्लेज से घिरा होता है।

स्फेरूलाइटी संरचना (Spherulite structure)

स्फेरूलाइटी संरचना में गेंद की आकृतियाँ पाई जाती हैं प्रत्येक गोले में एक सार्व केन्द्र के चारों ओर तन्तु के समान स्फेरूलाइटी क्रिस्टल अपसारी/अरीय विन्यास में स्थापित रहते हैं। स्फेरूलाइट का आकार कुछ मि.मी. से लेकर 3 मीटर तक और वृद्धि गोल खंड में हो सकती है। स्फेरूलाइटों में प्रायः सकेन्द्री रेखाएं भी हो सकती है।

अपराश्म (Xenolith) संरचना

आग्नेय शैलों में पूर्ववर्ती स्थानीय शैल के खंड अंतर्विष्ट हो जाते हैं तब इन खंडों को अपराश्म (जीनोलिथ) या अंतर्वेश कहते हैं। यह बैथोलिथों, सिलों एवं डाइकों के अभिस्थापन (Emplacement) के समय होता है।

संधियाँ (Joints)

संधि शैल में उपस्थित ऐसा विभाजन तल है जिस पर संचलन नहीं होता है। यह तल प्रायः समतल होते हैं। एक ही दिशा में विकसित संधितल समानान्तर होते हैं और एक दूसरे से निश्चित दूरी पर होते हैं। संधियाँ किसी भी दिशा में क्षैतिज से लेकर आनत या उर्ध्वाकार हो सकती है।

जब शैल में क्षैतिज संधि तल सुविकसित और पास–पास होते हैं तब इन्हें चादर (sheet) संधि कहा जाता है। यदि शैलों में समीपतः विन्यासित संधियों का केवल एक समुच्चय विकसित होता है तब उसे प्लेटी संधि कहते है। म्यूरल (mural) संधि में शैल तीन संधि समुच्चय, जो एक दूसरे से लंबवत होते हैं, विकसित होते हैं। एक समुच्चय क्षैतिज और अन्य दो उर्ध्वाधर होते हैं। तीनों समुच्चयों में संधि तलों के बीच का अंतर बराबर होने से शैल लगभग घनाकार खंडो में विभाजित हो जाता है।

स्तंभी (Columnar) एवं प्रिज्मीय (Prismatic)

किसी शैल में संधितल यदि इस प्रकार विकसित हो कि उनके एक दूसरे को काटने के कारण शैल स्तंभी एवं प्रिज्मीय रूप धारण करलें तब इन संधियों को स्तंभाकार (columnar) और प्रिज्मीय (prismatic) संधि (चित्र 3.7) कहते हैं। स्तंभ व प्रिज्म 4–5–6 या 8 पार्श्व युक्त होते हैं।

इन संधियों की उत्पत्ति समांग मैग्मा के एक समान शीतलन एवं संकुचन के फलस्वरूप उत्पन्न विभाजन तलों के कारण होती है। जब प्रतिबलों का मान शैल दृढ़ता से अधिक हो जाता तब इन रेखाओं के लंबवत् संधितल उत्पन्न होते हैं, जो आपस में एक दूसरे को इस प्रकार काटते हैं कि एक बहुमुखी (छः भुजी सामान्यतः) आकृति बन जाती है। यदि संकुचन केन्द्रों के बीच अनियमित दूरी होती है तब विभिन्न आयाम के चार, पांच, सात या आठ पार्श्व युक्त प्रिज्म निर्मित होते हैं।

चित्र 3.7 : स्तंभाकार एवं प्रिज्मीय संधि

अनुपाट (Rift) और उत्पाट (Grain)

रिफ्ट और ग्रेन वे लक्षण हैं जिनका प्रयोग शैल खनन के समय किया जाता है। शैल जिस दिशा में अत्यधिक सुगमता से विभक्त हो सकता है, उसे अनुपाट कहते हैं। अनुपाट के लंबवत् सरल विपाटन की दूसरी दिशा ग्रेन/उत्पाट होती है। इन दोनों की विपाटन की दिशा होने के कारण समानार्थी माना जा सकता है।

आग्नेय शैलों का वर्गीकरण (Classification of igneous rocks)

कुछ प्रमुख शैलों का अध्ययन 11वीं कक्षा में किया जा चुका है, अन्य महत्वपूर्ण शैलों का विवरण निम्न है –

वर्गीकरण हमें किसी भी समस्या का सरलतापूर्वक क्रमबद्ध हल प्रदान करता है पर आग्नेय शैलों के वर्गीकरण के संबंध में एकता नहीं है। फिर भी वर्गीकरण की अनेक पद्धतियाँ प्रतिपादित की गई है, किन्तु कोई भी एक वर्गीकरण पूर्ण रूप से मान्य नही हुआ है। क्योंकि प्रत्येक वर्गीकरण में उद्देश्यों की विभिन्नता होने के साथ ही प्रयुक्त आधारों में भी अत्यधिक विभिन्नता है।

आग्नेय शैलों के वर्गीकरण के चार प्रधान आधार है यथा रासायनिक खनिजीय, गठनीय तथा सहचार्य जिसमें भौगोलिक वितरण एवं भूविर्वतनिक प्रक्रमों से संबंध अंतर्भूत हो।

किसी भी अन्य समूह के पदार्थों के वर्गीकरण के समान ही आग्नेय शैलों का उद्भव पर आधारित वर्गीकरण भी एक आदर्श वर्गीकरण होगा।

पूर्व में वर्गीकरण शैल नमूनों के आधार पर करते थे जो कि स्थूल लक्षणों पर आधारित थे। ध्रुवण सूक्ष्मदर्शी और शैल रासायनिकी

के प्रवेश के साथ वर्गीकरण अधिक समष्टि, विस्तृत और जटिल होते गये। वर्तमान में आग्नेय शैलों के वर्गीकरणों को तीन स्थूल वर्गों में रखा जा सकता है–

1. रासायनिक वर्गीकरण – ये शैलों के रासायनिक संघटन पर आधारित है।
2. गठनीय वर्गीकरण – ये शैलों के गठन और भू–वैज्ञानिक उपस्थिति पर आधारित हैं।
3. खनिजीय वर्गीकरण – ये शैलों के खनिज संघटन, प्रकार और मात्रा पर आधारित है।

इनके अतिरिक्त कुछ वर्गीकरणों में इनमें से एक से अधिक आधारों का समन्वय किया गया है। इन सब आधारों को मिलाकर एक सारणीबद्ध वर्गीकरण भी किया गया है जो आग्नेय शैलों के अध्ययन हेतु सबसे उचित है।

1. **रासायनिक वर्गीकरण** (Chemical Composition) : रासायनिक वर्गीकरण शैलों अथवा उनके परिकल्पित मैग्माओं के रासायनिक संघटन पर आधारित होते हैं। इनका सर्वाधिक महत्व शैलों की उत्पत्ति की विवेचना में है। रासायनिक वर्गीकरणों में सी.आई.पी.डब्लू और निग्ली के वर्गीकरण अधिक प्रयुक्त और उपयोगी माने जाते हैं। 1903 में चार अमरीकी शैल वैज्ञानिकों क्रास (Cross), इडिंग्ज (Iddings) पिरसन (Pirsson) और वाशिंगटन (Washington) ने जो वर्गीकरण प्रस्तावित किया था वह उनके नाम के पहले वर्ण के आधार पर C.I.P.W वर्गीकरण नाम से जाना जाता है। इस वर्गीकरण में शैल के रासायनिक संघटन से खनिज रचना के ज्ञात सिद्धांतों के आधार पर बनाये गये निश्चित नियमों के अनुसार तदनुरूप मानक (norms) खनिज समुदाय की गणना की जाती है।

मानक खनिज दो वर्गों में विभक्त किये गये हैं–

एक सैलिक (Sialic) दूसरा फैमिक (Femic) जिनमें सबसे महत्वपूर्ण घटक निम्नांकित हैं–

सैलिक खनिज		**फैमिक खनिज**
क्वार्ट्ज	–	डाइआप्साइट
आर्थोक्लेज	–	हायपरस्थीन
एल्बाइट	–	एक्माइट / ईजिरीन
अनार्थाइट	–	आलीवीन
ल्यूसाइट	–	वोलेस्टोनाइट
नेफलीन	–	मेग्नेटाइट
कोरंडम	–	इल्मेनाइट
जिरकान	–	हेमेटाइट
–	–	एपेटाइट

इस वर्गीकरण का सबसे प्रमुख उपयोग आग्नेय शैलों के तुलनात्मक अध्ययन में होता है।

इसके अतिरिक्त एक और वर्गीकरण है जो कि सिलिका की उपस्थिति के आधार पर किया गया है। वो इस प्रकार है –

(i) अतिसंतृप्त (Oversaturated) शैलें, जिनमें मैग्मीय उद्‌भव की मुक्त सिलिका हो।
(ii) संतृप्त (Saturated) शैलें, जिनमें संतृप्त खनिजीय हो।
(iii) असंतृप्त (Unsaturated) असंतृप्त शैलें जिनमें असंतृप्त खनिज विद्यमान हो।

निग्ली का वर्गीकरण (Niggli classification) : पाल निग्ली द्वारा प्रस्तावित वर्गीकरण में मानक खनिज समुच्चय के स्थान पर निश्चित नियमों के अनुसार निग्ली मान की गणना की जाती है। इन मानों को प्राचल मानते हुए निग्ली ने शैलों को आगे वर्गीकृत किया है।

2. **गठन और भू–वैज्ञानिक उपस्थित की अवस्था पर आधारित वर्गीकरण** (Classification on the bases of texture and state of geological occurrence) : आग्नेय शैलों का गठन उनके शीतलन इतिहास का सूचक होता है अर्थात भू–वैज्ञानिक उपस्थिति अवस्था को व्यक्त करता है। सामान्यतः पूर्ण, स्थूल एवं समकणिक क्रिस्टल शैल मैग्मा के धीमी गति से ठंडा होने एवं अधिक दाब के कारण वितलीय (plutonic) क्षेत्र में निर्मित होते है। ज्वालामुखी शैलों में वाष्पशील पदार्थ के निष्कासन कम दाब और तीव्र गति से शीतलन के कारण कणों का आकार छोटा होता है। यदि कणों के आकार में स्पष्ट अंतर पाया जावे तो वह क्रिस्टलन की दो अवस्थाओं का सूचक होता है। ऐसी परिस्थितियाँ अधिवितलीय (hypabyssal) क्षेत्र में पाई जाती है।

3. **खनिजीय वर्गीकरण** (Mineralogical classification) : आग्नेय शैलों के वर्गीकरण में शैलों का खनिज संघटन (प्रकार और मात्रा) अन्वेषकों तथा विद्यार्थियों के लिए सबसे अधिक उपयोगी आधार है। खनिज अपेक्षाकृत शीघ्रता व सुगमता से पहचाने जा सकते हैं, तथा उनकी आपेक्षिक मात्रा का आकलन भी काफी हद तक ठीक किया जा सकता है।

अधिकांश आग्नेय शैलों में केवल कुछ खनिज ही अधिक मात्रा में पाये जाते हैं जिन्हें आवश्यक (essential) खनिज कहते हैं। इनके अतिरिक्त अन्य खनिजों की उपस्थिति गौण (accessory) होती है तीसरे उत्तरजात (secondary) खनिज होते हैं। वे खनिज जो मैग्मीय क्रिस्टलन से उत्पन्न होते हैं प्राथमिक (primary) खनिज कहलाते हैं। इसके विपरीत बाद में होने वाले अपक्षय, कायांतरण अथवा अन्य क्रियाओं द्वारा निर्मित खनिज द्वितीयक या उत्तरजात खनिज कहलाते हैं। आवश्यक खनिजों को भी दो भागों में बाँटा जा सकता है। जिन खनिजों की समुचित मात्रा में उपस्थिति शैल की पहचान के लिये आवश्यक है जो खनिज

अल्प मात्रा में उपस्थित होते हैं और उनकी उपस्थिति अथवा अनुपस्थिति में शैल की परिभाषा पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता वे गौण खनिज कहलाते हैं।

एक ओर वर्गीकरण किया गया है जो कि फेल्सिक एवं मैफिक खनिज समूहों पर आधारित है। फेल्सिक शब्द फेल्सपार, फेल्सपैथॉइड तथा सिलिका से बनाया गया है एवं मैफिक शब्द फेरा मैग्नीशियम अर्थात लोहे एवं मैग्नीशियम से बना है।

फेल्सिक	**मैफिक**
क्वार्ट्ज	अभ्रक
फेल्सपार	पाइरॉक्सीन
फेल्सपैथॉइड	ऐम्फिबोल
	ऑलिविन
	लोह–ऑक्साइड
	ऐपाटाइट, इत्यादि

फेल्सिक समूह के खनिज अपेक्षाकृत हल्के रंग के, देर से क्रिस्टलित होने वाले एवं कम आपेक्षित घनत्व वाले होते हैं। जबकि मैफिक खनिज गहरे रंग के, पहले क्रिस्टलित होने वाले एवं अधिक आपेक्षिक घनत्व वाले होते हैं। फैल्सिक खनिजों वाली शैलें हल्के वर्ण यानि अल्पवर्णी (leucocratic) तथा गहरे वर्ण यानि श्यामवर्णी (melanocratic) रूपों की ओर इंगित करती है।

4. **सारणीबद्ध वर्गीकरण** (Tabular classification) : आग्नेय शैलों के विभिन्न वर्गीकरणों में प्रत्येक के अपने गुण दोष हैं। कोई भी एक वर्गीकरण सामान्य भू–वैज्ञानिक की आवश्यकता पूर्ण नहीं करता है। अतः सारणीबद्ध वर्गीकरण (तालिका 3.2) में खनिज संघटन, शैलों की भू–वैज्ञानिक उपस्थिति की अवस्था और गठन को महत्व दिया गया है जो कि आग्नेय शैलिकी के के लिये अधिक उपयोगी है।

औसत आग्नेय शैलों में लगभग 75 प्रतिशत भाग फेल्सिक खनिजों का होता है, इसलिये उर्ध्वाधर विभाग तीन प्रमुख फेल्सिक समुदायों क्वार्ट्ज, फेल्सपार व फेल्सपेथाइड के पारस्परिक अनुपात पर आधारित हैं। क्वार्ट्ज और फेल्सपार वाले शैलों को अतिसंतृप्त, केवल फेल्सपार युक्त शैल संतृप्त और केवल फेल्सपैथाइड एवं फेल्सपार युक्त असंतृप्त शैलें होती है। पोटाश फेल्सपार अथवा प्लेजिओक्लेज की उपस्थिति के आधार पर दो वर्ग किये गये हैं इसी प्रकार संतृप्त वर्ग को पोटाश फेल्सपार युक्त सोडिक प्लेजिओक्लेज युक्त और केल्सिक प्लेजिओक्लेज की प्रमुखता के आधार पर तीन वर्गों में विभाजित किया गया है। असंतृप्त वर्ग को फेल्सपेथाइड के साथ फेल्सपार एवं मैफिक खनिजों की उपस्थिति के आधार पर तीन वर्गों में ही विभाजित किया गया है आखरी वर्ग में मैफिक शैलों को रख गया है।

क्षैतिज वर्गीकरण वितलीय, अधिवितलीय तथा ज्वालामुखी वर्गों में किया गया है। प्रत्येक वर्ग के सामान्य लाक्षणिक गठन उसके साथ दिये गये हैं अधिवितलीय वर्ग में गठनों के प्रारूप का विस्तार अनेक उर्ध्वाधर वर्गों में फैला हुआ है। उदाहरण के लिये पेग्मेटाइट, एप्लाइट, लेम्प्रोफायर आदि। किसी भी विशिष्ट वर्ग का खनिज संघटन व्यक्त करने के लिये उस वर्ग के वितलीय शैल का नाम उपसर्ग की भांति पहले उपयोग करने से उस शैल के विशिष्ट वर्ग का पता चलता है उदाहरण ग्रेनाइटी पार्फिरी, सायनाइट एप्लाइट आदि।

कुछ आग्नेय शैलों का अध्ययन
(Study of some Igneous Rocks)

कुछ प्रमुख आग्नेय शैलों का अध्ययन कक्षा 11 में किया जा चुका है, अन्य महत्वपूर्ण शैलों का विवरण निम्न है।

1. गेब्रो (Gabbro)

गेब्रो मध्यम से स्थूल कणी, अंश फलकीय अथवा अफलकीय कणों से निर्मित पूर्ण क्रिस्टलीय, समकणी, श्याम वर्णी शैल है। प्लेजियोक्लेज (लेब्रेडोराइट) एवं पाइरॉक्सीन (ओगाइट) सामान्य खनिज होते हैं। डायलेज, हाइपरस्थीन, डायोप्साइड और ऑलीवीन भी पाये जाते हैं। इनके अतिरिक्त हॉर्नब्लेंड, बायोटाइट और क्वार्ट्ज भी गौण खनिजों के रूप में पाये जाते हैं। इसके अलावा इल्मेनाइट, क्रोमाइट, मैग्नेटाइट आदि अल्प मात्रा में तथा एपेटाइट, रूटाइल, स्फीन एवं जिरकन अत्यल्प मात्रा में उपस्थित रहते हैं। गैब्रो की उत्पत्ति वितलीय अवस्था में बेसिक या अल्पसिलिक मैग्मा के मंद शीतलन से हुई है। गैब्रो का उपयोग निर्माणकारी पदार्थ के रूप में सड़क, पुल, बाँध, भवन आदि निर्माणों में किया जाता है।

2. डोलेराइट (Dolerite)

गेब्रो के अनुरूप संघटन वाली मध्यम से सूक्ष्म कणी प्रायः डाइक और सिल के रूप में पायी जाने वाली शैल को सामान्यतः डोलेराइट के नाम से जाना जाता है। सामान्यतः श्यामवर्णी शैल है। इसका मुख्य गठन एफिटिक है। अंशफलकीय कणिक अथवा अंतराकणिक गठन भी पाया जाता है। प्लेजियोक्लेज (लेब्रेडोराइट) एवं पाइरॉक्सीन (ओजाइट) प्रमुख खनिज हैं। अल्प मात्रा में ऑलीवीन भी पाया जाता है। कुछ क्वार्ट्ज एवं फेल्सपार भी मिलता है। हाइपरस्थीन भी उपस्थित रहता हैं कभी–कभी हॉर्नब्लेंड और बायोटाइट भी अल्प मात्रा में पाये जा सकते हैं। इल्मेनाइट, मैग्नेटाइट और एपेटाइट गौण खनिज के रूप में उपस्थित रहते हैं। बेसिक मैग्मा का क्रिस्टलन से अधिवितलीय अवस्था में हुआ। पॉर्फिरिटिक गठन यह दर्शाता है कि दीर्घ क्रिस्टल एवं मेट्रिक्स अलग अलग स्थानों पर क्रिस्टलित हुए।

तालिका 3.2 : आग्नेय शैलों का सारणीबद्ध वर्गीकरण

	अतिसंतृप्त			संतृत			असंतृत		
	I स्फटिक	II स्फटिक + फेल्सपार		III फेल्सपार			IV फेल्सपार + फेल्सपैथॉइड	V फेल्सपैथॉइड	VI मैफिक खनिज प्रमुख
		आर्थोक्लेज प्रमुख	प्लेजिऔक्लेज प्रमुख	क्षारीय सोडा फेल्सपार प्रमुख (ऑर्थो.एल्बा)	सोडा चूनीय प्लेजिऔक्लेज प्रमुख	चूनीय सोडा प्लेजिऔक्लेज प्रमुख			
वितलीय: फेल्सिक, मेफेल्सिक, मेफिक	आग्नेय स्फटिक शिलाएँ (ऐरिजोनाइट साइलेक्साइड)	ग्रेनाइट X	ग्रैनोडायोराइट (टोनैलाइट) X	सायनाइट X X	डायोराइट X X	ऐनॉर्थोसाइट गैब्रो X	नेफेलिन–सायनाइट थेरालाइट और टेशनाइट X	X इजोलाइट X	पेरिडोटाइट पिक्राइट
उपवितलीय		← ऐप्लाइट → (II से IV तक); ← पॉरफिरियाँ → (II से VI तक); ग्रैनोफायर फेल्साइट; ← पिच स्टोन →	← लैम्प्रोफायर → (VI तक)		डॉलेराइट; टैकीलाइट		टिगुंआइट		
ज्वालामुखी	← ऑब्सीडियन →; ← पिच स्टोन →	रायोलाइट	डेसाइट	ट्रेकाइट	ऐन्डेसाइट टैकीलाइट	बेसाल्ट	फोनोलाइट	ल्यूसिटोफायर नेफेलिन.बेसाल्ट ल्युसाइ.बेसाल्ट	आलिवीन समृद्ध बेसाल्ट लिम्बुरगाइट
सिलिका की औसत प्रतिशत मात्रा	90	72	56	59	57	48	54.5	43	41

3. सायनाइट (Syenite)

शैल का वर्ण श्वेत, हल्का भूरा, गुलाबी लाल या फीका हरा होता है। सामान्यतः दृश्य क्रिस्टली शैल है जिसमें एल्कली फेल्सपार (आर्थोक्लेज, माइक्रोक्लीन और एल्बाइट) प्रमुख खनिज हैं। केल्सिक एल्कली प्लेजियोक्लेज (ऑलीगोक्लेज) भी पाया जाता है। क्वार्ट्ज या तो नहीं पाया जाता या 5% से कम होता है। शैल सामान्यतः मध्यम कणी होता है। गठन समकणिक अंश फलकी होता है। फेल्सपार 1/3 भाग से कम एवं कभी–कभी सपाट होते हैं। गौण खनिजों में बायोटाइट हॉर्नब्लेंड, सोडाएम्फीबोल, डायोप्साइड, सोडियम पाइरॉक्सीन, ऑलीवीन प्रमुख है। अम्लीय मैग्मा के वितलीय अवस्था में शीतलन से इसकी उत्पत्ति हुई।

मुख्य रूप से अल्कली फेल्सपार की प्रचुरता के कारण इसे सायनाइट कहते हैं। इस प्रकार की शैल सर्वप्रथम मिस्र देश के सायन (syene) में पायी गई और इसलिए इस प्रकार की शैल का नाम सायनाइट पड़ा।

4. पेरिडोटाइट (Peridotite)

अत्यधिक ऑलिवीन के साथ प्रमुख रूप से पायरॉक्सीन होने पर इस प्रकार की शैल को पेरिडोटाइट कहते है। गहरे हरे, भूरे अथवा काले रंग के यह शैल सर्पेन्टाइन में बदल जाते है। मध्यम से स्थूल एवं समकणिक इस शैल में अपरूपक व संदलनी गठन मुख्य है। छदम पार्फिराइटी गठन विरल रूप से पाया जाता है। यह श्यामवर्णीय अतिमैफिक अत्यल्पसिलिक पूर्ण क्रिस्टलीय कणिका शैल है, जिसमें फेलस्पार और फेलसपेथाइड अनुपस्थित होते हैं। आलीवीन और पायराक्सीन इसके प्रमुख खनिज हैं। जिसमें आलीवीन की प्रधानता होती है। यह स्तरित अंतर्वेधी गैब्रो शैलों के तलीय संचयी स्थूल अंश, जो क्रमशः पायराक्सीनाइट, ट्रोक्टोलाइट अथवा गैब्रो में क्रमित होता जाता है, के रूप में मंडलाकार अतिमैफिक स्कंधी, ग्रेनाइटी जटिल संघी गौण अंतर्वेध तथा पर्वतन क्षेत्रों में वलित भू अभिनतीय अवसादों में वृहत चादरां और लेंसों के रूप में पाया जाता है। शैल में आलीवीन और पायराक्सीन प्रमुख खनिज हैं किन्तु मेग्नीशियम आलीवीन की

मात्रा अधिक होती है। पायराक्सीनों में एन्स्टेटाइट, ब्रान्जाइट, हायपरस्थीन, औजाइट, डायपसाइड या टिटन औजाइट उपस्थित हो सकते है। हार्नब्लेंड अन्य मेफिक खनिज है। गौण खनिजों में जिनकी संख्या काफी अधिक है, फ्लोगोपाइट माइका, क्रोमाइट, स्पाइनल, इल्मेनाइट, मेग्नेटाइट, गार्नेट, टाल्क, क्लोराइट, ट्रिमोलाइट, एक्टिनोलाइट आदि प्रमुख हैं। इस शैल का निर्माण अत्यल्प सिलिका या अल्ट्राबेसिक मैग्मा के वितलीय अवस्था में उच्च ताप पर शीतलन से हुआ। अनेक धातुओं (क्रोमियम, प्लेटिनम) एवं खनिजों की मातृ शैल है। किम्बरलाइट पेरिडोटाइट का एक विशिष्ट प्रकार है जिसमें हीरा मिलता है।

5. पेग्मेटाइट (Pegmatite)

पेग्मेटाइट का नाम वितलीय शैलों के समान संघटन वाले स्थूल एवं अति स्थूल क्रिस्टलीय शैलों के लिये प्रयुक्त किया जाता है। सामान्यतः श्वेतवर्णी होती है पर जिस खनिज की अधिकता होगी वही वर्ण होगा। अति स्थूल कणी इस शैल में 1 से.मी. से लेकर कभी–कभी कई मीटर तक लंबाई चौडाई के क्रिस्टल पाये जाते हैं। कणों के आकार परिवर्तनशील और असंगत होते हैं। बड़े और छोटे क्रिस्टल एक दूसरे के सानिध्य में पाये जा सकते हैं। क्वार्ट्ज और फेल्सपार की आलेखी (graphic) अंर्तवृद्धि सामान्य है। मस्कावाइट एवं बायोटाइट भी पाये जाते हैं। मुख्य आर्थिक खनिजों में टूरमैलिन, टोपाज, बेरिल, एपेटाइट, इमेरल्ड, गार्नेट, लेपिडोलाइट, रूटाइल, केसिटेराइट, लोराइट, यूरेनिनाइट कोलंबाइट एवं अनेक दुर्लभ मृदा खनिज प्रमुख है। इतने सारे खनिजों की उपस्थिति के कारण इसे खनिजों का संग्रहालय भी कहते हैं। इसकी उत्पत्ति वाष्पीय पदार्थों की उपस्थिति में अम्लीय मैग्मा के अवशिष्ट द्रव में मंद क्रिस्टलन से हुई है।

6. रायोलाइट (Rhyolite)

यह अदृश्य क्रिस्टल ज्वालामुखी शैल है जो पूर्ण क्रिस्टलीय, अंश क्रिस्टलीय या पूर्ण कांचीय होती है। अधिकांश रायोलाइट सफेद पीतांभ हल्के भूरे या गुलाबी रंग के होते हैं। किन्तु पीले और गहरे लाल बैंगनी रंग भी पाये जाते हैं। शैल का गठन सामान्यतः असमकणिक, पार्फिरिटिक होता है। स्फोटगर्ती संरचना भी उपस्थित रहती है। मुख्यतः इसके खनिज ग्रेनाइट के समान ही होते है। क्वार्ट्ज, सेनीडीन तथा ऑलीगोक्लेज आवश्यक खनिज है। इनके साथ बायोटाइट, हॉर्नब्लेंड और पाइरॉक्सीन प्रमुख गौण खनिज हैं। मैग्नेटाइट, ट्रिडीमाइट, क्रिस्टोबेलाइट, गार्नेट, एपिटाइट, स्फीन, जिरकन आदि खनिज अत्यल्प मात्रा में पाये जाते हैं।

इसकी उत्पत्ति ज्वालामुखी द्वारा अतिसिलिक या अम्लीय लावा के अत्यधिक गति से शीतलन होने के कारण हुई है। तीव्र प्रवाही संरचना के कारण इसका नाम रायोलाइट पडा।

अवसादी शैल विज्ञान
(Sedimentary Petrology)

वो शैलें जो पूर्व स्थित शैलों को अनाच्छादित (denudation) करने वाली शक्तियों (कारकों) यथा जल, वायु, आदि की रासायनिक या बलकृत (mechanical) अपरदन (erosion) एवं अपक्षय (weathering) क्रिया से बनती है और जल में निक्षेपित होती है। ऐसी शैलों को अवसादी शैलें कहते हैं। भू–पर्पटी में स्थित शैलों का दीर्घकालिक क्षय (decay) या अपघटन (decomposition) और विघटन (disintegration) के प्रक्रम चलते हैं जिसके कारण शैलों का खण्डन होता है। यह खंडित मलवा (debris) और विलीन पदार्थ अपनी उत्पत्ति की जगह से मुख्य रूप से नदियों द्वारा बहाकर ले जाये जाते हैं और समुद्र में निक्षेपित होते हैं। परिवहन से अप्रभावित खंडित पदार्थ अपने मूल स्थान पर जिस शैल से व्युत्पन्न (derived) हुए है उसी को आच्छादित किये रहते हैं। इन्हें अवशिष्ट निक्षेप (residual deposits) कहते हैं। बलकृत कारको द्वारा खंडज कण (clastic grains) एवं विलेय पदार्थ के रूप में परिवहित होकर अन्य स्थान पर निक्षेपित हो जाते हैं। इस प्रकार के अबद्ध निक्षेप (unconsolidated deposit) अवसाद कहलाते हैं। अवसादों की उत्पत्ति के सभी प्रक्रम (अपरदन, अपक्षय, परिवहन एवं निक्षेपण) कम तापमान और कम दाब की स्थिति में क्रियाशील होते है। शैलीभवन (Lithification) के परिणामस्वरूप अबद्ध अवसाद संहत (consolidate) अवसादी शैलों में परिवर्तित हो जाते हैं। शैलों के अपरदन एवं अपक्षय प्रक्रिया द्वारा निर्मित छोटे छोटे शैल एवं खनिज कणों को अवसाद (sediment) कहते हैं। अवसाद के बनने की इस विधि को अवसादीकरण (sedimentation) कहते हैं। अवसादी शैल मात्रा के आधार पर भूपर्पटी (lithosphere) का केवल 5 प्रतिशत भाग है, किन्तु भूपटल के अत्यधिक विस्तृत भाग को ढके हुए हैं।

अवसादी शैल अनेक प्रकार के होते हैं किन्तु इनमें से केवल तीन प्रकार के शैल ही प्रमुख हैं तथा अवसादी शैलों का 95 प्रतिशत से अधिक भाग इनके द्वारा ही निर्मित है। बलुआ पत्थर 8 से 16 प्रतिशत तक, पंकाशम (mudstone) 70 से 80 प्रतिशत तक एवं चूना पत्थर (limestone) 10 प्रतिशत से 15 प्रतिशत तक। बालू एक खंडन अवसाद है मुख्यतः क्वार्ट्ज जिसके कण 2 मि.मी. से 0.62 मि.मी. तक आकार के होते है। बालू से छोटे आकार के खंडज कणों से पंक बनती है। चूना पत्थर मुख्यतः $CaCO_3$ तथा $CaCO_3MgCO_3$ से बने होते हैं।

अवसादीकरण (शैलों के निर्माण की विधि)
(Sedimentation)

अपक्षय (Weathering)

अपक्षय उन सभी प्राकृतिक प्रक्रमों को समाहित करता है जिनके द्वारा भूपटल पर अनाच्छादित शैलों का अपघटन

(decomposition) और विघटन (disintegration) होता है। अपक्षय को भौतिक रासायनिक और जैवीय प्रक्रमों में वर्गीकृत किया गया है। भौतिक कारकों द्वारा शैलों का यांत्रिक विखंडन होता है जिसे भौतिक अपक्षय कहते है। रासायनिक अपक्षय प्रमुख रूप से शैल के घटकों का आंशिक अथवा पूर्ण विलयन कर उसे नष्ट करने की दिशा में कार्यशील होता है। जैव रासायनिक प्रक्रिया द्वारा ह्यूमिक अम्लों (humic acid) एवं जीवाणुओं (bacteria) द्वारा शैलों को अपघटित करने की क्रिया को जैविक अपक्षय कहते है।

रासायनिक अपक्षय (Chemical Weathering)

रासायनिक अपक्षय में विलयन आक्सीकरण (oxidation), अपचयन (reduction), जलयोजन (hydration), कार्बनीकरण (carbonation) जल अपघटन (hydrolysis) और कोलाइड (colloid) आदि प्रक्रम आते हैं। रासायनिक अपक्षय प्रायः जीव उत्तकों (tissues) की वृद्धि अथवा क्षय से उत्पन्न विभिन्न कार्बनिक अम्लों के द्वारा गतिशील होता है। कार्बनिक अम्लों में कुछ ऐसे गुण पाये जाते हैं जो अकार्बनिक अम्लों में नहीं होते। इस गुण के जिन द्रवों में ये अम्ल उपस्थित होते हैं उनमें खनिजों की विलेयता बढ़ जाती है। यह प्रक्रम धात्विक आयनों को आगे अभिक्रिया करने से रोकता है इस कारण से आयन विलयन के साथ परिवहित हो जाते हैं।

रासायनिक अपक्षय लगभग पूर्ण रूप से जल की उपस्थिति पर निर्भर है। प्रायः जल समस्त खनिजों पर कुछ न कुछ मात्रा में अभिक्रिया करता है विशेषकर तब जब यह CO_2, ऑक्सीजन और अन्य गैसों को अपने में विलीन कर लेता है। लौह युक्त खनिजों पर यह विशेष क्रियाशील होता है। जिससे लौह ऑक्साइड, हेमेटाइट, और लिमोनाइट बनते हैं। जो शैलों में मुख्य रंगोत्पादक पदार्थ होते हैं। इनसे ही लाल, भूरे एवं पीले रंग बनते हैं। जलयोजन एक ऐसा प्रक्रम है जिससे खनिजों के यौगिक जल समृद्ध पदार्थों में परिवर्तित हो जाते हैं। इस प्रकार मैग्नीशियमी खनिज खंडित होकर ऑलिवीन, सर्पेन्टीन और टाल्क में परिवर्तित हो जाते हैं। बायोटाइट और अन्य लौह मैग्नीशियम खनिज क्लोराइट में तथा फेल्सपार अपघटित होकर सजल एल्यूमिनियम सिलिकेट और मुक्त सिलिका का निर्माण करते हैं।

कार्बनीकरण में खनिज बदलकर कार्बोनेट बनाते हैं। अपघटन के प्रक्रम में वे खनिज सबसे ज्यादा प्रभावित होते हैं जिन खनिजों में क्षारीय धातु सोडियम, पौटेशियम तथा कैल्शियम और मैग्नीशियम उपस्थित होते हैं। इस तरह विभिन्न सल्फेटों एवं क्लोराइडो का भी निर्माण होता है। मुख्य शैलकर खनिजों के रासायनिक अपक्षय के उत्पाद तालिका 3.3 में दर्शाया गया है।

विलेय सिलिका प्रायः शीघ्र ही शिराओं तथा विदरों में और संयोजी (cementing) पदार्थ के रूप में शैलों में पुनः निक्षेपित हो जाती है। विलेय पदार्थ सामान्यतः नदियों से मिलकर अंत में समुद्र में पहुँच जाते हैं। इस प्रकार समुद्री जल में विलीन लवणों की मात्रा में वृद्धि होती जाती है।

भौतिक अपक्षय (Physical weathering)

रासायनिक अपक्षय की तुलना में भौतिक अपक्षय का प्रभाव कम होता है। भौतिक अपक्षय में तीन प्रक्रम तुषारी क्रिया (Frost wedging/Freeze thaw) आतपन/सूर्यताप (insolation) और जलयोजन (hydration) तथा निर्जलीकरण (dehydration) प्रमुख हैं। जब किसी शैल के कणों के बीच खाली स्थान अथवा दरारों में भरा जल रात्रि में जमकर बर्फ बन जाता है तब उसके आयतन में लगभग 9 प्रतिशत की वृद्धि होती है इस कारण वह अपने चारों ओर अत्यधिक दाब निर्मित करता है। दिन के समय बर्फ पुनः पिघल जाती है। यह प्रक्रम समय के साथ शैलों को विखंडित तथा कमजोर कर देती है। जिन शैलों में अधिक संधियाँ (joints) होती हैं वे इस क्रिया के द्वारा अधिक प्रभावित होती हैं।

आतपन की क्रिया उन उष्ण मरूस्थलीय क्षेत्रों में होती है जहाँ दिन और रात्रि के तापक्रम में बहुत अधिक अंतर होता है, अधिक प्रभावी होती है। तापक्रम के परिवर्तन से शैलों के प्रसार और संकुचन की क्रिया होती है। जब यह क्रिया बार–बार होती है तब शैलों में उत्पन्न विकृतियों के कारण ऊपरी सतह अपशल्कन (exfoliation) के कारण पपड़ी बनकर टूटने लगती है।

उन क्षेत्रों में जहाँ शुष्क और आर्द्र जलवायु एकांतर क्रम से पाई जाती है जलयोजन और निर्जलीकरण अधिक प्रभावशील होते हैं। मृतिका और अन्य शैलों (shales) के आयतन में वर्षा काल में जलयोजन से वृद्धि होती है तथा शुष्क मौसम में निर्जलीकरण के कारण आयतन कम हो जाता है जिसके कारण संकुचन विदर (shrinkage cracks) उत्पन्न होने से शैलों का विखंडन होने लगता है। इस तरह क्षय के उपरांत खण्डन एवं अपघटन से भू–पर्पटी पर निर्मित विभिन्न संघटनों से बने मोटे आवरण को आवरण प्रस्तर (regolith) कहते हैं। यह आवरण प्रस्तर विभिन्न कारकों द्वारा कई पड़ावों के साथ अपनी अंतिम पड़ाव के लिये समुद्र में जाकर निक्षेपित हो जाता है। कई वर्ष जब यह प्रक्रम चलता है और समुद्र में अवसादों (sediments) की मोटी तह जमकर शैल का रूप ले लेती है जिसे अवसादी शैल कहते हैं।

अपरदन (Erosion)

प्राकृतिक कारकों द्वारा पृथ्वी की सतह पर से शैलों के अपक्षय को वहाँ से हटाने की क्रिया को अपरदन कहते हैं। अपरदन क्रिया में गुरूत्वाकर्षण बल, हिमनद, नदियाँ एवं वायु सम्मिलित है। प्रवाही जल अपरदन का मुख्य कारक है। वह विभिन्न भू–आकृतिक परिस्थितियों में प्रभावी अपरदन करता है। अपरदन के साथ पदार्थों का स्थानच्युत होने का अर्थ परिवहन है।

तालिका 3.3 : शैलकर खनिजों के रासायनिक अपक्षय

खनिज	अवशिष्ट खनिज	घोल में विलेय
क्वार्ट्ज	क्वार्ट्ज	विलेय SiO_2
मस्कोवाइट	मृतिका (Clay)	Mg व K आयन तथा विलेय SiO_2
बायोटाइट	मृतिका, केओलीन, क्लोराइट	K, Mg व Fe आयन तथा विलेय SiO_2
पयराक्सीन व एम्फीबोल	मृतिका	Ca, Fe, Mg, Mn व Na के आयन तथा विलेय SiO_2
आलीवीन	मृतिका, लौह आक्साइड	Mg, व Fe आयन तथा विलेय SiO_2
पोटाश फेल्सपार	सेरीसाइट, मृतिका	K आयन तथा विलेय SiO_2
प्लेजिओक्लजे	मृतिका	Na व Ca के आयन तथा विलेय SiO_2
मेग्नेटाइट	हेमेटाइट, लिमेनाइट, गोथाइट	
केल्साइट	–	Ca तथा HCO_3 आयन
डोलोमाइट	–	Ca, Mg तथा HCO_3 आयन

परिवहन (Transportation)

यह सर्वमान्य है कि अपरदित पदार्थ विभिन्न माध्यमों द्वारा समुद्र की यात्रा प्रारंभ कर देता है तथा यह यात्रा एक या अधिक चरणों में पूर्ण होती है। परिवहन ठोस कणों अथवा विलयन के रूप में होता है। विलेय मात्र केवल जल के माध्यम में ही परिवहित हो सकते है। गुरूत्वीय प्रवाह (gravitational flow), हिमनद वायु और जल परिवहन के माध्यम हैं। प्रत्येक माध्यम के लिये यह निश्चित है कि किस प्रकार के अवसादों के परिवहन में उसे कितनी शक्ति लगेगी।

सभी प्रकार के यांत्रिक परिवहन (mechanical transportation) में गुरूत्वीय शक्ति परिवहन का कारक बन जाती है। विशेषकर अधोमुखी (downward) एवं कुछ सीमा तक क्षैतिज परिवहन के लिये विशिष्ट परिस्थितियाँ आवश्यक है। जैसे कगारों पर तीव्र ढालों पर भूस्खलन शैल पात (rock fall) और शैल हिमघाव (Avalanche) के तथा महाद्वीपीय ढालों पर टरबिडिरी धारा के रूप में परिवहन होता है। हिमनदों में परिवहन गुरूत्व प्ररित द्रव प्रवाह के कारण होता है हिमनदों की राह में आने वाला शैल मलवा उसमें फंस कर उसके किनारों और तली पर संकर्सित (dragged) रूप से परिवहित होता है। किसी भी तरल (fluid) माध्यम में कणों का परिवहन तीन गतियों द्वारा होता है तथा इसे तल भार (bed load) परिवहन की संज्ञा दी गई है।

(i) **लोटनी गति एवं घर्षण** (Rolling and fraction) गति में परिवहित भारी शैल खण्ड तली से कभी भी ऊपर नहीं उठ पाते तथा लगातार तली के संपर्क में रहते हैं।

(ii) **उत्परिवर्तन** (Saltation) गति में माध्यम के उसी वेग में अपेक्षाकृत छोटे कण बहाव की दिशा में छलांग लगाते हुए परिवहित होते हैं। परिवहन पथ पर ऊपर की ओर उछलकर आगे बढ़ते हुए तली से पुनः टकराते हैं। सामान्यतः मध्यम आकार और वजन वाले कण इसी गति से परिवहित होते है।

(iii) **निलंबित** (Suspension) गति में छोटे और कम भार वाले कण असमान प्रक्षेप पथ (trajectory) द्वारा प्रवाह तल में उत्परिवर्तन गति से ऊपर के भाग में परिवहित होते हैं।

(iv) **कोलाइडी** (Collide) बहुत अधिक छोटे आकार के कण कोलाइडी दशा में परिवहित होते हैं। इनमें मृतिका खनिज (clay minerals) जैवीय द्रव्य तथा लौह और एल्यूमिना के हाइड्राक्साइड प्रमुख हैं। यह शांत (calm) वातावरण में भी काफी लंबे समय के बाद धीरे–धीरे निक्षेपित होते हैं।

निक्षेपण (Deposition)

अवसादों का परिवहन वायु बर्फ या जल किसी भी माध्यम द्वारा हो उनका अंतिम ठिकाना वही होता है जहाँ परिवहन रूक जाता है और मुख्यतः वह समुद्र ही होता है। समुद्र में परिवहित पदार्थ उसकी तली में निक्षेपित हो जाते हैं। कणीय अवसाद परिवहन माध्यम के वेग कम होने पर निक्षेपित होते हैं। इसी प्रकार रासायनिक परिस्थितियों के अनुकूल परिवर्तन होने पर रासायनिक निक्षेपण होता है। रासायनिक निक्षेपण में जैव रासायनिक क्रिया भी काफी सहायक होती है। पदार्थों का निक्षेपण अधिगमन माध्यम में भार अधिक हो जाने पर, गति में विरोध होने से अथवा किसी रासायनिक या भौतिक परिवर्तन से होने लगता है। विलयन का अधिक वाष्पन होने पर वह विलीन पदार्थ में संतृप्त होकर निक्षेपित हो जाता है। विलीन पदार्थ युक्त एक जलधारा जब दूसरी जलधारा से मिलती है तो उसमें मौजूद विलेय पदार्थ अभिक्रिया कर निक्षेपित हो सकते हैं। ऐसा विश्वास भी है कि जीवाणुओं की क्रिया से झीलों में दलदल–लौह–अयस्क (Bog-

iron-ore) का निक्षेपण होता है। निक्षेपण के बाद दाब एवं तापमान की वजह से अवसादों की परतों में होनेवाले बदलाव को डाईजेनेसिस (Diagenesis) कहते हैं।

डायजेनेसिस की अवधारणा (Concept of diagenesis)

निक्षेपण के समय अवसाद अबद्ध रहते हैं। समय के साथ विभिन्न भौतिक और रासायनिक प्रक्रमों द्वारा वे संपिंडित (consolidated)/संहत (compact) शैलों में परिवर्तित हो जाते हैं। अवसादों के संपिंडित शैलों में परिवर्तन की क्रिया शैलीभवन (Lithification) कहलाती हैं। उदाहरण के लिये बालू डायजेनेसिस में अनेक भौतिक, रासायनिक और जैवीय प्रक्रम सम्मिलित रूप से क्रियाशील होते हैं। डायजेनेसिस की क्रिया में सामान्यतः निम्न 7 प्रक्रमों का समावेश होता है।

1. संहनन (Compaction)
2. विलयन (Solution)
3. पुनःक्रिस्टलन (Recrystallization)
4. सीमेन्टीभवन (Cementation)
5. तंत्र जनन (Authigenesis)
6. प्रतिस्थापन (Replacement)
7. जैव विक्षोभ (Bioturbation)

1. **संहनन**/(Compaction) : अवसाद के निरंतर निक्षेपण से अवसादी द्रोणियों में हजारों मीटर मोटे अवसाद जमा हो जाते है। इस तरह पहले जमा हुए संस्तरों पर बाद में निक्षेपित पदार्थों का भार क्रमशः बढ़ता जाता है। भार की इस वृद्धि के कारण अवसादी कणों में प्रगाढ़ संकुलन होता है। जिसके फलस्वरूप अवसाद की संरध्रता (porosity) कम हो जाती है तथा कणों के बीच भरे हुऐ अंतरकाशी (interstitial) जल के बाहर निकल जाने से अवसाद का आंशिक निर्जलीकरण भी हो जाता है इस प्रक्रम को अवसाद का संहनन कहते हैं।

2. **विलयन** (Solution) : अवसादों में विलयन दो प्रकार के होते हैं–

(i) दाब विलयन (Pressure solution)

(ii) दाब, ताप, Eh और pH के परिवर्तन से

(i) **दाब विलयन** : ऊपरी भार और दाब के अत्यधिक बढ़ जाने पर संहनन अपनी चरम सीमा पर पहुँच जाता है। कण एक दूसरे के अत्यधिक करीब आ जाते हैं और संस्पर्श तलों पर आपस में एक दूसरे पर अत्यधिक दबाव डालते हैं इस कारण कमजोर कण मुड़ कर टूट जाते हैं। अन्य कणों में संस्पर्श स्थानों पर दाब के कारण कणों में विद्यमान विलयन वहाँ से अन्यत्र जाने को प्रारंभ हो जाता है। दाब के कारण इस प्रकार की विलयन क्रिया दाब विलयन कहलाती हैं यह विलयन पास के कणों में स्थानांतरित होकर उनके बीच स्थित कम दाब वाले रंध्राकाशों (pore spaces) में अवक्षेपित हो जाते हैं। ये अवक्षेपित पदार्थ अबद्ध अवसाद कणों को जोड़ने का काम करते हैं।

(ii) **दाब के साथ ताप**, Eh **और** pH **के परिवर्तन** : इससे भी अवसाद कणों में उपस्थित खनिजों के विलयन पर उपरोक्त कारकों का भी प्रभाव होता है जब परिसंचारी द्रव (Circulating fluids) अवसादों से होकर प्रवाहित होते हैं तब वे घटक जो विद्यमान परिस्थितियों मे स्थायी नहीं होते उन द्रवों में विलय हो जाते हैं तथा इस विलयन में विद्यमान खनिजों का भी उपयुक्त स्थितियों की उपस्थित होने पर पुनः अवक्षेपण हो जाता है। इन कारणों से अवसादी शैलों की संरध्रता कम होती है तथा अवक्षेपित खनिज, कणों के बीच संयोजक पदार्थ का काम करते हैं।

अधिकांश कार्बोनेटी शैलों और कई बार बलुआ पत्थरों में दाब विलयन के फलस्वरूप शैल का अधिकांश भाग उससे बाहर चला जाता है तथा उसमें अनियमित दंतुर तलवाली स्टायलोलाइट संरचना निर्मित हो जाती है। ये तल कणों और सीमेंट को प्रतिच्छेदित करते हैं। इन तलों पर अविलेय पदार्थ (सामान्यतः मृतिका) की अति महीन परत बन जाती है।

3. **पुनः क्रिस्टलन** (Recrystallisation) : इस प्रक्रम में खनिजकणों के क्रिस्टलीय जालक (crystal lattice) के पुनः अभिविन्यास (reorientation) के कारण एवं सहचारी (associated) गठनीय परिवर्तन के कारण शैलीभवन होता है। पुनः क्रिस्टलन की क्रिया दाब, ताप और द्रव प्रावस्था के परिवर्तन के कारण होती हैं। यह क्रिया शैलों में उपस्थित खनिजों के आंशिक रूप से विलयन और पुनः क्रिस्टलन के कारण संपन्न होती है।

4. **सीमेंटीभवन** (Cementation) : सीमेंटीभवन अवसाद के दृढ़ीकरण (induration) या शैलीभवन का प्रमुख प्रक्रम है। इस प्रक्रम में अवद्ध अवसाद कण संयोजक पदार्थों द्वारा आपस में बंध जाते हैं। यह संयोजक पदार्थ छोटे अवसाद एवं मृणमय अवसाद हो सकते हैं। संयोजक पदार्थ दो प्रकार के होते है, पहले वर्ग में अवसादों में निक्षेपित अपेक्षाकृत छोटे प्रकार के अवसादी कण होते हैं जो बड़े कणों के बीच खाली स्थान में जमा हो जाते हैं। इन संयोजक पदार्थों को अधात्री या मेट्रिक्स कहते हैं। अति महीन खनिज कण और मृण्मय अवसाद इसके मुख्य घटक है। इनके साथ ही अनेक खनिजों के परिवर्तन/प्रतिस्थापन द्वारा उपर्युक्त परिस्थितियों में भी मृतिका के खनिज निर्मित होते हैं जो बालू कणों को जोड़ते है।

इनके अलावा रासायनिक उत्पत्ति के संयोजक पदार्थ होते हैं जिन्हें सीमेन्ट भी कहते है। इस वर्ग में सिलिका और कार्बोनेट खनिज मुख्य है। इनकी उत्पत्ति भी दाब विलयन एवं प्रतिस्थापन, तंत्र जनन आदि प्रक्रमों द्वारा होती है। किसी भी शैल में एक या एक से अधिक संयोजक पदार्थ पाये जा सकते हैं।

5. **तंत्र जनन** (authigenesis) : तंत्र जनन प्रक्रम में डाइजेनेसिस के समय नये खनिजों का क्रिस्टलन होता है। ये नये खनिज या तो अवसाद में उपस्थित घटकों के आपस में अभिक्रिया करने से अथवा बाहर से आये द्रवों द्वारा लाये गये घटकों के अवक्षेपण अथवा अवसाद के घटकों और बाहर से लाये गये घटकों की आपस में अभिक्रिया के कारण निर्मित होते हैं। पुनः क्रिस्टलन में सामान्यतः में प्रतिस्थापन और पुनः क्रिस्टलन प्रभावी होता है। तंत्रजात खनिजों में क्वार्टज, फेल्सपार, मृतिका व कार्बोनेट खनिज सर्वाधिक सामान्य है। किंतु अन्य खनिजों की उपस्थिति भी पाई जाती है।

6. **प्रतिस्थापन** (Replacement) : प्रतिस्थापन प्रक्रम द्वारा अवसाद में उपस्थित खनिज स्वस्थाने नये खनिज द्वारा प्रस्थापित हो जाते हैं। प्रतिस्थापित खनिज या तो उपस्थित खनिज का पुनःक्रिस्टलन, बहुरूप (polymorph) अथवा उसका कूटरूप (pseudomorph) अथवा मित्र क्रिस्टल संरचना वाला नया खनिज हो सकता है। प्रतिस्थापन द्वारा निर्मित खनिजों में क्वार्ट्ज, डोलोमाइट, इलाइट, मृतिका प्रमुख हैं।

7. **जैव विक्षोभ** (Bioturbation) : यह जैविक सक्रियता का वह प्रक्रम है जिसमें अवसाद की सतह पर उसके पास कुछ गहराई तक जैविक क्रियायें यथा बेधन (boring), बिल निर्माणी (burrowing), रेंगना (crawling) आदि के कारण अवसादों का संमिश्रण हो जाता है उनके संहनन में भी वृद्धि हो जाती है। इस क्रिया में जीव इस प्रकार के पदार्थ श्रवित करते हैं जो कणों के बीच सीमेंट का कार्य करते हैं।

डायजेनेसिस के उपरोक्त प्रक्रम के घटित होने के समय के संदर्भ में कोई निश्चित क्रम निर्धारित नहीं किया जा सकता है। सभी क्रियायें किसी भी समय एकल अथवा सम्मिलित रूप से क्रियाशील रह सकती है।

अवसादी शैलों का खनिज संघटन
(Mineralogical composition of Sedimentary rocks)

अवसादी शैलों के ज्यादातर खनिज पूर्व स्थित शैलों से ही प्राप्त होते हैं। पर उनमें दो वर्ग हो सकते हैं। एक वो जो शैल अपघटन से प्राप्त अविलेय अवशेष एवं दूसरे अपेक्षाकृत स्थायी खनिज जो पूर्व स्थित शैलों से प्राप्त हो।

प्रथम वर्ग में यह खनिज समूह हैं :

(क) मृतिका खनिज, तथा केओलिनाइट और हैलोइजाइट

(ख) अभ्रक एवं क्लोराइट

(ग) एल्यूमिनियम हाइड्रॉक्साइड, बॉक्साइट आदि

(घ) फेरिक ऑक्साइड एवं हाइड्रॉक्साइड

द्वितीय वर्ग में अनेक खनिज आते हैं जिसमें क्वार्ट्ज सबसे ज्यादा मिलता है। जिसके उपरान्त फेल्सपार पाया जाता है। कुछ गौण खनिज यथा जरकॉन, रूटाइल, टूरमैलीन, गार्नेट, कायनाइट, मैग्नेटाइट इत्यादि अधिकतर अवसादों में उपस्थित होते हैं।

इनके अलावा वे घटक जिनकी उत्पत्ति अन्य किसी भी समय पर हुई और बाहर से अवसाद में लाये गये हों, उन्हें अन्यत्रजात (Allogenous) कहते हैं उदाहरण गुटिका एवं खनिज कण। दूसरे वे घटक जो अवसाद के अन्दर अनुवर्ती परिवर्तनों द्वारा नये सिरे से उत्पन्न हो उन्हें तत्रजात (Authigenous = स्थानीय रचित) कहते हैं।

अवसादी शैलों का वर्गीकरण
(Classification of Sedimentary Rocks)

अवसादी शैलों के सुव्यवस्थित अध्ययन के लिए उनका वर्गीकृत करना आवश्यक है। अवसादी शैलों के गुण वर्गीकरण का आधार बनते हैं, जैसे गठन, रासायनिक एवं खनिज संघटन आदि। उपरोक्त गुणों के आधार पर अवसादी शैलों को मुख्य रूप से दो वर्गों में बांटा गया है – यथा खण्डज एवं अखण्डज अवसादी शैलें।

1. **खण्डज अवसादी शैलें** (Clastic Sedimentary Rocks)

यह वर्गीकरण खण्डजों के आकार के आधार पर किया गया है।

i. **गुटिकामय** (Rudaceous) : जो कि मुख्यतः गोलाश्म, गोलाश्मिका एवं गुटिका से बनी शैलें होती हैं। उदाहरण संगुटिकाश्म एवं संकोणाश्म शैलें।

ii. **बालुकामय** (Arenaceous) : मुख्यतः विभिन्न प्रकार की बालुश्रेणी के कणों के सम्पीडन से बनी शैलें हैं। जैसे बालू से बालुकाश्म का निर्माण होता है।

iii. **मृण्मय** (Argillaceous) : गाद एवं मृतिका श्रेणी के कणों से बनी हुई शैलें। जैसे गाद के सम्पीडन से गाद प्रस्तर एवं मृतिका के सम्पीडन से शेल (Shale) बनती है।

2. **अखण्डज अवसादी शैलें**

(Non-Clastic Sedimentary Rocks)

इस समूह की अवसादी शैलों का वर्गीकरण मुख्य रूप से खनिज एवं रासायनिक संघठन पर आधारित है।

i. **चूनामय** (Calcareous) : कैल्शियम एवं मैग्निशियम के कार्बोनेट से बनी शैलें जैसे चूनाश्म।

ii. **कार्बनमय** (Carbonaceous) : कार्बनमय पदार्थों से बनी शैलें जैसे लिग्नाइट।

iii. **लोहमय** (Ferruginous) : लोह या मैंगनीज ऑक्साइड से बनी शैलें, जैसे लोहप्रस्तर।

iv. **सिलिकामय** (Siliceous) : सिलिका के विभिन्न रूपों से बनी शैलें, जैसे – चर्ट।

v. **एल्युमिनामय** (Aluminous) : एल्युमिनियम ऑक्साइड से बनी शैलें, जैसे लैटराइट।

vi. **फॉस्फेटमय** (Phosphatic) : फॉस्फोरस युक्त बनी शैलें, जैसे – फॉस्फोराइट।

कुछ अवसादी शैलें

संगुटिकाश्म (Conglomerate)

गोल कणों वाले असंपीडित गुटिकामय निक्षेप जिन्हें बजरी या शिंगिल (gravel) कहते हैं, के संपिडन से संगुटिकाश्म का निर्माण होता है। संगुटिकाश्म के खंडों के आकार, गठन (कण आधारी या आधात्री आधारी) तथा खनिजात्मक एवं रासायनिक संघटन में अत्यधिक विविधता पाई जाती है। इसमें अत्यधिक स्थूल कण, कणों की छँटाई अच्छी नहीं होती, कणों की गोलाईता तथा गोलाभता मध्यम होती है। इसी प्रकार इनका संयोजन पदार्थ स्थलजात अपेक्षाकृत महीनकणी अथवा रासायनिक उत्पत्ति का हो सकता है। कण प्रायः क्वार्ट्ज, क्वार्ट्जाइट, चर्ट आदि के तथा संयोजन पदार्थ सिलिका होता है। इसके कणों का व्यास 2 मिलीमीटर से अधिक होता है। इसके कणों में गोलाई अधिक होती है।

संगुटिकाश्म मुख्यतः दो प्रकार के होते हैं।

(अ) आलिगोमिक्टिक (Oligomictic) एक ही प्रकर की शैल गुटिकाओं से निर्मित।

(ब) पॉलिमिक्टिक (Polymictic) विभिन्न प्रकार की गुटिकाएँ।

संकोणाश्म (Breccia)

संकोणाश्म कोणीय या उपकोणीय गुटिकामय शैल खंडों का संपिडित समुच्चय है। संकोणाश्म के कोणीय खंडों के आकार तथा खनिजात्मक संघटन में विविधता नहीं पाई जाती है। मुख्य रूप से इसकी उत्पत्ति अवसादी होती है। अवसादी संकोणाश्म कोणीय शैल खण्डों युक्त शैल मलबे (rock debris) के उसी जगह पर संपीडन (compression) और अश्मीभवन से निर्मित होते हैं। ज्वालाश्मचय संकोणाश्मक ज्वालामुखी से प्रक्षिप्त आधार शैल खण्डों तथा प्रक्षिप्त पदार्थों के निक्षेपण और संपीडन से होता है। भ्रंश तलों पर और विवर्तनिक गतिविधियों के कारण उत्पन्न संकोणाश्म को विवर्तनिक संकोणाश्म कहते हैं। संकोणाश्म के कण के टुकड़े अधिक कोणीय होते हैं जबकि संगुटिकाश्म अधिक गोलाभता दर्शाते हैं।

बालुकाश्म (Sandstone)

बालुकाश्म बालुकामय समूह की अवसादी शैल है जिसमें बालू श्रेणी के खण्डज होते हैं। इसका रंग भूरा, सफेद, हल्का पीला, लाल आदि होते हैं।

खनिज संघटन : क्वाट्र्ज इसका मुख्य खनिज घटक होता है। क्वाट्र्ज कण सिलिकामय, मृदामय, लौहमय या कैल्शियम युक्त सीमेंट से आबद्ध रहते हैं। कुछ बालुकाश्मों में ऊपरीशाही पदार्थों के दबाव के कारण वेल्डिंग होने से भी आबद्ध रहते हैं।

गठन : मध्यम से सूक्ष्म कणों से बनी शैल होती है। खनिज कणों का आकार 2 से 1/16 मिमी के बीच होता है। कणों का आकार कोणीय या गोलाकार हो सकता है।

संरचना : इसमें स्तरण, वेगप्रवाही संस्तरण एवं तंरग चिह्न आदि संरचनाएं विद्यमान होती हैं।

इसका उपयोग मकान बनाने में लिया जाता है। जोधपुर आगरा एवं दिल्ली के किले इसी शैल से बने हैं।

चूनाश्म (Limestone)

यह अखण्डज अवसादी शैल है। कैल्शियम कार्बोनेट के अवक्षेपण से होने वाले निक्षेपण द्वारा चुनाश्म बनता है। कैल्शियम कार्बोनेट का अवक्षेपण भौतिक – रासायनिक में परिस्थितियों में परिवर्तन से या जैव कारकों के कारण भी हो सकता है प्रायः इसमें जीवाश्म भी मिलते हैं।

खनिज संघटन : मुख्यतः कैल्साइट से बनी होती है। कुछ मात्रा में डोलोमाइट भी पाया जाता है। चर्ट, गाद एवं मृण्मय भी अशुद्धि के तौर पर पाई जाती हैं। इसके अलावा क्वॉर्ट्ज फेल्सपार एवं लौह ऑक्साइड का मिलना भी सामान्य गुण है।

गठन : चूनाश्म अखंडज शैल होती है। यह ठोस एवं स्थूल होती है। कुछ चूनाश्मों में अण्डाभ संरचना पाई जाती है। सामान्य तौर पर जीवाश्मों की उत्पत्ति के कारण जैविक संरचनाएं भी पायी जाती हैं।

इसका उपयोग सीमेन्ट बनाने में, इमारती पत्थर के रूप में एवं रासायनिक उद्योगों में किया जाता है।

शैल (Shale)

शैल विभिन्न वर्णों में पायी जाती है जिनमें सामान्यतः विदल्यता (Fissility) उपस्थित होती है। शैलों में मुँह से भाप

देकर सूँघने पर मिट्टी सी गंध आती है। शैल के कणों का औसत आकार 0.01 मिलिमीटर से छोटा होता है। जब ये कण सुप्रस्तरित और सुगमता से संस्तरण तलों के अनुप्रस्थ विपाटित हो तो उसे शैल कहते हैं। शैलों में खनिज अत्यधिक सूक्ष्म कण के होने से उनके स्थूलदर्शीय अध्ययन में खनिजों की पहचान कठिन होती है। शैलें अनेक वर्णों में मिलती हैं जिनसे उनकी उत्पत्ति के विषय में बहुत कुछ जान सकते हैं। जैसे लाल वर्ण हेमेटाइट के कारण होता है जो ऑक्सीकरण वातावरण (Oxidation Environment) को दर्शाता है। काला या धूसर वर्ण अपचयन वातावरण (Reduction Environment) को दर्शाता है और हरा वर्ण ठंडी जलवायु का द्योतक है।

कायांतरित शैल विज्ञान
(Metamorphic Petrology)

किसी ठोस शैल में दाब, ताप और रासायनिक वातावरण में प्रमुख परिवर्तनों के प्रभाव के कारण नवीन संतुलन स्थापित होते हैं जिसके फलस्वरूप उन शैलों में खनिजात्मक एवं संरचनात्मक परिवर्तन होते हैं जिसे कायांतरण कहते हैं। कायांतरित शैलों का निर्माण विभिन्न प्रकार के खनिजों से युक्त आग्नेय या अवसादी शैलों के कायान्तरण से हुआ है यही नहीं कायांतरित शैल का भी दुबारा कायांतरण हो सकता है। कायांतरण में एक ही मूल शैल से कायांतरण की भिन्न भिन्न परिस्थितियाँ बनने पर अलग–अलग प्रकार की कायांतरित शैलें बन सकती है। कभी कभी इनमें पुनः क्रिस्टलन अपूर्ण रहने से इनमें कायान्तरण पूर्व के खनिज, गठन और संरचनाओं के मूलावशे भी उपस्थित रहते हैं।

कायांतरण के कारक एवं प्रकार
(Agents and Kinds of Metamorphism)

आग्नेय शैलों के निर्माणकारी घटक सामान्यतः अपने निर्माण के समय की परिस्थितियों में भौतिक और रासायनिक रूप से संतुलन की स्थित में होते हैं। किंतु निर्माण के पश्चात भूविवर्तनिक (Geotectonic) हलचलों के कारण के शैल जब अपने निर्माण के समय से भिन्न भौतिक और रासायनिक वातावरण में स्थापित हो जाते हैं तब उनके स्थायी घटकों का पुनक्रिस्टलन होने लगता है तथा अन्य घटक इन नई परिस्थितियों में स्थायी घटकों में परिवर्तित होने लगते हैं। सामान्यतः इस प्रकार से निर्मित शैलों में नवीन वातावरण के अनुकूल संरचनायें और गठन निर्मित हो जाता है। परिवर्तित खनिज संघटन और संरचना एवं गठन वाले इन शैलों को कायांतरित शैल कहते हैं।

कायांतरण की क्रिया भूपर्पटी (crust) के आंतरिक भाग में डायजेनेसिस कटिबंध के नीचे तथा पुनर्भवन (palingenesis) के ऊपर के भाग में क्रियाशील होती है। कायांतरण में दो प्रकार के प्रेरक कारकों को कायांतरण के लिये उत्तरदायी माना गया है।

(1) तापमान एवं दाब के रूप में भौतिक कारक और

(2) रासायनिक सक्रिय द्रवों के रूप में रासायनिक कारक इन कारकों की आपेक्षिक (relative) सक्रियता के आधार पर कायांतरण को दो वर्गों में वर्गीकृत किया गया है।

(a) **सम रासायनिक कायांतरण** (Isochemical metamorphism) : इस कायांतरण में मूल शैल के स्थूल (Bulk) रासायनिक संघटन में कोई विशेष परिवर्तन नहीं होता। इसमें केवल घटकों का आपस में पुनः समंजन (readjusment) होता है। सामान्य अर्थ में इसे ही कायांतरण माना जाता है।

(b) **अपर रासायनिक कायांतरण** (Allochemical metamorphism) : जिसमें कायांतरण के समय शैल बाह्य स्त्रोतों से आये रासायनिक घटकों से समृद्ध हो जाती हैं । जिनके कारण मूल शैल के रासायनिक संघटन में उल्लेखनीय परिवर्तन हो जाता है। इस प्रकार के परिवर्तन को तत्वांतरण (metasomatism) कहते हैं।

कायांतरण का क्षेत्र डायजेनेसिक के बाद प्रारंभ होकर पर्याप्त मात्रा में पेलिन्जेनेसिस (पुनःर्भवन) तक है किन्तु किस बिन्दु पर कायांतरण प्रारंभ अथवा अंत होता है इसका निर्णय करना अत्यधिक कठिन है। मस्कोवाइट, पेरागोनाइट (Paragonite), प्रेहनाइट (Prehnite), एल्बाइट (albite) आदि खनिजों का निर्माण कायांतरण प्रारंभ होने का सूचक है। कायांतरण में खनिज किसी निश्चित तापमान पर नहीं बनते बल्कि प्रत्येक खनिज के निर्माण में परिस्थितियों के आधार पर तापमान में कुछ अंतर पाया जाता है। सामान्यतः कायांतरण की प्रारंभिक अवस्था में तापमान 150°C या उससे कुछ अधिक और दिष्ट दाब लगभग 500 बार होता है। शैल जब पर्याप्त मात्रा में पिघल कर द्रव अवस्था में परणित हो जाता है तब वह कायांतरण की अंतिम सीमा होती है। सामान्यतः यह 700°C से 900°C तक होता है। आग्नेय और कायांतरित गठनों का समिश्रण दर्शाने वाले मिग्मेटाइट शैलों की उत्पत्ति को कायांतरण की अंतिम सीमा माना जाता है।

कायांतरण के कारक
(Agents of metamorphism)

ताप, दाब और क्रियाशील रासायनिक तरल पदार्थ कायांतरण के प्रमुख कारक है। ये सभी कारक स्वतंत्र रूप से अलग अलग अथवा सम्मिलित रूप से कायांतरण में प्रभावशील हो सकते हैं। इन कारकों का विभिन्न अनुपातों में संयोग होने पर भिन्न भिन्न प्रकार के कायांतरण होते हैं।

(क) **ताप** (Temperature) : ताप कायांतरण का अत्यंत महत्वपूर्ण कारक है। कायांतरण के लिए ताप निम्न स्त्रोतों से प्राप्त होता है।

(i) **भूतापीय प्रवणता** (Geothermal gradient) : पृथ्वी में गहराई के साथ तापमान वृद्धि की दर भूतापीय प्रवणता कहलाती है। यह सर्वविदित है कि भूपर्पटी में गहराई के साथ तापमान बढ़ता है। यह वृद्धि सामान्यतः 30°C / किमी होती है। वृद्धि की दर भूपर्पटी के ऊपरी भाग में निचले भाग की तुलना में अपेक्षाकृत तीव्र होती है।

(ii) **मैग्मीय ताप** (Magmatic heat) : आग्नेय अंतर्वेधों और उसे घेरने वाली क्षेत्रीय शैलों के तापमान में स्पष्ट अंतर होता है। ग्रेनाइट के संस्पर्श तल के पास तापमान 500°C से 800°C तक और गैब्रो के संस्पर्श तल पर यह 700°C से 1000°C तक होता है। आग्नेय राशि और क्षेत्रीय शैलों के तापमान में इस अंतर के कारण अंतर्वेध से क्षेत्रीय शैलों में ताप विसरित होने के कारण क्षेत्रीय शैलों का तापमान बढ़ जाता है जो कि कायांतरण में सहायक होता है।

(iii) **घर्षणी ताप** (Frictional heat) : शैलों के विरूपण के समय घर्षण (बलकृत कार्य) के कारण घर्षणी उष्मा उत्पन्न होती है। यद्यपि इससे शैलों के तापमान में होने वाली वृद्धि नगण्य होती है किंतु कुछ प्रकरणों में यह 75°C से 80°C तक हो सकता है।

(iv) **रेडियोएक्टिवता** (Radioactivity) : रेडियाएक्टिव तत्वों के विखंडन से ताप उत्पन्न होता है। भूपर्पटी के ऊपरी भाग सिआल (Sial) में निचले भाग सीमा (Sima) की तुलना में रेडियो एक्टिव तत्वों की मात्रा अधिक होती है।

तापमान परिवर्तन के प्रभाव
(Effect of change of temperature)

तापमान की वृद्धि से होने वाले सामान्य परिवर्तन इस प्रकार हैं।

1. आयतन में वृद्धि के कारण अपेक्षाकृत कम घनत्व के खनिज निर्मित होते हैं।
2. रासायनिक अभिक्रियायें तेज होती हैं।
3. खनिजों का पुनक्रिस्टलन होता है।
4. ताप वृद्धि के कारण खनिजों / शैल में उपस्थित जल और तापशील घटकों के निष्क्रमण होने से निर्जल खनिजों की रचना होती है। किसी भी कायांतरण अभिक्रिया के लिये आवश्यक तापमान दिष्ट दाब बढ़ने पर अधिक होता जाता है किन्तु उसी अभिक्रिया में जल वाष्प के दाब की वृद्धि होने पर अभिक्रिया अपेक्षाकृत कम तापमान पर प्रारंभ हो जाती है।

(ख) **दाब** (Pressure) : सामान्यतः शैलों में प्राकृतिक दाब को द्रव स्थैतिक दाब (hydrostatic pressure) या एक समान दाब (uniform) और दिष्ट दाब (directed pressure) या प्रतिबल (stress) में नियोजित किया जा सकता है।

(A) **दिष्ट दाब अथवा प्रतिबल** (Directional pressure of stress) : यह एक निश्चित दिशा में क्रियाशील होता है। भूपर्पटी के ऊपरी और मध्य मंडलों में प्रतिबल अधिक प्रभावी होता है। इसकी उत्पत्ति शैलों के गहराई में दफन होने के फलस्वरूप ऊपरिशायी शैलों के अधोमुखी (downward) भार तथा परिवर्तन क्रिया के समय संचलन से होती है। सामान्यतः गहराई के साथ ऊपरिशायी शैलों के आपेक्षिक घनत्व के आधार पर 200–300 बार / कि.मी. की दर से दिष्ट दाब में वृद्धि होती है।

प्रतिबल उपरिशायी शैलों के आपेक्षिक घनत्व पर निर्भर होता है। शैल रंध्रों और विदरों में विद्यमान तरल पदार्थों पर भी यह दाब उसी प्रकार क्रियाशील होता है जिस प्रकार ठोस शैलों पर। इस कारण गहराई की एक निश्चित सीमा पर दिष्टदाब / प्रतिबल और द्रव स्थैतिक दाब बराबर हो जाते है। प्रतिबल के प्रभाव निम्नानुसार होते है।

(i) प्रतिबल के कारण पदार्थ के पृष्ठ तल में वृद्धि होती है इस कारण अभिक्रियाओं की गति तीव्र होती है।

(ii) पदार्थों का संदलन (crushing) विभंजन (Fracturing) तथा अपरूपण (shearing) होता है।

(iii) खनिजों की आकृति और विन्यास में परिवर्तन होता है। इसके कारण शल्की (foliate), पत्रित (Flaky) अथवा शलाका (rod shaped) आकार के खनिजों की रचना सरलता से होती है।

(B) **एकसमान दाब / द्रव स्थैतिक दाब** (uniform pressure/hydrostatic pressure) : शैल रंध्रों और विदरों में उपस्थित तरल पदार्थों में से जल सबसे प्रमुख होता है। इन तरल पदार्थों पर भी दिष्ट दाब उसी प्रकार क्रियाशील होता है जैसे ठोस शैलों पर। गहराई बढ़ने और अधिक ताप के कारण खनिजों के प्रगामी निर्जलीकरण से उनमें से तरल पदार्थ निर्मुक्त (released) होकर द्रवों की मात्रा में वृद्धि करते हैं।

द्रव स्थैतिक दाब कायांतरण के समय रासायनिक अभिक्रियाओं के नियंत्रण में महत्वपूण होता है तथा इसके प्रभाव के कारण समविमिय (equidimensional) खनिज क्रिस्टलों की उत्पत्ति होती है।

(ग) **रासायनिक क्रियाशील तरल पदार्थ** (Chemically active fluids) : शैलों के रंध्रों और विदरों में उपस्थित वाष्पशील एवं रासायनिक क्रियाशील पदार्थों की उपस्थिति अत्यधिक महत्वपूर्ण है। इन तरल पदार्थों में जल और कार्बनडाइऑक्साइड प्रमुख और महत्वपूर्ण घटक हैं। खनिजों के पुनक्रिस्टलन के समय विसरित तरल पदार्थ इसे ओर समृद्ध करते हैं।

तरल पदार्थों की उपस्थिति में उनमें खनिजों के घटकों के आंशिक अथवा पूर्ण विलयन से तरल पदार्थों की उपस्थिति के कारण उत्पन्न शैल आर्द्रता सार्वत्रिक (universal) एवं अत्यंत तनु

(dilute) सूक्ष्म (fine) किन्तु अत्यधिक क्रियाशील माध्यम हो जाता है। जिसके कारण रासायनिक अभिक्रियायें तीव्र होती है तथा अनुकूल ताप और दाब के वातावरण में खनिजीय रूपांतरण अपेक्षाकृत अधिक सरलता से संपन्न हो सकते हैं। रासायनिक क्रियायें आग्नेय अंतर्वेधों के समीप एवं अपेक्षाकृत अधिक गहराई पर ज्यादा शक्तिशाली होती है।

कायांतरण के प्रकार (Kinds of metamorphism)

कायांतरण को सामान्यतः कई प्रकार से वर्गीकृत किया जा सकता है। इनका वर्गीकरण कायांतरण के कारकों, भूवैज्ञानिक एवं भौगोलिक उपस्थित क्षेत्रों के आधार पर किये गये हैं। कायांतरण से प्रभावित भौगोलिक क्षेत्र के आधार पर इसे स्थानिक (Local) और प्रादेशिक (Regional) वर्गों में विभाजित किया गया है। स्थानिक कायांतरण अपेक्षाकृत छोटे क्षेत्र में सीमित रहता है तथा इससे प्रभावित शैलों की मात्रा भी सीमित होती है। तापीय, अपदलनी और उष्णजलीय कायांतरण इसी वर्ग में आते हैं। प्रादेशिक कायांतरण अत्यधिक विस्तृत क्षेत्र में प्रादेशिक स्तर पर पाया जाता है और इसका मैग्मा के उदभेदन (eruption) से सीधा आनुवंशिक संबंध नहीं पाया जाता। उष्मागतिक (dynamothermal) और अंतर्हिती (Burial) कायांतरण इस वर्ग में आते हैं।

कायांतरण का दूसरा वर्गीकरण उसे संपन्न कराने वाले कारकों के अलग–अलग अथवा सम्मिलित प्रभाव पर आधारित है। इस वर्गीकरण में कायांतरण के निम्न प्रकार माने गये हैं।

(क) **दाब प्रमुखी कायांतरण** (Pressure predominant metamorphism) : प्रमुख दाब प्रमुखी कायांतरण निम्नलिखित है–

1. **अपदलनी कायांतरण** (Cataclastic metamorphism) : इस कायांतरण में दिष्ट दाब अथवा अपरूपण प्रतिबल (shearing stress) प्रमुख कारक है। यह भूपर्पटी के ऊपरी भाग में क्रियाशील रहता है। इसमें खनिज विरूपण, विभंजन, संदलन और प्लास्टिक प्रवाह विरूपित हो जाते हैं। यह प्रायः कायांतरित क्षेत्रों में उपस्थित भ्रंशों से प्रभावित क्षेत्रों में पाया जाता हैं। इसमें माइलोनाइट, संदलन संकोणाश्म, रेखित शैल और चाक्षुस नाइस (augen gneiss) निर्मित होती है।

2. **अंतर्हिती कायांतरण** (Burial metamorphism) : अभिसारी (Convergent) प्लेट के किनारें पर निर्मित कुछ भू–अभिनतियों में अवसाद और उनके साथ अंतरास्तरित (interstratified) ज्वालामुखी शैल अत्यधिक गहराई पर अंतर्हित/दफन (Buried) हो जाते हैं। इन क्षेत्रों में तापमान कई सौ अंश हो सकता है किंतु अत्यधिक उच्च जल दाब (PH_2O) के कारण शैलों के मूल गठन लगभग अवशिष्ट रह जाते हैं केवल शैल के खनिजों में संगठनात्मक परिवर्तन होते हैं।

3. **प्रघात कायांतरण** (Shock metamorphism) : यह कायांतरण अत्यधिक तीव्र गति से प्रघात लगने के कारण खनिजों में विकृति (strain) उत्पन्न होने से होता है। सामान्यतः यह भूपटल पर उल्कापिंडों (meteorites) की सीधी टक्कर का परिणाम है। उल्कापिंड की गतिक उर्जा टक्कर के कारण प्रघात तरंगों में परिवर्तित कर टकराव के स्थान से चारों ओर गमन करती है। प्रघात तरंगे प्रभावित क्षेत्र में अत्यधिक कम समय में अति उच्च तापमान और दाब उत्पन्न करती है। जिसके फलस्वरूप उनसे प्रभावित क्षेत्र के शैल कायांतरित हो जाते हैं।

(ख) **ताप प्रमुखी कायांतरण** (Temperature predominant metamorphism) : उन सभी रूपांतरणों के लिये जिनमें ताप प्रमुख प्रभावी कारक होता है, तापीय कायांतरण (Thermal metamorphism) शब्द का प्रयोग किया जाता है। आग्नेय अंतर्वेध राशियां ताप का स्रोत होती हैं एवं उनके समीप उष्मा की प्रचुरता होती है। तापमान बढ़ने के कारण हुई आयतन वृद्धि तथा अंतर्वेध से निस्सरित द्रवों और गैसों के स्थानीय शैलों में अंतःश्रवण (percolation) से अभिक्रियाएं होने के कारण शैलों में कायांतरण होने लगता है। उपरिशायी शैलों के अधोमुखी भार से उत्पन्न दिष्ट दाब जनित परिवर्तन उष्मा जनित परिवर्तनों की तुलना में बहुत कम होते हैं।

अति उच्चताप पर जो कायांतरण आग्नेय राशियों के चारों ओर होता है उसे उच्च तापीय कायांतरण (pyrometamorphism) कहते हैं तथा अपेक्षाकृत निम्न ताप पर होता है उसे संस्पर्श कायांतरण (contact metamorphism) कहते हैं। तापीय संस्पर्श मंडल में स्थित तप्त शैलों में आग्नेय अंतर्वेध संस्पर्श से लेकर अकायांतरित क्षेत्रीय शैलों तक विस्तीर्ण संस्पर्श मंडल में विशाल तापीय प्रवणता (Thermal gradient) के कारण अनेक खनिज मंडल उत्पन्न हो जाते हैं। जैसा कि पूर्व में कहा गया है, अंतर्वेधी राशि में निस्सरित गैसें और तरल पदार्थ संस्पर्श मंडल में श्रवित होते रहते हैं और कायांतरण प्रक्रमों में भाग लेकर शैलों के रासायनिक संघटन को परिवर्तित कर सकते हैं। इस प्रकार के परिवर्तनों को योगज (additive) कायांतरण कहा जाता है। योगज प्रक्रिया में भाग लेने वाले तरल पदार्थों की प्रकृति, उनका श्रोत और परिवर्तित होने वाले शैलों की प्रकृति के आधार पर, यौगिक कायांतरण के तीन भेद किये गये हैं।

(1) जब तरल पदार्थ मुख्यतः गैस और वाष्प रूप में हो और उनके योग से नवीन खनिजों की रचना होती है तब इसे उष्णवाष्पीय (Pneumatolytic) कायांतरण कहा जाता है।

(2) जलीय अथवा उष्ण जलीय विलयनों के कारण होने वाले परिवर्तनों को उष्णजलीय (hydrothermal) कायांतरण कहा जाता है।

(3) कुछ आग्नेय शैलों में खनिजों के क्रिस्टलन के पश्चात वाष्शील पदार्थों से समृद्ध अवशिष्ट द्रव जब पूर्व क्रिस्टलित आग्नेय शैल राशि से अभिक्रिया कर उसे परिवर्तित कर देता है तब उसे स्वकायांतरण (autometamorphism) कहा जाता है।

(ग) **महासागर तलीय कायांतरण** (Oceanic basal metamorphism) : महासागरीय रिफ्ट क्षेत्रों में नवनिर्मित तप्त महासागरीय मेग्मीय पर्पटी मेटासोमेटिक और तापीय कायांतरण द्वारा महासागर के शीतल जल से पारस्परिक क्रियाशीलता दर्शाती है। इसके फलस्वरूप महासागरीय तप्त मेग्नीय पर्पटी का कायांतरण हो जाता है। इस अभिक्रिया में ताप और रासायनिक घटकों का सक्रिय प्रवाह पाया जाता है। इस परिवर्तन को महासागर तलीय कायांतरण कहा जाता है।

इन शैलों में निम्न कोटि कायांतरण से निर्मित खनिज पाये गये हैं। ये खनिज निम्न दाब और उच्च तापीय प्रवणता के सूचक हैं।

(घ) **दाब और उष्मा प्रमुखी कायांतरण** (Pressure and temperature predominant metamorphism) : दाब और ताप के सम्मिलित प्रभाव के फलस्वरूप शैल में खनिजों का पुनक्रिस्टलन भूपर्पटी के कुछ गहरायी पर क्रियाशील हो जाता है। ताप और दाब कायांतरण की सबसे अधिक प्रभावी शक्तियों में से है। दिष्ट दाब अथवा समदैशिक दाब की प्रमुखता के आधार पर इसे दो भागों में वर्गीकृत किया जा सकता है। पहला उष्मागतिक (dynamothermal) कायांतरण, इस कायांतरण में दिष्टदाब और ताप बलशाली कारक हैं। दिष्ट दाब अवसादों के गहराई पर दफन होने तथा उष्मा की वृद्धि तापीय प्रवणता और ग्रेनाइटी मैग्मा के प्रादेशिक अतिक्रमण (invasion) से होती है। दिष्ट दाब स्थानीय रूप से जलयुक्त खनिजों के गलनांक को घटाता है जिससे घटकों के विसरण पुनक्रिस्टलन और पुनर्विन्यास द्वारा उपयुक्त गठन उत्पन्न हो जाते हैं। इसी के साथ ताप का कार्य पुनक्रिस्टलन को पूर्ण करने में सहायता करना होता है। उष्मा गतिक कायांतरण सामान्यतः पर्वतन क्षेत्रों (orogenic belts) में पाया जाता है।

यह देखा गया है कि ताप और दाब की वृद्धि सभी क्षेत्रों में एक समान नहीं होती है। इसके कारण दाब और ताप के अनुपातों के आधार पर तीन परिस्थितियाँ निर्मित हो सकती है।

1. निम्न दाब वाले कायांतरण कटिबंध
2. मध्यम दाब वाले कटिबंध
3. उच्च दाब वाले कटिबंध (अंतर्हिती कायांतरण)

निम्न दाब कटिबंध और तापीय कायांतरण में लगभग एक ही प्रकार के खनिज पाये जाते हैं। निम्न दाब कटिबंध विस्तृत क्षेत्रों में पट्टियों के रूप में पाये जाते हैं।

दूसरा अत्यधिक गहराई पर जहाँ उच्च तापमान और समदैशिक दाब की प्रधानता होती वहाँ वितलीय कायांतरण (plutonic metamorphism) पाया जाता है।

तीसरे प्रकार में एक स्थिति ऐसी आती है जब शैलों के गलन से नयी मैगमा राशियाँ उत्पन्न होने लगती है। इस स्थिति को पेलेनजेनेसिस (Palangenesis) कहा जाता है।

(च) **प्रगामी और प्रतिगामी कायांतरण** (Progressive and retrogressive metamorphism) : कायांतरण प्रक्रमों में सामान्यतः दाब और ताप प्रगामी (progressive) दिशा में बढ़ते हैं मतलब ताप एवं दाब की वृद्धि के साथ कायांतरण का ग्रेड भी बढ़ता हैं इस प्रकार के कायांतरण को प्रगामी (Progressive) कायांतरण कहा जाता है। इसमें शैल क्रमशः निम्न मध्यम से होते हुए उच्च कोटि के कायांतरित शैलों में परिवर्तित हो जाती हैं। इसके विपरीत जब उच्च श्रेणी के कायांतरित शैल निम्न दाब ताप की परिस्थितियों द्वारा प्रभावित होते हैं तब उनके घटक खनिजों का संतुलन (equilibrium) अस्थिर हो जाता है और कायांतरण की अभिक्रियायें प्रतिगामी दिशा में कार्यशील हो जाती है तो इस प्रकार के परिवर्तनों को प्रतिगामी कायांतरण (retrograde metamorphism) कहते हैं। प्रतिगामी कायांतरण में उपस्थित तरल पदार्थ अभिक्रियाओं की गति तीव्र कर देते हैं जबकि प्रतिगामी कायांतरण में तरल द्रव्यों का अभाव तथा दाब और ताप की कमी के कारण अभिक्रियाओं को सम्पन्न होने में कई अरब वर्षों का समय लग जाता है। इस कारण कायांतरित शैलों में इस प्रकार के परिवर्तन विरले ही होते हैं।

(छ) **बहु कायांतरण** (Polymetamorphism) : उपरोक्त वर्णित सभी कायांतरणों मे परिवर्तन के लिये आवश्यक वातावरण का निर्माण केवल एक बार होता है तथा उसी में सभी कायांतरण अभिक्रियायें संपन्न होती है। कुछ स्थानों पर एक बार कायांतरण हो जाने के पश्चात कायांतरण के लिये आवश्यक परिस्थितियाँ पुनः उपस्थित हो जाती है जिसके कारण पुनः कायांतरण हो जाता है। इस प्रकार जब कोई शैल एक से अधिक कायांतरण चक्रों द्वारा प्रभावित होती है तब इसे बहुकायांतरण कहते हैं।

महत्वपूर्ण कायांतरित शैलें
(Important Metamorphic Rocks)

स्लेट (Slate)

स्लेट धूसर अथवा काले रंग की अत्यधिक सूक्ष्म कणी मृण्मय पदार्थ से निर्मित शैल होती है जो कि माइका (सेरीसाइट), क्लोराइट तथा अपघटित पदार्थ यथा क्वार्ट्ज, फेल्सपार तथा एल्यूमिनियम और लौह के सिलिकेट और हाइड्राक्साइड के चूर्ण से बनी होती है। स्लेटी विदलन इसका लाक्षणिक गुण है। इसमें

विदलन तल पास–पास में होते हैं। सूक्ष्मकणिक होने के कारण खनिजों को आसानी से नहीं पहचाना जा सकता है। अपघटित पदार्थ क्वार्ट्ज एवं फेल्सपार भी होते है। इस शैल की उत्पत्ति मृत्तिकामय अवसादों, ज्वालामुखीय राख एवं सूक्ष्मकणीय अवसादों के कायांतरण के फलस्वरूप हुई हैं। यह कई प्रकार की होती है यथा चूनामय (Calcareous) स्लेट, कार्बनी (Carbonaceous) स्लेट, लाल स्लेट आदि।

फायलाइट (Phyllite)

फायलाइट मृण्मय अवसाद के निम्न श्रेणी के कायांतरण से उत्पन्न होती हैं। फायलाइट स्लेट और शिस्ट के बीच की ऐसी शिष्टाम शैल है जो स्लेट से थोड़े उच्च कायांतरण पर बनती है। यह स्लेट की तुलना में स्थूल कणी किंतु शिष्ट की तुलना में महीन कणी है। इसे पत्रित अभ्रक एवं क्लोराइट चमक (sheen) प्रदान करते हैं। यह चमक इसका लाक्षणिक गुण है। क्लोराइट और माइका युक्त शैल में क्वार्ट्ज और फेलस्पार खनिज गौण रूप से पाय जाते हैं किंतु उन्हें बिना माइक्रोस्कोप की सहायता के नहीं पहचाना जा सकता। कायांतरण की श्रेणी बढ़ने पर ये शिष्ट में परिवर्तित हो जाते हैं।

शिष्ट (Schist)

शिष्ट विविध वर्णी, पूर्ण क्रिस्टलीय, स्थूल लक्षणी कायांतरित शैल है। जिसमें शिष्टाभ संरचना (चित्र 3.8) स्पष्ट रूप से पायी जाती है। इसमें शिष्टाभ तलों (स्तरिकायन/foliation) के समानान्तर विपाटन (splitting) की प्रवृत्ति पायी जाती है। खनिजों के पुनक्रिस्टलन के कारण सभी खनिज तीव्र काँचाभ द्युति दर्शाते हैं। प्रमुख खनिज घटक माइका है जो शैल को श्ष्टिाभता प्रदान करती है। माइका में बायोटाइट एवं मस्कोवाइट पाया जाता है। क्वार्ट्ज, एम्फीबोल, क्लोराइट व टाल्क प्रचुर मात्रा में होते है। गार्नेट मुख्य पॉर्फिरोब्लास्ट है। स्टॉरोलाइट भी दीर्घ क्रिस्टलों के रूप में मिलते है। अन्य खनिज घटक जैसे टूरमलीन, सिलिमेनाइट, पायराइट, हेमेटाइट, मेग्नेटाइट, इल्मेनाइट, ग्रेफाइट, एपेटाइट, जिरकॉन स्फीन, रूटाइल, केल्साइट, कॉर्डियराइट, एक्टिनोलाइट महत्वपूर्ण हैं। इस शैल की उत्पत्ति मृत्तिकामय अवसादों के क्षेत्रीय कायांतरण से होती है।

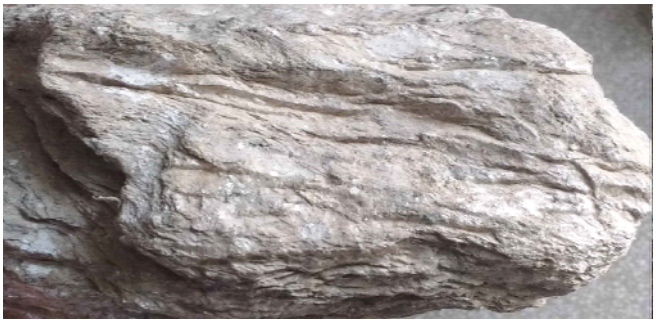

चित्र 3.8 : शिष्ट शैल

नाइस (Gneiss)

प्रायः सफेद या हल्के एवं गहरे पट्ट वाली पूर्ण क्रिस्टलीय, स्थूल कणी कायांतरित शैल जिसमें नाइसी संरचना (चित्र 3.9) विकसित हो उसे नाइस कहते हैं। यह एकांतर क्रम से उपस्थित समकणी परब्लास्टी कणिका में क्वार्ट्ज फेल्सपार और उससे भिन्न अन्य खनिजों के पट्ट अथवा पत्रित शिष्टाभ संरचना वाली परतें पायी जाती हैं। खनिज संघटन में गहरे वर्णों वाले बायोटाइट एवं हॉर्नब्लेंड तथा हल्के वर्णों वाले क्वार्ट्ज फेलस्पार एवं लाल वर्णी गार्नेट पाया जाता है। गौण खनिजों में एपेटाइट, जिरकॉन, पायराइट, हेमेटाइट, मेग्नटाइट, स्फीन इल्मेनाइट, केल्साइट, टूरमलीन एलानाइट, सिलिमेनाइट तथा कायनाइट मिल सकते हैं। द्वितीयक खनिज मुख्यतः केओलिनाइट, सेरीसाइट एवं क्लोराइट होते हैं। इन्हें सूक्ष्मदर्शी की सहायता से ही पहचान सकते हैं।

इस शैल का मुख्य गुण नाइसी संरचना है। इसी के कारण इसका नाम नाइस रखा गया है। खनिजों की प्रधानता या नाइसी संरचना के साथ कोई विशिष्ट लक्षण जैसे क्वार्ट्ज–फेल्सपार नाइस में इन खनिजों की मात्रा 75 तक होती है। मस्कोव्हाइट नाइस में नाइसी संरचना के साथ प्रमुख खनिजों में क्वार्ट्ज, फेल्सपार एवं माइका होते हैं। माइका में मस्कोव्हाइट की मात्रा बायोटाइट से अपेक्षाकृत अधिक होती है। बायोटाइट नाइस में नाइसी संरचना के साथ प्रमुख खनिजों में क्वार्ट्ज, फेलस्पार एवं माइका होते हैं। माइका में अधिकांश मात्रा बायोटाइट की होती है।

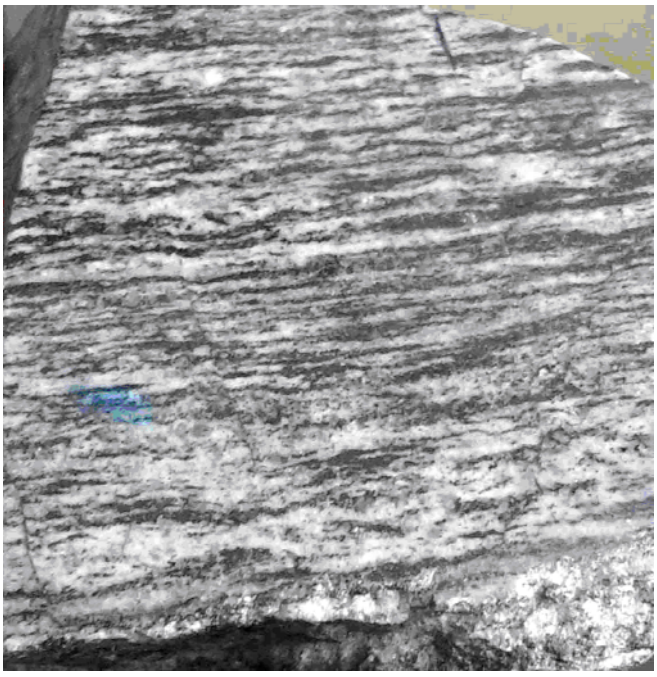

चित्र 3.9 : नाइस शैल

क्वार्ट्ज फेलस्पार नाइस की उत्पत्ति फेलसिक आग्नेय शैलों (जैसे ग्रेनाइट), अशुद्ध बालुकामय अवसादों (जैसे आर्कोज, मृत्तिकामय सेंडस्टोन आदि) से मानी जाती है। कायांतरण क्षेत्रीय गहराई पर तथा उच्च कोटि की होती है।

मिग्मेटाइट (Migmatite)

मिग्मेटाइट ग्रेनाइट के संस्पर्शों पर मिश्रित शैल मंडल में मिलने वाली कायांतरण शैल है जो कि प्रादेशिक शैल से भिन्न होती है। यह दो शैलों के मिश्रण से बनी है। एक तो प्रादेशिक शैल जो कायांतरण मैटेसोमेटिज्म से परिवर्तित हुई होती है एवं दूसरी ग्रेनाइट की लगभग समानान्तर परतें एवं शिराऐं प्रादेशिक शैल में इस तरह घुसी रहती है कि मिग्मेटाइट में पट्टित संरचना बन जाती है। यह क्वार्ट्ज, फेल्सपार, बायोटाइट, हार्नब्लेंड एवं स्पिन से बनी है। इसका खनिजीय संघटन प्रादेशिक शैलों एवं ग्रेनाइट पर निर्भर करता है।

कणिकाश्म (Granulite)

कणिकाश्म हल्के रंग की कायांतरण शैल है जो परब्लास्टी (xenoblastic) फेल्सपारो एवं क्वार्ट्ज के कणों से बनी है। यह समकणिक शैल है जिसमें क्वार्ट्ज, फेल्सपार, पायरॉक्सीन और गार्नेट प्रचुर मात्रा में उपस्थित रहते है। हायपरस्थीन, डायोप्साइड के साथ अल्प मात्रा में माइका मिलती है। कभी–कभी अल्प मात्रा में सिलिमेनाइट कायनाइट और स्पिनेल उपस्थित होते हैं। इसमें प्रिज्मेटिक एवं सपाट आकार के कण अनुपस्थित रहते हैं। स्फटिक कणों के रेखीयतः दीर्घित होने के कारण और विभिन्न खनिज संघटनों की पट्टियों के एकांतरण से इन शैलों का प्रारूपिक गठन नाइस का होता है। कणिकाओं का रासायनिक संघटन ग्रेनाइट अथवा फेल्सपार युक्त बालुकाश्म का होता है। इसकी उत्पत्ति उच्चस्तरीय क्षेत्रीय कायांतरण से होती है।

महत्वपूर्ण बिन्दु

1. शैल विज्ञान के अंर्तगत शैलों के निर्माण उनके प्रकार, मिलने की अवस्थाओं, संघटन, गठन, एवं संरचना आदि का अध्ययन करते हैं।
2. मैग्मा शब्द गर्म, स्थूल, गाढ़ा दलिया जैसे द्रव्यमान (mass) के लिये प्रयुक्त किया जाता है।
3. मैग्मा 1800°C से ऊपर द्रव अवस्था में रहता है।
4. आग्नेय शैलों का निर्माण मैग्मा एवं लावा के शीतलन एवं पिंडन (solidification) से होता है।
5. बेसाल्टी लावा का तापमान उद्‌गार के समय 1100° ± 100°C होता है।
6. रायोलाइटी लावा बेसाल्टी लावा की तुलना में अधिक श्यान होता है।
7. मैग्माओं में SiO_2, Al_2O_3, CaO, FeO, MgO, Fe_2O_3, K_2O, Na_2O तथा TiO_2 मुख्य स्थिर घटक हैं।
8. भूपर्पटी की मोटाई प्रायः समुद्रीय भूपर्पटी (Oceanic crust) के लिए लगभग 6 किमी तथा महाद्वीपीय भूपर्पटी के लिए लगभग 30 किमी तक मानी जाती है।
9. आग्नेय शैल राशियों के रूप मैग्मा के रासायनिक संघटन, तापक्रम, श्यानता, प्रवाह की गति, तथा जिन संस्तरों में वे अंतर्वेधित हो रहे हैं, उनके भौतिक और रासायनिक लक्षणों पर निर्भर होते हैं।
10. यदि मैग्मीय राशि का अंतक्षेपण संस्तर तलों के समानान्तर हुआ है तब शैल रूप अनुस्तर (concordant) और यदि मैग्मीय शैल क्षेत्रीय शैलों के संरचनात्मक तलों को काटते हुए अंतःक्षेपित हुआ है तब इस प्रकार के रूप को अननुस्तरी (discordant) कहा जाता है।
11. लैकोलिथ उल्टे कटोरे के समान आग्नेय शैल रूप है जिनका निचला तल लगभग समतल तथा ऊपरी सतह उत्तल होता है।
12. 'लोपोलिथ' यूनानी लोपास (lopas) शब्द से बना है जिसका अर्थ ''प्याला'' होता है।
13. ''आ'' लावा की सतह अत्यधिक रूक्ष, खुरदरी और खंडित होती है।
14. आग्नेय शैलों में पूर्ववर्ती स्थानीय शैल के खंड अंतर्विष्ट हो जाते हैं तब इन खंडों को अपराश्म (जीनेलिथ) या अंतर्वेश कहते हैं।
15. वर्तमान में आग्नेय शैलों के वर्गीकरणों को तीन स्थूल वर्गों में रखा जा सकता है–
    (i) रासायनिक वर्गीकरण – ये शैलों के रासायनिक संघटन पर आधारित है।
    (ii) गठनीय वर्गीकरण – ये शैलों के गठन और भू–वैज्ञानिक उपस्थिति पर आधारित हैं।
    (iii) खनिजीय वर्गीकरण – ये शैलों के खनिज संघटन, प्रकार और मात्रा पर आधारित है।
16. पेग्मेटाइट का नाम वितलीय शैलों के समान संघटन वाले स्थूल एवं अति स्थूल क्रिस्टलीय शैलों के लिये प्रयुक्त किया जाता है।
17. वो शैलें जो पूर्व स्थित शैलों को अनाच्छादित करने वाली शक्तियों यथा जल, वायु, आदि की रासायनिक या बलकृत अपरदन (erosion) एवं अपक्षय (weathering) क्रिया से बनती है और जल में निक्षेपित होती है को अवसादी शैलें कहते हैं।

18. शैलों के अपरदन एवं अपक्षय प्रक्रिया द्वारा निर्मित छोटे छोटे शैल एवं खनिज कणों को अवसाद (sediment) कहते हैं।
19. अवसाद के बनने की विधि को अवसादीकरण (sedimentation) कहते हैं।
20. अवसादों के संपिंडित शैलों में परिवर्तन की क्रिया शैलीभवन (Lithification) कहलाती है।
21. उत्परिवर्तन (Saltation) गति में कण बहाव की दिशा में छलांग लगाते हुए परिवहित होते हैं।
22. सीमेंटीभवन में अवद्ध अवसाद कण संयोजक पदार्थों द्वारा आपस में बंध जाते हैं।
23. गोल कणों वाले असंपीडित गुटिकामय निक्षेप जिन्हें बजरी या शिंगिल (gravel) कहते हैं, के संपिडन से संगुटिकाश्म का निर्माण होता है।
24. संकोणाश्म कोणीय या उपकोणीय गुटिकामय शैल खण्डों का संपिडित समुच्चय है।
25. किसी ठोस शैल में दाब ताप और रासायनिक वातावरण में प्रमुख परिवर्तनों के प्रभाव के कारण नवीन संतुलन स्थापित होते हैं जिसके फलस्वरूप उन शैलों में खनिजात्मक एवं संरचनात्मक परिवर्तन होते हैं जिसे कायांतरण कहते हैं।
26. कायांतरण में दो प्रकार के प्रेरक कारकों को कायांतरण के लिये उत्तरदायी माना गया है। 1. तापमान एवं दाब के रूप में भौतिक कारक और 2. रासायनिक सक्रिय द्रवों के रूप में रासायनिक कारक।
27. सामान्यतः कायांतरण में तापमान 150°C से 900°C तक होता है।
28. आग्नेय और कायांतरित गठनों का समिश्रण दर्शाने वाले मिग्मेटाइट शैलों की उत्पत्ति को कायांतरण की अंतिम सीमा माना जाता है।
29. अति उच्चताप पर जो कायांतरण आग्नेय राशियों के चारों ओर होता है उसे उच्च तापीय कायांतरण है।
30. शिस्ट विविध वर्णी, पूर्ण क्रिस्टलीय, स्थूल लक्षणी कायांतरित शैल है। जिसमें शिष्टाभ संरचना स्पष्ट रूप से पायी जाती है।
31. प्रायः सफेद या हल्के एवं गहरे पट्ट वाली पूर्ण क्रिस्टलीय, स्थूल कणी कायांतरित शैल जिसमें नाइसी संरचना विकसित हो नाइस के नाम से जानी जाती है।

अभ्यासार्थ प्रश्न

वस्तुनिष्ठ प्रश्न

1. पेग्मेटाइट कौनसी शैल है –
   (अ) अवसादी (ब) आग्नेय
   (स) कायान्तरण (द) कोई नहीं
2. प्यालेनुमा मैग्मीय आकृति को क्या कहते हैं –
   (अ) लोपोलिथ (ब) लैकोलिथ
   (स) बैथोलिथ (द) सिल
3. फायलाइट शैल किसमें आती है –
   (अ) आग्नेय (ब) अवसादी
   (स) कायान्तरण (द) कोई नहीं
4. अपदलनी कायान्तरण में प्रमुख कारण है –
   (अ) दिष्ट दाब
   (ब) अपरूपण प्रतिबल
   (स) दिष्ट दाब या अपरूपण प्रतिबल
   (द) ताप
5. निम्न में से कौनसी अवसादी शैल कार्बनयुक्त है –
   (अ) बालुकाश्म (ब) चूना पत्थर
   (स) आर्कोज (द) इनमें से कोई नहीं
6. निम्न प्रक्रमों में से डायजेनेसिस का भाग नहीं है –
   (अ) संहनन (ब) प्रतिस्थापन
   (स) पुनःक्रिस्टल (द) उत्परिवर्तन

अतिलघुत्तरात्मक प्रश्न

1. सिल किसे कहते है?
2. लैकोलिथ को परिभाषित कीजिये।
3. अपराश्म (Xenolith) क्या है?
4. रायोलाइट के मुख्य खनिजों के नाम लिखो।
5. प्रतिस्थापन क्या है?
6. पुनःक्रिस्टलन समझाइये।
7. समरासायनिक कायान्तरण क्या है?
8. भूतापीय प्रवणता क्या है?
9. बहुकायान्तरण को समझाइये।
10. संस्पर्श कायान्तरण क्या होता है?

लघुत्तरात्मक प्रश्न

1. बहिर्वेधी आग्नेय शैलों के कौन–कौन से रूप होते है? लिखिये।
2. भूपर्पटी का रासायनिक संघटन लिखिये।
3. बावेन्स की अभिक्रिया श्रृंखला लिखिये।
4. स्तंभी एवं प्रिज्मीय संधि को समझाइये।
5. गेब्रो शैल का वर्णन लिखो।
6. उत्परिवर्तन क्या है?

7. सीमेंटीभवन को समझाइये।
8. अवसादी शैलों का खनिज संघटन बताइये।
9. संगुटिकाश्म का वर्णन करो।
10. कायान्तरण के लिए ताप के स्रोत क्या है?
11. अपदलनी कायान्तरण समझाइये।
12. स्लेट से आप क्या समझते है।

निबंधात्मक प्रश्न

1. आग्नेय शैलों के विभिन्न रूपों का वर्णन करो।
2. आग्नेय शैलों का सारणीबद्ध वर्गीकरण लिखिये।
3. अवसादी शैलों के बनने की विधि लिखिये।
4. डायजेनेसिस की क्रियाविधि लिखिये।
5. कायान्तरण के प्रकारों का वर्णन करो।

उत्तरमाला : 1 (ब) 2 (अ) 3 (स)
4 (स) (5) ब 6 (द)

अध्याय – 4

जीवाश्म विज्ञान
(Palaeontology)

प्रस्तावना (Introduction)

जीव विज्ञान में वर्तमान में पाये जाने वाले जीवों के अध्ययन से संबंध रखता है तथा जीवाश्म विज्ञान (Palaeontology) में पुरातन अथवा विलुप्त जीवों का अध्ययन किया जाता है। जीवाश्म विज्ञान की वह शाखा जो पुरातन विलुप्त प्राणियों के जीवाश्मों के अध्ययन से संबंध रखती है उसे पुरा प्राणी विज्ञान (Palaeozoology) और पुरातन वनस्पतियों से संबंधित अध्ययन को पुरा वनस्पति पादपाश्म विज्ञान (Palaeobotany) कहते हैं। इस प्रकार जीवाश्म विज्ञान, जीव विज्ञान की वह शाखा है जो प्रागैतिहासिक (Prehistoric) जीवों के अध्ययन से संबंधित है। सामान्यतः इन जीवों के अवशेष जीवाश्मों के रूप में अवसादी शिलाओं में पाये जाते हैं। प्रागैतिहासिक काल में पाये जाने वाले प्राणियों और वनस्पतियों के इन अवशेषों को जीवाश्म कहते हैं।

जीवाश्म विज्ञान और संबंधित अन्य विज्ञान

जीवाश्म विज्ञान का प्रत्यक्ष रूप से जीव विज्ञान से संबंध है किन्तु जीवाश्म अवसादी शैलों में पाये जाते हैं और अवसादों का अध्ययन भूविज्ञान का अंग है इसलिए जीवाश्म विज्ञान का भूविज्ञान से भी उतना ही घनिष्ठ संबंध है जितना कि जीव विज्ञान से। जीवाश्म विज्ञान और संस्तरक्रम विज्ञान (Stratigraphy) परस्पर घनिष्ठ रूप से संबंधित है। जीवाश्म युक्त संस्तरों का आपेक्षिक कालानुक्रम स्थिति निर्धारण में इस विज्ञान का अत्यधिक महत्व है। इसी प्रकार संरचनात्मक भूविज्ञान में संस्तरों का क्रम और उनके शीर्ष और तली के निर्धारण में जीवाश्मों की सहायता ली जा सकती है। जीवाश्म विज्ञान में अध्ययन द्वारा जीवों की उत्पत्ति एवं विकास क्रम का ज्ञान होता है।

जैव संसार के बारे में कक्षा 11 में संक्षिप्त वर्गीकरण तथा कुछ संघों, उपसंघों, वर्गों, उपवर्गों एवं उनसे संबंधित जातियों, कुलों एवं गणों के बारे में प्रारम्भिक जानकारी दी गई थी। इसी क्रम में आगे कुछ संघों, वर्गों तथा जातियों के बारे में संक्षिप्त जानकारी दी गई है।

वर्ग : एकाईनोइडिया (Class : Echinoidea)

एकाईनोइडिया वर्ग एकाइनोडर्मेटा संघ में आता है। एकाइनोडर्मा शब्द, दो ग्रीक शब्दों, इकाइनोस (Echinos = Spine) और डर्मा (Derma = Skin) के संयोग से निर्मित हुआ है, जिसका अभिप्राय प्राणियों की शूलमय त्वचा से है। इनकी त्वचा में कैल्शियम कार्बोनेट की बनी हुई कंटिकाएं, पट्टिकाएं तथा शूल होते हैं। एकाइनोडर्मा संघ के प्राणी समुद्री होते हैं। इस संघ के कुछ प्राणियों में पुनरुद्भवन लक्षण पाया जाता है। इस संघ के स्टेलेरायडिया वर्ग के प्राणी शत्रु को उलझाने के लिये अपनी देह का एक अंग, जिसे भुजा कहते हैं, को तोड़कर भाग जाते हैं। यह टूटा हुआ अंग शीघ्र ही पुनः विकसित हो जाता है।

समुद्री अर्चिन (Sea archin), हृदय अर्चिन (Heart archin), प्राणी एकाईनोइडिया वर्ग के अन्तर्गत आते हैं। जीवित अवस्था में प्राणी कैल्शियम कार्बोनेट से बने आवरण में रहता है, जिसे चोल या टेस्ट कहते हैं। चोल विभिन्न प्रकार के होते हैं। ये अधिकतर अर्धगोलाकार तथा नीचे की तरफ चपटे होते हैं। परन्तु अर्धदीर्घ वृतज (Hemi ellipsoidal), डिस्क या हृदयाकार चोल भी पाये जाते हैं (चित्र 4.1)।

डिम्भक अवस्था (Larva) में चोल द्विपार्श्वीय सममित होता है, परन्तु पूर्ण विकसित अवस्था में ये पंच अरीय (Penta radial) होता है। चोल की सममिति के आधार पर एकाईनोइडिया को मुख्य दो समूहों – नियमित (Regular) और अनियमित (Irregular)

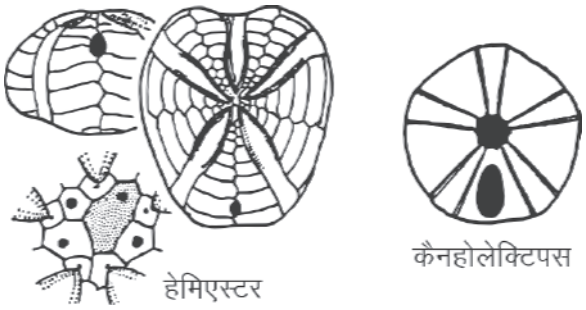

चित्र 4.1 : एकाईनॉयड के कवच का आकार

में बांटा गया है। नियमित एकाईनोइडिया में मूल द्विपार्श्वीय सममिति के साथ पंचतयी अरीय सममिति (Pentamerous radial symmetry) पायी जाती है। इसमें गुदा (Anus) पेरीप्रोक्ट से घिरी हुई शीर्ष–चक्रिका के मध्य तथा मुख (Mouth) मुखी भाग के मध्य स्थित होता है। उदाहरण – *सिडारिस*, आबियोसिडारिस*

अनियमित एकाईनोइड में गुदा द्वार तथा मुख अपनी मूल स्थितियों से हट जाने से पंचतयी अरीय सममिति विलुप्त हो जाती है। तथा द्वितीयक द्विपार्श्वीय सममिति का निर्माण होता है। इसमें गुदा शीर्ष चक्रिका (Apical disc) से अनियमित होकर पश्च अन्तरावीथी क्षेत्र में स्थित होती है। इसी तरह मुख मुखी भाग के मध्य से उसके अग्र की तरफ चला जाता है। उदाहरण – *एकाइनोलेम्पस, क्लिपियस, माइक्रेस्टर* (चित्र 4.2)।

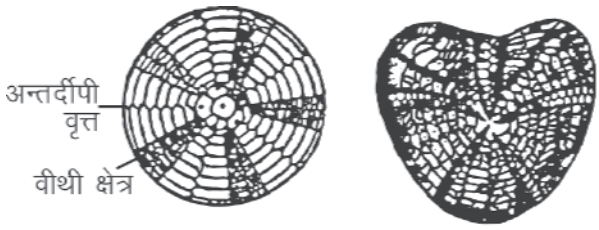

चित्र 4.2 : नियमित और अनियमित एकाईनोइड

चोल (Test) की आकारिकी

एकाईनोइड के कैल्शियम कार्बोनेट के आवरण या कवच को चोल (Test) कहते हैं। चोल को मुख्य तीन भागों में विभाजित किया गया है :–

1. किरीट या कोरोना (Corona)
2. शीर्ष–चक्रिका (Apical disc)
3. परिमुख (Peristome)

1. **कोरोना :** चोल का सबसे प्रमुख भाग है। यह दो क्षेत्रों में बंटा होता है। इन क्षेत्रों को क्रमशः वीथी क्षेत्र (Ambulacral area) और अन्तरावीथी क्षेत्र (Interambulacral area) कहते हैं।

* जीवाश्म विज्ञान में नियमानुसार वंश एवं जाति को तिरछा टाइप (*Italics*) किया जाता है।

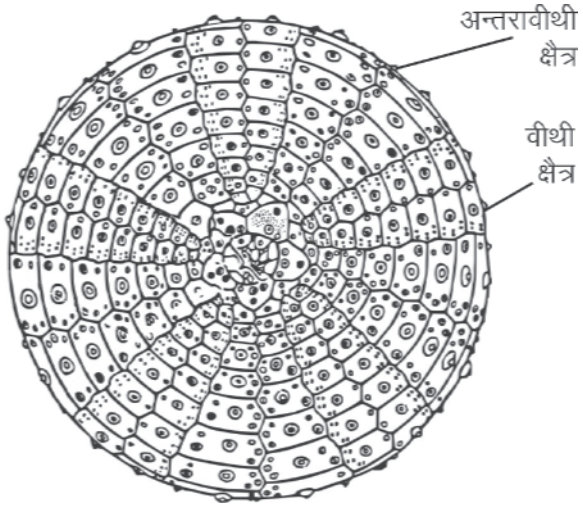

चित्र 4.3 : एकाईनोइड में वीथी और अन्तरावीथी क्षेत्र

कोरोना के अधिकतम परिधि वाले भाग को परिरेखा (Ambitus) कहा जाता है। कोरोना में कुल दस क्षेत्र होते हैं, जिनमें पांच वीथी क्षेत्र तथा पांच अन्तरावीथी क्षेत्र होते हैं। वीथी क्षेत्र छिद्रीत होते हैं तथा अन्तरावीथी क्षेत्रों में छिद्र नहीं पाये जाते हैं। प्रत्येक क्षेत्र दो–दो पंक्तियों से निर्मित होता है। प्रत्येक पंक्ति में बहुत–सी पट्टिकाएं होती हैं। वीथी तथा अन्तरवीथी क्षेत्र एकान्तर होते हैं।

वीथी क्षेत्र : प्रत्येक वीथी क्षेत्र दो पंक्तियों में विभाजित कई पट्टिकाओं से निर्मित होता है। ये पट्टिकाएं सामान्यतः चोल के अपमुख भाग तक ही सीमित रहती है तथा पेरीप्राक्ट से परिधि की ओर फूल की पंखुड़ियों के समान बिखरी रहती है। भिन्न–भिन्न वंश में वीथी क्षेत्र के अलग–अलग आकार पाये जाते हैं, उदाहरण सामान्य, दलाभ तथा उपदलाभ आदि (चित्र 4.3)। वीथी क्षेत्रों की पट्टिकाएं रंध्रयुक्त होती हैं। क्षेत्र की प्रत्येक पट्टिका में प्रायः एक रंध्र जोड़ा होता है जो अधिकतर वीथी क्षेत्र की बाह्य उपान्त की ओर उपस्थित होता है। बहुधा ये रंध्र जोड़ा एक ही पंक्ति में एक के नीचे एक पाये जाते हैं। रंध्रों के इस विन्यास को एक पंक्तिक (Uniserial) कहते हैं। कभी–कभी ये एक या दो पंक्ति में भी पाये जाते हैं, जिन्हें द्विपंक्तिक या बहुपंक्तिक रंध्र–युगल कहते हैं (चित्र 4.4)। कभी–कभी ये रंध्र जोड़ा उभरे हुए एक नेमी (Rim) से घिरे रहते हैं। इस नेमी को पेरिपोडियम कहते हैं।

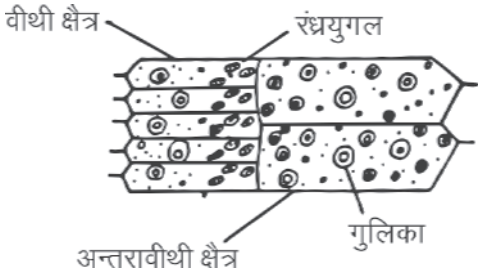

चित्र 4.4 : युगल रंध्र एवं गुलिकाएं

अन्तरावीथी क्षेत्र : अन्तरावीथी क्षेत्र की पट्टिकाएं वीथी क्षेत्र की पट्टिकाओं से सदैव आकार में बड़ी और संख्या में कम होती है। ये पट्टिकाएं संयुक्त नहीं होती हैं। आधुनिक एकाइनायड तथाा मध्य जीवी और तृतीय महाकल्प के सभी एकाइनायड के अन्तरावीथी क्षेत्रों की पट्टिकाएं केवल दो पंक्तियों में पायी जाती है। *ट्रेटासिडारिस* (*Tetracidaris*) एक अपवाद है जिसमें पट्टिका की चार पंक्तियाँ पायी जाती है। इसी प्रकार पुराजीवी महाकल्प के एकाईनोइड अन्तरावीथी की पंक्तियों की संख्या में भी अत्यधिक भिन्नता पायी जाती है। इस काल में केवल एक पंक्ति उदाहरण *बोथरियोसिडेरीस* से लगाकर चौदह पंक्तियाँ जैसे *हाईटेइकाईनस* पाई जाती है। वीथी और अन्तरावीथी दोनों क्षेत्रों की पट्टिकाओं पर उभरे हुए शंकु के आकार के छोटे–बड़े गोले पाये जाते हैं। बड़े आकार के शंकुओं को गुलिका तथा छोटे शंकु को कणिका कहते हैं। गुलिकाओं से शूल विकसित होते हैं, जीवित अवस्था में गुलिकाओं से सूक्ष्म शूल निकले होते हैं, शूल छोटे–मोटे, गदाकार, सुई जैसे नुकीले, लम्बे और पतले या छड़ जैसे या फ्लास्क के आकार के होते है। ये शूल शत्रु से रक्षा करने तथा चलन में सहायक होते हैं।

2. **शीर्ष चक्रिका** : शीर्ष चक्रिका (Apical disc) को आकुलो–जेनाइटल सिस्टम (Oculogenital system) भी कहा जाता है। शीर्ष चक्रिका हमेशा किरीट के शीर्ष पर स्थित रहती है तथा दो प्रकार की दस पट्टिकाओं की बनी होती है (चित्र 4.5) पांच पट्टिकाएं जो शेष पांच पट्टिकाओं से बड़ी तथा अन्तरावीथी क्षेत्रों के अभिमुख पर स्थित होती है, जननिक पट्टिका (Genital plates) कहलाती है। जननिक पट्टिकाएं शीर्ष चक्रिका के रिंग का आन्तरिक भाग बनाती है तथा षटभुजाकार होती है। प्रत्येक जननिक पट्टिका में एक रंध्र पाया जाता है जिसे जननिक रंध्र (Genital pore) कहते हैं। जननिक रंध्र से अण्डे या शुक्राणु बाहर निकलते है। कवच के अग्र भाग के दाहिनी तरफ वाली जननिक–पट्टिका विशेष रूप से विकसित तथा बहुरंध्रीय होती है। इसे मेड्रेपोराइट पट्टिका (Madreporite plate) कहते हैं।

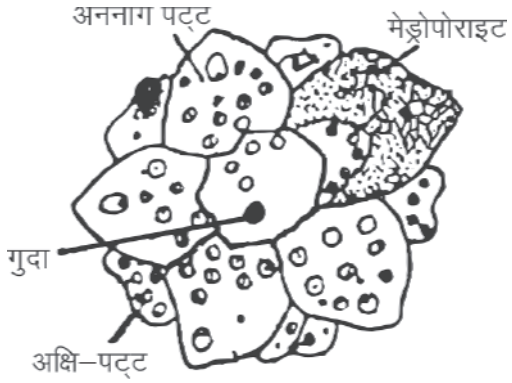

चित्र 4.5 : शीर्ष–चक्रिका (विविष्ट)

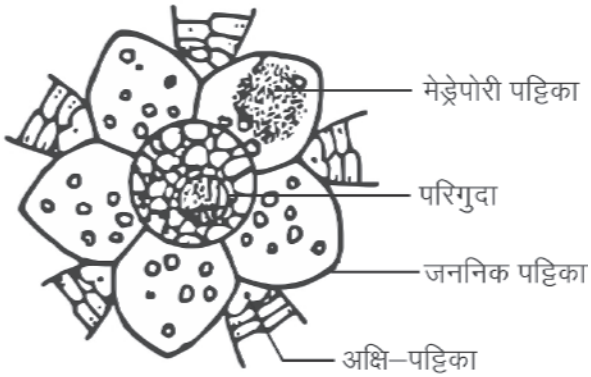

चित्र 4.6 : शीर्ष–चक्रिका (निविष्ट)

मेड्रेपोराइट पट्टिका के रंध्रों से प्राणी के जलविहीन तंत्र में पानी प्रवेश करता है (चित्र 4.5)। शीर्ष–चक्रिका की शेष पांच पट्टिकाओं को अक्षि पट्टिका (Ocular plate) कहते हैं। यह वीथी क्षेत्रों के अभिमुख स्थित होती है। अक्षि पट्टिकाएं जननिक पट्टिकाओं की अपेक्षा छोटी होती है। ये प्रायः शीर्ष–चक्रिका के रिंग का बाह्य चक्र बनाती है। प्रत्येक अक्षि–पट्टिका में रंध्र होता है जिसमें से जीवित अवस्था में स्पर्शक या फीलर (Feeler) निकले रहते है। जननिक और अक्षि–पट्टिकाओं से घिरी शीर्ष–चक्रिका के मध्य में स्थित संरचना को परीगुदा (Periproct) कहते हैं (चित्र 4.6) परीगुदा अनेक छोटी–छोटी पट्टिकाओं का बना होता है। इसके मध्य में स्थित एक रंध्र पाया जाता है जिसे गुदा कहते हैं। अक्षि तथा जननिक पट्टिकाएं सदैव शीर्षस्थ रहती हैं, परन्तु गुदा की स्थिति परिवर्तनशील है।

3. **परिमुख** (Peristome) : चोल के निचले तथा मुख के चारों ओर के भाग को परिमुख कहा जाता है (चित्र 4.7)। परिमुख का आकार मुख की स्थिति पर निर्भर करता है। यह महत्वपूर्ण है कि मुख कभी केन्द्र से बहुत अधिक दूर नहीं हटता है। परिमुख

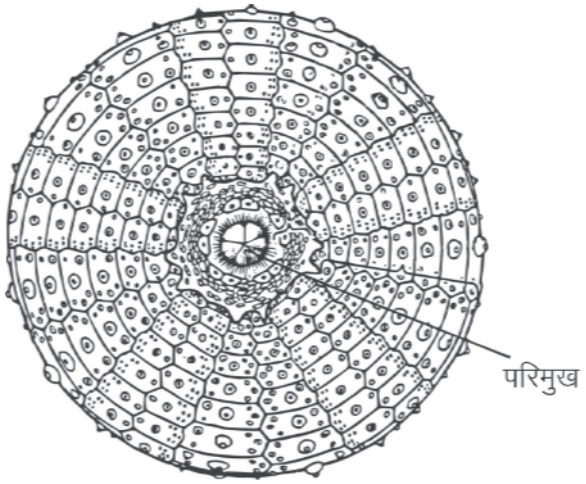

चित्र 4.7 : एकाईनोइड में परिमुख

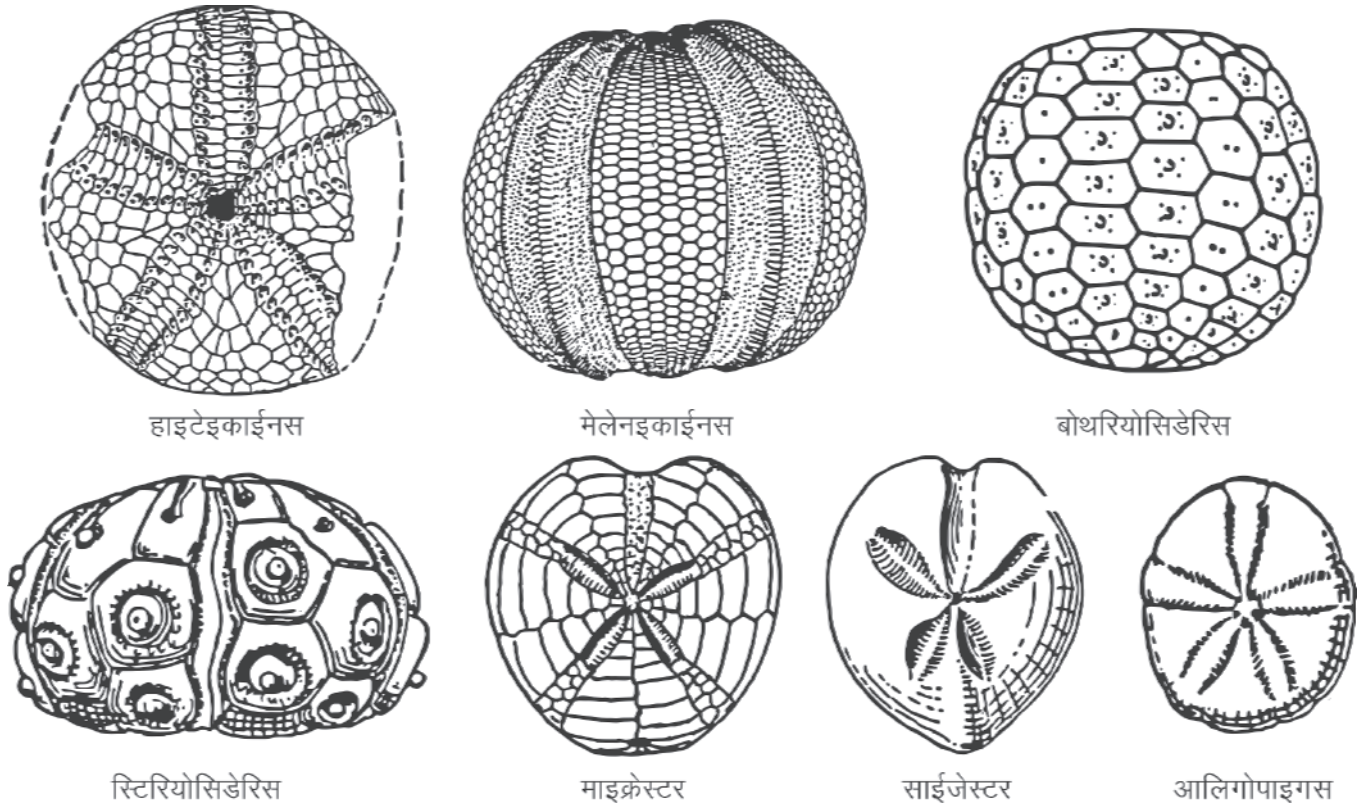

चित्र 4.8 : एकाईनोइड्स के उदाहरण

का आकार वृत्ताकार, अण्डाकार हो सकता है। सामान्यतया अनियमित की तुलना में नियमित एकाईनोइड का परिमुख बड़ा होता है। समुद्री अर्चिन में चर्वण की क्रिया के लिये मुखद्वार असाधारण रूप से विकसित, शंकु आकार के एक संयंत्र से घिरा रहता है। जिसे अरस्तु ने सर्वप्रथम इस संयंत्र की तुलना अपने समय की लालटेन से की इसलिये इसे ''अरस्तु की लालटेन'' के नाम से जाना जाता है। यह संयंत्र कैल्शियम कार्बोनेट की चालीस प्लेटो का बना होता है, जिसमें पांच नुकीले और शक्तिशाली दांत होते हैं। ये दांत शक्तिशाली पेशियों की सहायता से खरोचने वाले यंत्र की तरह बार–बार खुलते तथा बन्द होते हैं और ग्रेनाइट तथा क्वार्ट्जाइट जैसी कठोर चट्टानों को भी काटने की क्षमता रखते हैं।

वर्गीकरण (Classification)

वर्ग एकाइनोइडिया के वर्गीकरण निम्नलिखित रूप से समझाया जा सकता है :–

(अ) उपवर्ग रेग्युलेरिया

1. नियमित चोल (Regular test)
   - (i) गण–बोथ्रिओसिडारायडिया (Order–Bothriocidaroidea)
   - सरल वीथी पट्टिकाएं
     - (ii) गण–सिडारायडा (Order–Cidaroida)
     - (iii) गण–प्लेरियोसिडारायडिया (Order–Pleriocidaroidea)
     - (iv) गण–पेरिस्कोएकाइनायडिया (Order–Periscoechinoidea)
   - संयुक्त वीथी पट्टिकाएं
     - (v) गण–सेन्टरएकाइनायडा (Order–Centrechionoida)

(ब) उपवर्ग–इर्रेग्युलेरिया

2. अनियमित चोल (Irregular test)
   - सरल या संयुक्त वीथी पट्टिकाएं
     - (i) गण–एक्सोसाइक्लायडा (Order–Exocycloida)
   - संयुक्त वीथी पट्टिकाएं
     - (ii) गण–एकाइनोस्टियायडा (Order–Echinocystoida)

भू–वैज्ञानिक वितरण (Geological Distribution)

ये सागरीय जीव है और सभी प्रकार के समुद्र तटों पर पाये

जाते हैं। कुछ गहरे समुद्र में तथा अधिकांश छिछले समुद्र में पाये जाते हैं। कठोर व कैल्शियम शिलाओं में से प्रमुख रूप से पाये जाते हैं। एकाइनोइड सबसे प्रथम मध्य और ऊपरी आर्डोविशन कल्प में पाये जाते हैं। *बोथ्रिआसिडारिस* इस अवधि का मुख्य प्राणी है। इसका उद्‌भव आर्डोविशन में हो चुका था परन्तु कार्बनी कल्प तक ये अत्यन्त नगण्य संख्या में पाये जाते थे। इसी कारण कार्बनी कल्प के पूर्व के शैलों में इनके जीवाश्मों की संख्या अत्यधिक न्यून है। इस कल्प के प्रमुख जीवाश्म निम्न हैं : *हाईटेइकाईनस* एवं *मैलोनईकाइनस* (चित्र 4.8)। पुराजीवी एकाइनोइड के लोप होने के पश्चात् तथा निम्न ट्रायसिक के मध्य की अवधि में भी इनकी संख्या न्यून थी। जुरैसिक में आधुनिक एकाइनोइड के उद्‌भव के पश्चात् ही इनकी स्थिति में सुधार आया तथा ऊपरी–मध्यजीवी क्रिटेसियस कल्प के समय मुख्यतया *माईक्रेस्टर, हेमिएस्टर* एवं *स्टिरियोसिडेरिस* गण के जीवाश्म पाये जाते हैं (चित्र 4.8) और सीनोजोइक महाकल्प में ये अपने विकास के चरमोत्कर्ष पर पहुंचे। इस कल्प में *साईजेस्टर, ओलीगोपाईगस, क्लीपेस्टर* एवं *कोनोक्लीपस* वंश मुख्य रूप से पाये जाते हैं (चित्र 4.8)। इनका भू–वैज्ञानिक वितरण सीमित है। इसलिये ये उत्तम सूचक जीवाश्म हो सकते थे परन्तु जब भी ये अपने विकास की चरम स्थिति में रहे, इनका भौगोलिक वितरण सदैव सीमित रहा। इसलिये सीमित भू–वैज्ञानिक वितरण होने के बावजूद एकाइनोइड का स्तरिक शैल विज्ञान की दृष्टि से महत्व कम है।

फोरामिनिफेरा

संघ (Phylum) – प्रोटोजोआ (Protozoa)
वर्ग (Class) – सार्कोडिना (Sarcodina)
गण (Order) – फोरामिनिफेरा (Foraminifera)

प्रस्तावना (Introduction)

प्रोटोजोआ संसार के प्राचीन एवं सरलतम जीव हैं। Protozoa शब्द दो ग्रीक शब्दों Protos अर्थात् प्रथम एवं Zoon अर्थात् प्राणी/जीव के संयोग से बना है। इसका तात्पर्य है कि इस संघ के अन्तर्गत आने वाले जीव सरलता की दृष्टि से सर्वप्रथम आते हैं। इनका आकार अत्यन्त सूक्ष्म 0.001 मिलीमीटर से कई सेन्टीमीटर तक होता है। ये एककोशिकीय (Unicellular) होते हैं, परन्तु बहुकोशिकीय (Multicellular) प्रोटोजोआ भी पाये जाते हैं।

वर्ग : सार्कोडिना (Sarcodina) के प्राणियों का जीवद्रव्य उपचर्म की झिल्ली से घिरा हुआ नहीं होता है, इसलिए इनका कोई निश्चित आकार भी नहीं होता है। ये पादाभ (Podia) की सहायता से गमन (Locomotion) करते हैं तथा अपना भोजन प्राप्त करते हैं। ये एकल या कॉलोनी (Colony) बनाकर रहते हैं। कुछ प्राणियों का कवच या अस्थिपंजर आन्तर और कुछ का बाह्य होता है। ये जीव अधिकांशतः लवणीय जल और अलवणीय दोनों में पाये जाते हैं।

गण : फोरामिनिफेरा

ये सामान्यतः अत्यन्त सूक्ष्मजीव होते हैं। इनका व्यास 1 mm से कम होता है परन्तु कुछ जीवों के कवच का आकार 100 mm तक भी पाया जाता है। फोरामिनीफेरा के कवच के अन्दर जीवद्रव्य (Cytoplasm) उपस्थित होता है, जो कि दो भागों में विभाजित होता है, बाहरी भाग एक्टोप्लाज्म (Ectoplasm) व आन्तरिक भाग एण्डोप्लाज्म (Endoplasm) कहलाता है। जीवद्रव्य एक कवच (Shell) में बन्द रहता है। कवच के ऊपर एक या एक से अधिक द्वारक (Aperture) उपस्थित रहते हैं, जिनमें से धागेरूपी संरचनाएं बाहर निकली रहती हैं, जिन्हें आभासी पादाभ (Pseudopodia) कहते हैं (चित्र 4.9)। साधारणतया ये उथले समुद्र में बहुतायत से पाये जाते हैं। प्लवमान फोरामिनिफेरा का वितरण अत्यन्त विस्तृत होता है जो कि बहुधा समुद्र सतह से कुछ गहराई तक पाये जाते हैं। उष्ण कटिबन्ध क्षेत्र के अनेक समुद्री तटों की सम्पूर्ण बालू केवल फोरामिनिफेरा कवच–जनित बालू की बनी हुई है। समुद्री–अवसादों, विशेषतया पुराजीवी (Paleozoic), मध्यजीवी (Mesozoic) और सीनोजोइक

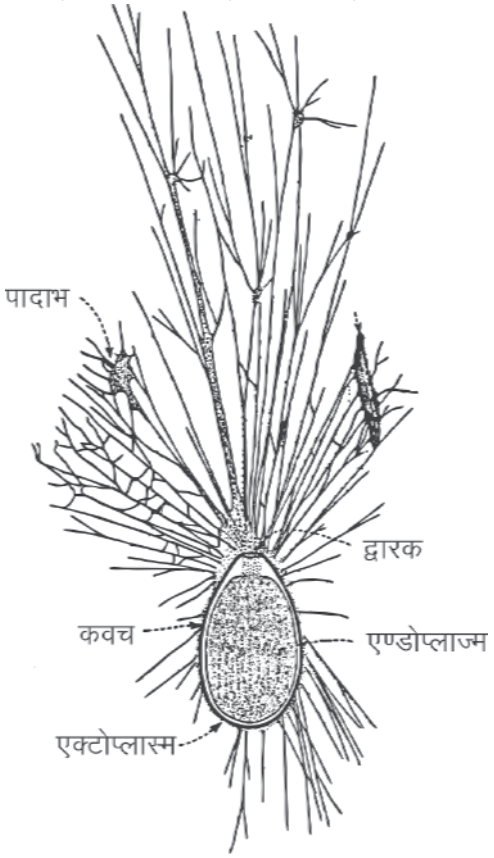

चित्र 4.9 : फोरामिनिफेरा की आकारिकी

(Cenozoic) महाकल्पों के निक्षेपों में, फोरामिनिफेरा का वितरण अत्यन्त विस्तृत होने के कारण इनके जीवाश्मों का स्तरित शैल विज्ञान (Stratigraphy) में अत्यधिक महत्व है। मिट्टी के तेल के क्षेत्रों की खोज में गंभीर वेधन प्रणाली में ये सर्वाधिक उपयोगी सिद्ध हुए हैं।

कवच (The shell or test)

फोरामिनिफेरा अन्य प्रोटोजोआ की अपेक्षा बड़े एककोशिकीय जीव हैं। इनके मुख्य लक्षण हैं – धागे जैसे शाखायुक्त पादाभ तथा कवच की उपस्थिति। फोरामिनिफेरा का कवच भिन्न–भिन्न पदार्थों का बना होता है। रासायनिक और संरचनात्मक दृष्टि से इनका कवच चूनेदार, बालूकामय (Arenaceous), काइटिन (Chitinous), सिलिकामय (Siliceous) या जिलेटिन (Gelatinous) का हो सकता है। चूनेदार, बालूकामय कवच सर्वाधिक पाये जाते हैं। सिलिकामय कवचों के मूल होने में शंका है। इनके द्वितीयक उत्पत्ति को होने की संभावना अधिक है।

चूनेदार कवचों को उनकी संरचना के आधार पर दो संवर्गों, कांचाभ या छिद्री और पार्सेलेनी या अछिद्री में विभाजित किया गया है। कांचाभ कवच के छिद्रों से सहस्त्रों अतिसूक्ष्म पादाभ (Podia) बाहर निकले रहते हैं। कुछ जीवाश्म विज्ञानी चूनेदार कवचों के उपर्युक्त दो संवर्गों में विभाजन को उचित और आवश्यक नहीं समझते हैं, उनके अनुसार अनेक बालूकामय कवचों तथा ऐसे चूनेदार कवचों में भी छिद्र पाये जाते हैं, जिन्हें अछिद्री संवर्ग के अन्तर्गत रखा गया है। बालूकामय कवच स्तर कणों के संयोजन से बनता है। ये कण बहुधा क्वार्ट्ज, चूनेदार पदार्थ, अभ्रक तथा स्पंज–कंटिका (Sponge spicules) के अथवा अन्य फोरामिनिफेरा के कवचों के होते हैं। संयोजी पदार्थ बहुधा चूनेदार, काइटिनी अथवा लौहमय होता है। अनेक फोरामिनिफेरा कवचों के निर्माण के लिए कणों के चुनाव में अत्यन्त वरणक्षम होते हैं। उदाहरणार्थ कुछ केवल क्वार्ट्ज के कणों से अपने कवच का निर्माण करते हैं, तो कुछ केवल स्पंज–कंटिकाओं से।

काइटिनी कवच पतला, लचीला और पारदर्शक होता है। इसको कवचों का सबसे आदिम प्ररूप माना जाता है। कुछ सरल वंशों के प्राणियों में इस प्रकार का कवच पाया जाता है। काइटिनी कवच जीवाश्म के रूप में नहीं पाये जाते हैं।

कोष्ठ फोरामिनिफेरा के कवच की मूल इकाई है। सर्वप्रथम निर्मित कोष्ठ को अग्र कोष्ठिका (Proloculus) कहते हैं। कवच केवल एक कोष्ठ अथवा एक से अधिक कोष्ठों से निर्मित होता है। दो कोष्ठों के बीच की सम्पर्क रेखा को सीवन (Suture) कहते हैं। कवच का रूप कोष्ठों की संख्या और उनके विन्यास पर निर्भर करता है। कोष्ठों की संख्या के अनुसार कवचों को एककोष्ठिकीय और बहुकोष्ठिकीय में विभाजित किया जा सकता है। एककोष्ठिकीय कवच जैसे – *लैजीना* (*Lagena*), केवल एक कोष्ठ का बना होता है। *लैजीना* के कवच का आकार फ्लास्क जैसा होता है। एक कोष्ठिकीय कवच कभी–कभी नली जैसे समतल–सर्पिल (Planispiral) होते हैं। बहुकोष्ठिकीय कवच में एक से अधिक कोष्ठ होते हैं, जो विभिन्न प्रकार से विन्यासित होते हैं। *नोडोसारिया* (*Nodosaria*) में यह एक पंक्ति में बद्ध होते हैं। ऐसे विन्यास की एक पंक्तिक विन्यास (Uniserial arrangement) कहते हैं। *टैक्सटुलेरिया* (*Taxtularia*) में कोष्ठ दो पंक्तियों में पाये जाते हैं। इस प्रकार के विन्यास को द्विपंक्तिक विन्यास (Biserial arrangement) कहते हैं। *वर्न्यूलिआना* (*Verneuliana*) में त्रिपंक्तिक विन्यास (Triserial arranagement) पाया जाता है। एक पंक्तिक और द्विपंक्तिक कवच कभी–कभी समतल सर्पिल, जैसे *क्रिस्टेलेरिया* (*Cristellaria*) और कभी–कभी कुण्डलिनी रूप–सर्पिल (Helicoid spiral) जैसे – *रोटेलिया* (*Rotalia*) भी पाये जाते हैं। समतल सर्पिल में कोष्ठ समतल पर

चित्र 4.10 : फोरामिनिफेरा के कवच की विभिन्न आकारिकी

कुण्डलित होते हैं परन्तु कुण्डलिनी रूप सर्पिल में कुण्डलीकरण स्प्रिंग की तरह होता है।

आकृति के आधार पर कवचों को चक्रिकाभ (Discoidal), ताराकार (Stellate), पंखानुमा (Flabelliform), नाखरूप (Pyriform-pear shaped) आदि में वर्गीकृत किया जा सकता है (चित्र 4.10)।

द्विरूपता और बहुरूपता (Dimorphism and Polymorphism)

अनेक फोरामिनिफेरा विशेषतया उच्चकोटि के फोरामिनिफेरा में एक ही जाति के कवच के दो रूप पाये जाते हैं। सामान्यतया समान दिखने वाले इन कवचों में एक कवच की अग्र कोष्ठिका बड़ी और दूसरे की छोटी होती है। एक ही जाति के इस द्विरूपीय स्वभाव की द्विरूपता (Dimorphism) कहते हैं। अग्रकोष्ठिका के दो रूप आदिनूतन (Eocene) शैलों में पाये जाने वाले *न्यूमुलाइट्स* (*Nummulites*) में सर्वप्रथम देखे गये। बाद में अध्ययन से अनेक फोरामिनिफेरा जैसे – फ्युजुलिनिड्स (Fusulinids) में भी द्विरूपता ज्ञात हुई (चित्र 4.11)।

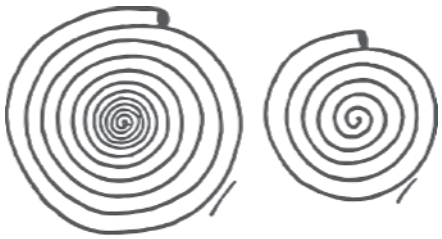

चित्र 4.11 : कवच में द्विरूपता

भू–वैज्ञानिक वितरण

फोरेमिनिफेरा मुख्यतया समुद्री प्राणी है जो कि समुद्रतल में निवास करते हैं। इनकी कुछ प्रजातियां जैसे *ग्लोबिजेरीना* (*Globigerina*) समुद्र की सतह पर पाई जाती हैं। पैलेजिक फोरामिनिफेरा मुख्यतया उष्ण क्षेत्रीय समुद्रों में प्रचुर मात्रा में पाये जाते हैं। समुद्र सतह के समीप रहने वाले फोरामिनीफर का वितरण तापमान तथा उथले समुद्रतल में रहने वाले फोरामिनीफर का वितरण गहराई एवं तापमान पर निर्भर करता है।

सर्वप्रथम ऊपरी क्रैम्बियन की चट्टानों से फोरामिनीफर प्राप्त हुए है, जिनके कवच बालुकामय व काचाभ द्वारा निर्मित होते हैं। यद्यपि फोरामिनीफेरा की कुछ प्रजातियां निम्न पुराजीवी महाकल्प में उपस्थित थी परन्तु कार्बनीकल्प में ये अत्यधिक महत्वपूर्ण हो चुके थे। इस कल्प के संस्तर में मुख्यतया इन्डोथायरा, फ्युजुलिना फोरामिनीफेरा के जीवाश्म मिलते हैं, जो कि चूना पत्थर का निर्माण करते हैं। पर्मियन कल्प में इनकी संख्या नगण्य थी।

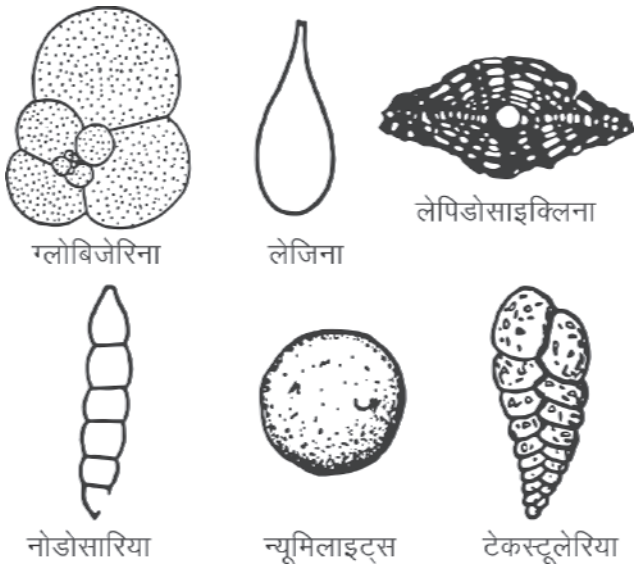

चित्र 4.12 : फोरामिनीफर के उदाहरण

मध्यजीवी कल्प के प्रारम्भ यानि ट्रायेसिक काल में इनकी संख्या बहुत कम थी लेकिन जुरैसिक काल में ये बहुतायत में पाये जाते थे। इनमें कांचाभ कवच वाले फोरामिनीफर *नोडोसारिया* (*Nodosaria*) एवं *क्रिस्टेलेरिया* (*Cristellaria*) काफी मात्रा में पाये जाते थे। इनके अलावा चीनी मिट्टी युक्त (Porcellanous) प्रजाति जैसे मिलियोला (Miliola) वर्ग बहुतायत में पाये जाते थे। क्रिटेशियस कल्प में *ऑर्बिटोलिना* (*Orbitolina*), *ग्लोबीजेरिना* (*Globigerina*), *रोटालिया* (*Rotalia*), *टेक्सटूलेरिया* (*Taxtularia*), *बोलिविना* (*Bolivina*) एवं *फ्लेबेलिना* (*Flabelina*) मुख्य वंश थी।

फोरामिनीफर का चरमोत्कर्ष तृतीय महाकल्प (Tertiary) एवं अभिनव काल (Recent) में हुआ। इओसिन काल में मुख्यतया *न्यूमुलाइट्स* (*Nummulites*), *क्वीनकैलोक्यूलिना* (*Quinqueloculina*) एवं *एलवियोलिना* (*Alveolina*) वंश की प्रजातियां पायी जाती थी। ओलिगोसीन काल में मुख्यतया *न्यूमुलाइट्स* (*Nummulites*) एवं *लेपिडोसाइक्लिना* (*Lapidocyclina*) पाये जाते थे। माओसिन काल में *एम्फिस्टेजिना* (*Amphistegina*) एवं प्लायोसिन काल में भी बहुत सी प्रजातियां पाई जाती थी (चित्र 4.12)।

लैमेलीब्रेन्किया

संघ (Phylum) – मोलस्का

वर्ग (Class) – I लैमलीब्रेन्किाया

II गेस्ट्रोपोडा

III सेफेलोपोडा

प्रस्तावना (Introduction)

यह मोलस्का समुदाय का जीव है, मोलस्का संघ के अधिकांश जन्तु समुद्री हैं। कई जन्तु अलवणीय जल में और स्थल पर भी पाये जाते हैं। ये अखण्डकृत प्राणी हैं। इनकी देह कोमल होती है जो बहुधा एक कठोर कवच से आवृत रहती है।

आर्थिक दृष्टि से मोलस्का मनुष्य के भोजन के रूप में उपयोग लिये जाते हैं, इनके कवचों का उपयोग अलंकरण सामग्री के रूप में, कोड़ियों (*Cypraea*) का उपयोग सिक्कों के रूप में किया जाता रहा है।

लैमेलीब्रेन्किया

लैमेलीब्रेन्किया का अर्थ पत्तियों जैसे लेमेला (Lamella = Leaf), गिल (Branchia = Gill) तथा पेलेसिपोडा का अर्थ फलक (Pelekys = Blade) जैसा, पद (Podos = foot) होता है।

इनका कवच द्विकपाटीय होता है। इनके कपाटों की स्थिति, देह के दक्षिण और वाम (Right - Left) होती है। साथ ही साथ ये कपाट पार्श्वो में दबे (Laterally compressed) होते हैं।

प्रकृति और आवास (Habit and Habitat)

प्रकृति और आवास पर निर्भर करते हुए लैमेलीब्रेन्क को निम्नलिखित दो समूहों में वर्गीकृत किया जा सकता है।

1. तरणक (Nektons) 2. नितलस्थ (Benthos)

तरणक लैमेलीब्रेन्क की संख्या अत्यन्त न्यून है, जैसे *पेक्टन* (*Pecten*)। तल पर रहने वाले लैमेलीब्रेन्क की संख्या बहुतायत है। इनमें अधिकांश ऐसे प्राणी हैं जो तल पर रेंगने वाले प्राणियों की श्रेणी में आते हैं, जैसे – *विनस* (*Venus*) और *आर्का* (*Arca*)। कुछ ऐसे लैमेलीब्रेन्क भी है जो काष्ठ या शैलों में छिद्र बनाकर रहते हैं। ऐसे प्राणियों को बिलकारी कहते हैं। *टेरेडो* (*Teredo*) को जहाज का कीड़ा (Shipworm) कहते हैं, क्योंकि ये जहाज की लकड़ी में छिद्र बनाकर उन्हें अत्यधिक हानि पहुंचाते हैं। *फोलस* (*Pholas*) जाति के लैमेलीब्रेन्क शिलाओं तक में छिद्र बना लेते हैं। कुछ पेलेसिपॉड, जैसे *माइटिलस* (*Mytilus*) अपने सूत्रगुच्छ (Byssus) और *हिप्पूराइटीज* (*Hippurites*) अपने कपाट की सहायता से आधार से संलग्न रहते हैं। जैसा कि पिछले पृष्ठों में कहा जा चुका है कि लैमेलीब्रेन्क के कवच समान–कपाटीय होते हैं, परन्तु आवास की विभिन्न परिस्थितियों के फलस्वरूप इनके कवच के आकार और साइज में भी परिवर्तन आ जाता है। जो प्राणी अपने एक कपाट की सहायता से किसी आधार से संलग्न रहते हैं, उनके वे कपाट सीमेंटी पदार्थ के निक्षेपण के कारण विशेष रूप से मोटे और बड़े हो जाते हैं। उदाहरणतः *एक्सोगायरा* (*Exogyra*) और *ग्राइफिया* (*Gryphaea*) अपने वाम कपटों से संलगित रहते हैं। ये वाम कपाट स्वतन्त्र दक्षिण कपाट (Right Valve) की अपेक्षा भिन्न और बड़े होते हैं। कपाटों के आकार की असमानता *हिप्पूराइटीज* में चरम बिन्दु पर पहुंच जाती है। *हिप्पूराइटीज* का निम्न कपाट निक्षेपण के कारण प्रवाल जैसा शंक्वाकार हो जाता है। ऊर्ध्व कपाट अपने मूल आकार में ही रहता है और ढक्कन जैसा दिखता है।

तरणशील, जैसे *पैक्टन* और संलग्न रहने वाले प्राणियों की स्थिति दक्षिणवाम (Right-Left) न रहकर ऊर्ध्व निम्न (Top-Bottom) हो जाती है (चित्र 4.13)।

उपर्युक्त परिवर्तन के साथ–साथ प्रकृति और आवास का असर कपाटों की सममिति पर भी पड़ता है। उदाहरणतः, तरणशील प्राणियों के कपाट द्विपार्श्वीय सममिति होते हैं, जैसे– *पेक्टन*, परन्तु बिलकारी प्राणियों के कवच का पश्च भाग ऊपर उठा हुआ तथा बिल के खुले भाग की ओर होता है। इसलिए पश्च भाग की वृद्धि के लिए पर्याप्त स्थान इसी दिशा में होता है। यही कारण है कि बिलकारी लैमेलीब्रेन्क के कपाट अत्यधिक असममित होते हैं। उदाहरणतः *फोलस* एवं *सोलेन* (*Solen*) उपर्युक्त परिस्थितियां सूत्र गुच्छ से संलगित प्राणियों में भी लागू होती हैं इसलिए इनके कपाट भी असममित होते हैं। *माइटिलस* इसका उदाहरण है।

कवच की स्थिति का अध्ययन

जिस उपान्त के साथ–साथ दोनों कपाट संलग्न रहते हैं उसे पृष्ठ (Dorsal) तथा जिस ओर से खुलते हैं उसे अधर (Ventral) उपान्त कहते हैं। इसी प्रकार मुख की ओर का भाग अग्र (Anterior) तथा गुदा की ओर का पश्च (Posterior) कहलाता है। दोनों कपाटों के पृष्ठ भाग पर एक नुकीली चोंच (Beak) होती है जिसे ककुद (Umbo) कहते हैं (चित्र 4.14)।

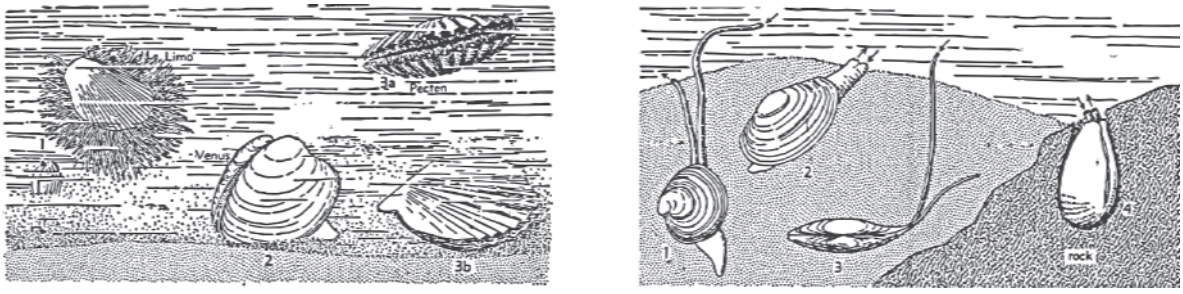

चित्र 4.13 : लैमेलीब्रेन्किया में प्रकृति और आवास का अनुकूलन

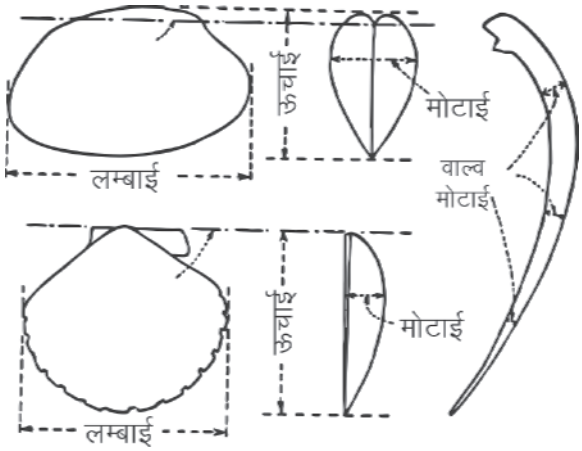

चित्र 4.14 : लैमेलेब्रेन्किया कवच की लम्बाई, मोटाई और ऊँचाई

साधारणतः कवच द्विपार्श्वीय सममित होता है। सममित तल दोनों कपाटों के बीच से जाता है, अर्थात् कवच समान कपाटीय (Equivalve) होता है। ककुद से अधर उपान्त तक और अग्र से पश्च भाग तक सममिति तल में नापी गई अधिकतम लम्बवत् दूरियों को क्रमशः ऊंचाई और लम्बाई कहते हैं। कवच की बन्द अवस्था में उसके अन्दर से नापी गई अधिकतम दूरी को मोटाई कहते हैं।

कवच की आकारिकी
(Morphology of the shell)

बाह्य लक्षण (External characters)

कवच के दोनों कपाटों के पृष्ठ भाग चोंच जैसे होते हैं जिन्हें ककुद कहते हैं, जो कि बहुधा अग्र की ओर मुड़ा होता है। जैसे – वीनस को प्रोसोगायर (Prosogyre) कहते हैं। ककुद जब हिन्ज की ओर एक दूसरे की तरफ मुड़ा हो तो उन्हें आर्थोगायर

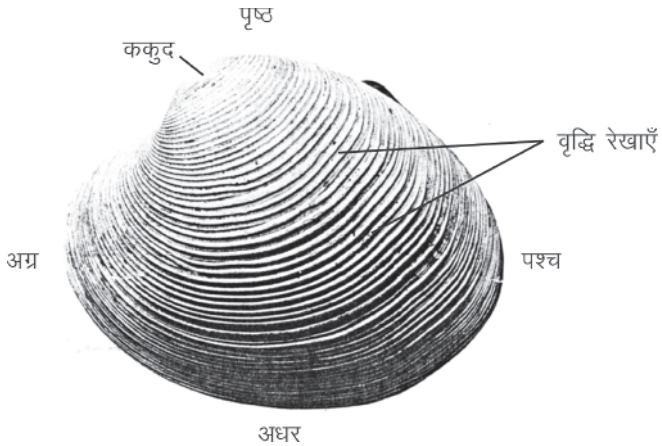

चित्र 4.15 : लैमेलीब्रेन्क्रिया के कपाट की बाह्य संरचना

(Orthogyre) कहते हैं, जैसे ग्लाइसीमेरिस (Glycimeris)। ककुद जब पश्च की ओर मुड़ा हो तो उन्हें ऑपिस्थोगायर (Opisthogyre) कहते हैं, जैसे ट्राइगोनिया (चित्र 4.15)।

अलंकरण (Ornamentation)

लेमिलीब्रेकिया के कवच पर संकेन्द्रीय और अरीय दोनों प्रकार के अलंकरण पाये जाते हैं। संकेन्द्रीय अलंकरण के अन्तर्गत आने वाली संरचनाओं में वृद्धि–रेखाएं, कटक (Ridges) और वृद्धि–स्तरिकाएं (Growh-lamellae) प्रमुख है। इन संकेन्द्री संरचनाओं का केन्द्र ककुद (Umbo) होता है।

अरीय अलंकरण में विभिन्न आकार की रेखाएं जैसे – पर्शुका (Coasta), कोस्टेला (Costella) आदि ककुद से अपसरित होती है। यदि दोनों अलंकरण समान रूप से विकसित हो तो जालिकारूपी या केन्सेलेट अलंकरण कहते हैं (चित्र 4.16)।

चित्र 4.16 : लैमेलीब्रेन्क्रिया के कवच के अलंकरण

हिन्ज–रेखा और हिन्ज क्षेत्र

लैमिलीब्रेन्क के दोनों कपाट पृष्ट भाग पर एकान्तर क्रम में स्थित दांतों और गर्तिकाओं की सहायता से जिस रेखा के साथ–साथ संलग्न रहते हैं, उसे हिन्ज–रेखा कहते हैं। हिन्ज–रेखा लम्बी और सीधी या छोटी और वक्रीय हो सकती है।

ऐसी जातियों में जिनमें प्रायः हिन्ज–रेखा सीधी होती है, हिन्ज–रेखा और ककुद के बीच समतल, त्रिभुजाकार सा क्षेत्र होता है। इस क्षेत्र को हिन्ज क्षेत्र (Cardinal area) कहते हैं, जैसे आर्का।

स्नायु (Ligaments)

लैमिलीब्रेन्क के कवचों में कपाटों (Valves) को खोलने के लिए अनावरक (Divaricator) पेशियां पाई जाती हैं। इन पेशियों

को स्नायु कहते हैं। स्नायु दो प्रकार के होते हैं – बाह्य और आन्तरिक।

बाह्य स्नायु, कोन्किओलिन (Conchiolin) नामक पदार्थ का बना हुआ प्रत्यास्थ छड़ (Elastic rod) जैसा होता है, जो हिन्ज–उपान्त पर, बहुधा ककुद के पश्च में स्थित होता है। जिन स्नायु की छड़ केवल एक बल या स्ट्रेंड (Strand) की बनी होती है उसे एकबन्धनी (Alivincular) तथा जिनकी छड़ अनेक बलों की बनी होती है उसे बहुबन्धनी (Multivincular) स्नायु कहते हैं। कुछ स्नायु अर्ध बेलनाकार पट्टी या बैंड के बने होते हैं, उन्हें पैरीविन्कुलर (Parivincular) कहते हैं।

आन्तरिक स्नायु त्रिकोणाकार पैड जैसे होते हैं, जो हिन्ज–लाइन पर स्थित होते हैं, जैसे *पेक्टन* ।

आन्तरिक लक्षण
(Internal Character)

कपाटों के आन्तरिक लक्षणों में विभिन्न पेशियों के संलग्न से निर्मित चिह्न या छाप तथा हिन्ज पर स्थित दंत–विन्यास मुख्य है।

पेशियां (Muscles)

अभिवर्तनी पेशियां (Adductor muscles) कपाटों को बन्द करने में सहायक होती है। इनके संलग्न से जो छापें बनती हैं, उन्हें अभिवर्तनी छाप (Adductor impression) कहते हैं। ये छाप वृत्ताकार या अण्डाकार गर्त होती है।

अनेक लैमेलीब्रेन्क के दोनों कपाटों में एक रेखागत–गर्त (Linear depression) होता है जिसका निर्माण प्रावार–पेशियों के संलग्न होने के कारण होता है। इस रेखागत गर्त को प्रावार रेखा (Pallial line) कहते हैं (चित्र 4.17)।

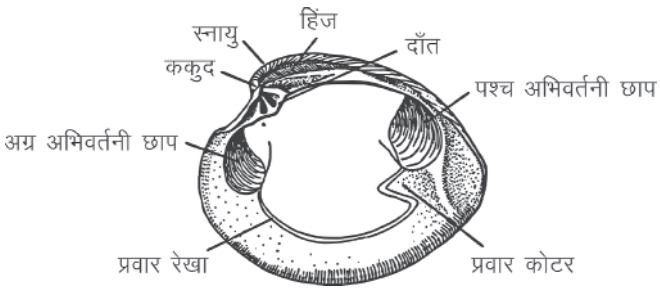

चित्र 4.17 : लैमेलीब्रेन्किया के बाह्य कपाट की आन्तरिक संरचना

दंतविन्यास (Dentition)

लैमेलिब्रेन्क में दांतों की संख्या, आकर–प्रकार एवं उनके व्यवस्थित होने के ढंग को संयुक्त रूप से दंतविन्यास कहते हैं। प्रमुख दंतविन्यास निम्न प्रकार के हैं (चित्र 4.18)

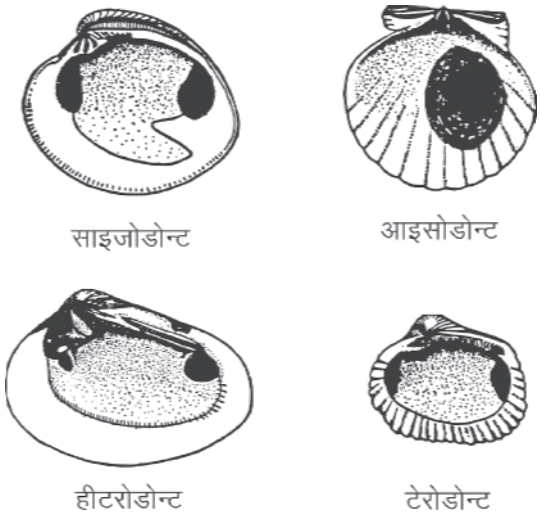

चित्र 4.18 : लैमेलीब्रेन्किया के विभिन्न दन्त–विन्यास

1. **बहुदंती** (Taxodont) : इसमें समान आकार और आकृति के अनेक छोटे–छोटे दांत एवं गर्त होते हैं, जो हिन्ज से लम्बवत् या थोड़े तिरछे होते हैं, इनमें से प्रत्येक की अधिकतम संख्या 35 तक हो सकती है। उदाहरण – *न्युकुला* (*Nucula*) एवं *आर्का* (*Arca*)

2. **विषमदंती** (Heterodont) : यह सबसे अधिक विकसित दंतविन्यास है। इसमें विभिन्न आकार के दांत ककुद (Umbo) के नीचे से अपसरित होते हैं। इस दंतविन्यास के दांतों को हिन्जदांत (Hinge teeth) या मुख्यदंत (Cardinal teeth) और पार्श्वदंत (Lateral teeth) में बांटा जा सकता है। मुख्यदांत ककुद के बिल्कुल नीचे स्थित होते हैं, ये अपेक्षाकृत बड़े होते हैं। पार्श्वदांत, मुख्यदांत के दोनों पार्श्वों में स्थित होते हैं। अग्र की ओर स्थित पार्श्व दांतों को अग्रपार्श्व दांत (Anterior laterals) और पश्च की ओर पार्श्व दांतों को पार्श्व दांत (Posterior laterals) कहते हैं। उदाहरण – *वीनस* (*Venus*)

3. **साइजोडोन्ट** (Schizodont) : इसमें दांत का आकार एवं आकृति परिवर्तनशील रहते हैं। सामान्यतया दांत मोटे, संख्या में कम तथा बहुधा खांच में स्थित होते हैं। उदाहरण – *ट्राइगोनिया* (*Trigonia*)

4. **समदंती** (Isodont) : इसमें दांत बलवान एवं समान आकार के होते हैं। उदाहरण – *स्पान्डीलस*

दक्षिण और वाम कपाटों का अभिनिर्धारण
(Determination of right and left valves)

इसके लिये सर्वप्रथम उनके अग्र और पश्च भागों का निश्चय करना आवश्यक है। जिसका कि निम्नलिखित लक्षणों द्वारा निश्चय किया जाता है :–

1. कपाटों के ककुद बहुधा अग्र की ओर मुड़े हुए होते हैं।

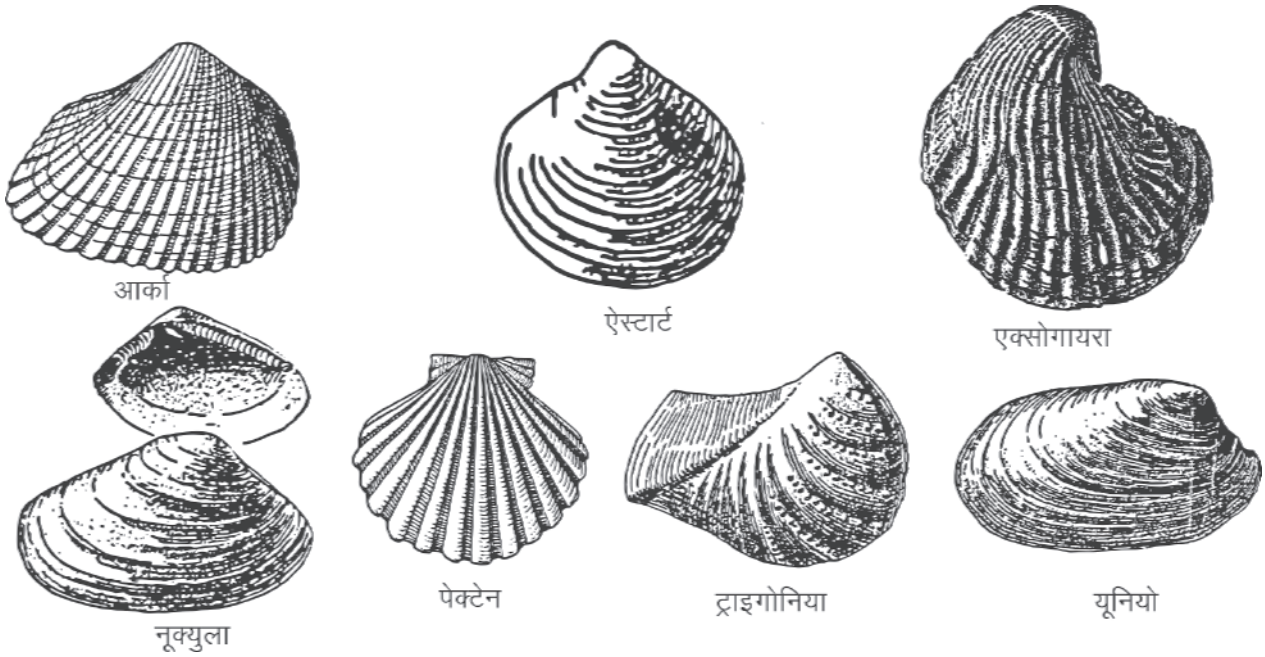

चित्र 4.19 : लैमेलीब्रेन्किया के कुछ उदाहरण

2. द्विपार्श्वीय असममित कपाटों में पश्च भाग बहुधा अधिक विकसित होता है, इसलिए यह बड़ा होता है।
3. प्रावार–कोटर पश्च अभिवर्तनी छाप के समीप होता है।
4. अर्धचन्द्र गर्त ककुद से अग्र की ओर स्थित होता है।
5. एक अभिवर्तनी लैमेलीब्रेन्क की एकल छाप सदैव पश्च अभिवर्तनी पेशी की होती है।

कपाटों के अग्र और पश्च भाग निश्चित करने के पश्चात् यदि कवच को इस प्रकार पकड़ा जाये कि पृष्ठ भाग ऊपर तथा अग्र भाग जांचकर्ता से दूर दिष्ट हो तो दायां कपाट दायें हाथ की ओर तथा बायां कपाट बायें हाथ की ओर होगा।

भू–वैज्ञानिक वितरण (Geological History)

लैमेलिब्रेन्क के जीवाश्म सर्वप्रथम स्पेन के मध्य कैम्ब्रियन शैलों में पाये गये हैं। बहुदंती लैमेलीब्रेन्क सर्वप्रथम निम्न आर्डोविशियन कल्प में अस्तित्व में आये, परन्तु इस काल में लैमेलीब्रेन्क का विकास सीमित होने के कारण इनकी संख्या अधिक नहीं रही तो भी आर्डोविशियन कल्प के अन्त तक एक स्वतंत्र समूह के रूप में इनकी नींव पड़ चुकी थी। सिल्यूरियन कल्प में विषमदंती लैमेलीब्रेन्क सर्वप्रथम पाये गये।

पुराजीवी महाकल्प के अन्तिम चरण में लैमेलीब्रेन्क में कुछ अत्यन्त महत्वपूर्ण परिवर्तन हुए। पुराजीवी शैलों में पायी जाने वाली अधिकांश जातियां विलुप्त हो गई, केवल कुछ ही मध्यजीवी महाकल्प तक जीवित रही। ये जातियां वर्तमान काल तक पायी जाती है। उदाहरण – माइटिलस (Mytilus), आर्का (Arca)

मध्यजीवी महाकल्प में लैमेलीब्रेन्क महत्वपूर्ण रहे परन्तु इनका चरम विकास तृतीय महाकल्प में हुआ। *ट्राइगोनिया* (*Trigonia*), *टेरेडो* (*Teredo*) आदि क्रिटेशियस और *माइटिलस* (*Mytilus*), *पेक्टन* (*Pecten*) आदि ट्राइएसिक (Triassic) कल्प की प्रतिनिधि जातियां हैं।

अलवण जल में रहने वाले लैमेलीब्रेन्क का उद्भव समुद्री लैमेलीब्रेन्क की अपेक्षा बहुत बाद में हुआ। अलवण जल के जीवाश्म कार्बनी कल्प में सर्वप्रथम पाये गये। समुद्री जातियों की अपेक्षा इनका महत्व सदैव बहुत कम रहा है।

उत्तम अवशेष न पाये जाने के कारण लैमेलीब्रेन्क साधारणतः अच्छे सूचक जीवाश्म (Index fossil) नहीं सिद्ध हुए। यह तथ्य डेवोनियन (Devonian) कल्प के पूर्व पाये जाने वाले जीवाश्मों के विषय में विशेष रूपों से लागू होता है। बाद की कुछ जातियों की तुलना उत्तम जीवाश्मों में की जाती है। जैसे *एक्जोगायरा* (*Exogyra*), *ग्रेफिया* (*Gryphaea*) आदि (चित्र 4.19)।

वर्गीकरण (Classification)

लैमेलिब्रेन्क को निम्नलिखित लक्षणों के आधार पर वर्गीकृत किया जाता है :–

1. गिल की संरचना (Structure of gills),
2. पेशीय छाप (Muscular impression),
3. स्नायविक लक्षण (Ligamental features),
4. दंत विन्यास (Dentition)।

उपर्युक्त गुणों को ध्यान में रखते हुए लैमेलीब्रेन्क को निम्नलिखित गणों में वर्गीकृत किया जा सकता है :–

वर्ग लैमेलीब्रेन्किया (Class-Lamellibranchia)

गण (Order)

1. गण : टैक्सोडोन्टा (Order : Taxodonata)
2. गण : यूलैमेलीब्रेन्किया (Order : Eulamellibranchia)
3. गण : एनआइसोमायरिया (Order : Anisomyaria)

1. **गण : टैक्सोडोन्टा** : इस गण के अन्तर्गत वे सभी पैलेसिपॉड आ जाते हैं जिनका दंत–विन्यास बहुदंती होता है। सभी बहुदंती लैमेलीब्रेन्क प्रायः द्विअभिवर्तनी होते हैं। प्रायः दोनों अभिवर्तनी पेशियां लगभग समान साइज की होती है, अर्थात् टैक्सोडान्टा समान अभिवर्तनी होते हैं। जैसे *न्युकुला, ग्लाइसिमेरिस* (*Glycymeris*), *आर्का* आदि इस गुण की प्रमुख जातियां हैं।

2. **गण : यूलैमेलीब्रेन्किया** : यूलैमेलीब्रेन्किया लैमेलीब्रेन्क का सबसे बड़ा और सर्वाधिक महत्वपूर्ण गण है। इसमें गिल–तन्तु (Gill filaments) एक दूसरे से संयुक्त होने के कारण सछिद्री पत्तियों जैसे होते हैं। गिल के पत्तियों जैसे आकार के कारण ही इस गण को यूलैमेब्रेन्किया नाम दिया गया है। ये द्विअभिवर्तनी होते हैं तथा अभिवर्तनी छाप बहुधा समान साइज की होती है। कुछ जातियों में अग्र छाप, पश्च की अपेक्षा कुछ छोटी होती हैं। दंत–विन्यास साईजोडोन्ट तथा हैटेरोडोन्ट पाया जाता है। *ट्राइगोनिया* (*Trigonia*), *कैमा* (*Chama*), *एस्टार्टी* (*Astarte*), *हिप्पूराइटीज, वीनस, माइआ* (*Mya*) आदि इस गण की प्रतिनिधि जातियां हैं।

3. **गण : एनआइसोमायरिया** : इस गण के अन्तर्गत आने वाले प्राणियों के कवचों की अग्र अभिवर्तनी छाप पश्च की अपेक्षा अत्यधिक छोटी होती है। कभी–कभी अग्र छाप पूर्ण रूप से अनुपस्थित पाई जाती है। इस स्थिति को एक–अभिवर्तनी कहते हैं। एक–अभिवर्तनी पैलेसिपॉड में पश्च अभिवर्तनी पेशी बड़ी तथा बलशाली होती है और कपाट के लगभग मध्य में स्थित होती है।

द्विअभिवर्तनी से एक अभिवर्तनी स्थिति की प्राप्ति अग्र अभिवर्तनी पेशी के क्रमशः ह्रास के फलस्वरूप होती है। इस क्रमिक ह्रास के साथ–साथ कवच के आकार में भी परिवर्तन होता है। जैसे–जैसे अग्र अभिवर्तनी का ह्रास होता है, वैसे–वैसे ककुद अपनी प्रोसोगायर स्थिति से क्रमशः आर्थोगायर और अन्त में ऑपिस्थोगायर स्थिति की ओर अग्रसित होती है। माइटिलेसी कुल (Mytilacea Family) इस प्रकार के परिवर्तन का मुख्य उदाहरण है। *ग्राइफिया* (*Gryphaea*), *आइनोसिरेमस* (*Inoceramus*), *माइटिलस* (*Mytilus*), *पेक्टन* आदि एनआइसोमायरिया के मुख्य उदाहरण हैं।

पादप जीवाश्मों का अध्ययन

प्रस्तावना (Introduction)

भू–वैज्ञानिक काल में उपस्थित पादप जगत का अध्ययन पूरा वनस्पति विज्ञान के अन्तर्गत किया जाता है। इसके अन्तर्गत मुख्यतया पादप जीवाश्म के अंशों जैसे कि जड़, तने, पत्तियां, बीज, फल एवं इनके परागकण आदि का अध्ययन किया जाता है।

पेलियोजोईक महाकल्प के ऊपरी कार्बनीफेरस तथा पर्मियन कल्प के समय एन्टार्कटिका, दक्षिण अमेरिका, दक्षिण अफ्रीका, आस्ट्रेलिया व भारतीय प्रायद्वीप मिलकर एक गोंडवाना महाखण्ड के रूप में उपस्थित था। इस कल्प की वनस्पतियों को ग्लोसोप्टेरिस फ्लोरा भी कहा जाता है।

ग्लोसोप्टेरिस (*Glossopteris*)

श्रेणी – टेरोप्साइड (Division – Pteropside)

वर्ग – जिम्नोस्पर्म (Class – Gymnosperm)

उपवर्ग – टेरिडोस्पर्मी (Sub-class – Pteriodospermae)

कुल – *ग्लोसोप्टेरिस* (Genus – *Glossopteris*)

ग्लोसोप्टेरिस निम्न गोंडवाना का पर्ण पादपाश्म है। *ग्लोसोप्टेरिस* नाम सर्वप्रथम ब्रोनिआर्ट ने 1828 में दिया था। इस पर्ण पादपाश्म की पत्तियां लम्बी सरल होती थी। ये आकार में चपटी, अण्डाकार व रैखिक होती थी। इनकी लम्बाई को 3–40 सेन्टीमीटर तक मापा जा सकता है। कुछ जातियों में सुस्पष्ट डंठल पाया जाता था जबकि कुछ जातियों में इसका अभाव होता था। *ग्लोसोप्टेरिस* की पत्तियां मध्यशिरा युक्त सर्पिलाकार तथा चक्रिक क्रम में व्यवस्थित होती थी। इसकी पत्तियां वृन्तहीन होती थी। इनका शिराविन्यास जालिकावत था। पत्तियां पृष्ठाधारीय (Dorsiventral) तथा अध्योरन्ध्री (Hypostomatic) थी। *ग्लोसोप्टेरिस* की पत्तियां द्विरूपी प्रकार की थी जिनमें बड़ी सामान्य हरी पत्तियां तथा छोटी शल्क पर्ण थी। गोल्ड व दलवोयार्स (1977) के अनुसार *ग्लोसोप्टेरिस* पर्ण पादपाश्म के आधारीय भाग पर वर्टीबेरिया मूल थी। यह पादपाश्म ऊपरी कार्बनीफेरस से निम्न ट्रायेसिक तक पाया जाता था (चित्र 4.20)।

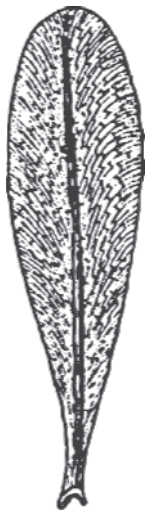

चित्र 4.20 : *ग्लोसोप्टेरिस*

गेंग्मोप्टेरिस (*Gangamopteris*)

गेंग्मोपटेरिस पादपाश्म भी ग्लोसोप्टेरिस की तरह पर्ण पादपाश्म है, जो कि ग्लोसोप्टेरिस फ्लोरा में ही ऊपरी कार्बनीफेरस से निम्न ट्रायेसिक कल्प तक पाया जाता था। *गेंग्मोपटेरिस* की पत्तियां सरल, वृंतहीन होती थी। इनके पर्ण विभिन्न आकृतियों में पाये जाते थे। जैसे – अण्डाकार, जीभाकार या चपटे तथा इन पत्तियों का शीर्ष बिन्दु भोथरा होता था। इनके कुछ पर्णों की लम्बाई 40 सेन्टीमीटर तक होती थी। सामान्यतः *गेंग्मोपटेरिस* पर्ण, *ग्लोसोपटेरिस* पर्ण की तरह ही होते हैं, परन्तु *गेंग्मोपटेरिस* में मध्यशिरा अनुपस्थित होती थी तथा शिरा विन्यास उप–समानान्तर तथा जालिकावत होता था। *गेंग्मोपटेरिस* के वृंत भाग से प्रजनन उपांग जुड़े रहते थे (चित्र 4.21)।

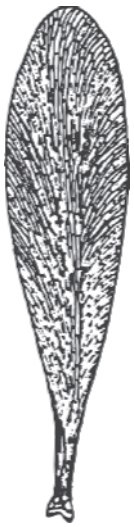

चित्र 4.21 : *गेंग्मोप्टेरिस*

वर्टीब्रेरिया (*Vertebraria*)

ग्लोसोपटेरिस के तने व मूल को सम्मिलित रूप से *वर्टीब्रेरिया* कहा गया है। इनमें दो या तीन शृंखला की अनुदैर्ध्य लकीरें व मध्यवर्ती अनुप्रस्थ खांचे दिखने में ईंटों की दीवार की तरह होते थे। इसके तने का व्यास 2 से 3 सेन्टीमीटर तक होता था। इनका परीरक्षित तना चपटा, एकल तथा शाखित अक्ष जो कि खांचे तथा लकीरों की विशेषताओं के साथ पाये जाते हैं। इन खांचों व लकीरों से पार्श्व खांचे व लकीरें समकोणिक रूप से सतह लगभग आयताकार अक्षों में विभाजित होती थी। *वर्टीब्रेरिया* ऊपरी कार्बनीफेरस से निम्न ट्रायेसिक तक पाये जाते थे (चित्र 4.22)।

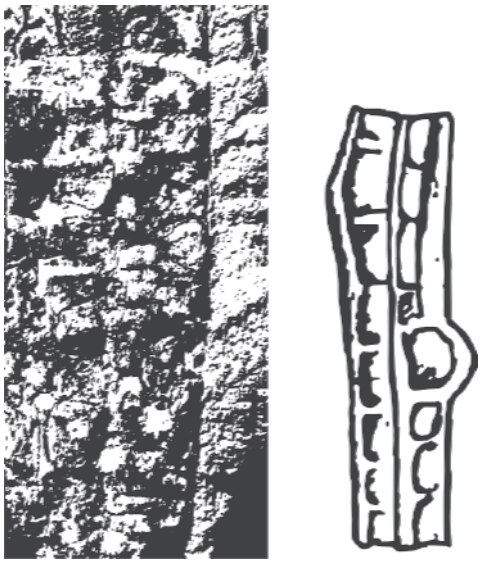

चित्र 4.22 : *वर्टीब्रेरिया*

टिलोफाइलम (*Ptillophylum*)

उपवर्ग (Sub-Class) – साइकेडोफाइटा (Cycadophyta)

गण (Order) – बेन्नेटीटेल्स (Bennettitales)

यह ऊपरी गोंडवाना का महत्वपूर्ण पादपाश्म है एवं इसे टिलोफाइलम फ्लोरा के नाम से जाना जाता है। इस कुल की पत्तियां रेखिक, सीधी या हल्की सी मुड़ी हुई होती थी जो कि समानान्तर से उप–समानान्तर शिराओं के साथ पाई जाती थी। पिन्नुअल रेकिस की ऊपरी सतह से जुड़े रहते हुए लगभग पूरी सतह को ढक देते थे। पिन्नुअल की निचली सतह थोड़ी सी चापाकार होती है, जो कि चौड़े संलग्नक से घिरी रहती थी। इस पादपाश्म की मुख्य पर्ण काफी सारी चाकूकार पिन्नुअल में विभाजित रहते थे तथा इनका शिखर भाग नुकीला होता था। प्रत्येक पिन्नुअल के अन्दर से मध्य शिरा तथा धारियां निकली रहती थी। *टिलोफाइलम* मुख्यतया जुरैसिक से निम्न क्रिटेशियस काल तक पाया जाता था (चित्र 4.23)।

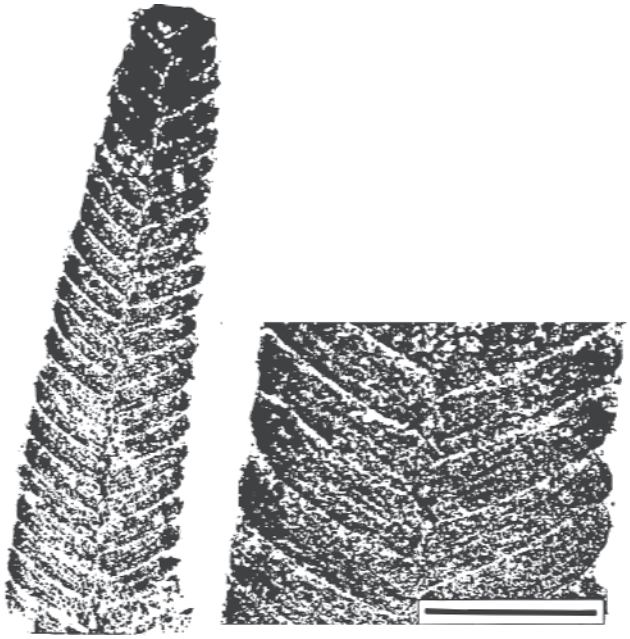

चित्र 4.23 : *टिलोफाइलम*

पुरावनस्पति विज्ञान का महत्व

पुरावनस्पति विज्ञान के अध्ययन से हमें कई उपलब्धियां हासिल हुई, जो कि निम्न हैं :–

1. पुरातन काल की चट्टानों की आयु का पता लगाने में सहायता मिलती है।

2. आधुनिक वनस्पतियों के विकास प्रवृति तथा जातिवृतीय सम्बन्ध का ज्ञान होता है।
3. पुरा पारिस्थितिकी, वितरण आदि के बारे में ज्ञान प्राप्त होता है।
4. सूक्ष्म जीवाश्मों की खोज (बीजाणु, परागकण) की खोज से कोयला तथा तेल भण्डारों का पता चलता है।

प्रकृति में परिवर्तन के साथ वनस्पतियां लुप्त हो जाती हैं तथा उनकी जगह नई वनस्पतिक जातियां पनपती हैं। इस प्रकार वनस्पतियों के आगमन, विकास व पतन का क्रम चलता रहता है।

अवसादी चट्टानों में परिरक्षित पादपाश्म के भूवैज्ञानिक अभिलेख के आधार पर निम्नलिखित जानकारियों का पता लगता है :–

1. जैविक विकास एक लगातार तथा धीमी गति वाली प्रक्रिया है।
2. पुराकाल में परिवर्तन अणु, कोशिका, ऊतक व अंग संगठन के प्रत्येक स्तर पर हुए हैं।
3. भू–वैज्ञानिक महाकल्प के काल में जैविक भिन्नता पाई गई है तथा ये लगातार व निश्चित क्रम में परिवर्तन को दर्शाती है।
4. आधुनिक व पुरा वनस्पतियों में जाति सम्बन्ध विकास प्रकृति को प्रमाणित करते हैं।

जीवाश्म को पुरा जलवायु का सूचक माना गया है। उदाहरण शैवाल की उपस्थिति जलीय अवस्था दर्शाती है।

मानव का विकास क्रम

मानव को प्राईवेट वर्ग के होमोनीडी कुल के अन्तर्गत रखा गया है। मानव के शरीर का पूर्ण जीवाश्म अभी तक प्राप्त नहीं हुआ है, अपितु इसके खण्डित जीवाश्म (खोपड़ी, जबड़े, दांत एवं शरीर के अन्य भाग) एशिया, अफ्रीका एवं यूरोप के कुछ स्थानों से प्राप्त हुए हैं।

मानव के विकास क्रम में निम्न परिवर्तन महत्वपूर्ण है :–

1. दोनों पैरों पर चलकर, सीधी मुद्रा में खड़ा होना।
2. मस्तिष्क के आकार एवं जटिलता में वृद्धि के साथ, खोपड़ी की क्षमता में वृद्धि।
3. जबड़ों की शक्ति में कमी के साथ, केनाईन दांतों का आकार छोटा होना।
4. ठोड़ी (Chin) का विकास।
5. युवावस्था का धीरे–धीरे पार्दपण।

मानव की विकास यात्रा करीब एक करोड़ चालीस लाख वर्ष पूर्व मायोसीन युग के अन्तिम चरण में अथवा प्लायोसीन युग के प्रारम्भ में शुरू हुई। प्रारम्भ में मानव एवं कपियों का विकास एक मूलस्रोत से हुआ, लेकिन संभवतया मायोसीन काल में ये अपसरित हो गये। ऐसा माना जाता है कि करीब 6 करोड़ वर्ष पूर्व इओसिन युग में श्रूदृश्य आदि पूर्वजों के समूह से तीन विभिन्न शाखाओं का विकास हुआ। इन्हीं में से तीसरी शाखा से मानव पूर्वजों (Anthropoid) का विकास हुआ।

संभवतया यह माना जाता है कि मानव की उत्पत्ति *आस्ट्रेलोपिथेकस* जैसे पूर्वजों से हुई। शायद निम्न एवं मध्य अत्यन्त नूतन (प्लीसटोसीन) काल में पहला वास्तविक मानव पिथेकन्थ्रोपोईड (Pithecanthropoids) का उद्भव हुआ। इनके जीवाश्म जावा एवं चीन से प्राप्त हुए हैं। जावा से प्राप्त जीवाश्मों को पिथेकेन्थ्रोपस एवं चीन के जीवाश्मों को साईनेनथ्रोपस नाम से जाना जाता है। इन जीवाश्मों की 1. खोपड़ी की क्षमता 900 से 1000 क्यूबिक सेन्टीमीटर के आसपास पाई जाती थी, जबकि आधुनिक मानव की करीब 1500 क्यूबिक सेन्टीमीटर क्षमता होती है। 2. आंखों के ऊपर भौओं की हड्डी का मजबूत होना। 3. जबड़े बड़े, मजबूत एवं आगे की ओर निकले हुए। 4. दांतों का आकार मजबूत एवं केनाईन दांत का बड़ा होना।

संभवतया ये मानव जमीन पर रहते थे एवं सीधे चलते थे। ये या तो जंगलों में या गुफाओं में छोटे–छोटे पारिवारिक समूहों में रहते थे। ये मानव लकड़ी एवं पत्थरों से बने हुए औजारों एवं आग का प्रयोग भी करना जानते थे।

ऊपरी प्लीस्टोसीन काल में *नियेनदरथल* मानव का उद्भव हुआ, जो कि *होमो नियेनदरथलेन्सिस* के नाम से जाना जाता है। इसकी खोपड़ी व शरीर के अन्य भागों के जीवाश्म यूरोप, एशिया एवं अफ्रीका में पाये जाते हैं। यह मानव तृतीय इन्टरग्लेशियल स्टेज के समय पाया जाता था। यह मानव छोटा, मजबूत एवं करीब 5 फीट लम्बाई का था। इसके कंधे झुके हुए, चेहरा आगे की ओर निकला हुआ तथा घुटने थोड़े मुड़े हुए होते थे। इस मानव की खोपड़ी में *पिथेकेन्थ्रोपस* मानव से कुछ एक थोड़ी सी समानताएं ही देखने को मिलती हैं। इसका चेहरा बड़ा, जबड़े प्रोगनेथस की तरह और ठोड़ी पीछे की ओर स्थित थी। यह मानव पत्थरों के औजार एवं हथियार बनाकर शिकार करता था एवं आग का उपयोग भी करता था। यह मानव उस समय के बड़े स्तनधारी जीव जैसे मैमूथ, भेड़िये, गेंडा, भालू इत्यादि से अपने आपके बचाव में सक्षम था। इसके बाद *क्रो–मैग्नोन* मानव का उद्भव यूरोप में हुआ। यह मानव पुरापाषाण आयु का आखिरी मानव था। *क्रो–मेगनोन* मानव एक आधुनिक मानव था, जो कि हमारी वर्तमान जाति *होमो सेपीयन्स* से सम्बन्धित है। इस मानव

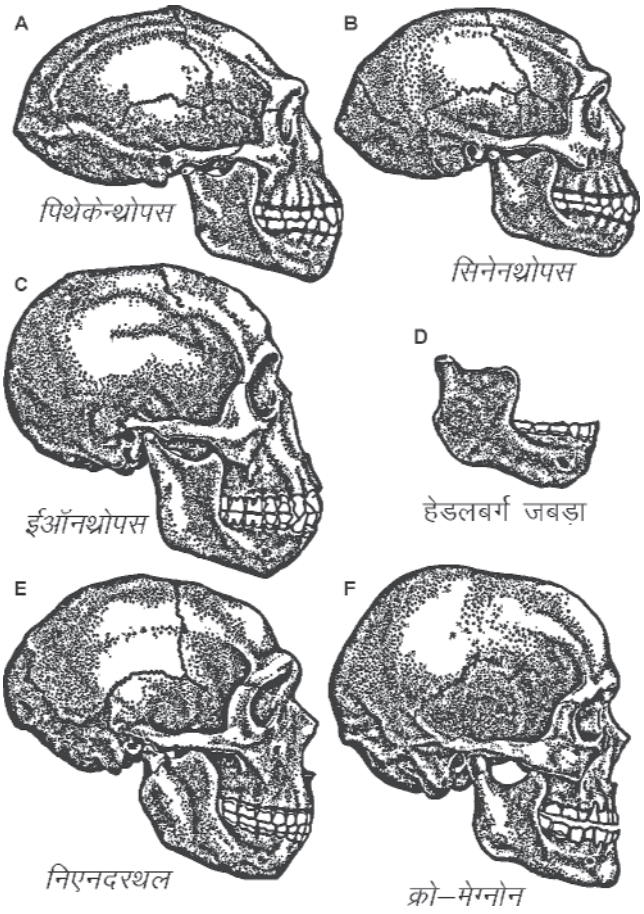

चित्र 4.24 : मानव जीवाश्म की विभिन्न खोपड़िया

के चेहरे का आगे का भाग बड़ा, मस्तिष्क का आकार वृहद एवं लम्बाई काफी अधिक थी। इसका चेहरा सीधा एवं ठोड़ी पर कोणीय बिन्दु होता था। यह मानव पत्थरों की छत के नीचे या गुफाओं में रहते थे (चित्र 4.24)। अत्यन्तनूतन (Pleistocene) युग के खत्म होते हुए एवं उप–अभिनव (Sub-Recent) काल के समय विभिन्न प्रकार के मानव पृथ्वी पर सभी जगह फैल गये।

करीब पन्द्रह से बीस हजार वर्ष पूर्व एशिया के मानव उत्तरी एवं दक्षिणी अमेरिका में विस्थापित हुए। वर्तमान में आधुनिक मानव के चार मुख्य कुल है जो कि होमोसेपियन्स से सम्बन्धित है :–

1. आस्ट्रेलियन ब्लेक (Australian blacks)
2. कोकासोईड्स या सफेद मानव (Caucasoids or white men)
3. नीग्रो (Negroides or Negros)
4. मंगोलिया या पीले या लाल मानव (Mongoloids or yellow or red men)

महत्वपूर्ण बिन्दु

1. चोल की सममिति के आधार पर एकाईनोइडिया को मुख्य रूप से दो समूहों – नियमित (Regular) और अनियमित (Irregular) में बांटा गया है।
2. एकाईनोइडिया के कोरोना में कुल दस क्षेत्र होते हैं, जिनमें पांच वीथी क्षेत्र तथा पांच अन्तरावीथी क्षेत्र होते हैं।
3. एकाईनोइडिया में कवच के अग्र भाग के दाहिनी तरफ वाली जननिक–पट्टिका विशेष रूप से विकसित तथा बहुरंध्रीय होती है। इसे मेड्रेपोराइट पट्टिका (Madreporite plate) कहते हैं।
4. एकाईनोइडिया में समुद्री अर्चिन में चर्वण की क्रिया के लिये मुखद्वार असाधारण रूप से विकसित, शंकु आकार के एक संयंत्र से घिरा रहता है। इसे ''अरस्तु की लालटेन'' के नाम से जाना जाता है।
5. एकाईनोइड सबसे प्रथम मध्य और ऊपरी आर्डोविशन कल्प में पाये जाते हैं। *बोथ्रिआसिडारिस* इस अवधि का मुख्य प्राणी है।
6. प्रोटोजोआ जीव का आकार अत्यन्त सूक्ष्म 0.001 मिलीमीटर से कई सेन्टीमीटर तक होता है।
7. फोरामिनीफेरा मिट्टी के तेल के क्षेत्रों की खोज में गंभीर वेधन प्रणाली में सर्वाधिक उपयोगी हैं।
8. फोरामिनीफेरा का कवच रासायनिक और संरचनात्मक दृष्टि से चूनेदार, बालूकामय (Arenaceous), काइटिन (Chitinous), सिलिकामय (Siliceous) या जिलेटिन (Gelatinous) होता है।
9. फोरामिनिफेरा के कवच की मूल इकाई कोष्ठ है तथा सर्वप्रथम निर्मित कोष्ठ को अग्र कोष्ठिका (Proloculus) कहते हैं।
10. लैमेलीब्रेन्किया का कवच द्विकपाटीय होता है। इनके कपाटों की स्थिति, देह के दक्षिण और वाम (Right - Left) में होती है।
11. लैमेलीब्रेन्किया के दोनों कपाटों के पृष्ठ भाग पर एक नुकीली चोंच (Beak) होती है जिसे ककुद (Umbo) कहते हैं।
12. लैमिलीब्रेन्किया के दोनों कपाट पृष्ट भाग पर एकान्तर क्रम में स्थित दांतों और गर्तिकाओं की सहायता से जिस रेखा के साथ–साथ संलग्न रहते हैं, उसे हिन्ज–रेखा कहते हैं।
13. लैमिलीब्रेन्किया में प्रमुख दंत विन्यास चार प्रकार का है – 1. बहुदंती 2. विषमदंती 3. साइजोडोन्ट 4. समदंती।
14. *ग्लोसोप्टेरिस* की लम्बाई को 3–40 सेन्टीमीटर तक मापा जा सकता है।
15. *ग्लोसोप्टेरिस* में शिराविन्यास जालिकावत तथा पत्तियां

पृष्ठधारीय व अधोरन्ध्री थी।

16. *गेंग्मोप्टेरिस* पर्ण विभिन्न आकृतियों में पाये जाते थे। जैसे – अण्डाकार, जीभाकार या चपटे तथा इन पत्तियों का शीर्ष बिन्दु भोथरा होता था।
17. *वर्टीब्रेरिया* तने का व्यास 2 से 3 सेन्टीमीटर तक होता था।
18. *टिलोफाइलम* ऊपरी गोंडवाना का महत्वपूर्ण पादपाश्म है।
19. *क्रो–मेगनोन* मानव एक आधुनिक मानव था, जो कि हमारी वर्तमान जाति *होमो सेपीयन्स* से सम्बन्धित है।
20. करीब पन्द्रह से बीस हजार वर्ष पूर्व एशिया के मानव उत्तरी एवं दक्षिणी अमेरिका में विस्थापित हुए।

अभ्यासार्थ प्रश्न

वस्तुनिष्ठ प्रश्न

1. इकाईनॉइड की उत्पत्ति किस काल में हुई –
   (अ) केम्ब्रियन (ब) ओरडोविसियन
   (स) सिलूरियन (द) डेवोनियन
2. सर्वप्रथम पाया जाने वाला इकाईनॉइड –
   (अ) *इकाइनोकोरी* (ब) *मायोसिडेरिस*
   (स) *क्लाइपेसट्रिना* (द) *बोथ्रीयोसिडेरिस*
3. इकाईनॉइड्स का मुंह किस झिल्ली से घिरा होता है –
   (अ) पेरीस्टोम (ब) पेरीप्रोक्ट
   (स) मेड्रीपोराइट (द) अरस्तू की लालटेन
4. इकाईनॉइड्स में कोरोना किसकी बनी होती है –
   (अ) 5 एम्बूलेक्रल और 5 इन्टरएक्बूलेक्रल प्लेट्स
   (ब) 5 एम्बूलेक्रल और 5 इन्टरएक्बूलेक्रल क्षेत्र
   (स) 10 एम्बूलेक्रल और 10 इन्टरएक्बूलेक्रल क्षेत्र
   (द) इनमें से कोई नहीं
5. फोरामिनिफेरा को किस वर्ग (क्लास) में रखा गया है –
   (अ) सार्कोडिना (ब) स्पोरोजोआ
   (स) फ्लेजिलेटा (द) मेस्टीगोफोरा
6. फोरामिनिफेरा का कवच बना होता है –
   (अ) केल्शियम कार्बोनेट (ब) बालूकामय
   (स) काइटिन (द) उपरोक्त सभी
7. निम्न फोरामिनिफेरा में से सबसे प्राचीन (Most primitive) कौन है –
   (अ) *सेकामिना* (ब) *ऐस्टोराइजा*
   (स) *हाइपेरामिना* (द) *एलोग्रोमीना*
8. लेमिलिब्रेकिया में –
   (अ) पेलियल साइनस परिवर्तन रूप से उपस्थित होता है।
   (ब) पेलियल साइनस पश्च में उपस्थित होता है।
   (स) पेलियल साइनस अग्र में उपस्थित होता है।
   (द) पेलियल साइनस अनुपस्थित होता है।
9. लेमिलिब्रेंकिया किस संघ के है –
   (अ) मोलस्का (ब) ब्रेक्रियोपोडा
   (स) इकाइनोडरमेटा (द) फोरामिनिफेरा
10. निम्न में से किसे सिरोहिन (Acephala) में रखा गया है –
    (अ) ट्रोइलोबाइटा (ब) इकाइनोइडिया
    (स) ग्रेप्टोजोआ (द) लेमिलिब्रेंकिया
11. निम्न में से किसमें वास्तविक दन्त एवं गर्त अनुपस्थित होते हैं –
    (अ) डाइसोडोन्ट (ब) टेक्सोडोन्ट
    (स) साइजोडोन्ट (द) एनामेलाडोन्ट
12. निम्न में से पादप जीवाश्म हो सकते हैं –
    (अ) जड़, तना एवं पत्तियाँ
    (ब) बीजफल
    (स) परागकण
    (द) उपरोक्त सभी
13. कोयला तथा तेल भण्डारों का पता चलता है –
    (अ) फोरामिनिफेरा से (ब) बीजाणु एवं परागकणों से
    (स) सूक्ष्म जीवाश्मों से (द) उपरोक्त सभी
14. *क्रो–मेगनोन* मानव की खोज कहाँ हुई –
    (अ) अफ्रीका (ब) एशिया
    (स) यूरोप (द) अमेरिका
15. पिथेकन्थ्रोपस मानव के जीवाश्म कहाँ से प्राप्त हुए हैं –
    (अ) यूरोप (ब) उत्तरी अमेरिका
    (स) जावा व चीन (द) अफ्रीका

अतिलघुत्तरात्मक प्रश्न

1. इकाइनायडिया के कवच के आकार बताइये।
2. नियमित तथा अनियमित एकाइनायडिया में अन्तर बताइये।
3. इकाइनायडिया में कोरोना किसे कहते हैं?
4. ''अरस्तु की लालटेन'' को समझाइये।
5. ऊपरी – मध्यजीवी क्रिटेसियस कल्प के इकाइनोइडिया जीवाश्मों के उदाहरण लिखिये।

6. फोरामिनीफेरा का आकार बताइये।
7. फोरामिनीफेरा में पादाभ (Pseudopodia) को समझाइये।
8. फोरामिनीफेरा द्विरूपता (Dimorphism) क्या है?
9. फोरामिनीफेरा के जीवाश्मों का उदाहरण उनकी आयु के साथ बताइये।
10. लेमिलिब्रेन्किाया में ककुद (Umbo) किसे कहते हैं?
11. लेमिलिब्रेन्किाया प्रोसोगायर व ऑपिस्थोगायर में अन्तर बताओ।
12. लेमिलिब्रेन्किाया विषमदंती (Heterodont) दन्त विन्यास को समझाइये।
13. लेमिलिब्रेन्किाया के जीवाश्मों के पाँच उदाहरण लिखिये।
14. *गेंग्मोपटेरिस* पादप जीवाश्म का चित्र बनाइये।
15. *वर्टीब्रेरिया* पादप जीवाश्म की आयु लिखिये।
16. मानव का विकास कब प्रारम्भ हुआ?
17. आधुनिक मानव की खोपड़ी की क्षमता बताइये।
18. *होमो सेपियन्स* के कुलों के नाम लिखिये।

लघुत्तरात्मक प्रश्न

1. एकाईनोइडिया के वर्गीकरण को समझाइये।
2. एकाईनोइडिया के भू–वैज्ञानिक वितरण का वर्णन कीजिए।
3. फोरामिनिफेरा की सामान्य आकारिकी (Morphology) बताइये (चित्र सहित)।
4. फोरामिनिफेरा का भू–वैज्ञानिक वितरण लिखिये।
5. लेमिलिब्रेन्किया के दक्षिण और वाम कपाटों के अभिनिर्धारण को समझाइये।
6. लेमिलिब्रेन्किया में हिन्ज–रेखा और हिन्ज क्षेत्र को चित्र सहित समझाइये।
7. लेमिलिब्रेन्किया के प्रकृति और आवास का वर्णन चित्र सहित कीजिए।
8. *ग्लोसोप्टेरिस* को सचित्र समझाइये।
9. पुरावनस्पति विज्ञान का महत्व लिखिये।
10. मानव के विकास क्रम के परिवर्तनों की महत्वता लिखिए।

निबंधात्मक प्रश्न

1. एकाइनोइड के चोल के भागों का सचित्र वर्णन कीजिए।
2. फोरामिनिफेरा के कवचों का सचित्र वर्णन कीजिए।
3. लेमिलिब्रेन्किया के कवच की बाह्य एवं आंतरिक भागों की आकारिकी को सचित्र समझाइये।
4. निम्न में से किन्हीं तीन पादप जीवाश्मों को सचित्र समझाइये।
   (a) *ग्लोसोप्टेरिस*
   (b) *गेंग्मोपटेरिस*
   (c) *वर्टीब्रेरिया*
   (d) *टिलोफाइलम*
5. मानव के विकास क्रम को समझाइये।

उत्तरमाला : 1 (ब) 2 (द) 3 (अ) 4 (ब) (5) अ
6 (द) 7 (द) 8 (ब) 9 (अ) 10 (द)
11 (द) 12 (द) 13 (द) 14 (स) 15 (स)

अध्याय – 5

स्तरिकी
(Stratigraphy)

भारत की परिचयात्मक स्तरिकी
(Introductory Stratigraphy of India)

भारत के विभिन्न क्षेत्रों में पाई जाने वाली विभिन्न शैलों को स्तरिकी के आधार पर मानक भू–वैज्ञानिक समय सारिणी (Standrad Geological Time Scale) के पांचो महाकल्पों (Era) में इनकी आयु (Age) निर्धारण अनुसार विभिन्न कल्पों (Periods) व युगों (Epochs) में वर्गीकृत किया गया है। भारत की स्तरिकी में आद्यमहाकल्प (Archaean Era) की पुरानी आधार शैलों से लेकर नूतनजीवी महाकल्प (Cenozoic Era) के चतुर्थ कल्प (Quaternary Period) के अभिनव/होलोसीन युग (Recent/Holocene Epoch) तक की नवीनतम शैले पाई जाती है। भारत की विभिन्न शैलों की स्तरिकी को टी.एच. हालेण्ड (1904) ने चार संघों (Groups) यथा आद्यमहाकल्प (आर्कियन एवं धारवाड़), पुराणा (कड़प्पा एवं विन्ध्यन), द्रविड़ियन (कैम्ब्रियन से मध्यकार्बनी) तथा आर्यन (ऊपरि कार्बनी से अभिनव तक) में वर्गीकृत किया गया है। यह वर्गीकरण तीन मुख्य विषमविन्यासों यथा आद्यमहाकल्पेत्तर विषमविन्यास (Eparchaean Unconformity), विन्ध्यन–पश्च अवरोध (Post-Vindhyan Break) तथा पुराजीवी विषमविन्यास (Palaeozoic Unconformity) के आधार पर किया गया। भारत की परिचयात्मक स्तरिकी को संक्षेप में निम्नानुसार समझाया गया है –

आद्यमहाकल्प की शैलें भारत के प्रायद्वीप के करीब दो–तिहाई भाग में फैली हुई है तथा हिमाचल व मध्य हिमालय में भी मिलती हैं। दक्षिण भारत में मैसूर क्षेत्र आद्यमहाकल्प के धारवार महासंघ का प्रारूप क्षेत्र (Type Area) है। चैन्नई (तमिलनाडु) में आद्यमहाकल्प की चार्नोकाइट व प्रायद्वीपीय नाइस (Peninsular Gneiss) पायी जाती है। पूर्वी घाट क्षेत्र में खोंडालाइट शैल मिलती हैं। मध्यप्रदेश (बेलाडिला लोह अयस्क संघ इत्यादि), गुजरात, राजस्थान (भीलवाड़ा महासंघ), बिहार, उड़ीसा, बंगाल–असम में आद्यमहाकल्प की शैले मिलती है। प्रायद्वीपेत्तर भाग में स्पिती (हिमाचल) क्षेत्र में वैक्रिता संघ की शैल मिलती है तथा शिमला एवं गढ़वाल क्षेत्र में जुटांग संघ तथा चेल संघ के नाम से पहचानी जाती है।

आद्यमहाकल्प की समाप्ति के बाद आद्यमहाकल्पेत्तर विषमविन्यास उपरान्त आन्ध्र प्रदेश व अन्य क्षेत्रों में विभिन्न द्रोणियों में निक्षेपण हुआ। आन्ध्रप्रदेश के कड़प्पा जिले के आधार पर इन्हें कड़प्पा महासंघ नाम दिया गया। प्राग्जीवी कल्प (Proterozoic period) में राजस्थान में अरावली महासंघ, राइलो समूह (इस समूह की शैलों को तालिका 5.1 में देहली महासंघ के अन्तर्गत समाहित किया गया है), देहली महासंघ व मलानी आग्नेय समूह (Malani Igneous Suite) की चट्टानें मिलती है। कड़प्पा महासंघ के बाद विन्ध्यन महासंघ की चट्टानें निक्षेपित हुई। इनका नामकरण विन्ध्याचल पर्वतमाला के आधार पर किया गया। निचले विन्ध्यन में सेमरी संघ (मुख्यतः चूनामय शैल) तथा ऊपरी विन्ध्यन में कैमूर, रीवा तथा भाण्डेर संघ (मुख्यतः बालुकामय शैल) वर्गीकृत किये गये है। आन्ध्रप्रदेश की कड़प्पा द्रोणी में कड़प्पा महासंघ से कम आयु के शैल (Younger rocks) कुण्डेर घाटी से कृष्णा नदी तथा पालनाड क्षेत्रों में मिलते हैं, निचले विन्ध यन के समतुल्य इन शैलों को करनूल संघ के रूप में वर्गीकृत किया गया हैं। छतीसगढ़ क्षेत्र में इन्हें इन्द्रावती संघ के नाम से तथा राजस्थान के पश्चिमी भाग में जोधपुर, बिलाड़ा व नागौर क्षेत्र में मारवाड़ महासंघ (ऊपरी विन्ध्यन के समकक्ष) के नाम से जाना जाता है।

पुराजीवी महाकल्प में कैम्ब्रियन से मध्य कार्बनी काल की (निचले पुराजीवी) तथा ऊपरी कार्बनी व पर्मियन (ऊपरी पुराजीवी) कल्प की शैलें मिलती है। कैम्ब्रियन समूह की चट्टानें हिमालय क्षेत्र में कश्मीर, स्पिती (हेमन्ता समूह), कुमाऊँ हिमालय में मिलती

है। कश्मीर व स्पिती में कैम्ब्रियन, आर्डोविशन, सिल्यूरियन व डिवोनियन समूह की चट्टानों का निक्षेपण मिलता है। स्पिती, कुमाऊँ में डिवोनियन समूह के मूथ क्वार्टजाइट मिलते है। इनके ऊपर स्पिती में 1200 मीटर मोटे चूनापत्थर (Limestone), शैल (shale) तथा क्वार्ट्जाइट (quartzite) कनवर समूह में वर्गीकृत की गई है। इसके निचले भाग को लिपाक श्रेणी व ऊपरी भाग को पो श्रेणी कहते हैं। कश्मीर में निचले कार्बनी की सिरिंगोथाइरिस चूनापत्थर श्रेणी व ऊपरी कार्बनी की फेनेस्टेला शैल मिलती है तथा पर्मियन काल के संस्तर मिलते हैं जिन्हें जीवान संघ कहा गया है।

ऊपरी कार्बनी, पर्मियन, ट्राइऐसिक, जुरैसिक व निचले क्रिटेशस कल्प के दौरान प्रायद्वीप भाग में दामोदर, महानदी, सोन, गोदावरी, वर्धा, कन्हान और पेंच नदी घाटियों में गोंडवाना महासंघ के शैल पाये जाते है। इन क्षेत्रों के अलावा इस महासंघ के छोटे–छोटे दृश्यांश गुजरात, पूर्वी तट तथा हिमालय में कश्मीर से असम तक मिलते है। इस महासंघ को तालचीर, दामूदा, पंचेत, महादेव, राजमहल, जबलपुर व उमिया संघों में वर्गीकृत किया गया है। गोंडवाना महासंघ में कोयले की बहुतायत हैं। ऊपरी कार्बनी व पर्मियन समूह के शैल कश्मीर और हिमालय के उत्तरी क्षेत्र में मिलते है। स्पिती में ये चूना युक्त बलुआ पत्थर और प्रोडक्ट्स शैल–कुलिंग समूह कहलाता है।

मध्यजीवी महाकल्प के ट्राइऐसिक समूह का प्रारूप क्षेत्र स्पिती (हिमाचल प्रदेश) है, इन्हें लिलांग समूह कहते है। जुरैसिक समूह का प्रारूप क्षेत्र कच्छ (गुजरात) है। कच्छ में इन्हें पच्छम, चारी, काटरोल व उमिया संघ में वर्गीकृत किया गया है। राजस्थान के जैसलमेर व बीकानेर जिलों में भी समुद्र के अतिक्रमण के फलस्वरूप परमोकार्बनी चट्टानों पर विषमविन्यास के बाद जुरैसिक समूह की शैलों का निक्षेपण हुआ। क्रिटेशस समूह की शैलें स्पिती, कश्मीर, कुमाऊँ, असम, पूर्वी घाट इत्यादि क्षेत्रों में मिलती है परन्तु इनका प्रारूप क्षेत्र त्रिचनापल्ली–पांडिचेरी क्षेत्र हैं, इसमें 1000 से अधिक लुप्त जीव जातियों के जीवाश्म मिलते है।

मध्यजीवी महाकल्प के अन्तिम समय में बाघ व लमेटा संस्तरों के निक्षेपण उपरान्त प्रायद्वीपीय भारत में महाराष्ट्र, कच्छ, काठियावाड़, दक्षिण तथा पश्चिमी मध्यप्रदेश, आन्ध्रप्रदेश के पश्चिमी तथा दक्षिण–पूर्वी राजस्थान के कुछ भाग में करीब 5 लाख वर्ग किलोमीटर क्षेत्र में ज्वालामुखी क्रिया द्वारा डेकन ट्रेप की चट्टानें निर्मित हुई। डेकन ट्रेप चट्टानों की आयु 680–600 लाख वर्ष मानी गई है।

नूतनजीवी महाकल्प की चट्टानें कश्मीर–शिमला, असम, कच्छ, काठियावाड, राजस्थान व प्रायद्वीप क्षेत्र में मिलती हैं। सिन्धु और गंगा के मैदान भी इसी महाकल्प में निर्मित हुए तथा लैटेराइट का निर्माण भी मुख्य रूप से इसी महाकल्प के उत्तरार्द्ध में हुआ था। आदिनूतन (Eocene) समूह की शैलें असम के पूर्वी भाग में डिसांग संघ तथा पश्चिमी भाग में जैन्तिया संघ के रूप में जानी जाती है। बीकानेर, जैसलमेर सहित पश्चिमी राजस्थान का क्षेत्र आदिनूतन कल्प में समुद्र से ढका था और इन क्षेत्रों में निम्न तृतीय कल्प श्रेणी की चट्टानें पायी जाती हैं। बीकानेर में पलाना लिग्नाइट तथा मुल्तानी मिट्टी भी इसी काल के हैं। पंजाब–कश्मीर क्षेत्र में निम्न मध्यनूतन (Lower Miocene) कल्प के शैल मरी संघ के नाम से जाना गया है। शिमला क्षेत्र में इन्हें दगशाई समूह तथा कसौली समूह कहते है। अल्पनूतन (Oligocene) व निचले मध्यनूतन (Lower Miocene) कल्प के शैल असम में बरेल संघ और सूरमा संघ के नाम से वर्गीकृत किये गये है। कच्छ क्षेत्र में तृतीय कल्प की शैल समूह का निक्षेपण पुरानूतन (Paleocene) से अतिनूतन (Pliocene) तक हुआ है। मध्य मध्यनूतन (Middle Miocene) से निचले अत्यन्त नूतन (Lower Pleistocene) कालावधि में शिवालिक संघ के शैल हिमालय के गिरिपादों में पूर्व में ब्रह्मपुत्र की घाटी से लेकर पश्चिम में पोत्वार के पठार तक फैलाव लिये हुए है। शिवालिक नामकरण उत्तराखंड के हरिद्वार में स्थित शिवालिक पर्वत से किया गया। शिवालिक संघ की चट्टानों में स्तनधारी जीवों के जीवाश्मों की बहुतायत है तथा इनके अलावा पक्षी, मगरमच्छ, कछुए, सर्प, मछलियों तथा छिपकलियों के भी जीवाश्म मिलते हैं। हाथी वंश की 30 जातियों के जीवाश्म इन चट्टानों से प्राप्त किये गए हैं। असम में मध्यनूतन (Miocene) तथा अतिनूतन (Pliocene) कल्प की चट्टानें टिपम संघ, डुपीटिला संघ तथा डिहिंग संघ के रूप में वर्गीकृत की गई है। चतुर्थ महाकल्प के तहत अत्यन्तनूतन (Pleistocene) व अभिनव (Recent/Holocene) कल्प की चट्टानें, सिंधु–गंगा का मैदान (जलोढ़), लैटेराइट (मध यप्रदेश, महाराष्ट्र व बिहार इत्यादि क्षेत्रों में) के निक्षेप व थार मरूस्थल मिलते हैं। कश्मीर में पीर पंजाल से लेकर गुलमर्ग तक फैली हुई अत्यन्त नूतन कल्प (Pleistocene) की शैलें करेवा समूह के नाम से पहचानी जाती हैं। पोत्वार के पठार, सतलज–नर्मदा–ताप्ती–गोदावरी तथा कृष्णा नदियों की घाटियों में अत्यन्तनूतन कल्प (Pleistocene) के निक्षेप मिलते हैं।

आद्यमहाकल्प (Archaean) राजस्थान की चट्टानें

राजस्थान में प्राचीनतम आद्यमहाकल्प (Archaean) से लेकर अभिनव/होलोसीन कल्प तक के जलोढ़क तथा बालू की स्तरिकी का अनुक्रम मिलता हैं। राजस्थान में भीलवाड़ा महासंघ (इस महासंघ की शैलों में हेरन द्वारा वर्णित बेण्डेड नाइसिक कॉम्पलेक्स BGC समाहित है), अरावली महासंघ, देहली महासंघ, विन्ध्यन महासंघ, मारवाड़ महासंघ तथा पुराजीवी, मध्यजीवी, डेकन ट्रेप्स, नूतनजीवी के तृतीयक व चतुर्थ कल्पों की चट्टानें मिलती है (चित्र 5.1)।

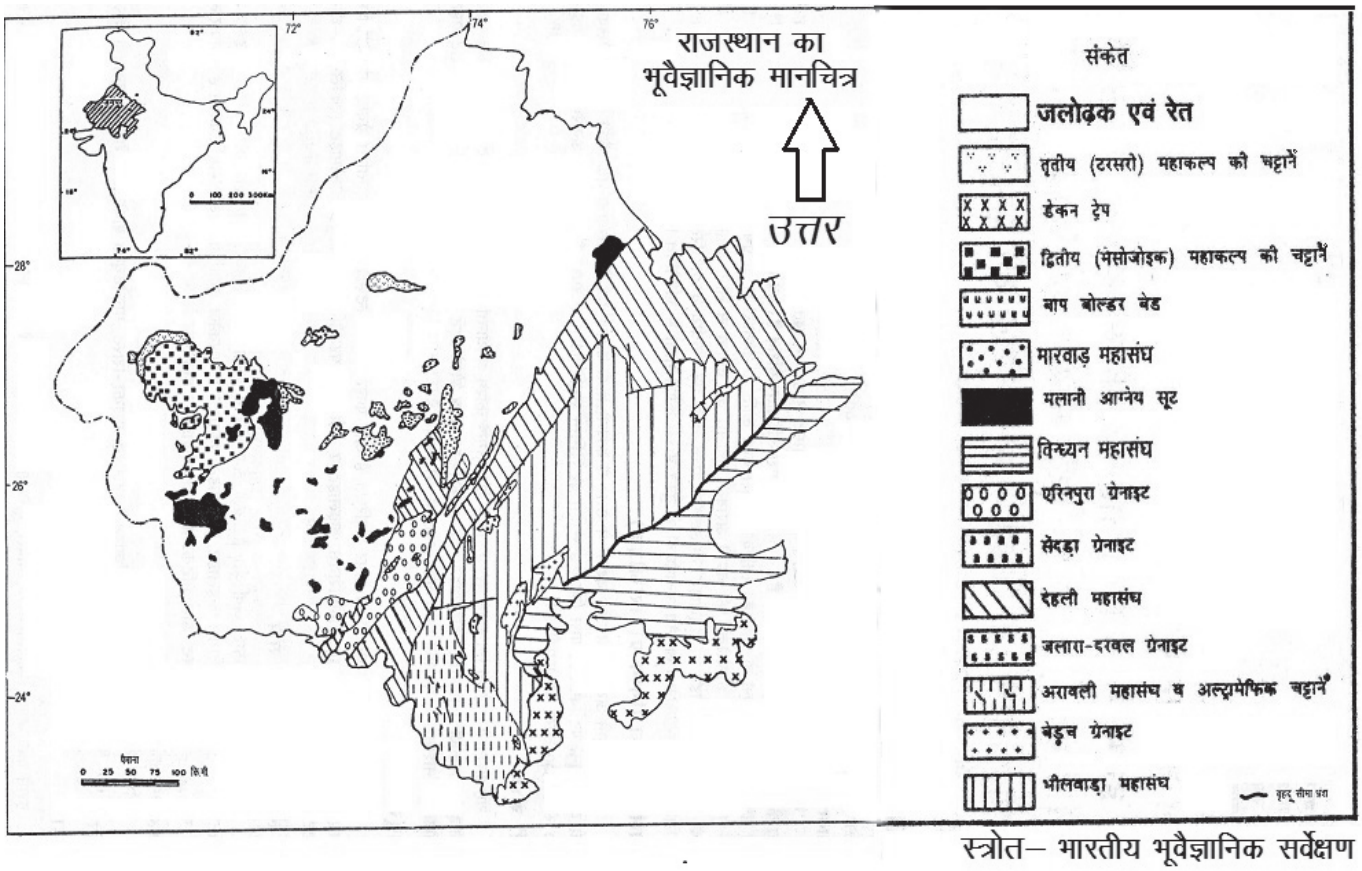

स्त्रोत– भारतीय भूवैज्ञानिक सर्वेक्षण

चित्र 5.1 : राजस्थान का भूवैज्ञानिक मानचित्र

भीलवाड़ा महासंघ (Bhilwara Supergroup)

राजस्थान में पृथ्वी की मूल ठोस ग्रेनाइटी पर्पटी की अवशेष चट्टानें ''बेण्डेड नाइसिक काम्पलेक्स'' के नाम से जानी जाती थी जो अरावली महासंघ से भी पुरानी है। इन्हें वर्तमान में भीलवाड़ा महासंघ के नाम से जाना जाता है। ऊंटाला व गींगला तथा वल्लभनगर–जयसमन्द ग्रेनाइट चट्टानों की आयु 300 करोड़ वर्ष आंकी गयी है। ये चट्टानें इससे भी पूर्व काल की आधार 'नाइस' (Gneiss) में अन्तर्वेधित मिलती हैं। नाइस–ग्रेनाइट–अल्प व अधिक सिलिक चट्टानों के धारीदार व पट्टीदार मिश्रण के कारण इसे 'काम्पलेक्स' का नाम दिया गया था। इन चट्टानों के कायान्तरण की कोटी के आधार पर इन्हें ''सांडमाता काम्पलेक्स'' तथा ''मंगलवाड़ काम्पलेक्स'' के नाम से जाना जाता है। भीलवाड़ा महासंघ की चट्टानें दक्षिण में पीपलखूंट (बांसवाड़ा जिला) से उत्तर में डेयी (बूंदी जिला) तक करीब 400 किलोमीटर लम्बाई में फैली हुई है तथा इनकी चौड़ाई दक्षिण में कुछ किलोमीटर, मध्य में भीलवाड़ा के पास करीब 130 किलोमीटर है। भीलवाड़ा महासंघ की चट्टानों की आयु 250 करोड़ वर्ष तथा इससे अधिक पुराने काल की मानी गई है। भीलवाड़ा महासंघ में मुख्यतः संगुटिकाश्म (Conglomerate), 'मेंटा ग्रेवेक', संगमरमर (Marble), 'केल्क सिलिकेट–केल्क शिष्ट', केल्क नाईस, 'पेरा ऐम्फीबोलाइट', माइका शिष्ट', कायनाइट–सिलीमैनाइट शिष्ट, बेसिक व मेटा वोल्केनिक्स, मिग्मेटाइट, ग्रेनाइट, ग्रेनाइट–नाइसेज, ग्रेनोडायोराइट, चार्नोकाइट, नोराइट, डोलेराइट व अल्ट्रा मैफिक चट्टानें मिलती हैं।

भीलवाड़ा महासंघ को आठ समूहों में विभक्त किया गया हैं। प्रथम तीन समूह हिण्डौली समूह, मंगलवाड़ कॉम्पलेक्स तथा सांडमाता कॉम्पलेक्स समकालीन आद्यमहाकल्पीय (Archaean) तथा बाद के चार समूहों – राजपुरा–दरीबा, पुर–बनेरा, जहाजपुर तथा सांवर को समकालीन निम्न प्राग्जीवी कल्प (Lower Proterzoic) जमाव वाले माना गया है। रणथम्भौर समूह को अलग जगह दी गई है।

हिण्डौली समूह का नामकरण बूंदी से 20 किलोमीटर उत्तर–पश्चिम में स्थित गांव 'हिण्डौली' से लिया गया है। इसमें मुख्यतः शेल (Shale), स्लेट (Slate), फाइलाइट (Phyllite), माइका शिष्ट (Mica-Schist), मेटा–ग्रेवेक (Meta-greywacke) के साथ डोलोमाइट, लाइमस्टोन इत्यादि चट्टानें मिलती हैं। हिण्डौली समूह को भदेसर, सुजानपुरा तथा नागोली शैल समूहों में वर्गीकृत किया गया हैं।

मंगलवाड़ कॉम्पलेक्स में मिग्मेटाइट, शिष्ट, फाइलाइट, ग्रेनाइट, नाइस, क्वार्टजाइट, एम्फिबोलाइट, डोलामाइट व संगमरमर इत्यादि विभिन्न चट्टानें मिलती है। इन चट्टानों को हेरन ने बेण्डेड नाइसिक कॉम्पलेक्स (Banded Gneissic Complex/ B.G.C.) नाम दिया था। इस कॉम्पलेक्स को सात शैल समूहों यथा लसाड़िया, केकड़ी, सराड़ा, मांडो की पाल, सुवाना, पोटला एवं राजमहल शैल समूह में विभक्त किया गया है।

सांडमाता कॉम्पलेक्स आमेट से किशनगढ़ तक लगभग 200 किलोमीटर लम्बाई तथा कालागुमान व देलवाड़ा लिनियामेंट के बीच करीब 50 किलोमीटर चौड़ाई में विस्तृत है। हेरन ने इन्हें भी बी.जी.सी. में शामिल किया था। इसे शम्भूगढ़, बदनौर व बारान्च शैल समूहों में वर्गीकृत किया गया है।

राजपुरा – दरीबा समूह की चट्टानें मुख्य रूप से रासायनिक उत्पत्ति वाली तथा खंडज शैल (Clastic rocks) है तथा भींडर से उत्तर में धोर तक लगभग 100 किलोमीटर लम्बाई व 2.5 किलोमीटर चौड़ाई में फेली हुई है तथा एम्फिबोल संलक्षणी का कायान्तरण दर्शाती है। इस संघ में डोलामाइट, विभिन्न शिष्ट, क्वार्टजाइट व चर्टी चट्टानें पाई जाती हैं जिनमें जस्ता–सीसा के जमाव भी मिलते है। राजपुरा–दरीबा संघ को पांच शैल समूहों यथा भींडर, मालीखेड़ा, दरीबा, सिन्देसर तथा सतदूधिया शैल समूहों में बांटा गया है।

पुर–बनेरा समूह बनेरा के दक्षिण से समोदी तक लगभग 80 किलोमीटर लम्बाई व 3–12 किलोमीटर चौड़ाई में विस्तृत है। इसे भी पांच शैल समूहों यथा पुर, रेवारा, तिरंगा, समोदी तथा पांसल शैल समूह में बांटा गया है।

जहाजपुर समूह नन्दराय के 2 किलोमीटर दक्षिण पूर्व से नैनवा (टोंक जिला) तक करीब 110 किलोमीटर लम्बे व 500 मीटर से 8 किलोमीटर तक चौड़े विस्तृत क्षेत्र में फैला हुआ है। इस संघ की चट्टानें ग्रीन शिष्ट संलक्षणी का कायान्तरण दर्शाती है तथा यह समूह चूलेश्वरजी, झीकरी व उमर शैल समूहों में विभक्त हैं। इस समूह में सीसा, जस्ता व ताम्बा के सहजनिक निक्षेप भी मिलते हैं।

सावर समूह उत्तर में बजिठा से दक्षिण में सांवर तक करीब 13 किलोमीटर लम्बाई एवं 3–5 किलोमीटर चौडाई में फैलाव लिये हुआ है तथा इसे घटियाली एवं मोरही शैल समूहो में बांटा गया हैं। रासायनिक उत्पत्ति अपचायक वातावरण (Reducing environment) में निक्षेपण तथा सल्फाइड के जमाव के फलस्वरूप इस समूह को पुर–बनेरा, राजपुरा–दरीबा तथा जहाजपुरा समूहों के समकक्ष रखा गया है।

रणथम्भौर समूह बड़ी सादड़ी से मांडलगढ़ होते हुए सवाईमाधोपुर तक करीब 200 किलोमीटर लम्बाई में फैला हुआ है। मुख्य शैल क्वार्टजाइट, स्लेट व फाइलाइट है जो निम्न कोटि का कायान्तरण दर्शाती है। इस समूह को तीन शैल समूहों यथा बड़ी सादड़ी, होड़ा व मांडलगढ़ शैल समूह में बांटा गया है। भीलवाड़ा महासंघ का वर्गीकरण तालिका 5.1 में दर्शाया गया है।

प्राग्जीवी कल्प (Proterozoic Period)

राजस्थान की प्राग्जीवी कल्प की चट्टानों में भीलवाड़ा महासंघ के राजपुरा–दरीबा, पुर–बनेरा, जहाजपुर और सावर समूहों तथा अरावली महासंघ, देहली महासंघ, विन्ध्यांचल महासंघ तथा मारवाड़ महासंघ को रखा गया है। प्राग्जीवी कल्प की समयावधि 250 से लगभग 60 करोड़ वर्ष पूर्व की आंकी गई है (अंतरराष्ट्रीय स्तरिकी कालम के अनुसार प्राग्जीवी कल्प की ऊपरी सीमा लगभग 54 करोड़ वर्ष पूर्व तक मानी जाती है) तथा इसे निम्न, मध्य व ऊपरी तीन भागों में विभक्त किया गया है।

अरावली महासंघ (Aravalli Supergroup)

अरावली महासंघ मुख्यतः कायान्तरित व जटिल रूप में वलनित (Folded) खंडज अवसादों, जिनमें कम मात्रा में रसोजनित व जीवजनित संग्रह भी मौजूद है और अल्पसिलिक शैलों के साथ अंतरास्तरित है, 250 से 200 करोड़ वर्ष पूर्व समयावधि का है। निम्न प्राग्जीवी कल्प का अरावली महासंघ अनेक बार की वल्कित कायान्तरित, अवसादी चट्टानों, समकालिक तथा बाद की लावा चट्टानों के अन्तर संस्तरों से बना है। यह पूर्व में निर्मित भीलवाड़ा महासंघ के शैलों के ऊपर विषमविन्यास के साथ एवं पश्चिम में देहली महासंघ की शैलों के नीचे स्थित है। इस महासंघ के शैल उत्तर में कांकरोली, दक्षिण–पूर्व में बांसवाड़ा तक व दक्षिण में चाम्पानेर तक करीब 350 किलोमीटर लम्बाई में फैले हुए है तथा इनकी चौड़ाई उत्तर में 40 किलोमीटर व दक्षिण में 150 किलोमीटर है। इस महासंघ में फाइलाइट, माइका शिष्ट, गार्नेट–बायोटाइट शिष्ट, मेटा–ग्रेवेक, मेटा पेलाइट, क्वार्टजाइट, मेटा–कॉग्लोमरेट, मेटा–आर्कोज, कायान्तरित लावा चट्टानें, डोलोमाइट, चर्ट, नाइसेज, सर्पेन्टीन, ग्रेनाइट व एम्फिबोलाइट इत्यादि शैल मिलते है। ये शैल अनेक बार विरूपण से प्रभावित हुए है और अवसादी शैलों में समकालिक आग्नेय प्रक्रम के कारण क्षेत्रीय मिग्मेटाइजेशन हुआ। अरावली महासंघ को 9 समूहों यथा देबारी, उदयपुर, कांकरोली, बड़ी लेक, झाड़ोल, दोवड़ा, नाथद्वारा, लूनावाड़ा तथा चम्पानेर समूहों में बांटा गया है। अरावली महासंघ के जमावों में गहराई में स्थित तीन विभंगों का बहुत महत्व है, इन्हें देलवाड़ा, बड़ी लेक तथा बनास लिनियामेंट कहा जाता है जिसके द्वारा अल्पसिलिक व अधिसिलिक आग्नेय चट्टानों का अन्तर्वेधन तथा बर्हिवेधन हुआ।

देबारी समूह की शैलें अरावली महासंघ का आधार है जो समुद्री सीमा वातावरण के बड़े–बड़े खंडज, फास्फेटिक डोलोमाइट,

तालिका 5.1: भीलवाड़ा महासंघ का वर्गीकरण

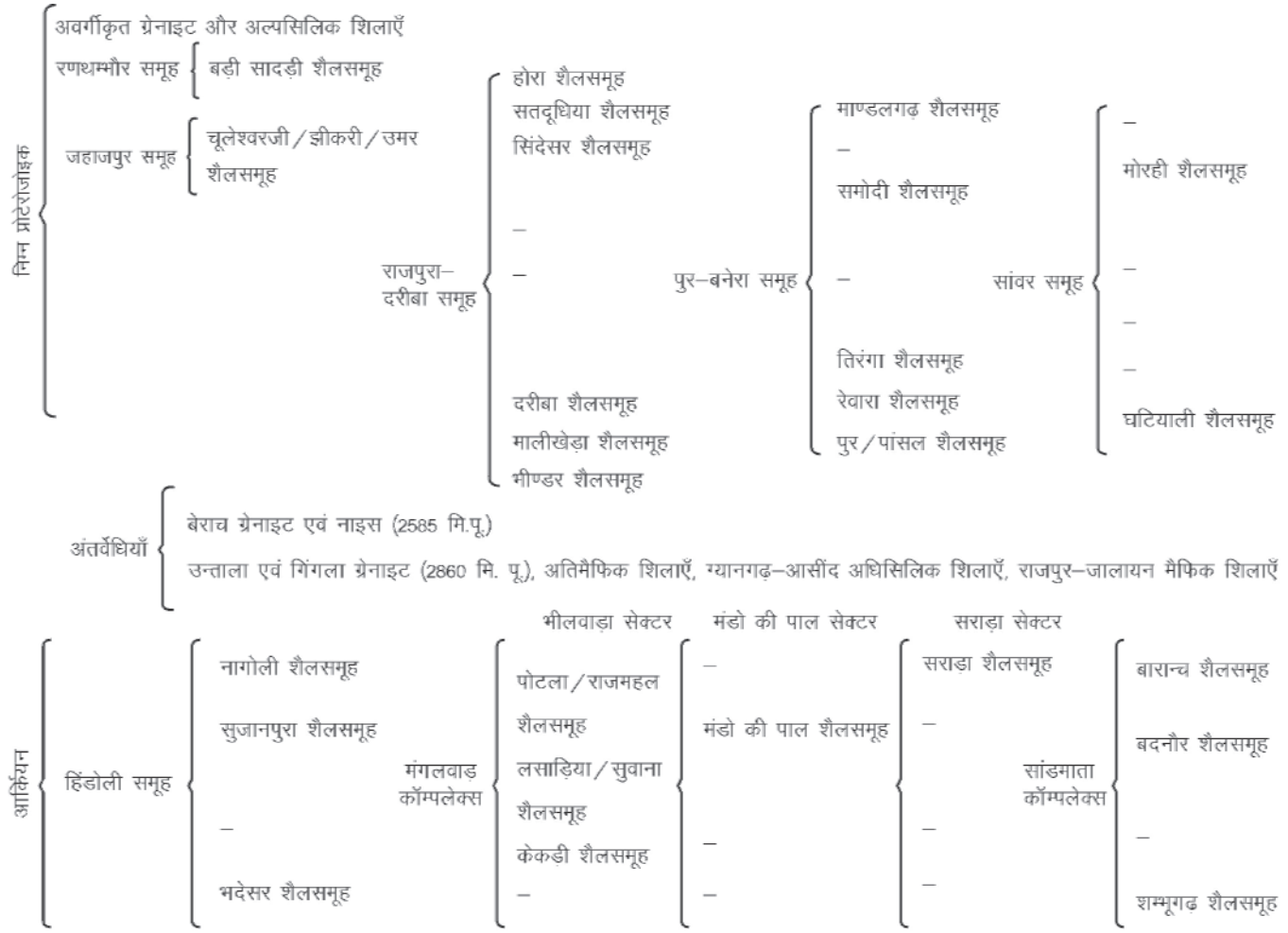

स्त्रोत : भारतीय भूवैज्ञानिक सर्वेक्षण, विविध प्रकाशन, गुप्ता एवं सहयोगी, 1977, संख्या 30 भाग 12–अंग्रेजी (2001) के हिन्दी अनुवादित संस्करण (2011)

कार्बनमयी अवसाद तथा इनके समकालिक अल्पसिलिक लावा चट्टानों युक्त है। इस समूह को चार सेक्टरों यथा देबारी, जयसमन्द, घाटोल व सराड़ा की पाल सेक्टर में विभक्त किया गया है। देबारी सेक्टर में देबारी समूह को पांच शैल समूहों – गुड़ली, देलवाड़ा, जयसमन्द, बेड़वास व झामर कोटड़ा शैल समूहों में बांटा गया है। जयसमन्द सेक्टर में देलवाड़ा व जयसमन्द के अलावा मटून उप समूह के डाकन कोटड़ा व बाबरमल शैल समूह है। घाटोल सेक्टर में गुड़ली, देलवाड़ा, जयसमन्द के अलावा मटून उप समूह के मुकन्दपुरा व जगपुर शैल समूह है। सराड़ा सेक्टर में बेसल शैल समूह, नथारिया की पाल के अलावा मटून उप समूह के सीसामगरा व कठालिया शैल समूह सम्मिलित है। मटून उप समूह में वर्गीकृत झामर कोटड़ा, मटून, कानपुर, डाकन कोटड़ा क्षेत्र के रॉक–फास्फेट जमाव सीमित द्रोणी (Restricted basin) के तटों, संक्रमण व शेल्फ (Transitional and Shelf Zones) जोन्स में निक्षेपित हुए।

उदयपुर समूह उत्तर में एकलिंगजी के उत्तर पश्चिम से लेकर दक्षिण में संतरामपुर (गुजरात) तक लगभग 180 किलोमीटर लम्बाई तक फैलाव लिए है। इसे आठ शैल समूह यथा सवीना, एकलिंगगढ, बलिचा, नीमच माता, बांसवाड़ा (उदयपुर सेक्टर में) तथा मांडली, बरोई मगरा व जावर (सराड़ा सेक्टर में) शैल समूहों में बांटा गया है। मांडली, बरोईमगरा तथा जावर शैल समूह को टीड़ी उप समूह में वर्गीकृत किया गया है।

बड़ी लेक समूह दक्षिण में खरपीना से उत्तर में मदार तक करीब 30 किलोमीटर लम्बे व 3 से 5 किलोमीटर चौड़े क्षेत्र में फैला हुआ है तथा उत्तर दिशा में आगे खमनोर होते हुए बनास लिनियामेंट (Lineament) तक विस्तृत है। इस समूह को तीन शैल समूह यथा सज्जनगढ़, वरला व खमनोर शैल समूहों में बांटा गया है।

कांकरोली समूह को पांच शैल समूहों – माडरा, मोरचना, राजनगर, पुथोल व सांगट शैल समूह में बांटा गया है तथा इसमें

वल्कित व कायान्तरित अवसाद – शिष्ट, नाइस, डोलामाइट व क्वार्टजाइट इत्यादि मिलते है।

झाड़ोल समूह मोडासा (गुजरात) से पालड़ी तक उत्तर दक्षिण दिशा में 180 किलोमीटर लम्बाई व अधिकतम 40 किलोमीटर चौड़ाई में फैला है तथा मृण्मय व रेणुकाश्मी (Arenites) अवसादों यथा फाइलाईट, क्लोराइट–शिष्ट, गारनेट–माइका शिष्ट, क्वार्टजाइट इत्यादि से निर्मित है। इन शैलों का कायांतरण पूर्व दिशा में निम्न कोटि ग्रीन शिष्ट संलक्षणी (Facies) से पश्चिम की निम्न कोटि ऐम्फिबोलाइट संलक्षणी तक हुआ है। झाड़ोल समूह को गोरान तथा शामलाजी शैल समूह में विभक्त किया गया है।

दोवड़ा समूह रसायनजनित एवं खंडजजनित कम गहराई में उपतट क्षेत्र में निक्षेपित अवसादों से निर्मित है। इस समूह को देप्ती तथा देवथारी शैल समूह में बांटा गया है। इसमें शिष्ट, ऐम्फिबोलाइट, नाइस व मिग्मेटाइट शैले मिलती है।

नाथद्वारा समूह की चट्टानें दो पट्टियों में बंटी हुई है, पूर्वी पट्टी रामा से नेडच तक तथा पश्चिम पट्टी मदार से इसवाल–नाथद्वारा होते हुए कोठारिया तक फैली हुई है। इस समूह को पूर्वी पट्टी में कदमाल तथा रामा शैल समूहों और पश्चिम पट्टी में हल्दी घाटी शैल समूह में बांटा गया है।

लूनावड़ा समूह की चट्टानें गुजरात की उत्तरी भागों तथा राजस्थान के डूंगरपुर एवं बांसवाड़ा जिलों में विस्तृत है। इस समूह को कालिनजारा, बागीदोरा, भवनपुरा, चन्दनवाड़ा, भूकिया तथा कडाना शैल समूहों में विभक्त किया गया है। इसमें फाइलाइट, शिष्ट, ग्रेवेक, क्वार्टजाइट इत्यादि शैलों के साथ डोलामाइट, लाइमस्टोन, फास्फेटिक डोलोमाइट के संस्तरण मिलते है।

चम्पानेर समूह के दृश्यांश (Outcrops) राजस्थान में मौजूद नहीं है। इस समूह की चट्टानें गुजरात में बड़ोदा तथा पंचमहल जिलों में मिलती है। चम्पानेर समूह को 06 शैल समूहों – लाम्बिया, खांडिया, नारूकोट, जबन, शिवराजपुर व राजगढ़ शैल समूह में विभक्त किया गया है।

अरावली महासंघ का वर्गीकरण तालिका 5.2 में दर्शाया गया है।

देहली महासंघ (Delhi Supergroup)

देहली महासंघ की चट्टानें मध्य व ऊपरी प्राग्जीवी (Middle and Upper Proterozoic) कल्प की है। अर्थात् 200 से 74 करोड़ वर्ष पूर्व इनका निर्माण हुआ। इस महासंघ की चट्टानें देहली से हिम्मतनगर (गुजरात) तक लगभग 850 किलोमीटर लम्बाई में विस्तृत है जो राजस्थान में पूर्व में मेवाड़ के पहाड़ी क्षेत्र तथा पश्चिम में मारवाड़ में फैले रेतीले भूभाग को विभक्त करती है। देहली महासंघ के अवसाद (Sediments) मुख्यतः स्थलजात व रसायनजनिक है व इनमें अधिसिलिक व अल्पसिलिक अन्तर्वेधी एवं बाह्यर्वेधी चट्टानें हैं। इनमें प्रमुख चट्टानें क्वार्टजाइट, बायोटाइट–शिष्ट, केल्क–सिलिकेट (शिष्ट व नाइसेज), फाइलाइट, चर्ट, लाइमस्टोन, मार्बल है तथा इनमें ग्रेनाइट, ग्रेनाइट–नाइसेज, बेसिक मेटा वोल्केनिक्स, अल्ट्रा बेसिक हार्नब्लेण्ड शिष्ट, पायरोक्सीनाइट, गेब्रो इत्यादि के अन्तर्वेधन व बाह्यर्वेधन है। ये चट्टानें ग्रीन शिष्ट संलक्षणी से ग्रेनुलाइट संलक्षणी के क्षेत्रीय कायान्तरण (Regional Metomorphism) से बनी है।

देहली महासंघ के अवसादों का निक्षेपण देहली भू–अभिनति (Delhi Geosyncline) के दो क्षेत्रों में हुआ माना जाता है। जिन्हें क्रमशः देहली उत्तरी वलन पट्टी तथा देहली दक्षिणी वलन पट्टी के शैलों के रूप में जाना जाता है। देहली उत्तरी वलन पट्टी के अवसादों के दृश्यांश अजमेर के उत्तर व उत्तर पूर्वी राजस्थान में स्थित हैं, जिनका निक्षेपण पुलिन (समुद्री तट) और शेल्फ अवस्था में हुआ। इन्हें रायलो, अलवर व अजबगढ़ समूह में वर्गीकृत किया गया है (तालिका 5.3)।

देहली दक्षिणी वलन पट्टी के दृश्यांश अजमेर के दक्षिण, दक्षिण पश्चिम राजस्थान व उत्तर पूर्वी गुजरात में मिलते हैं। जिन्हें क्रमशः गोगुन्दा समूह, कुम्भलगढ़ समूह, सिरोही समूह, पूनागढ़ और सिन्दरथ समूहों में वर्गीकृत किया गया है। मुख्यतः बालुकामय व मृण्मय संलक्षणी का निक्षेपण 'शेल्फ–मार्जिन' पर हुआ, इसे गोगुन्दा समूह कहते है। 'शेल्फ–अंतस्थ' की मिश्रित कैल्सियमी और मृण्मय संलक्षणी कुम्भलगढ़ समूह कहलाती है। द्रोणिका भराव (Trough filled) के खण्डज अवसादों को सिरोही समूह तथा उत्तरावर्ती द्रोणियों के मोलासे अवसादों को पूनागढ़ और सिन्दरथ समूहों के रूप में जाना गया है।

देहली उत्तरी वलन पट्टी अजमेर–परबतसर से आगे उत्तर में देहली तक तथा इसकी चौडाई पूर्व में बयाना से लेकर पश्चिम में खेतड़ी तक विस्तृत है। इस वलन पट्टी में चार मुख्य उप बेसिन यथा अलवर, बयाना, लालसोट तथा खेतडी बेसिन है। रायलों समूह को हैरन द्वारा पूर्व में, अरावली व देहली महासंघ के मध्य मुख्यतः कैल्सियमी व गौण रूप में क्वार्टजाइट के मिलने वाले अनुक्रम को 'रायलों सीरीज' नाम दिया गया था। इनके दृश्यांश अजमेर, अलवर, उदयपुर व भीलवाड़ा जिलों में मिलना माना गया था। हैरन के अनुसार इनका निक्षेपण आद्यमहाकल्पेत्तर विषमविन्यास (Eparchaean Unconformity) के दौरान हुआ। रायलों समूह का प्ररूप क्षेत्र (Type area) जयपुर, दौसा व अलवर जिलों में है तथा इसका संपूर्ण अनुक्रम मुख्यतः बलदेवगढ़ और टहला के चारों और विकासित है। रायलों समूह को निचले कैल्सियमी डोगेटा शैल समूह तथा ऊपरी बालुकामय अनुक्रम टहला शैल समूह में वर्गीकृत किया गया है।

अलवर समूह अजमेर सेक्टर में श्रीनगर और नौलखा शैल समूह में तथा उत्तर–पूर्वी राजस्थान में राजगढ़, कांकवाड़ी, प्रतापगढ़,

तालिका 5.2: अरावली महासंघ का वर्गीकरण (निम्न प्राग्जीव महाकल्प)

- चम्पानेर समूह (गुजरात में अनावरित)
  - राजगढ़ शैलसमूह
  - शिवराजपुर शैलसमूह
  - जबन शैलसमूह
  - नारुकोट शैलसमूह
  - खांडिया शैलसमूह
  - लांबिया शैलसमूह
- लूनावड़ा समूह
  - कडाना शैलसमूह
  - भुकिया शैलसमूह
  - चन्दनवाड़ा शैलसमूह
  - भवनपुरा शैलसमूह
  - बागीडोरा शैलसमूह
  - कालिनजारा शैलसमूह

संपर्वतनी ग्रेनाइट व नाइस
रखबदेव अतिमैफिक संजाति (सुईट)

- झाड़ोल समूह
  - सामलाजी शैलसमूह
  - गोरान शैलसमूह
- दोवडा समूह
  - देवथारी शैलसमूह
  - देप्ती शैलसमूह
- नाथद्वारा समूह
  - रामा शैलसमूह
  - कदमाल शैलसमूह
- बड़ी लेक समूह
  - खमनोर शैलसमूह
  - वरला शैलसमूह
  - सज्जनगढ़ शैलसमूह
- कांकरोली समूह
  - संगत शैलसमूह
  - पुथोल शैलसमूह
  - राजनगर शैलसमूह
  - मोरचाना शैलसमूह
  - माडरा शैलसमूह
- टीड्डी उप–समूह
  - सराड़ा सेक्टर
    - जावर शैलसमूह
    - बरोईमगरा शैलसमूह
    - मांडली शैलसमूह
- उदयपुर समूह
  - उदयपुर सेक्टर
    - बांसवाड़ा शैलसमूह
    - नीमच माता शैलसमूह
    - बलीचा शैलसमूह
    - एकलिंगगढ़ शैलसमूह
    - सवीना शैलसमूह
- देबारी समूह
  - मटून उपसमूह
    - देबारी सेक्टर
      - झामर कोटड़ा शैलसमूह
      - बेड़वास शैलसमूह
    - जयसमन्द सेक्टर
      - बाबरमल शैलसमूह
      - डाकन कोटड़ा शैलसमूह
    - घाटोल सेक्टर
      - जगपुर शैलसमूह
      - मुकन्दपुरा शैलसमूह
    - सराड़ा सेक्टर
      - कठालिया शैलसमूह
      - सीसामगरा शैलसमूह
  - जयसमन्द शैलसमूह
    - देलवाड़ा शैलसमूह
    - गुड़ली शैलसमूह
  - जयसमन्द शैलसमूह
    - देलवाड़ा शैलसमूह
  - जयसमन्द शैलसमूह
    - देलवाड़ा शैलसमूह
    - गुराली शैलसमूह
  - नथारिया की पाल शैलसमूह
  - –
  - बेसल शैलसमूह

स्त्रोतः भारतीय भूवैज्ञानिक सर्वेक्षण, विविध प्रकाशन, गुप्ता एवं सहयोगी, 1977, संख्या 30 भाग 12, (2001), अंग्रेजी के हिन्दी अनुवादित संस्करण (2011)

तालिका 5.3: दिल्ली महासंघ का वर्गीकरण (निम्न से मध्य प्राग्जीव महाकल्प)

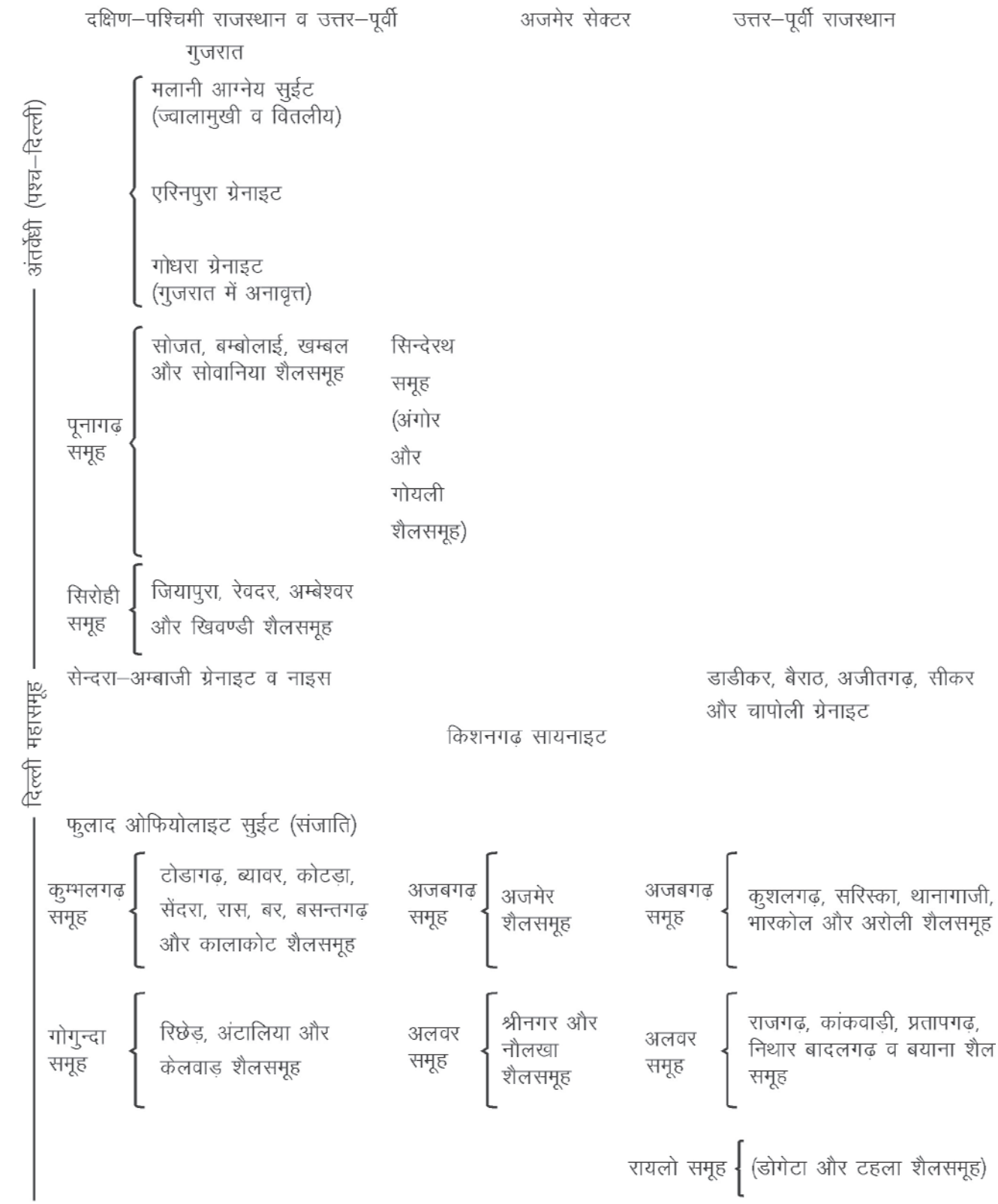

स्त्रोतः भारतीय भूवैज्ञानिक सर्वेक्षण, विविध प्रकाशन, गुप्ता एवं सहयोगी, 1977, संख्या 30 भाग 12, (2001), अंग्रेजी के हिन्दी अनुवादित संस्करण (2011)

निथार, बादलगढ़, व बयाना शैल समूहों में वगीकृत किया गया है। रायलों समूह की शैलों पर विषमविन्यस्त रूप से अनावृत अलवर समूह की मुख्य शैलें कायान्तरित बालुकामय खण्डज व गौण रूप में मृण्मय व कैल्सियमी चट्टानें और अंतरास्तरित अल्प सिलिक ज्वालामुखी शैल है।

अजबगढ़ समूह अजमेर सेक्टर में अजमेर शैल समूह में तथा उत्तर–पूर्वी राजस्थान में कुशलगढ़, सरिस्का, थानागाजी, भारकोल और अरोली शैल समूहों में बांटा गया है। इस संघ में कायान्तरित दृढ़–मृदाश्म (Argilite) अन्तर्विष्ट अरेनाइट (Arenite) के साथ कम मात्रा में कार्बोनेट्स मिलते है। दूसरी अश्मीय इकाईयों के अन्तर्गत कार्बनमय फाइलाइट, अतंस्तरित क्वार्टजाइट, फाइलाइट व शिष्ट अनुक्रम है जिसमें क्लोराइट, गारनेट, स्टोरोलाइट और ऐन्डुलेसाइट है।

गोगुन्दा समूह के अवसाद उत्तर में किशनगढ़ से दक्षिण में रीछेड़ व और आगे दक्षिण में अंटालिया से हिम्मतनगर (गुजरात) तक विस्तृत है। क्वार्टजाइट, माइका–शिष्ट, केल्क–सिलिकेट अवसादों से निर्मित इस समूह को तीन शैल समूहों यथा रिछेड़, अंटालिया तथा केलवाड़ा शैल समूह में बांटा गया है।

कुम्भलगढ़ समूह उत्तर में राजगढ़–पीसांगन से दक्षिण में खेड़बह्मा (गुजरात) तक करीब 290 किलोमीटर लम्बाई में फैला हुआ है तथा मुख्यतः कायान्तरित कैल्सियमी अवसादों से निर्मित है व इसके साथ कुछ मृण्मय तथा बालुकामय अवसाद भी मिलते है। यह समूह टोडागढ, ब्यावर, कोटड़ा, सेंदड़ा, रास, बर, बसंतगढ़ तथा कालाकोट शैल समूहों में बांटा गया है।

सिरोही समूह की शैलों का निक्षेपण मुख्य अरावली पर्वत श्रृंखला के पश्चिम में चन्द्रावती से कोट तक करीब 160 किलोमीटर लम्बे व 30 किलोमीटर चौड़े सिरोही बेसिन में हुआ। इस समूह के मुख्य अवसाद फाइलाइट, माइका–शिष्ट, बायोटाइट शिष्ट है जिनमें क्वार्टजाइट व क्रिस्टलीय लाइमस्टोन (मार्बल) भी मिलते हैं। सिरोही समूह को जियापुरा, रेवदर, अम्बेश्वर तथा खिवन्डी शैल समूहों में बांटा गया है। इस समूह की चट्टानों के दृश्यांश (Outcrops) सिरोही–रेवदर, सिरोही–पिंडवाड़ा, रेवदर–आबूरोड़ सड़कों पर दिखाई पड़ते है।

पूनागढ़ समूह की चट्टानें पाली जिले में उत्तर में धांगरवास से दक्षिण में भुमान्द्रा तक तथा पूर्व में पूनागढ़ से पश्चिम में भागासर तक फैली हुई है तथा ये एरिनपुरा ग्रेनाइट व नाइसेज से घिरी हुई है। कुम्भलगढ़ व सिरोही समूह के अवसादों के ऊपर निक्षेपित इस समूह में मुख्य मृण्मय व समकालिक लावा की चट्टानों में स्लेट, माइका–शिष्ट, क्वार्टजाइट, शिरोधान लावा (Pillow Lava) कायान्तरित टफ व पट्टित चर्ट मिलती है जो निम्नकोटि के क्षेत्रीय कायान्तरण व एक बार विरूपण से प्रभावित है। पूनागढ़ समूह को चार शैल समूहों यथा सोजत, बम्बोलाई, खम्बल व सोवानिया शैल समूह में बांटा गया है।

सिन्दरेथ समूह की चट्टानें सिरोही समूह के बाद निक्षेपित हुई तथा सिरोही जिले के उत्तर में पालड़ी से दक्षिण में मीरपुर तक और पूर्व में गोयली से पश्चिम में अणगौर तक करीब 20 किलोमीटर लम्बे क्षेत्र में फैली हुई है तथा चारों ओर से ग्रेनाइट व ग्रेनाइट–नाइसेज से घिरी हुई है। इस समूह की चट्टानें निम्नकोटि के क्षेत्रीय कायान्तरण व एक बार के विरूपण से प्रभावित है। संगुटिकाश्म, ग्रिट, क्वार्टजाइट, माइकायुक्त क्वार्टजाइट, शेल (Shale), फाइलाइट व समकालिक मेटा बेसिक लावा चट्टानों से यह समूह निर्मित है तथा इसे अंगोर एवं गोयली शैल समूहों में बांटा गया है। देहली महासंघ का वर्गीकरण तालिका 5.3 में दर्शाया गया है।

भीलवाड़ा, अरावली व देहली महासंघों में अवसादी निक्षेपण के साथ साथ विभिन्न समयावधि में आग्नेय चट्टानों का अन्तर्वेधन व बाह्यर्वेधन (मैग्मीभवन) हुआ। भीलवाड़ा भूवैज्ञानिक चक्र के दौरान की उंटाला व गिंगला ग्रेनाइट–300 करोड़ वर्ष पूर्व, बेराच ग्रेनाइट–258 करोड़ वर्ष पूर्व की चट्टानें हैं। अरावली भूवैज्ञानिक चक्र के दौरान की देलवाड़ा बर्हिवेधी, ऋषभदेव अल्ट्रा मेफिक सूट के अन्तर्वेधन तथा उदयपुर, उदयसागर, सलुम्बर, दरवल ग्रेनाइट्स अन्तर्वेधन के रूप में हुआ। देहली भूवैज्ञानिक चक्र के दौरान फुलाद ऑफियोलाइट संजाति की चट्टानें, किशनगढ़ में नेफिलिन साइनाइट (150 करोड़ वर्ष पूर्व), अलवर जिले में डाडीकर ग्रेनाइट, बैराठ ग्रेनाइट तथा हरसोरा ग्रेनाइट (150 से 170 करोड़ वर्ष पूर्व), उदयपुरवाटी ग्रेनाइट (190 करोड़ वर्ष पूर्व), बालदा ग्रेनाइट, सीकर जिले में सलादीपुरा के निकट सीओली (गोवारिया ग्रेनाइट) ग्रेनाइट (155 करोड़ वर्ष पूर्व), सेंदड़ा–अम्बाजी ग्रेनाइट (85 करोड़ वर्ष पूर्व), अन्नासागर (अजमेर) ग्रेनाइट (160 करोड़ वर्ष पूर्व), एरिनपुरा ग्रेनाइट व नाइस (83 करोड़ वर्ष पूर्व), माउंट आबू ग्रेनाइट (75 करोड़ वर्ष पूर्व) तथा नेवानिया कार्बोनेटाइट (उदयपुर) (95 करोड़ वर्ष पूर्व) निर्मित हुई।

विन्ध्यन महासंघ (Vindhyan Supergroup)

ओल्डहाम द्वारा नर्मदा घाटी के उत्तर में मालवा, मध्य भारत व बुन्देलखंड क्षेत्र में पठार के रूप में विस्तृत बिहार, मध्यप्रदेश व राजस्थान के करीब 104000 वर्ग किलोमीटर क्षेत्र में फैले 4200 मीटर मोटाई के अवसादों यथा बालूकाश्म (Sandstone), शेल (Shale) तथा चूनापत्थर (Limestone) का नामकरण ''विंध्याचल पर्वत'' से लेते हुए ''विन्ध्यन समूह'' रखा गया। इसे वर्तमान में विन्ध्यन महासंघ के रूप में वर्गीकृत किया जाता है। राजस्थान में विन्ध्यन महासंघ की चट्टानें धोलपुर, करोली, कोटा, बारां, झालावाड़, भरतपुर, सवाईमाधोपुर, चितौड़गढ़, बूंदी व भीलवाड़ा

जिलों में करीब 26000 वर्ग किलोमीटर क्षेत्र में फैली हुई है तथा इनकी मोटाई 3200 मीटर तक हैं। विन्ध्यन महासंघ को निम्न व ऊपरी विन्ध्यन संघों में बांटा गया है। निम्न विन्ध्यन के अवसाद चितौड़गढ जिले के निम्बाहेड़ा, बिनोता में तथा करोली जिले में मिलते है। विन्ध्यन अवसादन (Sedimentation) राजस्थान में दो अलग–अलग उप द्रोणियों में हुआ। दक्षिण पश्चिम में चितौड़गढ–झालावाड़ उपद्रोणी में निम्न विन्ध्यन स्तरिकी में सतौला, सैंड, लसड़ावन और खोरिप समूह वर्गीकृत किये गये है तथा उत्तर पूर्व में सपोटरा–करोली उपद्रोणी में निम्न विन्ध्यन अनुक्रम में आधारी संगुटिकाश्म (Basal Conglomerate), तिरोहन लाइमस्टोन व संकोणाश्म (Breccia) के अवसाद मिलते है। ये दोनो उप द्रोणियां अवसादों के एक आवरण से ढकी हुई है, बूंदी के निकट एक मध्यवर्ती उच्च भूमि द्वारा पृथक हुई थी इसे 'बूंदी उच्च' (Bundi High) कहते है, जहां निम्न विन्ध्यन के अवसाद अनुपस्थित हैं। विन्ध्यन महासंघ के अवसादों का विवरण निम्नानुसार है –

निम्न विन्ध्यन (Lower Vindhyan) : सतौला समूह के अवसाद भीलवाड़ा महासंघ तथा बेराच ग्रेनाइट के ऊपर विषमविन्यस्त रूप में चितौड़गढ़ के पश्चिम से लेकर दक्षिण पूर्व में साईखेड़ी तक जमा हुए है। इस समूह को तीन शैल समूहों – (1) खैरमालिया एण्डेसाइट, (2) खर देवला बालूकाश्म व (3) भगवानपुरा चूनापत्थर में विभक्त किया गया है। भगवानपुरा चूनापत्थर मुख्यतः डोलोमीटिक है।

सैंड समूह के अवसाद मुख्यतः बालूकामय (Arenaceous) तथा कम मात्रा में मृण्मय (Argillaceous) है व इनकी मोटाई 205 मीटर है। इस समूह को सावा बालूकाश्म व पालड़ी शैल में विभक्त किया गया है।

लसड़ावन समूह के अवसाद बालूकाश्म व शैल से निर्मित है तथा इसे दो शैल समूहों– कलमिया बालूकाश्म व बिनौता शैल में बांटा गया है।

खोरिप समूह – बिनौता शैल के ऊपर स्थित खोरिप समूह को जीरान बालूकाश्म, बारी (निम्बाहेड़ा) शैल, निम्बाहेड़ा चूनापत्थर तथा सुकेत शैल में विभक्त किया गया है। इस समूह में जीरान बालूकाश्म के साथ आधार में खोरीमलान संगुटिकाश्म मिलते है। निम्बाहेडा चूनापत्थर सीमेंट श्रेणी का है।

ऊपरी विन्ध्यन (Upper Vindhyan) : कैमूर समूह की शैलें चितौड़गढ़, झालरापाटन, बिसुन्दरी, रातया खेडी तथा बूंदी जिले में मिलती है। इस समूह में चितौड़गढ़ बालूकाश्म शैल समूह व अकोदा महादेव बालूकाश्म शैल समूह सम्मिलित है। इस समूह का अवसाद मुख्यतः बालूकामयी है।

रीवा समूह की अवसाद मृण्मय व बालूकामयी शैलों से निर्मित है तथा इस समूह मे पन्ना शेल, इन्द्रगढ़ बालूकाश्म, झीरी शेल, तारागढ बालूकाश्म शैल समूहों को सम्मिलित किया गया है।

भाण्डेर समूह को निम्न भाण्डेर व ऊपरी भाण्डेर में विभक्त किया गया है। निम्न भाण्डेर के अवसाद चितौड़गढ़–झालावाड़ उपद्रोणी, सपोदरा–करोली उपद्रोणी तथा बूंदी उच्च भूमि में मिलते है। निम्न भाण्डेर को गनूरगढ शेल, लाखेरी चूनापत्थर, समरिया शेल, बून्दी पहाड़ी बालूकाश्म तथा सिरबू शेल शैल समूहों में वर्गीकृत किया गया है। ऊपरी भाण्डेर के अवसाद को मेहर बालूकाश्म, बलवान चूनापत्थर तथा धौलपुर शेल शैल समूहों में वर्गीकृत किया गया है, ये बूंदी उच्च भूमि (बूंदी डूंगरगढ़ उपद्रोणी) में मिलते है। राजस्थान में विन्ध्यन महासंघ का वर्गीकरण तालिका 5.4 में दर्शाया गया है।

मलानी आग्नेय संजाति (Malani Igneous Suite)

मलानी आग्नेय संजाति के ऊपरी प्राग्जीवी (Uppper Proterozoic) महाकल्प की वितलीय व ज्वालामुखीय चट्टानें पश्चिम राजस्थान के जैसलमेर, जोधपुर, बाड़मेर, चूरू, पाली, सिरोही व जालोर जिलों में मिलती है तथा करीब 51000 वर्ग किलोमीटर क्षेत्रफल में फैली हुई है। एन्डेसाइट, रायोलाइट, ट्रेकाइट, डेकाइट, वेल्डेड–टुफ, इग्निम्ब्राइट, ज्वालामुखीय–संकोणाश्म व संगुटिकाश्म इत्यादि प्रमुख शैल है। जालोर ग्रेनाइट व सिवाना ग्रेनाइट अन्तर्वेधित शैल है। मलानी की आयु 75 करोड़ वर्ष आंकी गई है।

मारवाड़ महासंघ (Marwar Supergroup)

अरावली पर्वत श्रृंखला के उत्तर पश्चिमी पार्श्व में विन्ध्यन के समकालीन पूर्व में ''अरावली–पार विन्ध्यन'' (Trans Aravalli Vindhyan) नाम से पहचानी जाने वाली चट्टानों के समूह को वर्तमान में ''मारवाड़ महासंघ'' के नाम से वर्गीकृत किया जाता है। इन्हें ऊपरी भाण्डेर (विन्ध्यन महासंघ) समूह के साथ सहसम्बन्धित माना जाता है। मारवाड़ महासंघ की चट्टानें पश्चिमी राजस्थान में जोधपुर, नागौर व बीकानेर जिलों में फैली हुई है जिनमें बालुकाश्म व चूनापत्थर मुख्य शैल है, यह जमाव नागौर बेसिन व बिरमानिया बेसिन में हुए।

नागौर बेसिन (द्रोणी) दक्षिण में जोधपुर, उत्तर–पश्चिम में पोकरण, दक्षिण–पूर्व व पूर्व में अरावली पर्वत श्रृंखला के सहारे सोजत, बिलाड़ा होते हुए उत्तर पूर्व में मेड़ता रोड़ तक फैला हुआ था। करीब 800 से 1000 मीटर मोटाई के मारवाड़ महासंघ के निक्षेपों को जोधपुर, बिलाड़ा तथा नागौर समूह में वर्गीकृत किया गया है।

तालिका 5.4: राजस्थान के विन्ध्यन महासंघ के अंतः द्रोणीय सहसम्बन्ध

		चित्तौड़–झालावाड़ उप द्रोणी (प्रसाद, 1981)	बूंदी–डूंगरगढ़ उप द्रोणी (प्रसाद, 1981)	सपोतरा–करौली उप द्रोणी (बनर्जी और सिंह, 1981)
उपरि विन्ध्यन	भाण्डेर समूह	–	धौलपुर शैल	
		–	बलवान लाइमस्टोन	–
		–	मैहर सैंडस्टोन	–
		सिरबू शैल	सिरबू शैल	ऊपरी भाण्डेर सैंडस्टोन
		बूंदी हिल सैंडस्टोन	बूंदी हिल सैंडस्टोन	सिरबू शैल
		समरिया शैल	समरिया शैल	निम्न भाण्डेर सैंडस्टोन
		लाखेरी लाइमस्टोन	लखेरी लाइमस्टोन	समरिया शैल
		गनूरगढ़ शैल	गनूरगढ़ शैल	–
				गनूरगढ़ शैल
	रीवा समूह	तारागढ़ फोर्ट सैंडस्टोन	तारागढ़ फोर्ट सैंडस्टोन	ऊपरी रीवा सैंडस्टोन
		झीरी शैल	झीरी शैल	झीरी शैल
		इंदरगढ़ सैंडस्टोन	इंदरगढ़ सैंडस्टोन	निम्नतर रीवा सैंडस्टोन
		पन्ना शैल	पन्ना शैल	पन्ना शैल
	कैमूर समूह	–	अकोदा महादेव सैंडस्टोन	
		–	बदनपुर कांग्लोमरेट	
		चित्तौड़फोर्ट सैंडस्टोन	(सपोटरा–करौली क्षेत्र में लागू)	
			(बेसमेन्ट शिलाएं)	
निम्न विन्ध्यन	खोड़िप समूह	सुकेत शैल		
		निम्बाहेड़ा लाइमस्टोन		
		बारी शैल		
		जीरान सैंडस्टोन (खोरी मलान)		
		कांग्लोमरेट		
		मेम्बर–आधार में)		
	लसड़ावन समूह	बिनौता शैल	–	–
		कलमिया सैंडस्टोन	–	–
	सैंड समूह	पालड़ी शैल पोर्सिलेनाइट सहित	–	तिरोहन ब्रेक्सिया पोर्सिलेनाइट
		सावा सैंडस्टोन	–	सहित
	सतौला समूह	भगवानपुरा लाइमस्टोन	–	तिरोहन लाइमस्टोन
		खर देवला सैंडस्टोन	–	आधारी कांग्लोमरेट
		खैरमालिया ऐन्डेसाइट	–	ग्लुकोनाइटिक सैंडस्टोन व शैल सहित
		अरावली–पूर्व कायांतरित शिलाएं और बेराच ग्रेनाइट		अरावली पूर्व कायांतरित शिलाएं
		विषमविन्यास		
		पूर्व–अरावली मेटार्मोफाइट्स और बेराच ग्रेनाइट		पूर्व–अरावली मेटार्मोफाइट्स

स्रोत : भारतीय भूवैज्ञानिक सर्वेक्षण, विविध प्रकाशन, संख्या 30 भाग 12–अंग्रेजी संस्करण (2001) के हिन्दी अनुवादित संस्करण (2011)

जोधपुर समूह की मुख्य शैल बालूकाश्म (Sandstone) व शैल (Shale) है तथा जोधपुर, बीकानेर व नागौर जिलों में फैली हुई है। इसके अन्तर्गत पोकरण बोल्डर संस्तर, सोनिया शेल–बालूकाश्म, गिरभाकर बालूकाश्म शैल समूहों में बांटा गया है। बालूकाश्म का उपयोग भवन निर्माण में किया जाता है।

बिलाड़ा समूह की मुख्य शैल चूनापत्थर (Limestone) है जो उच्चकोटि का होने के कारण सफेद सीमेंट, स्टील प्लांट व हाइड्रेटेड लाइम निर्माण में उपयोग में होता है। बिलाड़ा संघ की शैल जोधपुर, पाली, नागौर जिलों में मिलती है। चूनापत्थर के साथ डोलोमाइट व चर्ट भी मिलती है। गोटन, सोजत, बिलाड़ा, खींवसर, बोरूंदा, क्षेत्रों में चूनापत्थर निक्षेपों का खनन होता है। बिलाड़ा समूह को धनप्पा, गोटन व पुन्डलू शैल समूहों में बांटा गया है।

नागौर समूह नागौर, जोधपुर व बीकानेर जिलों में विस्तृत है तथा बालुकाश्म (Sandstone) व जिप्सम युक्त सिल्टस्टोन (Siltstone) मुख्य शैल है। नागौर समूह की चट्टानों के साथ हेलाइट व जिप्सम की पर्ते मिलती है। नागौर समूह को नागौर व टुंकलिया शैल समूहों में बांटा गया है।

बिरमानिया बेसिन (द्रोणी) में मारवाड़ महासंघ के अवसाद मलानी आग्नेय संजाति की चट्टानों के ऊपर अवस्थित है तथा नागौर बेसिन के दक्षिण पश्चिम में पोकरण से 125 किलोमीटर दूर 100 वर्ग किलोमीटर क्षेत्र में फैले हुए है। इन अवसादों में मुख्य बालूकाश्म व डोलामाइट मिलते है। बिरमानिया बेसिन में मारवाड़ महासंघ के अवसादों को रंधा शैल समूह तथा बिरमानिया शैल समूह में बांटा गया है। इनमें क्रमशः बालूकाश्म तथा डोलामाइट प्रमुख शैल है। इन्हें क्रमशः जोधपुर तथा बिलाड़ा समूह के समकक्ष माना गया है। मारवाड़ महासंघ का वर्गीकरण तालिका 5.5 में दर्शाया गया है।

पुराजीवी महाकल्प (पेलियोजोइक)

पेलियोजोइक महाकल्प का प्रारंभ कैम्ब्रियन पूर्व (प्री–कैम्ब्रियन) महाकल्प की शैलों में निर्मित संकरी भू–अभिनतियों, द्रोणियों (Narrow basin) में अपक्षय, अपरदन द्वारा निक्षेपण होने से पेलियोजोइक शैलों का निर्माण हुआ।

पेलियोजोइक महाकल्प का प्रारंभ लगभग 55 करोड़ वर्ष पूर्व हुआ था तथा अंत लगभग 24.8 करोड़ वर्ष पूर्व माना जाता है। इसे क्रमशः कैम्ब्रियन, आर्डोविशन, सिल्यूरियन, डिवोनियन, कार्बोनीफेरस और पर्मियन कल्पों में विभाजित किया गया है। कैम्ब्रियन से मध्य कार्बोनिफेरस तक का भाग निचला पेलियोजोइक और मध्य कार्बोनीफेरस से पर्मियन तक का काल ऊपरी पेलियोजोइक कहलाते हैं।

कैम्ब्रियन और निचले आर्डोविशन कल्प में समुद्र तलों के अवतलन के कारण अवसादों के मोटे अनुक्रम निक्षेपित हुए थे किन्तु आर्डोविशन कल्प के उत्तरार्ध में और सिल्यूरियन कल्प में यह प्रवृति पलटने के कारण पूरे विश्व में समुद्री प्रतिक्रमण पाया जाता है। इसी समय अनेक पर्वतमालाओं की उत्पत्ति हुई। पर्वतन क्रिया (Orogeny) का यह काल केलेडोनियन पर्वतन के नाम से जाना जाता है। डिवोनियन के प्रारंभ से ही इन पर्वत श्रेणियों के तीव्र अपरदन के कारण मोटे महाद्वीपीय निक्षेपों का निर्माण हुआ (उदाहरण : रेड सेन्डस्टोन)। डिवोनियन कल्प के समुद्री अवसादों में उथली समुद्री द्रोणियों के लक्षण पाये जाते हैं। ये द्रोणियाँ कार्बोनीफेरस कल्प में अपेक्षाकृत गहरी हो गयी थी। पेलियोजोइक के अंत में हरसेनियन/वेरिस्कन पर्वतन क्रिया हुई थी। भारतवर्ष में इन पर्वतन क्रियाओं के समकक्ष प्रमाण उपलब्ध नहीं है किन्तु इसी समय में गोण्डवाना महाखण्ड में खण्ड भ्रंशों द्वारा गोण्डवाना द्रोणियाँ की उत्पत्ति हुई थी।

पूरा चुम्बकत्व (Paleomagmatism) और पुराजलवायु (Paleoenvironment) के आधार पर यह माना जाता है कि पेलियोजोइक महाकल्प में भारतवर्ष का प्रायद्वीपीय भाग गोण्डवाना लेंड नामक वृहत महाद्वीप (Supercontinent) का एक भाग था।

प्रारंभिक पेलियोजोइक महाकल्प में पाये जाने वाले सभी प्राणी और वनस्पतियों मूलतः समुद्र में पाये जाते थे। प्राणियों में अकशेरूकी वर्ग की प्रधानता थी इस समय के केवल कुछ आद्य कशेरूकी ही ज्ञात है। स्थल पर निवास करने/भ्रमण करने वाले प्राणी और वनस्पतियों का उद्भव सिल्यूरियन कल्प के अंत में हुआ था।

निचले पेलियोजोइक में ट्राइलोबाइटा, ग्रेप्टोलाइट तथा ब्रेकियोपोडा जीव समूहों की प्रधानता थी। इनमें से ट्राइलोबाइट और ग्रेप्टोलाइट महाकल्प के अंत में विलुप्त हो गये जबकि ब्रेकियोपोडा बाद के समय में गौण स्थिति में आ गया था। अन्य जीव समूहों का प्रादुर्भाव भी इस समय हो गया था और उनमें से अधिकांश समूहों के प्राणियों के पेलियोजोइक में पाये जाने वाले वंश बाद के वंशों से भिन्न है। भारतवर्ष में पेलियोजोइक महाकल्प की शैलें पश्चिमी राजस्थान में मुख्य रूप से केवल पर्मियन काल की भधुरा क्षेत्र में पाई जाती है। इसके अतिरिक्त कश्मीर एवं स्पिटी क्षेत्र में सम्पूर्ण पेलियोजोइक काल की शैलें पाई जाती है, जिनका संक्षिप्त विवरण निम्न प्रकार है।

स्पिटी

स्पिटी–घाटी में कांगरा जिले के उत्तर–पूर्वी भाग में मध्य हिमालय अक्ष की रवेदार चट्टानों से संलग्न पेलियोजोइक तथा मीसोजोइक कल्प की चट्टानें पायी जाती हैं।

तालिका 5.5: मारवाड़ महासंघ की अश्म स्तरिकी (ऊपरी प्राग्जैविक)

नागौर समूह (75 – > 500 मीटर)	टुंकलिया शैलसमूह	बलुआ पत्थर, शितकणी (ग्रिटी) एवं गुटिकामय बलुआ पत्थर, मलानी ग्रेनाइट, रायोलाइट, बिलाड़ा चर्ट, डोलोमाइट एवं दिल्ली क्वार्टजाइट की गुटिकाएं युक्त, विशेषकर गुडरली के निकट
	नागौर शैलसमूह	हरित मृत्तिका धब्बों सहित ईंटनुमा लाल बलुआ पत्थर, प्रांशप्रस्तर, शैल, वाष्पजन किक बैक अनुक्रम, लगभग 500 मी. मोटाई, आधार में स्थानिक रूप में कांग्लोमरेट विकसित
बिलाड़ा समूह (100 से 300 मीटर)	पुन्डलू शैलसमूह	डोलोमाइट, डोलोमाइटी लाइमस्टोन, चर्टी डोलोमाइट, स्ट्रोमेटोलाइट लाइमस्टोन एवं डोलोमाइट; सिलिकामय ऊलाइट (अंडुक) एवं पिसोलाइट
	गोटन शैलसमूह	चर्ट एवं डोलोमाइट के पट्टों सहित लाइमस्टोन
	धनप्पा शैलसमूह	स्ट्रोमेटोलाइटी लाइमस्टोन, डोलोमाइट, डोलामाइटी लाइमस्टोन, चर्ट एवं चर्टी डोलोमाइट
जोधपुर समूह (125–240 मीटर)	गिरभाकर शैलसमूह	ईंटनुमा लाल प्रांशुप्रस्तर (सिल्टस्टोन), शैल एवं बलुआ पत्थर, क्रास–संस्तरित, पैलेट के साथ पिसोलिटिक
	सोनिया शैलसमूह	मैरून प्रांशुप्रस्तर एवं शैल; क्रीमिश बलुआ पत्थर–प्रचूर अवसादी संरचनाओं एवं पिसोलाइट के साथ; लवण–कूटरूपी शैल; पट्टित चर्ट–जैस्पर डोलोमाइट; ए से जी तक मानचित्रण योग्य इकाईयों में विभाजित
	..... विषमविन्यास	
	पोकरण बोल्डर संस्तर	दक्षिण–पश्चिम परिधि के साथ–साथ विकसित संस्तर मलानी ग्रेनाइट, रायोलाइट के – मैरून/लाल रेणुमय सिल्ट/मृत्तिका मैट्रिक्स (आधात्री में) गुटिकाएं, उपलिकाओं, गोलाश्मों एवं विस्थापित गोलाश्मों से बने हैं।
	..... विषमविन्यास	
	बेसमेन्ट (आधारी) शिलाएं	

स्त्रोत : पारीक, 1984, भारतीय भूवैज्ञानिक सर्वेक्षण, विविध प्रकाशन, संख्या 30 भाग 12–अंग्रेजी संस्करण (2001) के हिन्दी अनुवादित संस्करण (2011)

इस क्षेत्र में स्तर क्रम इस प्रकार है :–

पर्मियन समूह	प्रोडक्ट्स शैल	कुलिंग संघ
कार्बोनीफेरस समूह	पो समूह	
	लिपाक समूह	कनवर संघ
डिवोनियन समूह	मुथ क्वार्टजाइट	मुथ समुदाय
सिल्यूरियन एवं ऑडोविशन समूह	चूने के पत्थर एवं क्वार्टजाइट तथा स्लेट	
ऑडोविशन समूह	थांगो समुदाय एवं टाक्चे समुदाय	
कैम्ब्रियन समूह	हेमन्ता तथा पराहिओ संघ	

कैम्ब्रियन समूह की चट्टानों को इस क्षेत्र में हेमन्ता संघ के नाम से जाना जाता है जो वैक्रिता समूह की अत्यधिक परिवर्तित शिस्ट पर स्थित है तथा इसमें काफी अधिक मोटाई के गहरे लाल तथा काले क्वार्ट्जाइट, स्लेट डोलोमाइट तथा शैल पाये जाते हैं। यह समूह तीन भागों में विभक्त किया जा सकता है।

ऊपरी–भाग – भूरे तथा हरे अभ्रक युक्त क्वार्ट्जाइट, स्लेट, शैल एवं डोलोमाइट

मध्य भाग – लाल एवं गहरे रंगों की शैल

निचला भाग – गहरे रंग की स्लेट एवं क्वार्ट्जाइट (वलित)

केवल ऊपरी भाग में ही जीवाश्म पाये जाते हैं। जीवाश्मों में *एगनास्टस, माइक्रोडिस्कस, रेडलीकिया, टायकोपेरिया, ओलेनस, लिंगुलेला, एक्रोथील, हाइआलिथीज* आदि प्रमुख हैं।

स्पिटी में हेमन्ता संघ के ऊपर क्वार्ट्जाइट तथा सिलिका युक्त शैल पाई जाती है। यह नीचे की ओर संगुटिकाश्म के समान हो जाती है। ऊपरी भाग में शैल तथा चूने के पत्थर तथा डोलोमाइट के स्तर पाये जाते हैं। निचला भाग जीवाश्म–हीन है, किन्तु मध्य तथा ऊपरी भाग में जीवाश्म प्रचुरता से पाये जाते हैं। प्रमुख जीवाश्म निम्नलिखित हैं :–

ट्राइलोबाइटा	*एसेफस, इलीनस, केलीमीन, कीरूरस, ब्रांटियस*।
ब्रेकियोपोडा	*आरथिस, स्ट्रोफोमीना, लेप्टीना, आट्राइपा, डालमेनेला, रेफिनिस्क्विना*।
गैस्ट्रोपोडा	*बेलेरोफोन*।
सीफेलोपोडा	*आरथोसिरेस, गोनियोसिरेस*
एक्टिनोजोआ	*टेण्टाकुलाइटिस, हेलिओलाइथिस*।

स्पिटी क्षेत्र में आर्डोविशन समूह की चट्टानों पर सिल्यूरियन समूह के चूने के पत्थर तथा डोलोमाइट मिलते हैं, जिनमें निम्नलिखित जीवाश्म पाये जाते हैं :–

ट्राइलोबाइटा	*एनक्राइनस, केलीमीन*
ब्रैंकियोपोडा	*आरथिस, डालमेनेला, लेप्टीना, पैंटामेरस, स्ट्राफोमेना*
ग्रैस्टोपोडा	*इओम्फेलस, बैलेरोफोन*

स्पिटी कुमाउँ में सिल्यूरियन चट्टानों पर सफेद तथा कठोर क्वार्ट्जाइट स्थित हैं, जो करीब 800 से 1000 मीटर मोटे हैं। यह मुथ समूह (मुथ क्वार्ट्जाइट) कहलाता है। इसका निचला और ऊपरी भाग जीवाश्महीन किन्तु मध्य भाग जीवाश्म युक्त है।

स्पिटी में मुथ क्वार्टजाइट के ऊपर कार्बोनीफेरस समूह के 1200 मीटर मोटे चूना पत्थर, शैल, शैल तथा बलुआ पत्थर (क्वार्टजाइटी) पाये जाते हैं। ये कनवर संघ कहलाते हैं। इसे दो भागों में वर्गीकृत किया गया है– निचला भाग लिपाक समूह तथा ऊपरी भाग पो समूह कहलाता है।

लिपाक समूह में चूना पत्थर, डोलोमाइट तथा शैल प्रमुख शैल है। बीच के भाग में बलुआ पत्थर के संस्तर भी पाये जाते हैं। इसमें पाये जाने वाले प्रमुख जीवाश्म इस प्रकार हैं :–

प्रोडकट्स, रेटिकुलेरिया, अथायरिस, सिंरिगोथायरिस, निओस्पीरिफर, कोनेट, स्ट्राफेमेना, फिलिप्सिया, कानुलेरिया, टेंटाकुलाइटिस। लिपाक समूह के निचले भाग में *सिरिंगोथायरिस* और *टेंटाकुलाइटिस* तथा ऊपरी भाग में *फिलिप्सिया* की उपस्थिति के आधार पर इसकी आयु डिवोनियन के अंतिम भाग से निचले कार्बोनीफेरस मानी गई है।

पो समूह में सफेद से धूसर मध्यम कणी बलुआ पत्थर, सिल्टस्टोन, धूसर काली या हल्की हरी शैल पाई जाती है। इसके निचले भाग में *रेकाप्टेरिस* और *स्फीनोफाइलम* आदि पादपाश्म पाये जाते हैं निचले भाग को थाबो समुदाय का नाम दिया गया है। ऊपरी भाग में समुद्री जीवाश्म पाये जाते हैं इसे फेनेस्टेला शैल कहा जाता है। इसमें प्राप्त होने वाले जीवाश्मों में ब्रायोजोआ– *फेनेस्टेला*, ब्रेकियोपोडा– *प्रोडकट्स, डाइलेरमा, स्पिरिफर, रेटीकुलेरिया*, सीफेलोपोडा– *आर्थोसिरैस, नाटिलस* आदि है।

कश्मीर

कैम्ब्रियन : कश्मीर में डोगरा स्लेट के ऊपर बारामूला जिले में कैम्ब्रियन समूह अत्यधिक विदलित तथा शल्कित शैल, नीली मिट्टी, क्वार्टजाइट, बालूकामय शैल और मसूराकार, चूने के पत्थर पाये जाते हैं, जिनमें कृमियों के पथ चिह्न तथा बिल पाये जाते हैं। इनमें पाये जाने वाले प्रमुख जीवाश्म इस प्रकार हैं :–

ट्राइलोबाइटा	*रेडलिकिया, एगनोस्टस, माइक्रोडिस्कस, कोनोकारफी, टायकोपेरिया*।
ब्रैकियोपोडा	*ओबोलस, लिंगुलेला, एक्रोथील*
गेस्ट्रोपोडा	*हाइआलिथीज*

ऊपरी आर्डोविशियन : कश्मीर में अनन्तनाग क्षेत्र में ऊपरी आर्डोविशियन जीवाश्म युक्त शैल के गौरान संस्तर पाये जाते हैं। इस संस्तर में ग्रेप्टोलाइट के *डाइकिमोग्रेप्टस, ग्लोसोग्रेप्टस* व ट्राइलोबाइट वर्ग का *फ्लेजीकेलिमिन* जीवाश्म पाये जाते हैं।

सिलुरियन : सिलुरियन शैल ऊपरी सिलुरियन की हरपतनार संस्तर में व उच्च ऊपरी सिलुरियन में नौबाग संस्तर पाये जाते हैं। सिलुरियन शैल में पाये जाने वाले जीवाश्म निम्न हैं :–

सिलुरियन शैल ऊपरी सिलुरियन की हरपतनार संस्तर जिसमें मडस्टोन व शैल पायी जाती है। यहाँ मिलने वाले जीवाश्म निम्न हैं :–

सिफेलोपोडा	–	*ऑर्थोसिरास*
ग्रेप्टोलाइट	–	*मोनोग्रेप्टस*
ब्रेक्रियोपोडा	–	*ऑरथिस, लेप्टिना, रेफिनेसक्विना, ऐट्रिपा, लिगुंला*
ट्राइलोबाइटा	–	*केलिमिन, डालमानाइट्स, फेकोप्स*
प्रवाल	–	*फेवोसाइटस, स्टीरियोलाज्मा*

उच्च ऊपरी सिलुरियन में नौबाग संस्तर स्थित है, जो कि जीवाश्मयुक्त शैल केल्केरियस बालुकाश्म तथा सिल्टी सेण्डस्टोन से युक्त है। यहाँ कोनोडोन्ट वर्ग के *पोलिगनेथस, ब्राइऐन्टोडस* जीवाश्म मिलते हैं।

डिवोनियन : मुथ क्वार्टजाइट : मध्य–ऊपरी डिवोनियन शैल मुथ क्वार्टजाइट संस्तर में पायी जाती है। मध्य डिवोनियन में प्रवाल–*कैल्सियोला* व अन्य जीवाश्म पाये जाते है। जबकि उच्च मुथ क्वार्टजाइट में जीवाश्म नहीं पाये जाते हैं।

डिवोनियन शैल में पाये जाने वाले जीवाश्म निम्न हैं :–

प्रवाल	–	*सियाथोफिलम, स्टिरियोप्लाज्मा, जेफरेन्टीस*
ब्रोयोजोआ	–	*पोलीफेरा*
ट्राइलोबाइटा	–	*फेकोप्स*
ब्रेकियोपोडा	–	*एथाइरिस, स्पिरिफर, रिन्कोनेला, एट्रिपा*

कार्बोनीफेरस : निम्न कार्बोनीफेरस में *सिरिंगोथाईरिस* संस्तर (ब्रेक्रियोपोडा) चूने पत्थर का बना हुआ है, इनमें मुख्य जीवाश्म *एथाईरिस, रिन्कोनेला, डर्बिया, प्रोडक्ट्स* तथा प्रवाल : *केनीनोफिलम, लोफोफिलम* एवं *केनिनिया* प्रमुख हैं।

मध्य कार्बोनीफेरस में फेनेस्टेला शैल संस्तर पाये जाते हैं। इनकी मोटाई 600 मीटर होती है। यहाँ एकान्तर क्रम में जीवाश्मयुक्त शैल व अजीवाश्मिक क्वार्टजाइट के साथ वृहद गुटिकाश्म के संस्तर मिलते हैं। यहाँ मिलने वाले मुख्य जीवाश्म ब्राओजोआ वर्ग का *फेनेस्टेला* वंश है। इसके अतिरिक्त यहाँ अन्य जीवाश्म भी पाये जाते हैं जो निम्न हैं :–

ब्रेकियोपोडा	–	*प्रोडकट्स, स्पिरिफर, डर्बिया*
बाइवाल्व	–	*मोडियोला, एविक्युलोपेक्टेन*
ट्राइलोबाइट	–	*फिलिप्सिया*

ऊपरी कार्बोनिफेरस को मुख्य दो भागों में विभक्त किया है, क्रमशः एगलोमेरेटिक तथा ऊपरी पंजाल ट्रेप जिन्हें संयुक्त रूप से पंजाल वोल्केनिक श्रृंखला कहा जाता है।

एगलोमेरेटिक स्लेट : इस भाग में स्लेट, सेण्डस्टोन, क्वार्टजाइट व गुटिकाश्म मिलते हैं।

पंजाल ट्रेप : यह भाग एन्डेसेटिक व बेसाल्टिक लावा प्रवाह से बना हुआ है।

पर्मियन : पर्मियन शैल संस्तर जेवान समूह में पायी जाती है। इसकी मोटाई 240 मीटर है तथा यहाँ समुद्री जीवाश्मयुक्त लाइमस्टोन व शैल पायी जाती है। यहाँ मिलने वाले मुख्य जीवाश्म निम्न हैं :–

ब्रेकियोपोडा	–	*प्रोडकट्स, मारजीनीफेरा, स्परिफर*
बाइवाल्व	–	*एविक्युलोपेक्टीन*
फोरामिनिफेरा	–	*नोडोसायरिया, टेक्सटूलेरिया इनवोल्युटिना*

गोंडवाना महासंघ

मेडलीकोट (1872) ने सर्वप्रथम मध्यप्रदेश की एक जनजाति 'गोण्ड' के आधार पर इन शैलों का नामकरण 'गोण्डवाना' किया। भारतवर्ष के प्रायद्वीपीय एवं प्रायद्वीपेतर क्षेत्रों की भूवैज्ञानिक स्थितियों में क्रैम्ब्रियन से अत्यन्त नूतन काल तक पूर्ण विभिन्नता थी। पुराजीवी महाकल्प में प्रायद्वीपेतर क्षेत्र में जीवाश्ममय शैलों का निक्षेपण हो रहा था। प्रायद्वीपीय क्षेत्र में विन्ध्य समूह के ऊपर सीधे उपरि कार्बनी शैलों का निक्षेपण हुआ। इस अन्तराल में अपरदन का क्रम जारी था। उपरि कार्बनी काल में मध्यजीवी महाकल्प के अन्तिम चरण (क्रिटेसियस) तक नदीय एवं सरोवरीय निक्षेपों का निर्माण हो रहा था। उपरि कार्बनीकाल के समय आस्ट्रेलिया, मेडागास्कर, अफ्रीका, दक्षिण अमेरिका, अण्टार्कटिका एवं भारतीय उपमहाद्वीप के भू–भाग संयुक्त थे एवं इसको गोण्डवाना लेण्ड नाम से जाना जाता है। इन विभिन्न सुदूर क्षेत्रों में पाये जाने वाले पादप जीवाश्म, अश्मिकी, कशेरूकी जीवाश्मों एवं कोयले की उपस्थिति में भी व्यापक समानता है।

उपरिकार्बनी काल में पर्वतनिक हलचल जैसे हर्सीनियन एवं वेरिस्कन घटित हुए। इस कारण उस काल में जल और थल का पुनः वितरण हुआ। उस समय दो प्रमुख भू–भागों में दक्षिण के विशाल भू–भाग को गोण्डवाना लेण्ड एवं उत्तर के विशाल भू–भाग को यूरेशिया नाम दिया गया है।

भारत के गोंडवाना शैल

भारतवर्ष में गोंडवाना शैलों की उपस्थिति महत्वपूर्ण है। ये शैले भ्रंशित द्रोणियों की लम्बी पट्टियों में पायी जाती है। गोंडवाना शैलों में निर्मित तीन पट्टियां पायी जाती हैं। इनमें से एक पट्टी

पश्चिम में पूर्व की ओर नर्मदा, सोन एवं दामोदर नदी घाटियों में तथा दूसरी पट्टी गोदावरी घाटी के समानान्तर पायी जाती है। तथा तीसरी पट्टी इन दोनों पट्टियों के बीच महानदी घाटी में पायी जाती है। ये पट्टियां प्राचीनकाल में गोंडवाना अवसाद जो कि नदियों या जलाशय में निक्षेपित हुए थे, कि प्राचीन स्थिति की द्योतक है।

इनके अलावा गोंडवाना महासंघ का कुछ भाग पूर्वी तट के कटक और कन्याकुमारी अन्तरीप के बीच एवं राजमहल रीवा, कच्छ एवं श्रीलंका में विकसित है, तथा कश्मीर, नेपाल, भूटान व आसाम में भी गोंडवाना शैल पायी जाती है।

गोंडवाना महासंघ का वर्गीकरण

जलवायु और अवसादन

गोंडवाना महासंघ के निक्षेपण काल में जलवायु में अनेक महत्वपूर्ण परिवर्तन हुए थे। अवसादों की तली में गोलाश्म संस्तर (Boulder beds) और शेल का हरा रंग इनकी हिमजलीय उत्पत्ति दर्शाते हैं जिससे सिद्ध होता है कि तालचीर संघ का प्रारम्भ हिमानी जलवायु से हुआ था। इस गोलाश्मों के विस्तृत अध्ययन से यह निष्कर्ष निकलता है कि इन हिमानियों का प्रसार हिम चादरों की जटिल पिंडिकाओं के रूप में हुआ था। इनका एक केन्द्र वर्तमान गोदावरी घाटी के दक्षिण पश्चिम में स्थित था जिससे निकलने वाले हिमनद उत्तर और उत्तर–पश्चिम की ओर प्रवाहित हो रहे थे। इसी प्रकार दामोदर घाटी की उच्च भूमि (Highland) से प्रसारित होने वाले हिमनदों का प्रवाह दक्षिण की ओर हुआ था।

हिमानी काल की समाप्ति के साथ ही जलवायु गर्म होने लगी थी और दामूदा काल में जलवायु निश्चित ही गर्म और नम थी जिसके कारण वनस्पतियों का द्रुत गति से विकास और विस्तार हुआ। इस समय नदीय–सरोवरीय और दलदली क्षेत्र निर्मित हो गये थे जहाँ कोयला युक्त अवसाद (मुख्यतः बलुआ पत्थर और मिट्टी) निक्षेपित हो रहे थे। बारकार समूह के उपरांत पूर्वी और दक्षिणी गोंडवाना द्रोणियों का निक्षेपण अपचायी (Reducing) वातावरण में होने से वहाँ लौह कार्बोनेट युक्त शेल निर्मित हुए इसके विपरीत सतपुड़ा द्रोणी में वातावरण ऑक्सीकारक था। जिसके कारण वहाँ लौहयुक्त बलुआ पत्थर और शबलित/धब्बेदार (Variegated) क्ले निर्मित हुई। यह समय निक्षेपण में अनुत्पादक शैल समूह के रूप में पाया जाता है। इसके बाद पुनः कोयला निर्माण में सहायक वातावरण निर्मित हुआ जो रानीगंज समूह के रूप में पाये जाते हैं।

दामूदा काल के ऊपरी भाग से जलवायु शुष्क होने लगी थी इसलिए कामठी बलुआ पत्थर में लाल लौहमय भाग पाया जाता है। पंचेत काल में जलवायु निश्चित रूप से गर्म और शुष्क थी। यह जलवायु महादेव काल तक रही इन समय निक्षेपित शैलों में आरकोज और लाल शेल निक्षेपित हुई थी। इस समय ग्लासौप्टेरिस वनस्पति समूह नष्ट हो गया था केवल डाइक्रीडियम समूह ही पाया जाता था। इसके उपरांत जलवायु पुनः नम होने लगी थी जिसमें टीलोफाइलम वनस्पति वर्ग का विकास हुआ था। यह वनस्पति वर्ग गोण्डवाना महासंघ के अंत तक फलता–फूलता रहा किन्तु इस भाग में कोयला परतों का अभाव है। इसका कारण संभवतः कोयला उत्पत्ति के लिए आवश्यक दलदली वातावरण की अनुपस्थिति है।

भारतवर्ष में गोंडवाना महासंघ का विभाजन

गोंडवाना महासंघ को दो प्रकार के वर्गीकरण से समझाया गया है। प्रथम वर्गीकरण सी.एस. फाक्स ने प्रस्तुत किया, जिसमें इस महासंघ को निम्न एवं ऊपरी गोंडवाना महासंघ में वर्गीकरण किया गया है। इस वर्गीकरण को तालिका 5.6 में दर्शाया गया है। द्वितीय वर्गीकरण फिस्टमेण्टल द्वारा दिया गया जिसके अनुसार महासंघ को ऊपरी, मध्य एवं निम्न तीन भागों में विभाजित किया गया है। दो भागों वाला वर्गीकरण पौध जीवाश्म पर आधारित है। निम्न गोंडवाना महासंघ का अभिलाक्षणिक पौध जीवाश्म *ग्लोसोप्टेरिस* है, तथा ऊपरी गोंडवाना महासंघ का अभिलाक्षणिक पौध जीवाश्म *टिलोफाइलम* है।

दामोदर घाटी में गोंडवाना महासंघ का स्तरीकृत वर्गीकरण निम्नलिखित है :–

(अ) **निम्न गोंडवाना :** निम्न गोंडवाना को तीन सघों में विभाजित किया गया है :–

(1) **ताल्चीर संघ :** गोंडवाना अनुक्रम में ताल्चीर निम्नतर श्रेणी है। उड़ीसा के ताल्चीर नामक स्थान पर आधारित ताल्चीर श्रेणी के सबसे नीचे हिम निक्षेपित टिलाइट और गोलाश्म है। इनके ऊपर हरे रंग के शैल है जो कि बालुकाश्म से आच्छादित है। टिलाइट में विभिन्न आकार के फलकित और रेखित गोलाश्म पाये जाते हैं। इन शैलों के पेन्सिल आकार में टूटने के कारण इन्हें ''नीडिल शैल'' कहा जाता है। इनमें अविघटित फेल्सपार पाया जाता है। अविघटित फेल्सपार निक्षेपण के समय शीतल जलवायु के द्योतक है। तथा फलकित व रेखिक खण्ड सम्भवतः हिमोढ के रूप में निक्षेपित हुए। इस तरह गोंडवाना काल के प्रारम्भ में हिमनदीय स्थितियां थी। बालुकाश्म में पौध अवशेष, *ग्लोसोप्टेरिस इण्डिका, गेंग्मोप्टेरिस* इत्यादि प्राप्त हुए। ताल्चीर समूह के शैल प्रायद्वीपीय क्षेत्र की भ्रशितः द्रोणियों, शिमला, कश्मीर, सिक्किम तथा आसाम में विकसित है।

(2) **दामुदा संघ :** इस संघ को दामोदर घाटी में सुविकसित होने के कारण दामुदा संघ का नाम दिया गया है। इस समूह के

तालिका 5.6 : गोंडवाना महासंघ का वर्गीकरण

	संघ	समूह	आयु
ऊपरी गोंडवाना महासंघ		उमिया	क्रिटैशस
	जबलपुर	जबलपुर	जुरैसिक
		चौगान	
	राजमहल	कोटा	जुरैसिक
		राजमहल	
	महादेव	मलेरी	ट्राइसिक
		पचमढ़ी	
निम्न गोंडवाना महासंघ	पंचेत	पंचेत	ट्राइसिक
		रानीगंज	
	दामूदा	अनुत्पादक शैल समूह	पर्मियन
		बाराकर	
		करहारबारी	
	तालचीर	रिकवा	कार्बोनीफेरस
		तालचीर गोलाश्म संस्तर	

शैल ताल्चीर समूह के शैलों पर विषम विन्यास रूप से स्थित है। वस्तुतः ताल्चीर काल के हिमोढों द्वारा निर्मित झीलों और दलदलों में दामुदा क्रम के अवसाद निर्मित हुए। इनमें करहारबारी, बाराकर, अनुत्पादक संस्तर और रानीगंज नामक चार श्रेणियां हैं :–

(i) **करहारबारी समूह :** ताल्चीर समूह के ऊपर विषम विन्यास रूप से स्थित गुटिकीय ग्रिट और बालुकाश्म के 200 m मोटाई वाले क्रम को करहारबारी समूह नाम दिया गया है। इस श्रेणी के पौधे जीवाश्मों में *ग्लोसोपटेरिस, गेंग्मोप्टेरिस, सिजोन्यूरा, वर्टीब्रेरिया* इत्यादि प्रमुख हैं।

(ii) **बाराकार समूह :** 250 मीटर मोटाई के बाराकार समूह में प्रमुख कोयला निक्षेप संग्रह मिलते हैं। ये बालुकाश्म, शैल, कार्बनमय शैल व कोयला इस समूह के प्रमुख द्योतक है।

(iii) **अनुत्पादक समूह :** इस समूह में सफेद व भूरे रंग के बालुकाश्म एवं ग्रिट सम्मिलित है। बालुकाश्म तीर्यक संस्तरित तथा उसमें विघटित फेल्सपार पाया जाता है। बालुकाश्म में कोयला संस्तर अन्तास्तरित है।

(iv) **रानीगंज समूह :** रानीगंज कोयला क्षेत्र इस समूह में 800 मीटर मोटाई के हैं। यहां बालुकाश्म, शैल व कोयला पाया जाता है। बाराकार समूह के समतुल्य ही यहां भी सूक्ष्मकणिक बालुकाश्म मिलते हैं। इस समूह में सबसे अधिक कार्यशील कोयला संस्तर है।

(3) **पंचेत संघ :** पंचेत पहाड़ी पर सुविकसित होने के कारण इसे पंचेत संघ नाम दिया गया है। यह संघ अल्प विषम विन्यास के साथ रानीगंज समूह के ऊपर पाया जाता है। इस समूह में एकान्तर क्रम में फेल्सपारमय, अभ्रकी तथा क्रांस संस्तर बालुकाश्म, हरे शैल के पतले संस्तर तथा शबलित मृतिका संस्तर पाये जाते हैं। इस संघ में पौधा जीवाश्म *ग्लोसोप्टेरिस, सिजोन्यूरा, पेकोप्टेरिस, साइक्लोप्टेरिस* तथा *टिनोप्टेरिस* इत्यादि पाये जाते हैं। कशेरूकी जीवाश्मों में मत्स्य, उभयचर व सरीसृप मुख्य रूप से पाये जाते हैं।

(ब) **ऊपरी गोंडवाना :** ऊपरी गोंडवाना को तीन संघों में विभाजित किया है :–

1. **महादेव संघ :** पंचमढ़ी के पास महादेव पहाड़ी के संदर्भ में इस संघ का नाम महादेव संघ रखा गया है। यह संघ सामान्यतः पंचमढ़ी बालुकाश्म, डेनवा मृतिका व बागरा गोलाश्म में विभाजित किया गया है।

पंचमढ़ी बालुकाश्म स्थूल, सफेद व क्रॉस संस्तर बालुकाश्म से निर्मित है तथा करीब 750 मीटर मोटाई के हैं।

डेनवा मृतिका सफेद बालुकाश्म के साथ अन्तरस्तरिक है। बागरा गोलाश्म की लगभग 250 मीटर मोटाई तथा इसमें *मस्टोडोनासोरस इन्डिकस* जीवाश्म पाये गये हैं जो मध्य–निम्न ट्रायेसिक आयु के द्योतक है।

2. **राजमहल संघ :** राजमहल पहाड़ियां झारखण्ड के उत्तर–पश्चिम में स्थित है। राजमहल संघ बेसाल्टीय लावा प्रवाह तथा अन्तराट्रेप समूह का बना हुआ है। यहां पौध जीवाश्म अन्तराट्रेप समूह में पाये जाते हैं जो कि निम्न है : *इक्वीसीटम, लाइकोपोडाईट, स्फीनोप्टैरीस, पेकोप्टैरीस, थिनफैल्डिया, निलसोनिया* एवं *विलियमसोनिया*।

3. **जबलपुर संघ :** सर्वप्रथम ऑल्डहेम (1861) ने जबलपुर क्षेत्र से जबलपुर संघ का वर्णन किया। यहां स्थूल बालुकाश्म, जेस्पारयुक्त बालुकामय गोलाश्म, नर्म सफेद मृतिका तथा कुछ संस्तर हेमेटाइट लाल मृतिका के मिलते हैं। कोयला, कार्बनमय शैल व चर्ट भी यहाँ पायी जाती है। जबलपुर संघ चोगान समूह एवं जबलपुर समूह में विभाजित की गई है। पौध जीवाश्म के आधार पर चोगान समूह व जबलपुर समूह को मध्य जुरैसिक से निम्न क्रिटेशियस आयु का माना गया है।

उमीया समूह ऊपरी गोंडवाना का नवीनतम शैल समूह माना जाता है। इस समूह में मुख्य रूप से बालुकाश्म, गोलाश्म एवं शेल पाये जाते हैं। यह समूह भुज से उत्तर–पश्चिम में अवस्थित है।

मध्यजीवी महाकल्प (मीसोजोइक)

पर्मियन कल्प की समाप्ति के साथ पृथ्वी के अनेक स्थानों पर जीवों के प्रकार और वितरण में विशाल परिवर्तन हुए थे। ट्राइलोबाइटा पूर्णतः विलुप्त हो गये थे। ब्रेकिओपोडा में अनेक कुलों का विलोप व बचे कुलों में अनेक परिवर्तन, सेराटाइट वर्ग (एमोनाइट) के जीवों का विकास और इकाईनोइडिया में नये वंशों का अविर्भाव तथा प्रसार होने लगा था। इस समय से लेकर एमोनाइट के विलोपन तथा स्तनधारी जीवों के अविर्भाव और इसी प्रकार के अनेक प्राणी और वनस्पति जगत के परिवर्तनों और पर्वतोत्थान की क्रिया के प्रारंभ के बीच का समय मध्यजीवी (मीसोजोइक) महाकल्प कहा जाता है।

मध्यजीवी (मीसोजोइक) महाकल्प को तीन कल्पों ट्राइसिक (Triassic), जुरासिक (Jurassic) और क्रिटेशस (Cretaceous) में विभाजित किया गया है। यह महाकल्प 22.5 करोड़ से 6.5 करोड़ वर्ष तक की आयु का है।

मध्यजीवी महाकल्प का वितरण

भारतवर्ष में समुद्री मीसोजोइक समूह टेथिस हिमालय के क्रोल पट्टी तथा निचले हिमालय तथा पश्चिमी राजस्थान और कच्छ तथा पूर्वी तट पर त्रिचनापल्ली और उसके आसपास के क्षेत्रों में पाये जाते हैं। इसी के साथ नर्मदा घाटी में भी क्रिटेशस कल्प के संस्तर पाये जाते हैं।

स्पिटी

ट्राइसिक कल्प का सर्वोत्तम विकास स्पिटी में हुआ है जहाँ इसकी मोटाई 3000 मीटर तक है। लिलांग क्षेत्र में इनका प्रतिनिधि संस्तर क्रम पाया जाता है जिसे लिलांग संघ नाम दिया गया है इस संघ में चूना पत्थर और शेल प्रमुखता से पाये जाते हैं तथा इसे तीन श्रेणी में विभक्त किया गया है।

1. निचली ट्राइऐसिक
2. मध्य ट्राइऐसिक
3. ऊपरी ट्राइऐसिक

सौराष्ट्र

सौराष्ट्र के उत्तरी भाग में टेथोनियन (जुरैसिक) से सीनोमेनियन (क्रिटेशस) आयु के शैल समूह पाये जाते हैं। इन्हें निचले ध्रागंधरा संघ और ऊपरी वधवान संघ में वर्गीकृत किया गया है।

कच्छ

कच्छ में जुरैसिक कल्प की चट्टानें विस्तृत भाग में पाई जाती है। केम्ब्रियन पूर्व के शैलों के ऊपर कुछ छोटे दृश्याशों के रूप में पाये जाते हैं। इन्हें पच्छम, चारी, काटरोल, उमिया एवं भुज समूह में बांटा गया है। कच्छ के जुरैसिक संघ की सम्पूर्ण मोटाई 2000 मीटर से अधिक है।

दक्षिण भारत में मध्यजीवी महाकल्प का वितरण

दक्षिण भारत में मीसोजोइक (क्रिटेशस) महाकल्प के शैल समूह त्रिचनापल्ली और उसके आसपास क्षेत्रों में पाये जाते हैं। इन्हें डालमियापुरम, उत्तातूर, त्रिचनापल्ली, अरियालूर और निनियूर समूह में विभाजित किया गया है।

राजस्थान में मध्यजीवी महाकल्प

पर्मियन कल्प के बाद पश्चिमी राजस्थान का भू–भाग समुद्री स्तर से ऊपर उठ गया था और क्षरण व अपरदन से प्रभावित रहा। यहाँ ट्राइसिक काल का कोई निक्षेपण नहीं हुआ और यदि हुआ भी हो तो दृश्य नहीं है। निम्न जुरैसिक काल के नदीय अवसाद (Fluvial) है जो लाठी सेण्डस्टोन के नाम से जाने जाते हैं। राजस्थान में मध्यजीवी काल की चट्टानों का वर्गीकरण तालिका 5.7 में दर्शाया गया है।

लाठी समूह

लाठी समूह में मुख्य रूप से बड़े दानों वाले सेण्डस्टोन, ग्रिटी सेण्डस्टोन, पेबली सेण्डस्टोन, कोग्लोमरेट, आर्कोज, एरेनाइट,

तालिका 5.7 : राजस्थान में मध्यजीवी महाकल्प के शैल समूह का वर्गीकरण

समूह	शैल	आयु
आबूर समूह	जीवाश्मयुक्त मृण्मय चूना पत्थर एवं बलुआ पत्थर	निम्न क्रिटेशस
परिहार समूह	(जीवाश्महीन) बलुआ पत्थर	निम्न क्रिटेशस
भदेसर समूह	लोहमय बलुआ पत्थर तथा ग्रिट	उपरि जुरैसिक
बैशाखी समूह	बलुआ पत्थर शेल एवं चूना पत्थर	उपरि जुरैसिक
जैसलमेर समूह	ऊओलाइट तथा कवचयुक्त चूना पत्थर, बलुआ पत्थर	मध्य जुरैसिक
लाठी समूह	बलुआ पत्थर ऊपरी भाग में चूना पत्थर	निम्न जुरैसिक

सिल्टस्टोन, शैल, लोहमय शैल, लोहमय सेण्डस्टोन का जमाव हुआ है।

लाठी सेण्डस्टोन मुलायम, धारा संस्तरण तल एवं अन्य अवसादी संरचना दर्शाने वाला शैल समूह है, जिसमें हेमेटाइट के दाने/गोलियां एवं पादपाश्म जीवाश्म बहुतायत से मिलते हैं। आकल के पास 10 मीटर लम्बाई तक के पेड़ों के तनों के काष्ट जीवाश्म मिलते हैं जो मीठे पानी में पाये जाने वाले पेड़ों के हैं।

लाठी सेण्डस्टोन का कुल जमाव 360 मीटर माना जाता है जिन्हें (i) निम्न मेम्बर एवं (ii) ऊपरी मेम्बर में विभक्त किया गया है।

ऊपरी मेम्बर : सेण्डस्टोन, सिल्टस्टोन एवं लाइमस्टोन कम गहराई के समुद्रतटीय निक्षेप।

निम्न मेम्बर : कोंग्लोमरेट, आर्कोज, ऐरेनाइट सेण्डस्टोन स्थलीय स्वच्छ पानी के निक्षेप।

जीवाश्म : लाठी सेण्डस्टोन के साथ पेड़ों की पत्तियों के चिह्न मिलते हैं जिनमें *पेट्रोफाइलम* (*Petrophyllum* sp.), *टिलोफाइलम* (*Ptillophyllum*), *एक्युसेटाइट्स* (*Equisetites* sp.) प्रमुख हैं।

जैसलमेर समूह

जैसलमेर बेसिन पूर्व में देवरा, नाहरसिंह की ढाणी एवं मोहनगढ़ तक फैला हुआ था। जिसमें मध्यजीवी महाकल्प के अवसाद की जमाव सीमा नीबा, सम, कनोई की ढाणी तक फैला हुआ है। इस बेसिन के जमाव उत्तर पूर्व से दक्षिण पश्चिम दिशा में हुए। इनको जैसलमेर समूह कहा गया है तथा इसे पांच भागों में बांटा गया है।

जैसलमेर समूह के लाइमस्टोन के अच्छे दृश्यांक थैयाट के पास मिलते हैं। यह मुख्य रूप से क्रीम, हल्का भूरा, जीवाश्ममय खण्डज लाइमस्टोन है जो कैल्सिल्यूटाइट (Calcilutite), कैल्सिरूडाइट (Calcirudite) से निर्मित केल्केरेनाइट (Calcarenites) हैं। हमीरा के पास निम्न संस्तरों पर सुनहरे केलकरेनाइट मिलते हैं जिनकी मोटाई करीब 20 सेन्टीमीटर है जिसमें गेस्ट्रापोड जीवाश्मों पर सुनहरे पीले रंग की पाइराइट की पपड़ी (Coating) है। लेमिलिब्रेंक एवं गेस्ट्रोपोडा जीवाश्म रानियां का डूंगर के पास एवं ऊओलाइट (Oolite) जीवाश्म कुलधरा के पास मसूरड़ी नदी में मिलते हैं।

जैसलमेर लाइमस्टोन मुख्य रूप से जैसलमेर शहर के चारों तरफ और उत्तर–दक्षिण दिशा में फैले हुए हैं जिनके दृश्यांश मुख्य रूप से जैसलमेर–सानू सड़क पर बड़ा बाग के पास, जैसलमेर किला एवं जैसलमेर–सम सड़क पर स्पष्ट है। पीले रंग के होने के कारण इस लाइमस्टोन की बनी इमारतें सूर्य प्रकाश में स्वर्णिम आभा लिए चमकती है। जैसलमेर शहर में भवन इसी पत्थर के बने है जिसके कारण जैसलमेर को "स्वर्ण नगरी" (Golden city) के नाम से जाना जाता है।

जैसलमेर समूह को गाँवों के आसपास पाये जाने वाले दृश्यांशों की प्रकृति के आधार पर पांच सदस्यों (मेम्बर) में बांटा गया है, जो इस प्रकार हैं :–

1. कुलधरा मेम्बर : कठोर पीले रंग का आरिनेशियस लाइमस्टोन, ऊओलाइट (Oolite) के साथ सिफेलोपोडा के जीवाश्म मिलते हैं।
2. बड़ा बाग मेम्बर : पीले रंग का बालुकाश्म, जीवाश्मयुक्त मार्ल, संघुटिकाश्म एवं चूनापत्थर।
3. किला मेम्बर : सेण्डस्टोन एवं मार्ल की परतें मिलती हैं जो जीवाश्मय है।
4. जोयन मेम्बर : कठोर, पीले रंग का आरिनेशियस लाइमस्टोन।
5. हमीरा मेम्बर : पीले रंग का आरिनेशियस लाइमस्टोन के साथ बाईवाल्व वाले कवच (Bi valve shells) मिलते हैं।

जीवाश्म : जैसलमेर समूह में गेस्ट्रोपोडा, ब्रेकियोपोडा, पेलिसिपोडा, सिफेलोपोडा, एकाइनोडरमेटा आदि के जीवाश्म मिलते हैं।

बैशाखी समूह

बैशाखी शैल मुख्य रूप से क्ले है जिनके साथ जिप्सम, बेन्टोनिटिक क्ले, कार्बोनिशियस शैल, भूरे रंग की सिल्ट शैल, सिल्ट स्टोन, सेण्डस्टोन, बालुई लाइमस्टोन के संस्तर मिलते हैं, जिनकी कुल मोटाई 46 मीटर है। इसके अच्छे दृश्यांश लुधरवा, रूपसी, निभ डूगर एवं जैसलमेर–रामगढ़ सड़क के दोनों तरफ देखे जा सकते हैं। बैशाखी समूह को अ, ब एवं स तीन भागों में विभक्त किया गया है :–

''स'' : आरिनेसियस सेण्डस्टोन (जीवाश्मय केल्केरियस सेण्डस्टोन, जिप्सम व क्ले बैंगनी, लाल, पीली क्ले परतें व जिप्सममय परतें

''ब'' : सुगठित सेण्डस्टोन, लोहमय नोड्यूल्स के साथ बिखरने वाला आरिनेसियस सेण्डस्टोन

''अ'' : बेण्टोनिटिक क्ले, शैल, आरिनेशियस सेण्डस्टोन, क्ले एवं शैल की एक के बाद एक परते लोहमय एवं फास्फेटिक नोड्यूल्स के साथ

जीवाश्म : बैशाखी शैल के साथ एमोनाइट्स व बेलेमनाइट्स के जीवाश्म एवं पादप चिह्न मिलते हैं।

भदेसर समूह

भदेसर सेण्डस्टोन को कनोई के पश्चिम में पाये जाने वाले दृश्यांशों के आधार पर निम्न चार भागों में विभक्त किया है :–

''द'' : क्वेस्टा दृश्यांश एवं बालुकाश्म (Sandstone)

''स'' : शैल, लोहमय ग्रिट उलाइट एवं ग्रिटी सेण्डस्टोन की परतें।

''ब'' : सेण्डस्टोनमय शैल, पीताभ, मटमैले रंग का सेण्डस्टोन।

''अ'' : लोहमय ग्रिट, कई रंगों का सेण्डस्टोन, लोहमय शैल, सुनहरे उलाइट, काष्ट जीवाश्म, अमोनाइट, बेलेमनाइट एवं प्रवाल के जीवाश्म।

जीवाश्म : सेण्डस्टोन के साथ एमोनाइट्स, बेलेमनाइट, प्रवाल एवं काष्ट जीवाश्म मिलते हैं।

परिहार समूह

परिहार समूह के दृश्यांश मुख्य रूप से परिहार गाँव के दक्षिण में स्थित पहाड़ी, आबूर के दक्षिण में एवं कनोई के उत्तर पूर्व में स्थित है, जिसकी स्तरीकी निम्न है :–

10. कई रंगों की परतों वाला बालुई सिल्टस्टोन जिनमें पेड़ों के तने के जीवाश्म, पत्तियों के चिह्न एवं उर्मिका चिह्न है।
9. कुचड़ी संस्तर : भूरे रंग वाला धारा संस्तरण तल वाला सेण्डस्टोन जिनके साथ उर्मिका चिह्न एवं काष्ट जीवाश्म मिलते हैं।
8. आरिनेशियस शैल संस्तर।
7. खेरड़ी डूंगरी संस्तर : सेण्डस्टोन ओर्थो–क्वार्ट्जाइट, धारा संस्तरण तलों के साथ।
6. लौहमय चर्टी लाल रंग की शैलमय काष्ट जीवाश्म।
5. चामेरा तलाई संस्तर : बड़े दानों वाला गुटिका कोंग्लोमरेटिक सेण्डस्टोन।
4. शैलमय नरम बालुई सिल्टस्टोन।
3. भूरे रंग का चूनामय, ग्रिटी सेण्डस्टोनमयी गुटिका पेबल संस्तर।
2. कई रंगों का सिल्ट, सेण्डस्टोनयुक्त काष्ट जीवाश्म।
1. बिस्ली टिकरी संस्तर : ग्रे चूनामय सख्त, गुटिका सेण्डस्टोन, कोंग्लोमरेट।

आबूर/हाबूर समूह

यह समूह मुख्य रूप से आरिनेसियस आबूर लाइमस्टोन एवं चूनामय सेण्डस्टोन से निर्मित है। इसके अतिरिक्त ग्रिट, क्ले एवं मार्ल भी मिलते हैं।

सख्त, सुगठित, गेरू रंग का, जीवाश्मयुक्त, आबूर लाइमस्टोन सजावटी पत्थर के रूप में बहुतायत से काम में लिया जाता है साथ ही इसकी चिप्स का फर्श निर्माण में ''सुपारी'' के नाम से उपयोग किया जाता है।

जीवाश्म : आबूर लाइमस्टोन के साथ अमोनाइड्स, ब्रैक्रियोपोड्स एवं कोक्यूनोइड्स के जीवाश्म मिलते हैं।

नूतनजीवी कल्प (सीनोजोईक)

तृतीय कल्प का विस्तार आज से लगभग 6.5 करोड़ वर्ष पूर्व से लेकर 18 लाख वर्ष पूर्व तक है। भारतवर्ष के वर्तमान भू आकृतिक लक्षणों की रूपरेखा भी इसी महाकल्प में निर्धारित हुई थी। भारतवर्ष के आदिनूतन (इओसिन) कल्प में समुद्र उभरते हुए हिमालय के दोनों छोरों तक सीमित रह गया था। पश्चिम की ओर सिन्ध–बलूचिस्तान की खाड़ी थी जो गुजरात, राजस्थान, पंजाब, शिमला तथा नेपाल तक फैली थी। पूर्व में अराकान–योमा श्रेणी के आसपास असम और बर्मा (म्यांमार) की खाड़ियां बन गई थी।

अल्पनूतन (ओलीगोसिन) से मध्यनूतन (मायोसिन) तक इनमें निक्षेपण चलता रहा। यद्यपि मायोसिन कल्प के प्रारम्भ में समुद्र का कुछ विस्तार हुआ था किन्तु मायोसिन कल्प के प्रारम्भ में समुद्र का कुछ विस्तार हुआ था किन्तु मायोसिन कल्प के अधिकांश समय में पर्वतोत्पत्ति क्रिया का ही अधिक जोर रहा।

इसी समय हिमालय निर्माण क्रिया की तृतीय ओर सबसे जोरदार हलचल हुई थी। इसी कारण टेथिस सागर में जमा अवसाद वलन के के कारण ऊपर उभर आये। हिमालय के इस उभार के साथ–साथ सिन्धु– बलूचिस्तान एवं असम–बर्मा की खाड़ियां पीछे सरक गई। हिमालय के दक्षिण भाग में एक विशाल द्रोणी का निर्माण हुआ जिसमें नवनिर्मित पर्वतमाला से निकलती हुई नदियों के अवसाद जमा होते रहे।

भारतवर्ष में तृतीय कल्प का वितरण

1. **असम व पूर्वोत्तर प्रांत :** असम और पूर्वोत्तर प्रांत तथा शिलांग मिकिर पठार में तृतीय और चतुर्थ कल्प के शैल समूहों का अत्यधिक मोटा अनुक्रम पाया जाता है। इनमें पूरानूतन (पेलियोसिन) से निचले अत्यन्त नूतन (प्लीस्टोसीन) आयु के संस्तर पाये जाते हैं।

2. **हिमालय क्षेत्र :** हिमालय क्षेत्र में क्रोल क्षेप भ्रंश और मुख्य सीमा भ्रंश के बीच स्थित NW-SE पट्टी में तृतीय कल्प के शैल समूह पाये जाते हैं। ये पूर्व कैम्ब्रियन के शिमला संघ पर स्थित है तथा क्रमशः सुबाथू, दगशाई और कसौली समूह के नाम से जाने जाते हैं।

3. **प्रायद्वीप भाग :** प्रायद्वीप भाग में तृतीय कल्प का विस्तार मुख्य रूप से गुजरात, राजस्थान व दक्षिण भारत तक है।

(i) **गुजरात :** कच्छ में भी इस कल्प के शैल समूह विकसित हुए हैं जो जुरैसिक समूह अथवा डेक्कन ट्रेप पर पाये जाते हैं तथा क्रमशः मातानोमढ़ श्रेणी (पेलियोसीन आयु), नरेड़ी हरोड़ी एवं फुलरा श्रेणी (इओसिन), मनियारा फोर्ट श्रेणी (ओलीगोसिन) खारी नदी एवं चासरा श्रेणी (मायोसिन) एवं संघान श्रेणी (प्लायोसिन) के नाम से जाने जाते हैं।

इसके अतिरिक्त सौराष्ट्र क्षेत्रों में क्रमशः गज श्रेणी (निम्न मायोसिन), पिराम संस्तर एवं द्वारका श्रेणी (ऊपरी मायोसिन से प्लायोसिन) एवं सूरत और भड़ोच क्षेत्र में बागढ़खोल श्रेणी, न्यूमुलीटीक चूना पत्थर एवं ताड़केश्वर श्रेणी (मध्य इओसिन से ऊपरी इओसिन) तथा बाबागुरु श्रेणी, कड़ श्रेणी एवं जगड़िया श्रेणी (निम्न मायोसिन) के निक्षेप पाये जाते हैं। सूरत और भड़ोच समूह में इओसिन आयु के शैल समूहों में पेट्रोलियम के तीन स्तर पाये जाते हैं।

(ii) **दक्षिण भारत :** दक्षिण भारत में तृतीय कल्प के निक्षेप पांडिचेरी में पाये जाते हैं।

(iii) **राजस्थान :** राजस्थान में तृतीय कल्प के शैल समूह तीन द्रोणियों में निक्षेपित हुए हैं जिनका विस्तार पश्चिमी राजस्थान में पाया जाता है। ये द्रोणियां इस प्रकार हैं –

(i) जैसलमेर द्रोणी (Jaisalmer Basin)

(ii) बाड़मेर द्रोणी (Barmer Basin)

(iii) बीकानेर–नागौर द्रोणी (Bikaner-Nagaur Basin)

राजस्थान में तृतीय कल्प के शैल समूह का वर्गीकरण तालिका 5.8 में दर्शाया गया है।

जैसलमेर बेसिन, बाड़मेर बेसिन एवं बीकानेर–नागौर बेसिन में जमा अवसादों का तुलनात्मक विवेचन निम्नानुसार है :–

1. **जैसलमेर द्रोणी** (Jaisalmer Basin) : जैसलमेर बेसिन को तीन शैल समूहों में विभक्त किया गया है –

(A) बन्धा शैल समूह

(B) खुईआला शैल समूह

(C) सानू शैल समूह

(A) **सानू शैल समूह :** इस शैल समूह का नाम गाँव सानू से पड़ा है। यह शैल समूह जैसलमेर बेसिन का सबसे निम्नतम शैल समूह है।

आश्मिकी : लाल, पीला, मटमैला, ग्लेकोनाइट, धारा संस्तरण तलों वाला बड़े दानों वाले बलुआ पत्थर (Sandstone) शैल क्ले से बना है। शैल समूह को दो अंग में विभाजित किया गया है।

(i) मोहम्मद ढाणी अंग

(ii) खरातर अंग

तालिका 5.8 : राजस्थान में तृतीय कल्प के शैल समूह का वर्गीकरण

महाकल्प	कल्प	जैसलमेर बेसिन	बाड़मेर बेसिन	बीकानेर नागौर बेसिन	आयु
नूतनजीवी (Cenozoic)	तृतीय कल्प	बन्धा समूह खुइआला समूह सानू समूह	कपूरड़ी समूह माताजी का डूंगर समूह अकली समूह बाड़मेर समूह फतेहगढ़ समूह	जोगीड़ा समूह मड़ समूह पलाना समूह	मध्य इओसिन निम्न इओसिन निम्न पेलियोसिन

जीवाश्म : फोरोमिनीफेरा, स्पोरोमोर्फ और गेस्ट्रोपोड

आयु : इस शैल समूह की आयु पेलियोसिन है।

(B) **खुईआला शैल समूह :** खुईआला शैल समूह की शुरूआत ओर्थोक्वार्ट्जाइट से होती है जो कि बड़े दानों वाले बलुआ पत्थर, हरे, पीले एवं भूरे रंग की जिप्सममय क्ले युक्त है, जिनके ऊपरी तरफ फोरामिनीफेरा लाइमस्टोन, चॉकी लाइमस्टोन एवं ऊपरी परत कठोर, सुगठित गोलाश्मय चूना पत्थर की मिलती है।

खुईआला लाइमस्टोन में नतिलम्ब भ्रंश (Strike fault) बहुतायत से मिलते हैं। खुईआला शैल समूह को चार भागों में विभक्त किया गया है –

(i) **हिंगोला** : एलगल लाइमस्टोन

(ii) **टी टेकर** : चॉकी एवं मार्ली लाइमस्टोन

(iii) **सिरहेरा** : गीरिकमय क्ले, मार्ल एवं क्ले की परतें, प्लेटी चूना पत्थर

(iv) **खुईआला** : ओर्थोक्वार्ट्जाइट, बड़े दानों वाला बलुआ पत्थर, जिप्सममय क्ले एवं चूना पत्थर

जीवाश्म : खुईआला लाइमस्टोन के साथ, एसिलिना डाइस्ट, न्यूमोलाइटस, एसिलिना ग्रेनुलोसा आदि जीवाश्म मिलते हैं।

आर्थिक महत्व : यहां स्टील प्रगलन शाप (SMS) श्रेणी का लाइम स्टोन पाया जाता है।

आयु : इस शैल समूह की आयु निम्न इओसिन है।

(C) **बन्धा शैल समूह :** इस शैल समूह का नाम बन्धा गाँव से पड़ा। बन्धा लाइमस्टोन खुईआला लाइमस्टोन के ऊपर पाया जाता है। यह शैल समूह मुख्य रूप से बेन्टोनिटिक क्ले, मृण्मय एवं चाकी चूना पत्थर एवं कठोर सुगठित क्रिस्टलीय लाइमस्टोन की है जिसमें कहीं–कहीं पायराइटमय नाड्यूल्स एवं मछली के दांत के जीवाश्म मिलते हैं।

जीवाश्म : लेमेलीब्रेंकस, एकाइनोईस एवं फोरेमिनीफेरा के जीवाश्म मिलते हैं।

आयु : इस शैल समूह की आयु मध्य इओसिन है।

2. बाड़मेर द्रोणी (Barmer Basin) : बाड़मेर बेसिन संकरा, लम्बा, N-S प्रवृति का रैखिक द्रोणिका (ग्रेबान) है जो उत्तरी ओर जैसलमेर बेसिन के जुरैसिक शैल समूह से होकर गुजरता है।

बाड़मेर बेसिन में हुए निक्षेपण का वर्गीकरण निम्नानुसार है :–

कपूरडी शैल समूह

माताजी का डूंगर शैल समूह

अकली शैल समूह

बाड़मेर शैल समूह

फतेहगढ़ शैल समूह

(i) **फतेहगढ़ शैल समूह :** इस शैल समूह का नाम गाँव फतेहगढ़ से पड़ा है। यह शैल समूह मुख्य रूप से कोंग्लोमरेट, लोहमय बलुआ पत्थर, बेण्टोनाइट क्ले, फॉस्फेटिक बलुआ पत्थर एवं फॉस्फेटिक मडस्टोन से बना है।

जीवाश्म : गेस्ट्रोपोड, लेमेलीब्रेंक, ओस्ट्रासिड के कवच और मछली के दांत मिलते हैं।

आयु : इस शैल समूह की आयु पुरानूतन है।

(ii) **बाड़मेर शैल समूह :** बाड़मेर शैल समूह दो अंग में विभाजित है –

(a) मन्दई कगार अंग (Mandai scarp member)

(b) बाड़मेर पहाड़ी अंग (Barmer hill member)

आश्मिकी : क्रॉस संस्तरण, सफेद से रानी रंग का सिल्टी बलुआ पत्थर, चर्ट और संगुटिकाश्म व बलुआ पत्थर पर पत्तियों की छाप।

जीवाश्म : इस शैल समूह में वनस्पति एवं पत्तियों की छाप पाई जाती हैं।

आयु : इस शैल समूह की आयु पुरानूतन (पेलियोसिन) है।

(iii) **अकली शैल समूह :** अकली समूह मुख्य रूप से लोहमय बलुआ पत्थर, बेण्टोनाइट क्ले, सिलिसियस अर्थ, लोहमय शैल, फास्फेटिक सेण्डस्टोन से निर्मित है। बेण्टोनाइट के साथ सिलिसियस अर्थ की एक के बाद एक परतें मिलती हैं।

जीवाश्म : बेण्टोनाइट के साथ फोरेमिनीफेरा, एकाइनोइड, मोलस्क, कोरल, मछली, केकड़े आदि के जीवाश्म एवं पादप चिह्न मिलते हैं।

(iv) **माताजी का डूंगर शैल समूह :** यह मुख्य रूप से कोग्लोमरेट, सफेद एवं लोहामय बलुआ पत्थर, क्वार्ट्जेटिक बलुआ पत्थर से निर्मित है।

जीवाश्म : बलुआ पत्थर के साथ लेमेलीब्रेंक एवं गेस्ट्रोपोड के जीवाश्मों एवं पादप चिह्न मिलते हैं।

(v) **कपूरडी शैल समूह :** कपूरडी के पास फुलर्स अर्थ के साथ लोहमय एवं जिप्सम के संग्रहण एवं चूनामय बलुआ पत्थर (सेण्डस्टोन) मिलता है। कपूरडी एवं भाड़का के पास बाड़मेर–जैसलमेर सड़क के किनारे इसका कई स्थानों पर खनन किया जा रहा है।

जीवाश्म : फुलर्स अर्थ के साथ फोरेमिनीफेरा, ओस्ट्रोकोडा, ईकाइनोइड्स, लेमेलीब्रेंक आदि के जीवाश्म मिलते हैं।

आयु : इस शैल समूह की आयु आदिनूतन (इओसिन) है।

3. बीकानेर–नागौर द्रोणी (Bikaner-Nagaur Basin) : राजस्थान के उत्तरी भाग में जिला बीकानेर, चुरू और नागौर में तृतीय कल्प (निम्न) की शैलों का निक्षेपण पाया जाता है। इस

द्रोणी को तीन शैल समूहों में विभक्त किया गया है :–

(iii) जोगीड़ा शैल समूह (केल्केरियस फॉरमेशन)

(ii) मढ़ शैल समूह (आरिनेसियस फॉरमेशन)

(i) पलाना शैल समूह (कार्बोनेश्यिस फॉरमेशन)

(i) **पलाना शैल समूह :** यह शैल समूह पलाना में उपस्थित है। हरे भूरे व कई रंगों की शैल के साथ कार्बनमय शैल, शैली लिग्नाइट एवं लिग्नाइट की पट्टी मिलती है एवं भूतल और लिग्नाइट पट्टी के बीच न्यूमूलिटिक चूना पत्थर एवं क्ले की पट्टियाँ हैं।

जीवाश्म : मछली कपाल, टेरिडोफाइट, एन्जियोस्पर्म, एलगी और चूना पत्थर के साथ न्यूमूलाइटस मिलते हैं।

आयु : इस शैल समूह की आयु पेलिओसिन है।

(ii) **मढ़ शैल समूह :** इस समूह में मुख्य रूप से निचले भाग में मुल्तानी मिट्टी एवं ऊपरी भाग में बलुआ पत्थर एवं क्ले की परतें पाई जाती हैं।

जीवाश्म : इनमें पत्तियों की छाप पाई जाती है।

(iii) **जोगीड़ा शैल समूह :** यह शैल समूह जोगीरा तालाब से थोड़ी दूरी पर स्थित है। यह मुख्य रूप से पीली कैल्केरियस शैल, सिल्टस्टोन, मार्ल एवं फोरामिनीफेरा युक्त चूना पत्थर की बनी है, जिनमें बहुत अधिक जीवाश्म पाये जाते हैं।

जीवाश्म : इस शैल समूह में फोरेमिनीफेरा, एकिनोइड, लेमलीब्रेंक एवं गेस्ट्रोपोड जीवाश्म मिलते हैं।

आयु : इस शैल समूह की आयु इओसिन है।

शिवालिक संघ

मध्य मध्य–मध्यनूतन कल्प में यद्यपि समुद्र का कुछ विस्तार हुआ किन्तु यह समय हिमालय पर्वतोत्पति क्रिया के संभवतः सबसे तीव्र–तृतीय चरण की हलचलों द्वारा अत्यधिक प्रभावित रहा। मरी संघ के निर्माण के अंत में टेथीस सागर में निक्षेपित अवसाद वलन के कारण ऊपर उभर आये और उनके केन्द्र में आग्नेय शिलाओं के विशाल अंतर्वेधन हुए। हिमालय के इस उभार के साथ ही सिंध, बलूचिस्तान तथा बर्मा की खाड़ियाँ पीछे की ओर हट गई और हिमालय के दक्षिण में एक विशाल द्रोणी का निर्माण हुआ जिसमें नवनिर्मित पर्वत माला से निकली हुई नदियों द्वारा लाये गये अवसादों का निक्षेपण होता रहा। इस द्रोणी का व्यवहार भू–अभिनति (Geosyncline) जैसा था। अवसादों के निक्षेपण के साथ–साथ उसकी तली नीचे की ओर धंसती जाती थी। धसाव की इस क्रिया में संभवतः प्रायद्वीपीय भाग की गति के कारण उत्पन्न संपीड़न का भी आंशिक योगदान रहा। इस क्रिया के कारण द्रोणी की गहराई के अनुपात में उससे कई गुने अधिक लगभग 4800 मीटर से 5500 मीटर मोटी चट्टानों का निर्माण हुआ है। यही शैल शिवालिक संघ कहलाते हैं। इसका नामकरण हरिद्वार के पास शिवालिक पहाड़ियों के आधार पर रखा गया है।

वितरण : शिवालिक संघ के शैल हिमालय के बाह्य भाग में पोत्वार के पठार से लेकर ब्रह्मपुत्र की घाटी तक पाये जाते हैं। इनका सर्वोत्तम विकास जम्मू में तावी नदी की घाटी और हिमाचल प्रदेश के हरतालयंगर क्षेत्र में हुआ है। इसके समतुल्य शैल सिंध में मंछर संघ, बलूचिस्तान में मेकरान संघ और असम में दिहिंग संघ के नाम से जाने जाते हैं।

शिवालिक संघ की आधार शिलायें (Basement Rocks) प्रायः कहीं भी अनावरित नहीं है। हिमाचल प्रदेश के दक्षिण पूर्व में पाया जाने वाला नहान समूह, जिसे शिवालिक के तलीय भाग के समतुल्य के माना गया है, का उससे अधःशायी (Underlying) कसौली समूह से क्रमिक संस्पर्श पाया जाता है।

संरचना

बाह्य हिमालय क्षेत्र की संरचना में अधिक्षेपित (Overthrust) व्युत्क्रम भ्रंशों का अत्यधिक महत्व है। शिवालिक संघ की चट्टानें अत्यधिक वलित और भ्रंशित, अधिक्षेपित तथा अन्य शैल समूहों से तीक्ष्ण कोण बनाती है। जहाँ भी ये अधिक्षेपित होती है वहाँ इनके सामान्य अध्यारोपण का क्रम व्युत्क्रमित (Inverted) हो जाता है। मुख्यतः शिवालिक संघ प्रमुख सीमा भ्रंश नामक भ्रंश समूह द्वारा–जो कश्मीर से असम तक फैला है – पूर्ववर्ती चट्टानों से पृथक है तथा ये पूर्ववर्ती चट्टानों के नीचे विलीन होती प्रतीत होती है।

अश्म विज्ञान

शिवालिक संघ में बलुआ पत्थर, ग्रिट, संगुटिकाश्म, छद्म संगुटिकाश्म, मिट्टी तथा गाद पाये जाते हैं। ये वेगवती सरिताओं द्वारा नदीय वातावरण तथा उथली अलवण द्रोणी में पूर आने से निर्मित हुए थे। इनमें पाये जाने वाले जीवाश्म यह दर्शाते हैं कि प्रारम्भिक संस्तर अपेक्षाकृत खारे जल में निक्षेपित हुए थे। स्थूल अवसादों के बीच महीन अवसादों का प्रत्यावरण यह सिद्ध करता है कि ये मौसमी निक्षेप है। इनमें पाये जाने वाले बलुआ पत्थरों में संस्तरण क्षीण है तथा कणों के आकार में भी अंतर नहीं पाया जाता है। ये फेल्सपारी, माइकायुक्त तथा धारा संस्तरण दर्शाते हैं। निचले शिवालिक अवसादों में स्टारोलाइट, मध्य शिवालिक में कायनाइट और ऊपरी भाग में हार्नब्लेंड प्रमुख भारी खनिज है।

अवसादन की परिस्थितियां

स्थूल और प्रायः अश्रेणीकृत बलुआ पत्थर इस बात का

तालिका 5.9 : शिवालिक संघ का वर्गीकरण

	समूह	शैल	आयु
	गोलाश्म	स्थूल संगुटिकाश्म	निम्न
ऊपरी	संगुटिकाश्म समूह	ग्रिट, बालू तथा मिट्टी	प्लीस्टोसीन
शिवालिक	पिंजौर समूह	स्थूलग्रिट, बलुआ	निचला
संघ		पत्थर और संगुटिकाश्म	प्लीस्टोसीन
1800 से 2400 मी.	टैट्राट समूह	नरम बलुआ पत्थर, संगुटिकाश्म और	ऊपरी
		बदामी (Drab) मिट्टी	प्लायोसीन
मध्य	ढोक पठान	भूरा (Brown) बलुआ	निचला
शिवालिक	समूह	पत्थर, बजरी संस्तर,	प्लायोसीन
संघ		बादामी शेल और नारंगी (Orange) मिट्टी	
1800 से 2400 मी.	नागरी समूह	कठोर धूसर, स्थूल, बलुआ	ऊपरी
		पत्थर, शेल तथा मिट्टी	मायोसीन
निचला	चिंजी समूह	संग्रथित लाल सुर्ख	मध्य से ऊपरी
शिवालिक		शेल, मिट्टी और	मायोसीन
संघ		बलुआ पत्थर	
1500 मी.	कमलियाल	कठोर लाल बलुआ पत्थर,	मध्य
	समूह	लाल और नीला लौहित	मायोसीन
		शेल तथा छद्म संगुटिकाश्म	
		समविन्यासी और क्रमिक संस्पर्श	
		कसौली समूह/ऊपरी मुरी संघ	□

सूचक है कि इनका अवसादन उथले जल अथवा दलदलीय क्षेत्र में वेगवती विशाल जलराशियों द्वारा हुआ था। महीन और स्थूल अवसादों का प्रत्यावरण उन्हें मौसमी निक्षेप सिद्ध करता है। नतिलम्ब की दिशा में काफी दूर–दूर तक अवसादों की समानता इस बात को दर्शाती है कि अवसादों के स्त्रोत शैलों में समानता थी तथा निक्षेपण द्रोणी लगभग अविच्छिन्न थी। अवसादों की मोटाई यह दर्शाती है कि द्रोणी धीरे–धीरे धंस रही थी तथा पर्वतोत्थान के स्पंदी अनुक्रमों के साथ दक्षिण की ओर हट रही थी।

जलवायु

शिवालिक संघ के अवसादों से प्रतीत होता है कि निक्षेपण के अधिकांश समय में जलवायु आर्द्र और गरम रही होगी। स्थूल अवसाद उत्तर की ओर से और लौहयुक्त मृतिका प्रायद्वीप की ओर से आये होंगे। ढोक पठान समूह के निक्षेपण के समय आर्द्रता में कमी आ जाने के कारण दलदली क्षेत्र निर्मित हो गया था। ऊपरी शिवालिक समय में जलवायु में आर्द्रता पुनः बढ़ गई थी। टैट्राट काल में तापमान काफी कम हो गया था।

वर्गीकरण

शिवालिक संघ को तीन प्रमुख भागों में वर्गीकृत किया गया है जिनकी भूवैज्ञानिक आयु मध्य मायोसीन से निचले प्लीस्टोसीन तक है। इन भागों को कुल 7 समूहों में विभाजित किया गया है। तालिका 5.9 में विभिन्न समूहों, उनकी आयु और उनमें पाये जाने वाले शैल दर्शाये गये हैं।

जीवाश्म

शिवालिक संघ के विभिन्न समूहों में कशेरूकी प्राणियों के जीवाश्मों का अति समृद्ध समुच्चय पाया जाता है। इनके साथ ही इनमें मोलस्का, आस्ट्रेकोडा, केरोफाइट, स्पोर, पोलेन और पादपाश्म भी पाये जाते हैं। कशेरूकी प्राणियों में स्तनधारी जीवों की प्रधानता है किन्तु उनके साथ पक्षी, मगर, कछुए, सर्प, छिपकलियों और मछलियों के जीवाश्म भी पाये जाते हैं। प्रमुख स्तनधारी जीवाश्म इस प्रकार हैं :–

प्राइमेट : *शिवापिथेकस, ड्रायोपिथेकस, ब्रह्मपिथेकस, रामापिथेकस, सिमिओ, पेपिओ*।

कार्नीवोरा	:	*एम्फीसायक्रान, लुटरा, फेलिस, केनिस, वल्पेस, हायना, क्राकुटा, पेन्थेरा, उरसस, हेसिट्रैक्स*।
प्रोबोसाइडिया	:	*मेस्टोडोन, स्टीगोडोन, इलेफस, डाइनोथेरियम, टेट्राबेलोडोन, पेंटालोफोडोन, माइरिथीरियम, ट्राइलोफोडोन, मेरीटेरियम*।
सुइडी	:	*लिस्ट्रिओडोन, कोनोहायस, सुस, टेट्राकोनोडान, पोटेमोकोरस, सेनीथेरियम, हिप्पोहायस*
राइनोसिराटिडी	:	*डाइकेथेरियम, टेलिओसिरेस, बलूचीथेरियम, एकेरेथेरियम, गेंडाथेरियम, राइनोसिरैस*।
इक्विडी	:	*इक्वस, हिप्पेरियन*
हिप्पोपोटेमिडि	:	*हिप्पोपोटमस*
एन्थ्रेकोथेरिडी	:	*केमेलस, टेलमेटोडान, हेमीमेरिक्स*
वोवाइडी	:	*टारोट्रेगस, ट्रेगोसैरस, बासएलेफस, प्रोलेप्टोवास, बेबुलस, लेप्टोवास, बास, बाईसन* आदि।

इसके अतिरिक्त जिराफ, रोडेन्ट आदि अन्य वंशों के जीवाश्म भी पाये जाते हैं।

जीवाश्मिक विशेषता

शिवालिक संघ का सबसे प्रमुख आकर्षण उसमें पाये जाने वाले जीवाश्म हैं जो वर्तमान से केवल कुछ काल पूर्व के हैं और उनके पूर्वज कहला सकते हैं। इनमें से अधिकांश हिमनदीय वातावरण में निर्मित होने पर विलुप्त हो गये। हाथी वंश इनमें सबसे प्रमुख है जिसकी शिवालिक संघ में 30 जातियां पाई जाती हैं। अनेक कुलों के विकास का क्रम भी इन जीवाश्मों द्वारा ज्ञात किया गया है।

शिवालिक संघ के पूर्ववर्ती शैलों में स्तनधारी जीवाश्मों की संख्या और विविधता बहुत कम है। सौम्य वातावरण एवं भोजन तथा पेयजल की प्रचुरता के कारण ये जीव दूसरे भागों से यहाँ आ गये थे। पिलग्रिम के अनुसार हिप्पोपोटेमस, सुअर व हाथी मध्य अफ्रीका से अरब व ईरान के रास्ते से, राइनोसिरैस, घोड़े, ऊँट व कपि अपने जन्म स्थान, उत्तरी अमेरिका से मध्य व पूर्वी एशिया से हिमालय के पूर्वोत्तर एवं पश्चिमोत्तर भागों से यहाँ आये थे।

महत्वपूर्ण बिन्दु

1. भारत की स्तरिकी में आद्यमहाकल्प से लेकर नवजीवी महाकल्प के चतुर्थ कल्प के अभिनव/होलोसीन युग तक की नवीनतम शैले पाई जाती है।
2. भारत की विभिन्न शैलों की स्तरिकी को टी.एच. हालेण्ड द्वारा चार संघों यथा आद्यमहाकल्प, पुराणा, द्रविड़ियन तथा आर्यन में वर्गीकृत किया गया।
3. आद्यमहाकल्प की शैलें भारत के प्रायद्वीप के करीब दो–तिहाई भाग में फैली हुई है तथा दक्षिण भारत में मैसूर क्षेत्र आद्यमहाकल्प के धारवार महासंघ का प्रारूप क्षेत्र है।
4. आद्यमहाकल्प की समाप्ति के बाद आन्ध्र प्रदेश व अन्य क्षेत्रों में विभिन्न द्रोणियों में निक्षेपण हुआ। आन्ध्र प्रदेश के कड़प्पा जिले के आधार पर इन्हें कड़प्पा महासंघ नाम दिया गया।
5. प्राग्जीवी कल्प में राजस्थान में अरावली महासंघ, राइलो समूह, देहली महासंघ व मलानी आग्नेय समूह की चट्टानें मिलती है। कड़प्पा महासंघ के बाद विन्ध्यन महासंघ की चट्टानें निक्षेपित हुई।
6. आन्ध्र प्रदेश की कड़प्पा द्रोणी में कड़प्पा महासंघ से कम आयु के शैल करनूल संघ के रूप में वर्गीकृत है। राजस्थान में इन्हें मारवाड़ महासंघ (ऊपरी विन्ध्यन के समकक्ष) के नाम से जाना जाता है।
7. पुराजीवी महाकल्प में कैम्ब्रियन से मध्य कार्बनी काल की (निचले पुराजीवी) तथा ऊपरी कार्बन व पर्मियन (ऊपरी पुराजीवी) कल्प की शैलें मिलती है।
8. ऊपरी कार्बनी, पर्मियन, ट्राइऐसिक, जुरैसिक व निचले क्रिटेशस कल्प के दौरान प्रायद्वीप भाग में दामोदर, महानदी, सोन, गोदावरी, वर्धा, कन्हान और पेंच नदी घाटियों में गोंडवाना महासंघ के शैल पाये जाते है। गोंडवाना महासंघ में कोयले की की बहुतायत हैं।
9. मध्यजीवी महाकल्प के ट्राइऐसिक समूह का प्रारूप क्षेत्र स्पिटी (हिमाचल प्रदेश) है, इन्हें लिलांग समूह कहते है। जुरैसिक समूह का प्रारूप क्षेत्र कच्छ (गुजरात) है। क्रिटेशस समूह की शैलों का प्रारूप क्षेत्र त्रिचनापल्ली–पांडिचेरी क्षेत्र है।
10. मध्यजीवी महाकल्प के अन्तिम समय में प्रायद्वीपीय भारत में करीब 5 लाख वर्ग किलोमीटर क्षेत्र में ज्वालामुखी क्रिया द्वारा डेकन ट्रेप की चट्टानें निर्मित हुई।
11. नवजीवी महाकल्प की चट्टानें कश्मीर–शिमला, असम, कच्छ, काठियावाड़, राजस्थान व प्रायद्वीप क्षेत्र में मिलती है। सिन्धु और गंगा के मैदान भी इसी महाकल्प में निर्मित हुए तथा लैटेराइट का निर्माण भी मुख्य रूप से इसी महाकल्प के उत्तरार्द्ध में हुआ था।
12. मध्य–मध्यनूतन से निचले अत्यन्त नूतन कालावधि के शिवालिक संघ के शैल हिमालय के गिरिपादों में मिलते है।
13. चतुर्थ महाकल्प के तहत अत्यन्त नूतन व अभिनव कल्प की चट्टानें सिंधु–गंगा का मैदान (जलोढ़), लैटेराइट (मध्यप्रदेश, महाराष्ट्र व बिहार इत्यादि क्षेत्रों में) के निक्षेप व थार मरूस्थल में मिलते हैं।

14. राजस्थान में प्राचीनतम आद्यमहाकल्प से लेकर अभिनव/होलोसीन कल्प तक के जलोढ़क तथा बालू की स्तरिकी का अनुक्रम मिलता है। राजस्थान में भीलवाड़ा, अरावली, देहली, विन्ध्यन तथा मारवाड़ महासंघों के पुराजीवी, मध्यजीवी, डेकन ट्रेप्स, नवजीवी के तृतीयक व चतुर्थ कल्पों की चट्टानें मिलती हैं।

15. राजस्थान में पृथ्वी की मूल ठोस ग्रेनाइटी पर्पटी की अवशेष चट्टानें बेण्डेड नाइसिक काम्पलेक्स के नाम से जानी जाती थी जो अरावली महासंघ से भी पुरानी है। इन्हें वर्तमान में भीलवाड़ा महासंघ के नाम से जाना जाता है। भीलवाड़ा महासंघ को आठ समूहों में विभक्त किया गया है।

16. राजस्थान की प्राग्जीवी कल्प की चट्टानों को भीलवाड़ा महासंघ के राजपुरा–दरीबा, पुर–बनेरा, जहाजपुर और सावर समूहों, अरावली महासंघ, देहली महासंघ, विन्ध्यांचल महासंघ तथा मारवाड़ महासंघ के अन्तर्गत रखा गया है। प्राग्जीवी कल्प की समयावधि 250 से 54 करोड़ वर्ष पूर्व की आंकी गई है।

17. अरावली महासंघ 250 से 200 करोड़ वर्ष पूर्व समयावधि का है। अरावली महासंघ को 9 समूहों में बांटा गया है।

18. देहली महासंघ की चट्टानें मध्य व ऊपरी प्राग्जीवी कल्प (200 से 74 करोड़ वर्ष पूर्व) की है तथा देहली से हिम्मतनगर (गुजरात) तक लगभग 850 किलोमीटर लम्बाई में विस्तृत है जो राजस्थान में पूर्व में मेवाड़ के पहाड़ी क्षेत्र तथा पश्चिम में मारवाड़ में फैले रेतीले भूभाग को विभक्त करती है। देहली महासंघ को 8 समूहों में बांटा गया है।

19. नर्मदा घाटी के उत्तर में मालवा, मध्य भारत व बुन्देलखंड क्षेत्र में पठार के रूप में विस्तृत बिहार, मध्यप्रदेश व राजस्थान के करीब 104000 वर्ग किलोमीटर क्षेत्र में फैले 4200 मीटर मोटाई के अवसादों को विन्ध्यन महासंघ के रूप में वर्गीकृत किया जाता है।

20. राजस्थान में विन्ध्यन महासंघ की चट्टानें धौलपुर, करोली, कोटा, बारां, झालावाड़, भरतपुर, सवाईमाधोपुर, चितौड़गढ़, बूंदी व भीलवाड़ा जिलों में करीब 26000 वर्ग किलोमीटर क्षेत्र में फैली हुई है तथा इनकी मोटाई 3200 मीटर तक है।

21. मलानी आग्नेय संजाति के ऊपरी प्राग्जीवी महाकल्प की वितलीय व ज्वालामुखीय चट्टानें पश्चिम राजस्थान के करीब 51000 वर्ग किलोमीटर क्षेत्रफल में फैली हुई है। मलानी की आयु 75 करोड़ वर्ष आंकी गई है।

22. अरावली पर्वत श्रृंखला के उत्तर पश्चिमी पार्श्व में विन्ध्यन के समकालीन पाई जाने वाली चट्टानों के समूह को मारवाड़ महासंघ के नाम से वर्गीकृत किया जाता है। ये चट्टानें पश्चिमी राजस्थान में जोधपुर, नागौर व बीकानेर जिलों में फैली हुई है।

अभ्यासार्थ प्रश्न

वस्तुनिष्ठ प्रश्न

1. आद्यमहाकल्प की शैलें भारत के प्रायद्वीप के कितने भाग में फैली हुई है ?
   (अ) दो–तिहाई भाग में
   (ब) एक–तिहाई भाग में
   (स) एक–चौथाई भाग में
   (द) आधे भाग में

2. चार्नोकाइट कहां पायी जाती है?
   (अ) चैन्नई में (ब) जयपुर में
   (स) मुम्बई में (द) भीलवाड़ा में

3. वैक्रिता संघ की शैल कहां मिलती है?
   (अ) बिहार में (ब) असम में
   (स) हिमाचल में (द) बंगाल में

4. गोंडवाना महासंघ में किसकी बहुतायत है?
   (अ) जस्ते की (ब) हीरे की
   (स) कोयले की (द) चांदी की

5. क्रिटेशस समूह की शैलों का प्रारूप क्षेत्र कहां है?
   (अ) कश्मीर में
   (ब) कुमाऊँ में
   (स) हिमाचल में
   (द) त्रिचनापल्ली–पांडिचेरी क्षेत्र में

6. मंगलवाड़ काम्पलेक्स किस महासंघ की चट्टानों से समबन्धित है?
   (अ) अरावली महासंघ (ब) भीलवाड़ा महासंघ
   (स) देहली महासंघ (द) विन्ध्यांचल महासंघ

7. अरावली महासंघ को कितने समूहों में बांटा गया है ?
   (अ) 5 में (ब) 7 में
   (स) 9 में (द) 11 में

8. देहली महासंघ का अवसादन कितने निक्षेपण क्षेत्रों में हुआ ?
   (अ) 5 निक्षेपण क्षेत्रों में (ब) 4 निक्षेपण क्षेत्रों में
   (स) 3 निक्षेपण क्षेत्रों में (द) 2 निक्षेपण क्षेत्रों में

9. माउंट आबू ग्रेनाइट की आयु बताईये ?
   (अ) 145 करोड़ वर्ष पूर्व
   (ब) 75 करोड़ वर्ष पूर्व
   (स) 25 करोड़ वर्ष पूर्व
   (द) 95 करोड़ वर्ष पूर्व

10. लाखेरी चूनापत्थर शैल समूह को किस समूह में वर्गीकृत किया गया है?
(अ) भाण्डेर समूह में (ब) वैक्रिता संघ में
(स) कैमूर समूह में (द) रीवा समूह में

11. मलानी आग्नेय संजाति की चट्टानों की आयु कितनी आंकी गई है?
(अ) 105 करोड़ वर्ष (ब) 75 करोड़ वर्ष
(स) 55 करोड़ वर्ष (द) 35 करोड़ वर्ष

12. गोटन, सोजत, बिलाड़ा, खींवसर व बोरूंदा क्षेत्रों के चूनापत्थर निक्षेप किस महासंघ से समबन्धित है?
(अ) अरावली महासंघ (ब) भीलवाड़ा महासंघ
(स) देहली महासंघ (द) मारवाड़ महासंघ

13. सिरिंगोथाईरिस चूना पत्थर किससे सम्बन्धित है –
(अ) निम्न कार्बोनिफेरस
(ब) मध्य कार्बोनिफेरस
(स) उपरी कार्बोनिफेरस
(द) पर्मियन

14. कश्मीर में ऊपरी आर्डोविशियन काल में कौनसे संस्तर मिलते हैं –
(अ) हरपतनार संस्तर (ब) नौबाग संस्तर
(स) गौरान संस्तर (द) फेनेस्टेला शैल संस्तर

15. मुथ क्वार्टजाइट किस समूह में पाये जाते हैं –
(अ) परमो–कार्बनी समूह
(ब) सिल्यूरियन समूह
(स) डिवोनियन समूह
(द) आर्डोविशन समूह

16. पर्मियन शैल संस्तर किस समूह में पायी जाती है –
(अ) जेवान समूह (ब) पो समूह
(स) कैम्ब्रियन समूह (द) परमो–कार्बनी समूह

17. 'गोंडवाना' नाम सर्वप्रथम किसने दिया –
(अ) फिस्टमेण्टल (ब) मेडलीकोट
(स) सी. एस फॉक्स (द) ऑल्डहेम

18. निम्नलिखित में से कौनसा संघ निम्न गोंडवाना का नहीं है –
(अ) ताल्चीर संघ (ब) बाराकार समूह
(स) पंचेत संघ (द) राजमहल संघ

19. 'निडिल शैल' किस संघ में पाये जाते हैं –
(अ) दामूदा संघ (ब) रानीगंज संघ
(स) तालचीर संघ (द) पंचेत संघ

20. निम्न में से कौनसा पादपाश्म गोंडवाना महासंघ का नहीं है –
(अ) साइजोन्यूरा (ब) पेकोप्टेरिस
(स) विलसोनिया (द) विलियमसोनिया

21. सबसे अधिक कोयला संस्तर किस समूह में पाये जाते हैं –
(अ) बाराकार समूह (ब) अनुत्पादक समूह
(स) करहारबारी समूह (द) रानीगंज समूह

22. बागरा गोलाश्म किस संघ में आते हैं –
(अ) महादेव संघ (ब) जबलपुर संघ
(स) राजमहल संघ (द) दामूदा संघ

23. बंसा समूह की आयु क्या है –
(अ) निम्न ट्रायेसिक (ब) निम्न क्रिटेशियस
(स) जुरैसिक (द) पर्मियन

24. चोगान समूह किस संघ में आते हैं –
(अ) जबलपुर संघ (ब) राजमहल संघ
(स) दामूदा संघ (द) महादेव संघ

25. ट्राइऐसिक कल्प का सर्वोत्तम विकास कहाँ हुआ –
(अ) कच्छ (ब) दक्षिण भारत
(स) स्पिटी (द) राजस्थान

26. काले चूना पत्थर किस संघ में पाये जाते हैं –
(अ) लिलांग संघ (ब) ध्रागधंरा संघ
(स) वधवान संघ (द) त्रिचनापल्ली

27. कच्छ के जुरैसिक संघ की सम्पूर्ण मोटाई है –
(अ) 3000 मीटर से अधिक
(ब) 2000 मीटर से अधिक
(स) 1000 मीटर
(द) 500 मीटर

28. राजस्थान में निम्न जुरैसिक काल के अवसाद है –
(अ) नदीय (ब) जलोढ़
(स) वायूढ़ (द) इनमें से कोई नहीं

29. कौनसे समूह के लाइमस्टोन को सजावटी पत्थर के रूप में बहुतायत से काम में लिया जाता है –
(अ) भदेसर समूह (ब) आबूर समूह
(स) बैसाखी समूह (द) परिहार समूह

30. कच्छ में लखपत समूह किस आयु का है –
(अ) इओसिन (ब) ओलिगोसिन
(स) मायोसिन (द) पेलियोसिन

31. सानू शैल समूह किसमें आता है –
(अ) जैसलमेर द्रोणी (ब) बीकानेर द्रोणी
(स) बाड़मेर द्रोणी (द) नागौर द्रोणी

32. बेण्टोनाइट की परतें किस समूह में मिलती है –
(अ) बाड़मेर शैल समूह (ब) अकली शैल समूह
(स) कपूरडी शैल समूह (द) माताजी का डूंगर शैल समूह

33. पिंजौर समूह की आयु है –
(अ) मध्य मायोसिन (ब) निचला प्लायोसिन
(स) निचला प्लीस्टोसिन (द) ऊपरी मायोसिन

34. ऊपरी शिवालिक संघ की मोटाई है –
(अ) 1800 से 2400 मीटर
(ब) 1800 से 2100 मीटर
(स) 1500 मीटर
(द) 1700 मीटर

अतिलघुत्तरात्मक प्रश्न

1. प्राग्जीवी कल्प में राजस्थान में कौनसी चट्टानें मिलती है?
2. विन्ध्यन महासंघ की चट्टानों को कितने संघों में वर्गीकृत किया गया है?
3. कनवर समूह में कौनसी चट्टानें कहां पर मिलती है?
4. गोंडवाना महासंघ को कितने संघों में वर्गीकृत किया गया है?
5. शिवालिक संघ के शैल कहां पर मिलते है?
6. भीलवाड़ा महासंघ में कौनसी चट्टानें मिलती है?
7. राजस्थान की प्राग्जीवी कल्प की चट्टानों पर लघु टिप्पणी लिखिये।
8. अरावली महासंघ में कौनसी चट्टानें मिलती है?
9. देहली महासंघ की चट्टानों पर लघु टिप्पणी लिखिये।
10. राजस्थान में विन्ध्यन महासंघ की चट्टानें कौनसे जिलों में मिलती है?
11. मलानी आग्नेय संजाति की चट्टानें कौनसे जिलों में मिलती है?
12. मारवाड़ महासंघ में कौनसी चट्टानें कहां पर मिलती है?
13. पुराजीवी (पेलियोजोईक) महाकल्प की आयु बताइये।
14. हरपतनार संस्तर में पाये जाने वाले जीवाश्म बताइये।
15. पो समूह में पायी जाने वाली अश्मिकी (Lithology) बताइये।
16. कनवर संघ को समझाइये।
17. कार्बोनीफेरस में पाये जाने वाले मुख्य जीवाश्म बताइये।
18. गोंडवाना महासंघ की तीन पट्टियों के नाम बताइये।
19. गोंडवाना महासंघ कहाँ–कहाँ वितरित है?
20. गोंडवाना महासंघ के दामूदा काल की जलवायु बताइये।
21. निम्न गोंडवाना के मुख्य पादपाश्म बताइये।
22. दामूदा संघ को कितने समूह में विभाजित किया गया है? नाम बताइये।
23. पंचेत संघ की मोटाई बताइये।
24. मध्यजीवी (मीसोजोईक) महाकल्प की आयु बताइये।
25. भारतवर्ष में समुद्री मध्यजीवी समूह कहां पाये जाते हैं?
26. दक्षिण भारत में मध्यजीवी (मीसोजोईक) महाकल्प का वितरण बताइये।
27. जैसलमेर लाइमस्टोन को कितने मेम्बर में विभाजित किया गया है? नाम बताइये।
28. आबूर लाइमस्टोन किन चट्टानों से निर्मित है?
29. तृतीय कल्प की कुल आयु बताइये।
30. प्रायद्वीप भाग में तृतीय कल्प का विस्तार कहाँ तक है?
31. राजस्थान में पायी जाने वाली द्रोणियों के नाम दीजिये।
32. बन्धा शैल समूह की आयु बताइये।
33. अकली शैल समूह में पाये जाने वाले जीवाश्म बताइये।
34. शिवालिक संघ में पाये जाने वाले जीवाश्म बताइये।

लघुत्तरात्मक प्रश्न

1. भारत की आद्यमहाकल्प चट्टानों पर टिप्पणी लिखिये।
2. भारत की नवजीवी महाकल्प की चट्टानों पर टिप्पणी लिखिये।
3. भीलवाड़ा महासंघ की 'मिग्मेटाइट' चट्टानों पर टिप्पणी लिखिये।
4. अरावली महासंघ के वर्गीकरण पर टिप्पणी लिखिये।
5. भीलवाड़ा, अरावली व देहली महासंघों में मैग्मीभवन पर टिप्पणी लिखिये।
6. राजस्थान में विन्ध्यन महासंघ के वर्गीकरण पर टिप्पणी लिखिये।
7. मारवाड़ महासंघ की व्याख्या कीजिये।
8. स्पिटी के पेलियोजोईक महाकल्प को समझाइये।
9. लिपाक समूह तथा पो समूह की अश्मिकी व जीवाश्म बताइये।
10. गोंडवाना महासंघ के निम्न गोंडवाना को समझाइये।
11. गोंडवाना महासंघ के उपरी गोंडवाना को समझाइये।
12. राजस्थान में मीसोजोईक महाकल्प के बैशाखी व भदेसर समूह की अश्मिकी व जीवाश्म बताइये।
13. राजस्थान में मीसोजोईक महाकल्प की चट्टानों के निक्षेपण क्रम को बताइये।

14. राजस्थान में तृतीय महाकल्प के वितरण को बताइये।
15. तृतीय महाकल्प के बाड़मेर द्रोणी को समझाइये।
16. शिवालिक संघ का वितरण व संरचना बताइये।
17. शिवालिक संघ के अवसादन को समझाइये।

निबंधात्मक प्रश्न

1. भारत की परिचयात्मक स्तरिकी पर निबंध लिखिये।
2. भीलवाड़ा महासंघ की व्याख्या कीजिये।
3. अरावली महासंघ पर निबंध लिखिये।
4. देहली महासंघ पर निबंध लिखिये।
5. कश्मीर के पेलियोजोईक महाकल्प के अवसादन, अश्मिकी व जीवाश्म को विस्तार से समझाइये।
6. गोंडवाना महासंघ के वर्गीकरण को विस्तार से समझाइये।
7. गोंडवाना महासंघ के जलवायु और अवसादन को समझाइये।
8. मीसोजोईक महाकल्प के वितरण को समझाइये।
9. शिवालिक संघ के वर्गीकरण, अश्मविज्ञान व जीवाश्म को समझाइये।
10. भारतवर्ष में तृतीय महाकल्प का वितरण समझाइये।

उत्तरमाला : 1 (अ) 2 (अ) 3 (स) 4 (स) 5 (द)
6 (ब) 7 (स) 8 (द) 9 (ब) 10 (अ)
11 (ब) 12 (द) 13 (अ) 14 (स) 15 (स)
16 (अ) 17 (ब) 18 (द) 19 (स) 20
(स) 21 (द) 22 (अ) 23 (ब) 24 (अ) 25 (स)
26 (अ) 27 (ब) 28 (अ) 29 (ब) 30 (ब)
31 (अ) 32 (ब) 33 (स) 34 (अ)

अध्याय – 6

आर्थिक भूविज्ञान, खनिज अन्वेषण एवं खनन

(Economic Geology, Mineral Exploration and Mining)

आर्थिक भूविज्ञान

भारत प्राकृतिक संसाधनों से समृद्ध राष्ट्र है। खनिज निक्षेप सबसे महत्वपूर्ण प्राकृतिक संसाधनों में से एक है। खनिज निक्षेपों की उत्पत्ति एक जटिल भूगर्भीय प्रक्रिया है तथा इसके निर्माण में लम्बा भूगर्भीय काल लगता है। अतः उपलब्ध खनिज निक्षेपों का वैज्ञानिक ढंग से दोहन, समुचित एवं उचित ढंग से उपयोग नितांत आवश्यक है। किसी भी राष्ट्र की सुदृढ़ आर्थिक व्यवस्था में खनिज सम्पदा का बहुत बड़ा योगदान होता है।

देश में उपलब्ध खनिज निक्षेपों का वर्गीकरण

भारत को सोने की चिड़िया कहा जाता था। भारत में विभिन्न प्रकार के धात्विक खनिज, अधात्विक खनिज, औद्योगिक खनिज, परमाणु खनिज, कोयला, खनिज तेल, प्राकृतिक गैस आदि प्रकार के खनिज विद्यमान हैं। देश में उपलब्ध खनिजों को निम्नानुसार वर्गीकृत किया जा सकता है।

(अ) खनिज रियायती नियमों के आधार पर

शासकीय खान एवं खनिज विकास एवं विनिमयन एक्ट के अनुसार खनिजों को निम्नानुसार वर्गीकृत किया जा सकता है –

(1) परमाणु खनिज (Atomic Mineral)

(2) खनिज तेल एवं प्राकृतिक गैस (Petroleum and Natural Gas)

(3) प्रधान खनिज (Major Mineral) : सीसा, जस्ता, तांबा, लोहा व अन्य अयस्क, लाइमस्टोन, जिप्सम, ग्रेफाइट आदि।

(4) अप्रधान (गौण) खनिज (Minor Mineral) : बजरी, इमारती पत्थर, कंकर आदि।

(ब) खनिजों के गुणधर्म एवं उपयोग के आधार पर

देश में पाये जाने वाले खनिजों को उपयोग एवं गुणधर्म के आधार पर निम्नानुसार वर्गीकृत किया गया है –

(1) धात्विक खनिज (Metallic Mineral) : ऐसे खनिज अयस्क जिनसे धातुएं प्राप्त की जाती है, धात्विक खनिज कहलाते हैं। इस तरह के खनिजों की द्युति सामान्यतः धात्विक होती है। इनको निम्नानुसार वर्गीकृत किया जा सकता है :–

(i) **बहुमूल्य धातु खनिज :** स्वर्ण, चांदी, प्लेटिनम से सम्बन्धित खनिज अयस्क।

(ii) **लोह एवं लोह मिश्र धातु खनिज :** लोहा, मैगनीज, क्रोमियम, निकल, मौलिब्डेनम, टंगस्टन व कोबाल्ट।

(iii) **अलोह धातु खनिज :** ताम्र, सीसा, जस्ता, एल्यूमिनियम, टिन आदि।

(iv) **रेडियोधर्मी खनिज :** यूरेनियम, थोरियम व रेअर अर्थ से सम्बन्धित खनिज

(2) अधात्विक खनिज (Non Metallic Mineral) **:** ऐसे खनिज जिनसे अधात्विक पदार्थ प्राप्त होते है, अधात्विक खनिज कहलाते है। अधात्विक खनिजों का उपयोग मानव के दैनिक जीवन में सर्वाधिक होता है। इनमें प्राकृतिक गैस व पेट्रोलियम पदार्थ सबसे प्रमुख है। यह निम्न प्रकार के होते हैं :–

1. औद्योगिक खनिज

(a) **उच्चतापसह एवं प्रतिरोधी खनिज :** कायनाइट, सिलीमेनाइट, एण्डाल्यूसाइट, ग्रेफाइट, डोलोमाइट, फायर क्ले, एस्बेस्टॉस, अभ्रक, वर्मीकुलाइट आदि।

(b) **सिरेमिक खनिज :** फेल्सपार, मृतिका खनिज, वोलेस्टोनाइट, क्वार्टज आदि।

(c) **उर्वरक सम्बन्धी खनिज :** ऐपेटाइट, रॉक फास्फेट, पायराइट, पोटाश, जिप्सम आदि।

(d) **रसायन उद्योग के खनिज :** कैल्साइट, लाइमस्टोन, फ्लूओराइट, गंधक, बैराइट आदि।

(e) **फिलर खनिज** : टाल्क, सोपस्टोन, स्टीएटाइट, पायरोफाइलाइट, डायटोमाइट, सिलिसियस अर्थ आदि।

(f) **अपघर्षी खनिज** : गार्नेट, कोरण्डम, जेस्पर, अगेट आदि।

2. **रत्न एवं उपरत्न** : हीरा, पन्ना, माणिक, नीलम, पुखराज, स्पिनल, जीरकोन, पारदर्शी गारमेट, एमिथिस्ट, स्फटिक आदि।

3. **सजावटी एवं इमारती शैल समूह** : मार्बल, ग्रेनाइट, लाइमस्टोन, सेण्डस्टोन, शैल, रायोलाइट आदि।

4. **ईंधनोपयोगी खनिज** : कोयला, लिग्नाइट, पेट्रोलियम एवं प्राकृतिक गैस।

भारत में खनिज निक्षेपों का विवरण

भारत में विभिन्न प्रकार के खनिज निक्षेप प्रचुर मात्रा में विद्यमान हैं, जिनमें निम्नलिखित महत्वपूर्ण हैं :–

(1) लोहा (2) सीसा–जस्ता (3) तांबा (4) कोयला (5) पेट्रोलियम (6) रॉक फास्फेट (7) जिप्सम।

(1) लोहा

लोहा भूपर्पटी में एल्यूमिनियम के बाद सर्वाधिक मात्रा में पाया जाने वाला अवयव है। मानव को लगभग 4000 वर्ष पूर्व लोहे के बारे में जानकारी थी। 14वीं शताब्दी में ब्लास्ट फर्नेस के द्वारा धातु का उत्पादन बड़े पैमाने पर होने लगा। 19वीं शताब्दी में लोहे को अनेक रूपों में मिश्र धातुएं बनाकर अथवा इस्पात के रूप में सर्वाधिक उपयोग में लिया जाने लगा।

लोहे के मुख्य खनिज अयस्क निम्न है :–

1.	मैग्नेटाइट	F_3O_4	72.4% लोहा
2.	हैमेटाइट	Fe_2O_3	72.00% लोहा
3.	लिमोनाइट	$Fe_2O_3.H_2O$	59.63% लोहा
4.	सिडेराइट	$FeCO_3$	48.20% लोहा

उपयुक्त खनिजों के अलावा भी विभिन्न प्रकार के लोह युक्त खनिज होते हैं, किन्तु लोह अयस्क के रूप में सर्वाधिक महत्वपूर्ण खनिज मेग्नेटाइट एवं हेमेटाइट है।

वितरण

भारत में इण्डियन ब्यूरो ऑफ माइन्स (IBM) के अनुसार वर्तमान समय में 28.52 बिलियन टन हेमेटाइट और मेग्नेटाइट का कुल निचय है। भारत विश्व में प्रमुख लोह उत्पादक देश है और निर्यात भी करता है।

भारत में आन्ध्रप्रदेश, छत्तीसगढ़, गोवा, झारखण्ड, कर्नाटक, मध्यप्रदेश, महाराष्ट्र, ओड़िसा व राजस्थान प्रमुख लौह उत्पादक राज्य है (चित्र 6.1)।

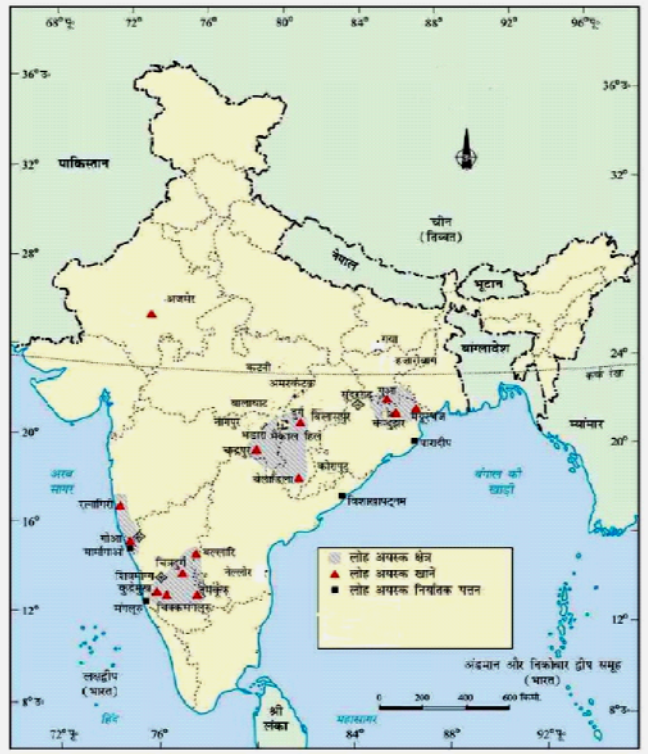

चित्र 6.1 : भारत में लोह खनिज निक्षेप का वितरण

झारखण्ड–उड़ीसा

सिंहभुज (झारखण्ड), केआन्झर, बानाप एवं मयूरभंज (उड़ीसा) में महत्वपूर्ण लोह निक्षेप विद्यमान है। इन क्षेत्रों में हेमेटाइट महत्वपूर्ण लोह अयस्क खनिज है, यह खनिज बैडेड हेमेटाइट क्वार्टजाइट (BHQ) और बैडेड हेमेटाइट जेस्पर (BHJ) के रूप में मिलता है। इन्हें बैंडेड आयरन फॉर्मेशन (BIF) भी कहते है।

इस क्षेत्र में मुख्य खनन स्थल निम्नानुसार हैं :–

1. गुआ एवं मनोहरपुर
2. गोआमुण्डी, गुरुमहिसनी, सुलाइपान एवं बदाम पहाड़
3. बरामजदा
4. किरबुरू
5. बरसुआ
6. बोलोनी

इस क्षेत्र में टिस्को, राऊरकेला एवं दुर्गापुरा स्टील प्लाण्ट स्थित है।

मध्यप्रदेश–छत्तीसगढ़ क्षेत्र

इस क्षेत्र में महत्वपूर्ण निक्षेप बस्तर, दुर्ग, जबलपुर, ग्वालियर आदि जिलों में फैले हुए हैं। बस्तर एवं दुर्ग जिलों के निक्षेप झारखण्ड–उड़ीसा के निक्षेपों के समान है। बस्तर जिले में हेमेटाइट अयस्क खनिज बैंडेड हेमेटाइट क्वार्टजाइट और बैंडेड हेमेटाइट जेस्पर के मिलते हैं। यह सभी प्रीकैम्बियन काल की चट्टानें हैं।

इसके अतिरिक्त बैलाडेला एवं रावघाट क्षेत्र में भी महत्वपूर्ण लौह निक्षेप विद्यमान है।

कर्नाटक

कर्नाटक में लोह अयस्क अनेक क्षेत्रों में पाया जाता है। चिकमगलूर, सान्दुर, होसपेट तथा रामगिरि क्षेत्र में उच्चकोटि के निक्षेप विद्यमान है। बाबाबुदान पहाड़ियों में 52 से 62 प्रतिशत लोहे वाले निक्षेप विद्यमान है।

महाराष्ट्र

इस राज्य में चांदा एवं रत्नागिरि में प्रमुख लोह निक्षेप मिलते हैं। चांदा जिले के अयस्क में लोहे की मात्रा 61 से 71 प्रतिशत है। अल्प महत्व के लेटेराइट निक्षेप सतारा, कोलावा, कोल्हापुर में विद्यमान है।

तमिलनाडु

इस प्रदेश में सेलम एवं तिरूचिरापल्ली जिलों में लोहे के निक्षेप विद्यमान है। अयस्क में लोहे की मात्रा 35 से 45 प्रतिशत तक है। यहां पर लोह बैंडेड मेग्नेटाइट क्वार्टजाइट (Banded Magnetite Quartzite, BMQ) के रूप में कंजमलार क्षेत्र में नौ पहाड़ियां स्थित हैं। बैंडेड मेग्नेनाइट क्वार्टजाइट में नाइस व ऐम्फिबोलाइट अन्तर्वेधी शैल के रूप में मिलती है। इस क्षेत्र में मिलने वाले अयस्क में सिलिका की मात्रा 41.2 से 56.2 प्रतिशत तक है।

आन्ध्रप्रदेश

इस प्रदेश में लोह निक्षेप अनन्तपुर, खम्भामेट एवं कडप्पा जिले में मिलते हैं। प्रमुख खनिज अयस्क हेमेटाइट प्रकृति का है। यह कडप्पा क्वार्टजाइट एवं धारवार क्वार्टजाइट के साहचर्य में मिलता है। आन्ध्रप्रदेश के निक्षेप निम्नकोटि के हैं।

गोवा

गोवा के बिचोलिम, सतारी, संगुएम तथा क्यूपेम क्षेत्रों में लोह निक्षेप विद्यमान है। यहां पर खुली खदानों से लोह अयस्क प्राप्त किया जाता है। यहां पर स्थित अयस्क खनिज हेमेटाइट प्रकृति का है।

राजस्थान

राजस्थान में लोहे के निक्षेप जयपुर, झुंझुनू, दौसा, सवाईमाधोपुर, सीकर व भीलवाड़ा जिले में मिलते हैं। राजस्थान में लोह अयस्क मुख्यतः हेमेटाइट और मेग्नेटाइट खनिज युक्त है। जयपुर–दौसा जिलों में मोरीजा, रामपुरा, नीमला, रायलो कोटपुतली व डाबला क्षेत्रों में लोह निक्षेप विद्यमान है।

झुंझुनू जिले में टोंड, बिमौर, जमालपुर तथा काली पहाड़ी में, सीकर जिले में नारड़ा, यानोवास, बगोली व सराय, सवाईमाधोपुर जिले में टोडा भीम, रघुनाथगढ़, बसवा व रायसिंहनगर तथा भीलवाड़ा जिले में तिरगा, धूलखेड़ा व पुर क्षेत्र में लोह निक्षेप विद्यमान है।

सीसा–जस्ता

सीसा एवं जस्ता दोनों साथ ही अयस्क खनिजों के रूप में अवस्थित होते हैं। इसके अतिरिक्त इन धातुओं के साथ चांदी और केडमियम भी मिलते हैं। सीसे का सर्वाधिक उपयोग लेड एसिड बैटरी निर्माण में और जस्ते का उपयोग गेलवेनाइजिंग उद्योग में होता है। भारत में इण्डियन ब्यूरो ऑफ माइन्स के 2013 की रिपोर्ट के अनुसार 685.59 मिलियन टन सीसा जस्ता के अयस्क विद्यमान है। राजस्थान में भारत का सर्वाधिक सीसा–जस्ता अयस्क 607.53 मिलियन टन विद्यमान है। यह भारत के कुल संसाधनों का 88.61 प्रतिशत है। आन्ध्रप्रदेश में 22.69 मिलियन टन (3.31%), मध्यप्रदेश 14.84 मिलियन टन (2.16%), बिहार 11.43 मिलियन टन (1.67%), महाराष्ट्र में 9.27 मिलियन टन (1.35%) अयस्क निक्षेप विद्यमान है। इसके अतिरिक्त गुजरात, मेघालय, उड़ीसा, सिक्किम, तमिलनाडु, उत्तराखण्ड व पश्चिमी बंगाल में अल्प भाग में निक्षेप विद्यमान है।

खनिज अयस्क

सीसे व जस्ते के महत्वपूर्ण निम्न खनिज अयस्क है।

सीसा (Pb)

1.	गैलेना	PbS	86.6% Pb
2.	सेरूसाइट	$PbCO_3$	75.5% Pb
3.	ऐंगलेसाइट	$PbSO_4$	68.3% Pb

जस्ता (Zn)

1.	स्फेलेराइट	ZnS	67.0% Zn
2.	स्मिथसोनाइट	$ZnCO_3$	52.0% Zn
3.	जिन्काइट	ZnO	80.3% Zn
4.	बिलेमाइट	Zn_3SiO_4	58.4% Zn

वितरण

राजस्थान

उदयपुर जिला – जावर विश्व का प्राचीनतम जस्ते के पिघलने वाले स्थान के रूप में पहचाना जाता है। राजस्थान में Pb-Zn प्रीकैम्ब्रियम काल के शैल समूहों में जावर (उदयपुर), रामपुरा–अगूचा, पुर–बनेरा (भीलवाड़ा), दरीबा–राजपुरा (राजसमंद) और कायर–घूघरा (अजमेर) क्षेत्र में मिलता है।

उदयपुर से 40 कि.मी. दूर जावर निक्षेप स्थित है। जावर सीसा–जस्ता पट्टिका 20 कि.मी. की दूरी हमेटा मगरा से परसाद गांव तक फैली हुई है। सीसा–जस्ता अयस्क जावर के डोलामाइट व फिलायट अतिथेय शैल में अवस्थित है। इस क्षेत्र में मोचिया मगरा, बावा, बलारिया, बरोई मगरा तथा जावरमाला मुख्य सीसा–जस्ता निक्षेप वाली पहाड़ियां हैं।

राजसमन्द जिला

राजसमन्द जिले में दरीबा–राजपुरा–बेथुम्बी सीसा–जस्ता पट्टी विद्यमान है। यह निक्षेप मंगलवाड़ काम्पलेक्स में स्थित है। सीसा जस्ता सल्फाइड अयस्क डोलोमाइट मार्बल एवं कार्बन युक्त शिष्ट में विद्यमान है। यहां पर स्फैलेराइट, गेलेना, पायराइट पिरोहटाइट मुख्य अयस्क खनिज है। गौण खनिजों के रूप में चेल्कोपायराइट, टेटराहेडराइट, आर्सेनोपायराइट मिलते हैं।

भीलवाड़ा जिला

रामपुरा – आगूचा निक्षेप : रामपुरा–आगूचा में प्राचीन समय में खनन कार्य होता था जो कालांतर में बंद हो गया। इसे पुनः 1977 में खान–भूविज्ञान विभाग राजस्थान द्वारा खोजा गया। यहां की विवृत खान (Open cost mine) से 3000 टन प्रतिदिन की दर से खनन होता है। यह भारत का सबसे बड़ा सीसा–जस्ता निक्षेप है।

यहां पर सीसा–जस्ता ग्रेफाइट–माइका–सिलेमेनाइट शिस्ट/नाइस में मिलता है। यह क्षेत्र एम्फीबोलाइट से ग्रेन्युलाइट संलक्षणी से प्रभावित रहा है। निक्षेप संस्तरण है तथा लगभग 100 मीटर लम्बाई में स्थित है। यहां पर लगभग 61 मिलियन टन निचय विद्यमान है जिसमें जस्ता 13.48% तथा सीसा 1.93% चांदी 54 पीएम (पार्ट पर मिलियन) विद्यमान है।

पुर–बनेड़ा–भीण्डर पट्टिका : यह सीसा–जस्ता पट्टी उसर में बनेड़ा से लेकर दक्षिण में भीण्डर तक लगभग 130 कि.मी. दूरी तक फैली हुई है। सम्पूर्ण पट्टी में प्राचीन काल में किये गये खनन तथा धातु को पिघलाने सम्बन्धी साक्ष्य मिलते हैं।

पुर–बनेड़ा–सांकली खण्ड : यह खण्ड लगभग 50 कि.मी. लम्बा है। यह क्षेत्र पुर–बनेड़ा–सांकली क्षेत्र में फैला हुआ है। इस क्षेत्र में बैण्डेड आइरन क्वार्टजाइट (Banded Iron Quartzite; BIF), एम्फीबोलाइट तथा मैग्नेटाइट कार्बोनेट खनिजी भवन की मुख्य आतिथेय शिलाएं हैं। सीसा–जस्ता सल्फाइड खनिजी भवन के इस क्षेत्र में दो खण्ड स्थित है। पूर्वी अचल उत्तर में मालीखेड़ा से दक्षिण में तिरंगा तक स्थित है। इसमें सामोदी, देवदास, धूलखेड़ा, रनिगपुरा व जालिया क्षेत्र आते हैं। पश्चिमी अचल उत्तर में मानपुरा से दक्षिण में गुरला तक है। इस क्षेत्र में सलामपुरा, दरीबा–सुरास आता है।

सिरोही जिला

सिरोही जिले के गुजरात से लगी हुई सीमा पर डेरी क्षेत्र में सीसा–जस्ता–ताम्र के निक्षेप विद्यमान है। खनिज भवन क्वार्टज–क्लोराइट–एम्फीबोलाइट शिस्ट तथा टाल्क–क्लोराइट शिस्ट में हुआ है। यह निक्षेप छोटे आकार का है जिसमें लगभग 17% धात्विक भाग है।

अजमेर जिला

1. **अजमेर सीसा–जस्ता पट्टी :** अजमेर में सीसा–जस्ता पट्टी दक्षिण–पश्चिम में खरवा से उत्तर–पूर्व में होशियारा तक 60 कि.मी. की लम्बाई में फैली हुई है। इस क्षेत्र में सीसा खान (तारागढ़), लोहा खान, घूघरा व कायर में प्राचीन खदानें मिलती है। इस पट्टी में निम्न निक्षेप पाये जाते हैं :–

(1) घूघरा सीसा–जस्ता निक्षेप
(2) कायर सीसा–जस्ता निक्षेप
(3) मादरपुरा सीसा–जस्ता निक्षेप
(4) पूर्वी लोहा खान
(5) माता डूंगरी ब्लॉक
(6) भीमयो ब्लॉक
(7) लोहाखान निक्षेप

2. **सावर पट्टी :** सावर क्षेत्र में लघु आकार के सीसा–जस्ता निक्षेप विद्यमान है। इस क्षेत्र में धात्विक खजिन कार्बोनेट, फिलाइट व ज्वालामुखी अपरद में स्थित है। खनिजी भवन संस्तरणबद्ध है तथा अयस्क अधिकांशतः सावर पट्टी के उत्तरी एवं दक्षिणी भाग में हुआ है। ग्रिटी क्वार्टजाइट सीसा–जस्ता अयस्क की आतिथेय शैल है। इस पट्टी में निम्न ब्लॉक है :–

(1) बाजता ब्लॉक
(2) टिरवी विस्तार ब्लॉक

आन्ध्र प्रदेश

राज्य के गुन्टूर, कडप्पा, नलगोण्डा एवं खम्माम जिले में सीसा–जस्ता अयस्क की उपलब्धि के प्रमाण मिले हैं।

झारखण्ड

हजारीबाग, सिंहभूमि, पलाम एवं रांची जिले में गैलेना के लघु आकार के निक्षेप मिलते हैं।

तांबा (ताम्र)

ताम्र एक महत्वपूर्ण अलोह धातु है। सुचालकता के कारण इसका सर्वाधिक उपयोग विद्युत एवं इलेक्ट्रोनिक कार्यों में होता है। इसके अलावा ऑटोमोबाइल, मिश्र धातु निर्माण, बर्तन निर्माण आदि में भी होता है। भारत के 14 राज्यों में ताम्र खनिज निक्षेप विद्यमान है। आर्थिक दृष्टि से महत्वपूर्ण निक्षेप राजस्थान, झारखण्ड, मध्यप्रदेश, आन्ध्र प्रदेश, कर्नाटक और सिक्किम में स्थित है। आई. बी.एम. के अनुसार भारत में कुल 1394.42 मिलियन टन ताम्र संसाधन उपलब्ध हैं, इसमें से 369.49 मिलियन टन संसाधन निचय (रिजर्व) श्रेणी के है। कुल 1394.42 मिलियन टन ताम्र संसाधनों में से राजस्थान में 688.5 मिलियन टन (47.9%), मध्यप्रदेश में 404.3 मिलियन टन (29%) और झारखण्ड में 226. 08 मिलियन टन (16.2%) ताम्र संसाधन विद्यमान है।

इस तरह से भारत में राजस्थान, मध्यप्रदेश तथा झारखण्ड प्रमुख ताम्र निक्षेपों वाले राज्य हैं।

प्रमुख खनिज अयस्क

प्राकृत तांबा	Cu	100% Cu
चेल्कोसाइट	Cu_2S	79.8% Cu
कोवेलाइट	CuS	66.4% Cu
बोर्नाइट	Cu_5FeS_{12}	63.6% Cu
चेल्कोपाइराइट	$CuFeS_2$	34.5% Cu
मेलाकाइट	$CuCO_3C_4(OH)_2$	57.3% Cu

भारत में निम्न प्रमुख ताम्र पट्टिकाएं व निक्षेप विद्यमान है :–

1. **सिंहभूम ताम्र पट्टिका :** यह पट्टी झारखण्ड में स्थित है। सिंहभूम ताम्र पट्टी बहरोड़ा से दुर्गापुरम 128 किमी की लम्बाई में फैली हुई है। ताम्र खनिज शिस्ट, क्वार्टजाइट, मायलोनाइट व कान्गोलोमेरेट आतिथेय शैलों में अवस्थित है। ताम्र खनिज मुख्यतः सिंहभूम शियर जोन (Singhbhum Shear Zone) में केन्द्रित है। यहां पर चेल्कोपायराइट और पायराइट मुख्य अयस्क खनिज है।

2. **खेतड़ी ताम्र पट्टिका :** यह राजस्थान राज्य के झुन्झुनू जिले में सिघाना से रघुनाथगढ़ लगभग 80 किमी लम्बाई में स्थित है। यहां पर ताम्र अयस्क खनिज फिलायट, क्वार्टजाइट व शिस्ट आतिथेय शैलों में विद्यमान है। ताम्र आर्थिक महत्व के निक्षेप मधान कुदान, कोलीहान तथा चांदमारी क्षेत्र में है। यहां पर मुख्य अयस्क खनिज पिरोहटाइट, चेलको पायराइट एवं पायराइट है।

3. **मलान्जखण्ड ताम्र पट्टिका :** यह ताम्र पट्टी मध्यप्रदेश के बालाघाट जिले में मलान्जखण्ड पहाड़ी क्षेत्र में विद्यमान है। इस क्षेत्र में छः पहाड़ी चोटियां हैं जो 2.6 किमी लम्बाई में फैली हुई है। यहां पर ताम्र अयस्क खनिज पूर्व में विद्यमान विभंगो में क्वार्टजाइट शिराओं के भरण के साथ हुआ है। मुख्य अयस्क खनिज चेल्कोपायराइट, पायराइट, कोवेलाइट, बोर्नाइट व चेल्कोसाइट है।

4. **अग्निगुंडाला ताम्र पट्टिका :** यह निक्षेप आन्ध्रप्रदेश के गुन्टूर जिले में स्थित है। निक्षेप का कुछ भाग प्रकासभ जिले में है। पट्टिका के मुख्य निक्षेप बदलमोटू, धूकोंडा एवं नालाकोंडा है। कडप्पा समूह की केलकेरियस क्वार्टजाइट एवं डोलामाइट आतिथेय शैल है। ताम्र खनिज मुख्यतः क्वार्टजाइट में अवस्थित है।

5. **चित्रदुर्गा ताम्र पट्टिका :** यह ताम्र पट्टी कर्नाटक राज्य के गदग से श्रीरंगपतनम तक 460 किमी लम्बाई और 40 किमी अधिकतम चौड़ाई में फैली हुई है। अयस्क निर्माण कायांतरित अवसाद एवं ज्वालामुखी शैलों में हुआ है। इसे चित्रदुर्गा सल्फाइड बेल्ट भी कहा जाता है। मुख्य निक्षेप बेलूगुडा, इंगलदल और कुचिगंगालु क्षेत्र में है। मुख्य अयस्क खनिज चेल्कोपायराइट, पायराइट, मेलाकाइट आदि है। इस पट्टिका में ताम्र की मात्रा न्यून है।

6. **अंबामाता निक्षेप :** यह निक्षेप गुजरात राज्य के बनासकांठा जिले में अंबामाता क्षेत्र में विद्यमान इस निक्षेप में ताम्र अयस्क सीसा–जस्ता अयस्क के साथ विद्यमान है। यहां पर चेल्कोपायराइट, पायराइट स्फलेरायट व गेलेना अयस्क खनिज मिलते हैं। अंबामाता निक्षेप की लम्बाई 2.14 किमी और अधिकतम चौड़ाई 700 मीटर है।

7. **रांगपो निक्षेप :** यह निक्षेप सिक्किम राज्य में गंगटोक के दक्षिण में 40 किमी दूर स्थित है। यह बहु धात्विक खनिजीय क्षेत्र रांगपो से डिकचु तक फैला हुआ है। इस क्षेत्र में डालिंग समूह की क्लोनाइट–सेरीसाइट, फिलायट व क्वार्टजाइट शैल विद्यमान है। यहां पर सल्फाइड खनिज पट्टिकाओं का निर्माण करते हैं। मुख्य खनिज चेल्कोपायरायट पिरोहटायट, स्फेलेरायट तथा गेलेना विद्यमान है।

कोयला

कोयला दृढ़ ज्वलनशील गहरे रंग का अवसादी शैल है, इसका प्रयोग मुख्यतः ठोस जीवाश्म ईंधन के रूप में किया जाता है। इसमें मुख्यतः कार्बन विद्यमान होता है, इसके अतिरिक्त हाइड्रोजन, सल्फर, ऑक्सीजन, नाइट्रोजन आदि अवयव भी विद्यमान होते हैं। कोयले का निर्माण भूगर्भीय काल में वानस्पतिक पदार्थों के भूमि में दबने के बाद ताप एवं दाब के प्रभाव के कारण हुआ है।

कोयले का उपयोग विद्युत उत्पादन, इस्पात उद्योग, सीमेंट उद्योग आदि में किया जाता है। किसी भी राष्ट्र के विकास में कोयले का महत्वपूर्ण योगदान है।

कोयले के प्रकार

कोयले में कार्बन की मात्रा, रासायनिक संरचना व अन्य पदार्थों की उपस्थिति के आधार पर निम्नानुसार प्रमुख रूप से वर्गीकृत किया गया है :–

(1) एन्थ्रासाइट (2) बिटुमेनी
(3) लिग्नाइट (4) पीट

भू–वैज्ञानिक शब्दावली में 'कोयला' शब्द एन्थ्रासाइट व बिटुमेनी दोनों अभिप्रेरित है। 'लिग्नाइट' शब्द का प्रयोग काले–भूरे रंग के कोयले, जिसका निर्माण तृतीय महाकल्प में हुआ है, के लिए किया जाता है।

1. **एन्थ्रासाइट :** यह श्रेष्ठ प्रकार का कोयला माना गया है, इसमें कार्बन की मात्रा सर्वाधिक होती है। यह गहरे काले रंग का ठोस पदार्थ होता है, जिसमें भंगुरता, उच्चद्युति एवं शंखाभ विभंग विद्यमान होते हैं। इसके जलने से अत्यधिक उष्मा प्राप्त होती है और धुएं की मात्रा सबसे कम उत्पन्न होती है।

2. **बिटुमेनी :** यह कोयला एन्थ्रासाइट से निम्नकोटि का होता है। इसमें कार्बन की मात्रा 42.4 से 80.4 प्रतिशत विद्यमान होती है। इसका रंग काला तथा यह भंगुर व पट्टित होता है। इसको तोड़ने पर घनाभ या प्रिज्मीय खण्ड प्राप्त होते हैं। इसको कार्बन प्रतिशतता के आधार पर वर्गीकृत किया जाता है। इसमें नमी एवं वाष्पशील पदार्थ विद्यमान होते हैं। यह जलने पर धुआं देता है। इसके जलने पर काफी उष्मा प्राप्त होती है।

3. **लिग्नाइट :** यह कोयला भूरे–काले रंग का होता है। इसका निर्माण मुख्यतः तृतीय महाकल्प में हुआ है। इसके वानस्पतिक अंश विद्यमान होते हैं तथा इसमें नमी काफी मात्रा में होती है। सामान्यतः इनमें सल्फाइड की मात्रा अधिक होती है। इसको वायुमंडल में खुला छोड़ने पर विखंडन हो जाता है। इसके जलने पर उष्मा की मात्रा कम मिलती है।

4. **पीट :** इसे कोयला नहीं माना जाता है। इसका उपयोग भी ईंधन के रूप में होता है। पीट कोयला निर्माण की प्रथम अवस्था है अतः इसमें वानस्पतिक पदार्थों की मात्रा अधिक होती है।

कोयले की गुणवत्ता

कोयले की गुणवत्ता को ईंधन अनुपात से निम्नानुसार दर्शाया जाता है –

$$\frac{\text{स्थित कार्बन}}{\text{वाष्पशील पदार्थ}} = \text{ईंधन अनुपात (Fuel Ratio)}$$

एन्थ्रासाइट का ईंधन अनुपात सर्वाधिक और पीट का ईंधन अनुपात न्यूनतम होता है।

कोयले की गुणवत्ता निर्धारण में गंधक की मात्रा का भी आकलन किया जाता है। कोयले में गंधक की मात्रा हानिकारक होती है। यदि कोयले में गंधक की मात्रा 1.5 प्रतिशत से अधिक है तो उसको उपभोग कॉक निर्माण में नहीं किया जाता है। अन्य अपद्रव्यों में राख की मात्रा होती है। अज्वलनशील पदार्थ जैसे मृतिका, गाद, सिलिका या अन्य अपद्रव्य राख के रूप में बचे रहते हैं।

आई.बी.एम. के द्वारा कोयले को निम्नानुसार विभक्त किया है :–

(अ) **कोयला :** इसमें वे सभी कोयला निक्षेप आते हैं जिनका निर्माण गोडवाना अवसादन के समय हुआ है यह कोयला निक्षेप प्रायःद्वीपीय भारत तथा आसाम एवं सिक्किम में पाये जाते हैं। तृतीय महाकल्प में असम, अरूणाचल प्रदेश, नागालैण्ड तथा मेघालय में भी कोयला निक्षेप हुआ है। यह कोयला लिग्नाइट प्रकृति का नहीं है। अतः ''कोयला'' शब्द में एन्थ्रासाइट अथवा बिटुमेनी प्रकृति का कोयला अर्न्तनिहित है। भारत के विभिन्न राज्यों का वितरण सारणी सं. 1 में दर्शाया गया है।

(ब) **लिग्नाइट :** भारतीय लिग्नाइट निक्षेप तृतीय महाकल्प के अवसादों के साथ स्थित है। लिग्नाइट मुख्यतः तमिलनाडु, पुडुचेरी, केरल, गुजरात, राजस्थान व जम्मू कश्मीर में स्थित है।

सारणी 6.1 : भारत में कोयले के निचय (1.4.2013 तक IBM द्वारा)

(मिलियन टन में)

राज्य	प्रमाणित	सम्भावित	होने योग्य	कुल
भारत : कुल	**123181.63**	**142631.64**	**33100.79**	**298914.06**
गोण्डवाना	**122587.82**	**142532.30**	**32301.30**	**297424.42**
आन्ध्र प्रदेश	9604.46	9553.91	3048.59	22206.96
आसाम	2.79			2.79
बिहार	–		160.0	160.00
छत्तीसगढ़	14779.18	34106.61	3283.25	52169.04
झारखण्ड	41155.36	32986.36	6559.47	80701.19
मध्य प्रदेश	9817.61	12354.80	2888.76	25061.17
महाराष्ट्र	5667.48	3186.35	2110.21	10964.04
उड़ीसा	27283.74	37110.19	9316.08	73710.01
सिक्किम	–	58.25	42.98	101.23
उत्तर प्रदेश	884.04	177.76		1061.80
पश्चिम बंगाल	13395.95	12995.28	4891.96	31283.19
तृतीय महाकल्प कोयला	**593.81**	**99.34**	**799.49**	**1492.64**
आसाम	464.78	42.72	3.02	510.52
अरूणाचल	31.23	40.11	18.89	90.23
मेघालय	89.04	16.51	470.93	576.48
नागालैण्ड	8.76	–	306.65	315.41

सारणी 6.2 : लिग्नाइट के निचय (1.4.2013 तक IBM द्वारा)

(मिलियन टन में)

राज्य	प्रमाणित	सम्भावित	होने योग्य	कुल
भारत : कुल	**6180.90**	**26282.67**	**10752.29**	**43215.86**
गुजरात	1278.65	283.70	1159.70	2722.05
जम्मू – कश्मीर	–	20.25	7.30	27.55
केरल	–	–	9.65	9.65
राजस्थान	1167.02	2671.93	1850.57	5689.52
तमिलनाडु	3735.23	22900.05	7712.43	34347.71
पुडुचेरी	–	405.61	11.00	416.61
पश्चिम बंगाल	–	1.13	1.64	2.77

भारत के 79% लिग्नाइट निचय तमिलनाडु में स्थित है। लिग्नाइट का वितरण सारणी सं. 2 में दर्शाया गया है।

भारत में कोयले का वितरण

गोडवाना काल तथा तृतीय महाकल्प के अवसादी शैलों में पाया जाना है। गोडवाना समूह के शैलों में मुख्यतः एन्थ्रासाइट एवं बिटुमेनी प्रकृति का कोयला मिलता है जबकि तृतीय महाकल्प का कोयला उच्च गंधक युक्त लिग्नाइट है। भारत में कोयले के वितरण को चित्र 6.2 में पेट्रोलियम पदार्थों के साथ दर्शाया गया है।

चित्र 6.2 : भारत में कोयले और पेट्रोलियम पदार्थों का वितरण

गोडवाना समूह के कोयला निक्षेप

यह निक्षेप भारत में सोम, दामोदर, गोदावरी महानदी एवं इनकी सहायक नदी घाटियों में मिलते हैं। गोडवाना काल में इन भागों स्वच्छ पानी की झीलें विद्यमान थी तथा भूभाग का वातावरण अत्यधिक नम एवं घनी वनस्पति वाला था। इन कारणों से अन्य अवसादों के साथ बड़ी मात्रा में वनस्पति भी निक्षेपित हुई जो वर्तमान में कोयला निक्षेपों के रूप में मिलते हैं। इनका विवरण निम्नानुसार है :–

बंगाल

रानीगंज कोयला क्षेत्र बंगाल का प्रमुख कोयला क्षेत्र है। यह वीरभुम, वर्दवान, जलपाईगुड़ी, पुरूलिया आदि क्षेत्रों में फैला हुआ है। यह कोयला निक्षेप अधो गोडवाना समूह में अवस्थित है। यह कोयला श्रेष्ठ प्रकृति का है।

झारखण्ड

झारखण्ड में झरिया, पूर्वी बोकारो, पश्चिमी बोकारो, रामगढ़, उत्तरी करणपुरा, दक्षिणी करणपुरा, डाल्टन गंज, देवगढ़ आदि महत्वपूर्ण कोयला क्षेत्र है। यहां पर श्रेष्ठ गुणवत्ता का कोयला उपलब्ध है। झरिया का कोयला धातुकर्म में प्रयुक्त होता है। झरिया कोयला क्षेत्र में बराकार श्रेणी में मोटाई 2000 फीट है इसमें कोयले के 24 से भी अधिक संस्तर विद्यमान है। प्रत्येक संस्तर 4 फीट से भी अधिक मोटाई वाले है।

मध्यप्रदेश – छत्तीसगढ़

मध्यप्रदेश के मयूरगंज क्षेत्र में सिगरौली, उमरिया, जोहिल्ला सोहगपुर कोयला निक्षेप क्षेत्र है। छत्तीसगढ़ में दो मुख्य कोयला निक्षेप क्षेत्र है। प्रथम – टाटापानी–रामकोला, झिलमिलि, कोरियागढ़, विश्रामपुर, बंसर, लखनपुर, पंचवाहिनी क्षेत्र छत्तीसगढ़ में दूसरा मुख्य कोयला क्षेत्र हसदी–रालपुर, कोरबा, रायगढ़, मांड नदी व कंकणी में फैला हुआ है।

लिग्नाइट

लिग्नाइट निम्नकोटि का कोयला है यह इओसीन काल

(तृतीय कल्प) के शैलों में अवस्थित है। लिग्नाइट का महत्व ऐसे राज्यों में अधिक है जहां पर उच्चकोटि का कोयला उपलब्ध नहीं है। इसका उपयोग विद्युत उत्पादन में होता है। नेवेली लिग्नाइट कार्पोरेशन लिमिटेड भारत सरकार का नवरत्न उपक्रम है जो कोयला और लिग्नाइट का खनन तथा तापीय विद्युत उत्पादन में कार्यरत है। नेवेली भारत का महत्वपूर्ण लिग्नाइट निक्षेप क्षेत्र है।

भारत में लिग्नाइट के निचय तमिलनाडु, राजस्थान, पुडुचेरी, जम्मू–कश्मीर, केरल, गुजरात में स्थित है। तमिलनाडु के नेवेली क्षेत्र का लिग्नाइट मुख्यतः विद्युत उत्पादन और अन्य औद्योगिक कार्यों के लिए किया जाता है।

पेट्रोलियम

पेट्रोलियम शब्द पेट्रो (Petro) = शैल (Rock) का ओलेयम (Oleum) = तेल (Oil) से बना जिसका अभिप्रायः ''शैलों से प्राप्त तेल'' से है। इसे (Mineral oil) खनिज तेल भी कहा जाता है। पेट्रोलियम अवसादी शैलों से प्राप्त किया जाता है। धरती से प्राप्त पेट्रोलियम को परिष्कृत कर पेट्रोल, डीजल, केरासीन व अन्य हाइड्रोकार्बन पदार्थ प्राप्त किये जाते हैं। पेट्रोलियम भू–सतह के नीचे पाया जाता है इसको शोधन के बाद काम में लिया जाता है।

पेट्रोलियम विभिन्न प्रकार के हाइड्रोकार्बन यौगिकों का मिश्रण होता है। इसमें ऑक्सीजन, सल्फर और नाइट्रोजन अल्प भाग में पाये जाते हैं। पेट्रोलियम में निम्न कार्बनिक पदार्थ पाये जाते हैं –

1. पेराफिन वर्ग (CnH_2n+2) के सदस्य
2. असंतृप्त हाइड्रोकार्बन
3. बेन्जीन (C_6H_6)
4. पारफिरिन्स (Porphyrins)
5. नेपथीन श्रृंखला (Nephthene series)
6. एसिटिलीन एवं उच्चतर सदस्य

धरती में मिलने वाला पेट्रोलियम सभी स्थानों पर एक–सा नहीं होता है। इनमें घनत्व व पेराफिन, एस्फाल्ट की मात्रा अलग–अलग हो सकती है।

पेट्रोलियम को भूमि से निकालकर रिफाइनरी में लाया जाता है। रिफाइनरी में आसवन के द्वारा पेट्रोलियम से पेट्रोल, डीजल, केरोसीन, बेन्जीन, स्पिरिट, ईथर, मोम, बिटुमन, लुब्रीकेंट व अन्य पदार्थ प्राप्त किये जाते हैं।

पेट्रोलियम का निर्माण समुद्र में जैव पदार्थों के दबने के बाद ऑक्सीजन रहित अपघटन के कारण हाइड्रोकार्बन में बदलने से होता है। जैव पदार्थों का बूंद–बूंद के रूप में पेट्रोलियम में परिवर्तन होता है। यह धीरे–धीरे उपयुक्त रंध्रमय (Porous) तेलाशय शैलों (Reservoir rocks) में स्थानान्तरित होकर आर्थिक महत्व के निचयों में परिवर्तित हो जाते हैं। इसके लिए अवसादी शैल सबसे उपयुक्त होती है। ऐसे अवसादी शैल जिनकी रध्रन्तता (Porosity) और परागम्यता (Permeability) अधिक हो, तेलाशय (Reservoir) में बदल जाते हैं। पेट्रोलियम का आपेक्षिक घनत्व कम होता है अतः तेलाशय के ऊपर अप्रवेशय शैल (Impervious rock) होना भी आवश्यक है। पेट्रोलियम तेलाशय अवनति वलन, डोम, विषम विन्यास के शीर्ष भाग में बनते हैं। संरचनात्मक नियंत्रित तेलाशयों को संरचनात्मक ट्रेप (Structural trap) कहते हैं। विषम विन्यास के बनने वाले तेलाशयों को संतरण ट्रेप (Stratigraphic trap) कहते हैं।

भारत में पेट्रोलियम का वितरण

पेट्रोलियम पदार्थों का वितरण अवसादी बेसिन से नियंत्रित होता है। महानिदेशक हाइड्रोकार्बन, पेट्रोलियम व प्राकृतिक गैस मंत्रालय, भारत सरकार से दिये गये विवरण के अनुसार भारत में भूमि (Onland) और सागर (Offshore) में 200 मीटर आइसोबाथ (Isobath) तक कुल 1.72 मिलियन वर्ग किमी में अवसादी बेसिन स्थित है (चित्र 6.3)।

अब तक 26 बेसिन की पहचान की जा चुकी है। इन बेसिनों

चित्र 6.3 : भारत में पेट्रोलिफेरस अवसादी बेसिन

को चार केटेगरी में विभक्त किया गया है।

केटेगरी I : ऐसे बेसिन जहां पर पेट्रोलियम/गैस का व्यावसायिक उत्पादन हो रहा है।

केटेगरी II : प्रोस्पेक्टिंग के आधार पर चिन्हित जहां पर हाइड्रोकार्बन है किन्तु व्यवसायिक उत्पादन नहीं हो रहा है।

केटेगरी III : ऐसे बेसिन जो पेट्रोलियम/गैस के लिए भूवैज्ञानिक दृष्टि से उपयुक्त है।

केटेगरी IV : सम्भावित उपयुक्त बेसिन।

प्रथम केटेगरी जहां पर वर्तमान में व्यवसायिक पेट्रोलियम/गैस की उत्पादन हो रहा है उसका विवरण निम्नानुसार है –

1. **असम–अराकन बेसिन** (Assam-Arakan Basin) : यह बेसिन 116000 वर्ग किमी में फैला हुआ है इसके तीन टेक्टोनिक अवयव है। जैसे कि (i) असम शेल्फ (ii) नागा बेल्ट (iii) असम–अराकन वलय बेल्ट है।

इस बेसिन में लगभग 100 वर्ष पहले डिगबोई तेल क्षेत्र की खोज हुई। वर्तमान में यहां पर 150 से भी अधिक तेल के कुएं हैं।

2. **खम्भात बेसिन** (Cambay Basin) : खम्भात रिफ्ट बेसिन संकड़ा लम्बा रिफ्ट ग्रेबन (Rift Graben) है जो दक्षिणी गुजरात में सूरत से उत्तर में सांचौर (राजस्थान) तक फैला हुआ है। यह आगे उत्तर में टेक्टोनिक दृष्टि से बाड़मेर बेसिन तक पहुंचता है। पेट्रोलियम की दृष्टि से यह समृद्ध बेसिन है। यह इन्ट्राक्रेटोनिक श्रेणी का रिफ्ट बेसिन है। इसको टेक्टोनिक संरचना के आधार पर निम्न में बांटा गया है –

- सांचौर – थराड़
- मेहसाना अहमदाबाद
- खम्भात – तरापुर
- जम्बूसर – भड़ोच
- नर्मदा खण्ड

इस बेसिन में बड़ी मात्रा में पेट्रोलियम और गैस के कुएं स्थित हैं।

3. **कावेरी बेसिन** : यह बेसिन पूर्वी घाट में स्थित है। यहां पर 1950 से अन्वेषण कार्य प्रारम्भ हुआ। इस बेसिन में छोटे तेल और गैस के क्षेत्र हैं। यह बेसिन कुल 150000 वर्ग किमी क्षेत्र में फैला हुआ है। यह ऑनशोर और ऑफशोर दोनों क्षेत्रों में फैला हुआ है। यह पेरीक्रेटोनिक रिफ्ट श्रेणी का बेसिन है।

4. **कृष्णा–गोदावरी बेसिन** : यह बेसिन भूमि और समुद्र में 40,000 वर्ग किमी क्षेत्र में फैला हुआ है। इस बेसिन के 22 तेल और 55 गैस के कुएं विद्यमान हैं।

5. **मुम्बई ऑफशोर बेसिन** : यह बेसिन भारत के पश्चिमी घाट क्षेत्र में समुद्र सौराष्ट्र बेसिन से लेकर केरल–कोंकण बेसिन तक समुद्र में फैला हुआ है। इसका क्षेत्रफल 1,16,000 वर्ग किमी हुआ है। इस क्षेत्र में सबसे पहले मुम्बई हाइ फील्ड में तेल की खोज हुई थी।

इस क्षेत्र में हीरा, पन्ना, नीलम, मुक्ता रत्ना, ताप्ती आदि तेल और गैस के क्षेत्र विद्यमान है।

6. **राजस्थान बेसिन** : राजस्थान में कुल 1,26,000 वर्ग किमी क्षेत्र में बेसिन विद्यमान है। राजस्थान में बेसिन निम्नानुसार है –

(i) बाड़मेर–सांचौर बेसिन	11,000 वर्ग किमी
(ii) बीकानेर–नागौर बेसिन	70,000 वर्ग किमी
(iii) जैसलमेर बेसिन	45,000 वर्ग किमी

बाड़मेर–सांचौर बेसिन तृतीय महाकल्प; बीकानेर बेसिन पेल्योजाइक तथा जैसलमेर बेसिन मेसोजोइक व सीनोजोइक काल के है। तीनों ही बेसिन टेक्टोनिक दृष्टि से भिन्न है।

राजस्थान में व्यवसायिक स्तर पर गैस एवं तेल का उत्पादन प्रारम्भ हो चुका है और अतिशीघ्र पश्चिमी राजस्थान में रिफाइनरी लगाया जाना प्रस्तावित है।

रॉक फास्फेट

रॉक फास्फेट या फास्फोराइट में कैल्सियम फास्फेट $Ca_3(PO_4)_2$ होता है। यदि P_2O_5 की मात्रा 30 प्रतिशत या अधिक होता है तो यह सीधे ही उर्वरक संयंत्रों में उर्वरक निर्माण हेतु काम में लाया जाता है।

आई बी एम के अनुसार भारत में 396.3 मिलियन टन के रॉक फास्फेट संसाधन है। इसमें से मात्र 348 मिलियन टन ही निचय श्रेणी के हैं।

कुल फास्फेट संसाधनों में से 36% झारखण्ड, 30% राजस्थान, 17% मध्य प्रदेश, 9% उत्तर प्रदेश एवं 8% उत्तराखण्ड में स्थित है। गुजरात और मेघालय में भी मामूली फास्फेट विद्यमान है।

उत्पादकता के आधार पर भारत का 88% रॉक फास्फेट राजस्थान एवं 12% रॉक फास्फेट मध्य प्रदेश से प्राप्त होता है। भारत में कुल रॉक फास्फेट उत्पाद का 52% 15 से 20% P_2O_5, 40% 30-45% P_2O_5, 4% 25.30% एवं शेष 4% 20-25% P_2O_5 वाली ग्रेड का है।

वितरण

राजस्थान

राजस्थान के उदयपुर एवं बांसवाड़ा जिले में प्रोटोरोजोइक एवं जैसलमेर में जुरैसिक काल के रॉक फास्फेट स्थित है। इसमें से उदयपुर जिले के रॉक फास्फेट महत्वपूर्ण है। उदयपुर जिले में स्थित झामर कोटड़ा एवं खरबरिया के गुढ़ा स्थित रॉक फास्फेट निक्षेप अर्धचन्द्राकार में 16 किमी लम्बे तथा अधिकतम 35 मीटर चौड़ाई में फैले हुए हैं। यह निक्षेप डोलोमाइट एवं कार्बन फिलायट के साथ जमा है। यहां पर मिलने वाले रॉक फास्फेट में 10 से 35 प्रतिशत P_2O_5 मिलता है। यहां रॉक फास्फेट स्ट्रोमेटोलाइट शैवाल संरचना के रूप में मिलता है। इस क्षेत्र में निम्न प्रकार के रॉक फास्फेट निक्षेप है :–

(1) डोलोमाइट के साथ स्तम्भाकार स्ट्रोमेटोलाइट
(2) डोलोमाइट के साथ परतदार स्ट्रोमेटोलाइट
(3) सिलिकीय संकोणश्मिक व गोलाकार खण्डों में
(4) फॉस्फेट की मोटी परतों के रूप में अवसाद
(5) बिखरे हुए फास्फेटीय अवसादों के रूप में

निक्षेपों की खोज 1968 में राजस्थान खान एवं भूविज्ञान विभाग द्वारा की गयी थी। यहां पर राज्य सरकार की उपक्रम राजस्थान स्टेट माइन्स एण्ड मिनरल्स (RSMM) द्वारा खनन कार्य किया जाता है। झामर कोटड़ा के पास मटून, खरबरिया का गुढ़ा, नीमच माता आदि स्थानों में निक्षेप विद्यमान है। झामर कोटड़ा भारत का सबसे प्रमुख रॉक फास्फेट उत्पादक क्षेत्र है।

मध्यप्रदेश

झाबुआ में पिपलोदा तथा धानपुरा खाटम्बा ब्लॉक में रॉक फास्फेट मिलता है। यहां रॉक फास्फेट पट्टिकाओं के रूप में विद्यमान है जिसमें डोलोमाइट और चर्ट भी पाया जाता है। पिपलोदा के 340 मीटर और खाटम्बा में 130 मीटर लम्बाई में निक्षेपों का विस्तारण है। रॉक फास्फेट स्ट्रोमेटोलिटिक प्रकृति का है।

जिप्सम

जिप्सम ($CaSO_4.2H_2O$) एक हाइड्रेटेड कैल्सियम सल्फेट है। आई बी एम के अनुसार भारत में जिप्सम के 1286 मिलियन टन संसाधन है इसमें से 39 मिलियन टन निचय श्रेणी में वर्गीकृत किये गये हैं। जिप्सम का उपयोग उद्योगों, खाद निर्माण, सीमेंट, पेंट उद्योग, शल्य क्रिया में प्लास्टर, मृदा उपचार (Soil treatment) आदि में होता है।

भारत के कुल उपलब्ध जिप्सम में से 82% राजस्थान में, 14% जम्मू कश्मीर में तथा शेष 4% तमिलनाडु, गुजरात, हिमाचल प्रदेश, कर्नाटक, उत्तराखण्ड, आंध्र प्रदेश और मध्यप्रदेश में स्थित है। भारत में राजस्थान, जम्मू कश्मीर और गुजरात जिप्सम के प्रमुख उत्पादक राज्य हैं।

जिप्सम निम्न प्रकार से मिलता है :–

(1) शैल जिप्सम
(2) जिप्साइट अशुद्ध घूसर
(3) सेटिन स्पार : यह जिप्सम की रेशेदार क्रिस्टलीय प्रकार है।
(4) सेलेनाइट : पारदर्शी जिप्सम के क्रिस्टल
(5) एल्बास्टर : बारीक दानेदार अल्प पारदर्शी जिप्सम

वितरण :

राजस्थान

राजस्थान में बाड़मेर, बीकानेर, श्रीगंगानगर, हनुमानगढ़, जैसलमेर, जालोर और नागोर जिलों में जिप्सम का खनन होता है।

राजस्थान में दो प्रकार का जिप्सम मिलता है :–

(1) **चतुर्थ कल्पीय :** यह आधुनिक काल के जिप्साइट के पृष्ठीय वाष्पनज निक्षेप है जो बालू के 1 से 3 मीटर ऊपरी भाग के नीचे सपाट परतों के रूप में मिलते हैं। इस तरह के निक्षेप उत्तरी और पश्चिमी राजस्थान में विद्यमान है।

(2) **मारवाड़ महासमूह काल :** इस काल के बिलाड़ा समूह के कोर्बोनेटस तथा आरजीलाइट (मृदाश्य) से सम्बन्ध जिप्सम प्राचीन वाष्पनज संस्तरों के रूप में स्थित है। यह 30 से 115 मीटर या अधिक गहराई में स्थित है। इसके अतिरिक्त जिप्सम की एनहाड्राइट किस्म हंसेरान ईवेपोराइट समूह में बीकानेर, गंगानगर व चुरू क्षेत्र में 250 मीटर से अधिक गहराई से मिलती है।

बाड़मेर जिले में उत्तरलाई, कवास, सिवकर, कुण्डल, बीकानेर जिले में जामसर, घिरेरा, मारू, धान्धेवाला, जैसलमेर जिले में मोहनगढ़, लारवेसर, लारवा, गंगानगर जिले में वीरमसर, पल्लू, विसरासन, हनुमानगढ़ जिले में सूरतगढ़, धरड़, नागौर जिले में भदवासी, खैरात प्रमुख जिप्सम क्षेत्र है। बाड़मेर में छितर की पास, धोब क्षेत्र में सेलेनाइट विद्यमान है।

अन्य राज्य

जिप्सम राजस्थान के अतिरिक्त जम्मू–कश्मीर में उधमपुर, डोडा एवं बारामूला जिलों में, गुजरात में जामनगर, पोरबन्दर जिलों एवं कच्छ के रण क्षेत्र में, उत्तरांचल में कुमाऊं, टिहरी गढ़वाल आदि स्थानों में जिप्सम के निक्षेप विद्यमान है।

खनिज अन्वेषण (Mineral Exploration)

भूपर्पटी में विद्यमान आर्थिक महत्व के खनिज निक्षेपों, की अवस्थिति, आकार, आकृति, संचय व ग्रेड संबंधी जानकारी प्राप्त करने के लिए किया जाने वाला अनुसंधान कार्य खनिज अन्वेषण (Mineral Exploration) कहलाता है।

खनिजों के दोहन से पूर्व खनिज अन्वेषण एक महत्वपूर्ण प्रक्रिया है। इसी के आधार पर खनन परियोजना के लाभकारी अथवा हानिकारी होने का आकलन किया जाता है। खनिज अन्वेषण से खनिज संसाधनों के बारे में विस्तृत जानकारी मिलती है। खनिज अन्वेषण की भू–अन्वेषण (Geo exploration) भी कहते हैं।

खनिज अन्वेषण का कार्य विभिन्न प्रकार के तलीय (Surface) और भूमिगत (Sub surface) अध्ययनों से किया जाता है। विगत कक्षा 11वीं में भू–रसायनिक अन्वेषण और भू–भौतिक अन्वेषण पद्धतियों के बारे में अध्ययन किया गया। भूमिगत अन्वेषण कार्य में छिद्रण (Drilling) का उपयोग भी किया जाता है। ऐसे क्षेत्र जहां पर भूगर्भीय, भू–रसायन अथवा भू–भौतिक अध्ययनों से

भूमिगत खनिजों की जानकारी मिलती है। छिद्रण के द्वारा विस्तृत जानकारी हेतु खनिज अन्वेषण किया जाता है।

छिद्रण एवं छिद्रण के प्रकार (Drilling and its Types)

छिद्रण

वह प्रक्रिया जिसके द्वारा शैल अथवा भूमि में छिद्र बनाया जाता है छिद्रण (Drilling) कहते हैं। निम्न भूवैज्ञानिक कार्यों में छिद्रण को काम में लाया जाता है –

(1) **पूर्वेक्षण** (Prospecting) : खनिजों की खोज के लिए किया जाने वाला प्रारम्भिक कार्य।

(2) **अन्वेषण** (Exploration) : खनिज निक्षेपों के आकार, आकृति, निचय, ग्रेड आदि के निर्धारण किया जाने वाला कार्य।

(3) **विस्फोटन** (Blasting) : खनिजों को दोहन के लिए विस्फोटकों को भरने के लिए छिद्र बनाने हेतु।

(4) **खनन विकास** (Mine development) : खनिजों के दोहन के लिए खनन क्षेत्र में शाफ्ट, ड्राइव, क्रास आदि निर्माण हेतु।

छिद्रण मशीनों को मानव शक्ति अथवा यांत्रिक शक्ति से संचालित किया जा सकता है।

छिद्रण के प्रकार

छिद्रण को निम्नानुसार वर्गीकृत किया जाता है –

1. **कार्यकारी बल के आधार पर**

(1) आघात (Percussion)
- (i) जम्पर बार (Jumper bar)
- (ii) वायवीय छिद्रण (Pneumatic drill)
- (iii) मंथन छिद्रण (Churn drill)
- (iv) ड्रिल मास्टर (Drill master)

(2) घूर्णन (Rotary)
- (i) बरमा (Auger)
- (ii) दलपुंज (Calyx)
- (iii) घूर्णन बिट (Roller bit)
- (iv) हीरक छिद्रण (Diamond drill)

(3) विविध
- (i) जेट छिद्रण (Jet drilling)
- (ii) उच्चतापीय ज्वाला छिद्रण (High temperature flame)
- (iii) एम्पायर ड्रिल (Empire drill)
- (iv) बर्नसाइड ड्रिल (Burnside drill)
- (v) मृदा प्रतिदर्श छिद्रण (Soil sampling drills)

छिद्रण का वर्गीकरण उपयोग एवं उद्देश्य के आधार पर भी किया जाता है –

(i) जलोढ़ पूर्वेक्षण छिद्रण मशीन

(ii) पेट्रोलियम छिद्रण मशीन

(iii) जलकूप छिद्रण मशीन

(iv) दृढ़शैल छिद्रण मशीन

(v) शाफ्ट निर्माण छिद्रण मशीन

(vi) मृदा अवेक्षण छिद्रण मशीन

हीरक छिद्रण का परिचय एवं खनिज अन्वेषण में इनका उपयोग

हीरक छिद्रण (Diamond Drill)

यह एक प्रकार की घूर्णन क्रिया से संचालित होने वाली छिद्रण मशीन है। इसका प्रयोग कठोर चट्टानों में अन्वेषण के लिए किया जाता है। इस मशीन में हीरक बिट (Diamond bit) घूमने वाली राड के आगे लगा रहता है (चित्र 6.4)। इसलिए इसे हीरक छिद्रण कहते हैं। इस प्रकार के छिद्रण में हीरक बिट बीच में पाइप की तरह खोखला होता है और ड्रिल राड भी खोखली होती है। इससे ज्यों–ज्यों छिद्रण आगे बढ़ता है बेलनाकार शैल प्राप्त होती है, इसे कोर (Core) कहते हैं। जैसे–जैसे छिद्रण बढ़ता कोर ऊपर की तरफ खिसकता है और इसे प्राप्त कर लिया जाता है। हीरक छिद्रण में विभिन्न व्यास वाले बिटो का प्रयोग होता है।

(1) EX $^{7}/_{8}$ इंच

(2) AX 1 $^{3}/_{16}$ इंच

(3) BX 1 $^{3}/_{8}$ इंच

(4) NX 2 $^{1}/_{8}$ इंच

ड्रिल रोड की लम्बाई सामान्यतः 10 फीट होती है। जब 10 फीट छिद्रण हो जाता है तो उसके ऊपर अन्य 10 फीट की ड्रिल रोड लगाई जाती है।

छिद्रण घूर्णन के द्वारा होता है इसी के साथ ऊपर से दबाव डाला जाता है ताकि छिद्रण आगे बढ़ सके। स्नेहक और बिट का ठण्डा करने के लिए जल प्रवाहित किया जाता है।

चित्र 6.4 : हीरक छिद्रण के बिट

छिद्रण से प्राप्त होने वाले कोर को लकड़ियों के बक्सों में गहराई के आधार पर जमाया जाता है (चित्र 6.5)। कोर को दो प्रकार से रखा जाता है।

चित्र 6.5 : हीरक छिद्रण से प्राप्त कोर का संग्रहण

1. **बुक पेट्रन :** इसमें कोर को पुस्तक के पृष्ठों की तरह लगाया जाता है। उदाहरण के लिए 5 फीट लम्बे कोर बाक्स में 6 से 10 फीट वाला भाग प्रथम 1 फीट के पास रखा जायेगा।

2. **स्नेक पेट्रन :** इस तरह के कोर संधारण में उदाहरणतः 1 से 5 फीट के बाद छठा फीट वाला भाग 5 फीट के पास होगा तथा 10वां फीट पहली फीट के पास।

कोर लोगिंग (Core Logging)

हीरक छिद्रण से प्राप्त कोर का भूवैज्ञानिक विभिन्न आंकड़ों का संग्रहण करते हैं। इनमें छिद्रण समय, छिद्रण गति, कोर प्राप्ति, शैल के खनिजीय गुण, गठन, संरचना आदि का अंकन करते हैं। यह कार्य कोर लोगिंग कहलाता है।

हीरक छिद्रण का खनन अन्वेषण में उपयोग

हीरक छिद्रण मशीन का उपयोग धात्विक निक्षेप अथवा ऐसे निक्षेप जो दृढ़ शैलों में स्थित है, अन्वेषण के लिए किया जाता है। हीरक अन्वेषण से कोर की प्राप्त होती है, यह भूमिगत खनिज का वास्तविक रूप होता है। इससे खनिजीय, गठन, संरचनात्मक आदि जानकारी प्राप्त हो जाती है। आधे भाग को काटकर पतलेकार (Thin section) निर्माण तथा रसायनिक विश्लेषण के लिए काम में लिया जाता है। कोर का आधा भाग भविष्य में आवश्यकता पड़ने पर अध्ययन के लिए रखा जाता है।

हीरक छिद्रण से भूमिगत निक्षेपों को आकार व आकृति की जानकारी मिलती है। भूमिगत कोर की प्राप्ति से खनिज की प्रतिशतता का आकलन भी किया जाता है। इस तरह से निचय का निर्धारण एवं उपलब्ध खनिज की मात्रा को प्रमाणित किया जाता है।

हीरक खनन का उपयोग धात्विक निक्षेप, चूना पत्थर, रॉक फास्फेट, डोलोमाइट, वाल्फ्रेमाइट, केल्साइट व अन्य महत्वपूर्ण खनिजों के अन्वेषण के लिए किया जाता है।

खनन (Mining): विवृत (Open Caste) एवं भूमिगत (Under Ground); खनन की प्रमुख विधियों का परिचय

पृथ्वी के गर्भ से धातुओं, अयस्कों, औद्योगिक एवं अन्य उपयोगी खनिजों को बाहर निकालना खनिकर्म या खनन कहलाता है। मानव विकास में खनिजों का महत्वपूर्ण योगदान है।

किसी भी आर्थिक निक्षेप की अवस्थिति भूसतह से गहराई, आकार, आकृति, आतिथेय शैल की प्रकृति तथा आर्थिक खनिज पिड के भौतिक गुणों के आधार पर खनन पद्धति का निर्धारण किया जाता है। जैसा कि पूर्व की कक्षा में बताया गया था; मुख्यतः तीन प्रकार की खनन पद्धतियां प्रचलन में हैं –

(1) जलोढ़ खनन (Alluvial mining)

(2) तलीय या विवृत खनन (Open cast mining or surface mining)

(3) भूमिगत खनन (Underground mining)

जलोढ़ खनन के बारे में पूर्ववृति कक्षा में जानकारी दी गयी थी। वर्तमान अध्ययन में विवृत खनन एवं भूमिगत खनन की प्रमुख विधियों के बारे में वर्णन किया जायेगा।

विवृत खनन

ऐसे आर्थिक खनिज जो भू–सतह पर अथवा भू–सतह से थोड़ा नीचे विद्यमान है, विवृत खनन के द्वारा खनिज प्राप्त किया जाता है (चित्र 6.6)। राजस्थान में रॉक फास्फेट, सीसा–जस्ता, लिग्नाइट, बलुआ पत्थर, चूना पत्थर, मार्बल, ग्रेनाइट, एस्बेस्टोस, क्ले, जिप्सम, बजरी आदि विवृत खदानों से प्राप्त किया जाता है।

विवृत खनन कार्य न्यूनतम संसाधनों से लेकर अधिकतम संसाधनों का उपयोग कर किया जा सकता है। छोटी खदानों में खनिज गेती, स्टील छड़, हथौड़ा आदि का प्रयोग कर खनन कार्य सम्पन्न कर सकते हैं। व्यापक स्तर पर खनन हेतु ड्रिलिंग मशीन, विस्फोटकों, एक्सकेवेटर आदि का उपयोग किया जाता है।

चित्र 6.6 : विवृत खनन में विस्फोटन

विवृत खनन की प्रमुख विधियां

1. मानवीय लदान (Manual Loading by Hand)
   - (a) ट्रक/डम्पर/ट्रेक्टर/गाड़ी (Trucks/Dumpers/ Tractor/Cart (चित्र 6.7)
   - (b) सीधी ढुलाई (Direct haulage)
   - (c) हवाई रस्सों का प्रयोग करते हुए (Aerial rope loading)
2. मशीनों के द्वारा लदान (Loading by machines)
   - (a) ड्रेग लाइन (Drag line)
   - (b) पावर शावेल (Power shovel)
   - (c) स्क्रेपर (Scraper)
   - (d) लैंड ड्रेज (Land dredge)
   - (e) ओवर बर्डन ब्रिजेज (Over burden bridges)
   - (f) बकेट व्हील एक्सकेवेटर (Bucket wheel excavater)
   - (g) कन्वेयर (Conveyor)
   - (h) स्प्रेडर (Spreader)
3. ग्लोरी हॉल (Glory Hole)
4. काओलीन खनन (Kaolin Mining)

उपरोक्तानुसार स्पष्ट है कि आवश्यकता और परिस्थितियों के अनुरूप खनन एवं खनिजों का लदान एवं ढुलायी कार्य किया जाता है। विवृत खनन के दौरान कार्य विभिन्न तलों में खुले में बेन्चो (Benches) के निर्माण करके किया जाता है अतः इसे बेन्चिंग भी कहा जाता है। बैंच की चौड़ाई और ऊंचाई खनिज पदार्थ के भौतिक गुणों, निक्षेप का आकार काम में ली जाने वाली मशीनों आदि के आधार पर तय किया जाता है।

चित्र 6.7 : विवृत खनन

भूमिगत खनन

भूमिगत खनन की मुख्य विधियों के बारे में पूर्व की कक्षा में बताया गया था। भूमिगत खनन खनिज निक्षेप के भूसतह से नीचे होने पर किया जाता है (चित्र 6.8)। भूमि खनन पद्धति का निर्धारण निक्षेप के आकार, आकृति, दृढ़ता, आर्थिक खनिज की मात्रा एवं वितरण तथा क्षेत्रीय शैलों की प्रकृति के आधार पर निर्धारित की जाती है।

भूमिगत खनन की प्रमुख विधियां निम्नानुसार है –

1. ओपन स्टोप्स (Open stopes)
   - (a) गोफरिंग (Gophering)
   - (b) ब्रेस्ट स्टोपिंग (Breast stoping)
   - (c) ओपन अंडरहेण्ड स्टोपिंग (Open underhand stoping)
   - (d) अण्डग्राउण्ड ग्लोरी हॉल (Underground glory hole)
   - (e) पिलर एण्ड चेम्बर (Pillar & Chamber)
   - (f) सबलेवल मेथड़ (Sub level method)
2. ओवरहेण्ड स्टोपिंग (Over hand stoping)
   - (A) लकड़ी के सपोर्ट (Timbered support)
     - (a) फ्लेट बेक्ड (Flat backed)
     - (b) डोम (Dome)
     - (c) रिल (Rill)
     - (d) वर्टीकल फेस (Vertical face)
     - (e) अण्डर हेण्ड (Under hand)
   - (B) फील्ड स्टोप्स (Filled stopes)
     - (a) फील्ड प्लेट बेक (Filled plate back)
     - (b) बाल्टिक ड्राई वाल (Baltic dry wall)
     - (c) रिस्यूइंग (Resuing)
     - (d) क्रॉसकट पद्धति (Crosscut method)

चित्र 6.8 : भूमिगत धात्विक खनिजों का खनन

(e) इनक्लाइन्ड कट एण्ड फिल पद्धति (Inclined cut and fill method)

(C) स्रिन्केज स्टोपिंग (Shrinkage stoping)

(a) टॉप स्लाइसिंग (Top slicing)

(b) सब लेवल केविंग (Sub level caving)

(c) ब्लॉक केविंग (Block caving)

उपरोक्त विधियों में ओपन स्टोपिंग खनिज निक्षेप पिंड और क्षेत्रीय शैल/आतिथेय शैल दोनों के दृढ़ होने पर अपनायी जाती है।

ओवर हेड स्टोपिंग पद्धति खनिज निक्षेप पिंड और क्षेत्रीय शैल/आतिथेय शैल की दृढ़ता कम होने पर अपनायी जाती है (चित्र 6.9)। खनन के समय स्टोप को सहारा देते हैं अथवा अन्य पदार्थों से भरा रखते हैं।

केविंग मेथड़ या घसाव पद्धति सामान्यतः कोयले के खनन में किया जाता है। कोयला और साथ में स्थित बलुआ पत्थर या अन्य अवसादी शैल दोनों की दृढ़ता बहुत कम होती है अतः इस पद्धति का उपयोग किया जाता है।

विस्फोटकों का परिचय
(Introduction of Explosives)

विस्फोटक – यह एक ऐसा पदार्थ है जिसे विधिवत् सक्रिय किया जाये तो अतिशीघ्रता से उच्च ताप, गैस में परिवर्तित हो जाता है और तीव्र दाब प्रदान करता है तथा इस क्रिया को विस्फोटन (Detonation) कहते है। एक लीटर आधुनिक विस्फोटक मिली सेकण्ड में 1000 लीटर में बदल जाता है तथा ब्लास्ट छिद्र में 1,450,000 PSI का दाब और 1650°–3870°C ताप तथा 2500-8000 मीटर/सेकण्ड के वेग से (Velocity of Detonation, VOD) विस्फोटन करता है। खनन कार्य में विस्फोटकों का महत्व है। गवेषण कार्य, शाफ्ट निर्माण, क्रॉस कर ड्राइव निर्माण, सुरंग निर्माण तथा खनन कार्य में विस्फोटकों का प्रयोग किया जाता है।

चित्र 6.9 : भूमिगत मशीन के द्वारा कोयले का खनन

विस्फोटकों का वर्गीकरण

विस्फोटक का वर्गीकरण विस्फोटन वेग वीओडी (VOD-(Velocity of Detonation) के आधार पर किया जाता है।

1. **निम्न विस्फोटक** (Low explosives) : इसमें गन पाउडर या बन्दूक का शोर, आतिशबाजी में प्रयुक्त होने वाला विस्फोटक आता है। इसकी वीओडी 2000 मीटर/सेकण्ड से होती है। इस तरह के विस्फोटकों का अग्नि ज्वाला के द्वारा जलाया जाता है, इसे डीफ्लेगरेशन (Deflagration) कहते हैं। खनिक मूझ अथवा सूती रस्सी के एक सिरे में आग लगाते है जबकि दूसरे सिरे विस्फोटकों के साथ ब्लास्ट होल में होता है।

2. **औद्योगिक विस्फोटक** (Industrial explosives) : इन विस्फोटों की वीओडी 2000 से 7000 मीटर/सेकण्ड होती है। यह दो प्रकार के होते हैं –

(a) **डेटोनटर संवेदनशील विस्फोटक** : यह विस्फोटक डायनामाइट, ब्लास्टिंग जिलेटन, एंजोमेक्स आदि होते हैं। इनमें डेटोनेटर (Detonator) की सहायता से विस्फोटन किया जाता है। डेटोनेटर एक युति (Device) है, जो रसायनिक यांत्रिकी या विद्युत के द्वारा विस्फोटन प्रारम्भ करने हेतु काम में लायी जाती है। इन्हें प्राथमिक विस्फोटक भी कहते हैं।

(b) **विस्फोट कारक जो प्राइमर से संचालित होते हैं** : इसमें अमोनियम नाइट्रेट, फ्यूल ऑयल और सेन्सीटाइजर के रूप में विद्यमान वायु होती है। इन्हें उष्मा, झटके अथवा डेटोनेटर से सक्रिय नहीं किया जा सकता है। विस्फोटन प्रारंभ करने के लिए प्राइमर (Primer) का प्रयोग किया जाता है। प्राइमर एक कार्टीडिज होती है जिसमें उच्चकोटि के विस्फोटक और डिटोनेटर विद्यमान होते हैं।

3. **उच्चकोटि के विस्फोटक** (High explosives) : यह अत्यन्त शक्तिशाली विस्फोटक पदार्थ होते हैं। इनमें टीएनटी (ट्राई नाइट्रो ग्लिसरीन) पीईटीन, एचएमएक्स, सेमटेक्स आदि विस्फोटक पदार्थ होते हैं।

महत्वपूर्ण बिन्दु

1. किसी भी राष्ट्र की आर्थिक स्थिति के निर्धारण में खनिजों की उपलब्धता का बड़ा महत्व होता है।
2. वे खनिज जिन से धातुएं प्राप्त होती है, धात्विक खनिज कहलाते है। इनसे स्वर्ण, चांदी, लोहा, ताम्र, सीसा, जस्ता, टिन, टंगस्टन, निकल, कोबाल्ट क्रोमियम आदि धातुएं प्राप्त है।
3. अधात्विक खनिजों की श्रेणी में कोयला, पेट्रोलियम, प्राकृतिक गैस, चूना पत्थर, केल्साइट, जिप्सम, कायनाइट, रॉक फास्फेट, वोलेस्टोनाइट, टाल्क, अभ्रक आदि खनिज होते है।

4. भारत विश्व में प्रमुख लोह उत्पादक देश है और इसका निर्यात भी करता है। भारत में अच्छी गुणवत्तता वाला लोहा बैंडेड हेमेटाइट क्वार्ट्जाइट (BHQ), बैंडेड हेमेटाइट जेस्पर (BHJ) व बैंडेड मेग्नेटाइट क्वार्ट्जाइट (BMQ) के रूप में मिलता है। इन्हें बैंडेड आयरन फार्मेशन (BIF) भी कहा जाता है।
5. राजस्थान भारत का प्रमुख सीसा–जस्ता अयस्क खनिजों का उत्पादक राज्य है। भारत की प्रमुख सीसा–जस्ता खदान रामपुरा–आगूचा (भीलवाड़ा) में स्थित है।
6. भारत में ताम्र अयस्क खनिज सिंहभूम ताम्र पट्टिका, खेतड़ी ताम्र पट्टिका, मलांजखण्ड ताम्र पट्टिका, अग्निगुण्डाला ताम्र पट्टिका, चित्रदुर्गा ताम्र पट्टिका, अम्बामाता ताम्र निक्षेप व रांगपो निक्षेप विद्यमान है।
7. राजस्थान में भारत का 88% रॉक फास्फेट उदयपुर के निकट झामर कोटड़ा से प्राप्त होता है। इसका उपयोग फास्फेट खाद निर्माण के लिये किया जाता है। राजस्थान जिप्सम का भी प्रमुख राज्य है।
8. कोयले का निर्माण भूगर्भीय काल में वानस्पतिक पदार्थों के भूमि में दबने के बाद ताप एवं दाब के प्रभाव के कारण हुआ है। कोयला वास्तव में एक प्रकार की अवसादी शैल है।
9. कोयले को कार्बन की मात्रा, रासायनिक संरचना व अन्य पदार्थों की उपस्थिति के आधार पर एन्थ्रासाइट, बिटुमनी, लिग्नाइट व पीट में वर्गीकृत किया गया है।
10. पृथ्वी पर कोयले का निर्माण गोण्डवाना काल एवं तृतीय महाकल्प में हुआ है। गोण्डवाना काल का कोयला उच्चकोटि का एन्थ्रासाइट व बिटुमनी प्रकृति का है। तृतीय महाकल्प में मिलने वाला कोयला उच्च गंधक युक्त लिग्नाइट प्रकृति का है।
11. पेट्रोलियम पदार्थों का भारत में वितरण विभिन्न अवसादी बेसिन क्षेत्रों में है। भारत में पेट्रोलियम पदार्थों का उत्पादन असम–अराकन, खंभात, कावेरी, कृष्णा–गोदावरी, राजस्थान तथा मुम्बई के ऑफशोर बेसिन क्षेत्र में होता है।
12. छिद्रण का उपयोग भू–वैज्ञानिक पूर्वेक्षण, अन्वेषण, विस्फोटन तथा खनन कार्य के लिए किया जाता है।
13. खनन पद्धति का निर्धारण आर्थिक निक्षेप की अवस्थिति, भूसतह से गहराई, आकार, आकृति, आतिथेय शैल की प्रकृति तथा आर्थिक खनिज पिण्ड के भौतिक गुणों के आधार पर किया जाता है।
14. खनन कार्य में विस्फोटकों का प्रयोग आर्थिक खनिजों को प्राप्त करने के लिए किया जाता है।

अभ्यासार्थ प्रश्न

वस्तुनिष्ठ प्रश्न

1. निम्न में से प्रमुख उर्वरक खनिज है –
   (अ) वालेस्टोनाइट (ब) अभ्रक
   (स) रॉक फास्फेट (द) ग्रेफाइट
2. मैग्नेटाइट का रासायनिक सूत्र है –
   (अ) Fe_3O_4 (ब) Fe_2O_3
   (स) $FeCO_3$ (द) $Fe_2.O_3.H_2O$
3. भारत का सबसे बड़ा सीसा–जस्ता निक्षेप है –
   (अ) जावर (ब) रामपुरा–आगूचा
   (स) घूघरा (द) सावर
4. रॉक फास्फेट का मुख्य उत्पादक क्षेत्र है –
   (अ) झामर कोटड़ा (ब) नीमच माता
   (स) पिपलोदा (द) धानपुरा
5. उच्चकोटि का कोयला कौनसा है –
   (अ) लिग्नाइट (ब) पीट
   (स) एन्थ्रासाइट (द) बिटुमेनी

अतिलघुत्तरात्मक प्रश्न

1. एक धात्विक खनिज का नाम बताइये।
2. एक अधात्विक खनिज का नाम बताइये।
3. एक अपघर्षी खनिज का नाम बताइये।
4. बी.एच.क्यू. (BHQ) का पूरा नाम बताइये।
5. बी.आई.एफ. (BIF) का पूरा नाम बताइये।
6. गैलेना का रासायनिक सूत्र बताइये।
7. स्फेलेराइट का रासायनिक सूत्र बताइये।
8. रामपुरा–आगूचा निक्षेप राजस्थान के किस जिले में स्थित है?
9. राजस्थान में स्थित ताम्र पट्टिका का नाम बताइये।
10. रॉक फास्फेट का क्या उपयोग है?
11. जिप्सम का रासायनिक सूत्र बताइये।
12. लिग्नाइट का निर्माण किस भूगर्भीय काल में हुआ।
13. पेट्रोलियम का क्या अभिप्राय है?
14. संरचनात्मक ट्रेप से क्या अभिप्राय है?
15. बाड़मेर–सांचौर बेसिन से क्या प्राप्त होता है।
16. छिद्रण किसे कहते हैं?
17. विवृत खनन का क्या अभिप्राय है?
18. डिटोनेटर किस काम में आता है?

लघुत्तरात्मक प्रश्न

1. धात्विक खनिजों का वर्गीकरण बताइये।
2. औद्योगिक खनिजों का वर्गीकरण बताइये।
3. लोहे के मुख्य खनिज अयस्कों के नाम बताइये।
4. सीसा–जस्ता धातुओं के मुख्य खनिज अयस्कों के नाम लिखिये।
5. पुर–बनेड़ा–भीण्डर पट्टिका के बारे में बताइये।
6. ताम्र धातु के मुख्य खनिज अयस्क बताइये।
7. मलान्जखण्ड ताम्र पट्टिका के बारे में बताइये।
8. अम्बामाता निक्षेप के बारे में बताइये।
9. स्ट्रोमेटोलाइट के बारे में बताइये।
10. जिप्सम के विभिन्न प्रकार बताइये।
11. कोयले के विभिन्न प्रकार बताइये।
12. कोयले के ईंधन अनुपात को स्पष्ट कीजिये।
13. कोयले के महत्वपूर्ण भूगर्भीय कालों के नाम बताइये।
14. पेट्रोलियम में कौन–कौन से कार्बनिक पदार्थ पाये जाते हैं?
15. तेलाशय शैल क्या होते हैं?
16. प्रथम केटेगरी के पेट्रोलियम/गैस बेसिनों के नाम बताइये।
17. भारत के प्रमुख ऑफशोर बेसिन के बारे में बताइये।
18. हीरक छिद्रण के बारे में बताइये।
19. कोर लोगिंग किसे कहते हैं?
20. विवृत खनन की प्रमुख विधियां बताइये।
21. विस्फोटक को परिभाषित कीजिये।

निबंधात्मक प्रश्न

1. भारत में लोहे के निक्षेपों के वितरण का वर्णन कीजिये।
2. भारत में विद्यमान सीसा–जस्ता निक्षेपों के वितरण का वर्णन कीजिये।
3. कोयले के विभिन्न प्रकार बताइये तथा भारत में इसके वितरण का वर्णन कीजिये।
4. छिद्रण के विभिन्न प्रकार बताते हुए हीरक छिद्रण का वर्णन कीजिये।
5. खनन की प्रमुख विधियों का वर्णन कीजिये।
6. विस्फोटक क्या होते है, इनका वर्गीकरण दीजिये।

उत्तरमाला : 1 (स) 2 (अ) 3 (ब) 4 (अ) (5) स

अध्याय – 7
व्यावहारिक भू–विज्ञान
(Applied Geology)

कक्षा 11वीं की तरह कक्षा 12वीं में भी व्यावहारिक भू–विज्ञान को भू–जल विज्ञान, भू–अभियांत्रिकी, सुदूर संवेदन व पर्यावरण भू–विज्ञान के अन्तर्गत अध्ययन किया जाएगा।

भू–जल विज्ञान (Hydrogeology)

जलभृत एवं इसके प्रकार (Aquifer and its Types)

जलभृत एक भूगर्भीय संरचना है जिसमें भू–जल का परिवहन व संचयन होता है। जलभृत से भू–जल का संचारण होता है। इसमें वर्षा के अनुसार मात्रा व गति में परिवर्तन आता है। जलभृत को निम्न प्रकारों में वर्गीकृत किया गया है –

(क) **अदाबीकृत जलभृत** (Unconfined aquifer) : अदाबीकृत जलभृत में भू–जल भरने की (Charging) व खाली होने की (Discharging) की गति लगातार बनी रहती है (चित्र 7.1)। यह इस बात पर निर्भर करता है कि भरने व खाली होने का क्षेत्रफल किस गति से बदल रहा है। इस कारण ये भू–जल स्तर लहरदार (Undulating) आकार में पाया जाता है (चित्र 7.2)।

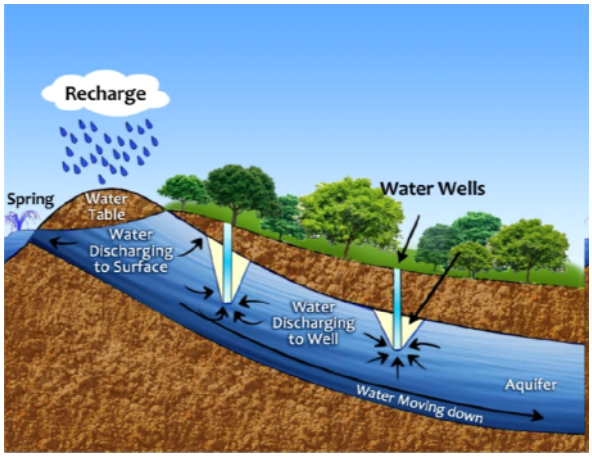

चित्र 7.1 : भू–जल के खाली होने (Discharge) **व भरने का** (Charging) **का चित्रण**

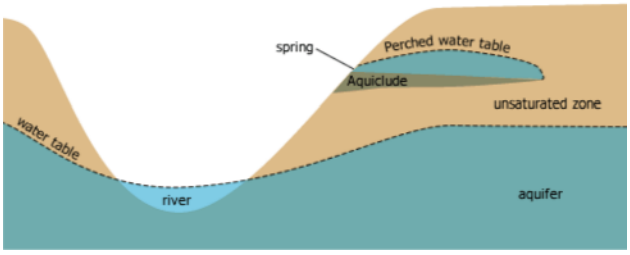

चित्र 7.2 : पर्चड जलभृत व लहरदार भू–जल स्तर को दर्शाता चित्र

अदाबीकृत जलभृत की एक विशेष परिस्थिति को पर्चड (Perched) जलभृत कहा जाता है जिसमें मुख्य भू–जल स्तर से भिन्न एक भू–जल स्तर पाया जाता है (चित्र 7.2)। इसमें नीचे की ओर अप्रवेश्य चट्टानों की परत होती है। पर्चड भू–जल क्षेत्र कई बार झरने के रूप में भी भू–आकृतियों पर दिखाई देता है।

(ख) **दाबीकृत जलभृत** (Confined aquifer) : दाबीकृत जलभृत उस परिस्थिति में बनते हैं जहां पर जलभृत में भू–जल वायुमण्डलीय दाब से अधिक दाब में पाया जाता है। भू–जल दाबीकृत जलभृत में तब प्रवेश करता है जब दाबीकृत परत सतह तक उठ जाती है। अगर दाबीकृत संस्तर भूमिगत रहता है तब जलभृत अदाबीकृत कहलाता है। दाबीकृत जलभृत के ऊपर एक काल्पनिक सतह होती है जिसे प्रवणता सतह (Piezometric surface) कहते है जो कि भू–जल के हाइड्रोस्टेटिक दाब स्तर को दर्शाती है। अगर प्रवेश्य परत के ऊपर और नीचे दोनों ओर अप्रवेश्य परत इस प्रकार से ढाल में हो कि भू–जल लगातार बहता रहे, उसे आरटिशियन (Artesian) की परिस्थिति कहते है (चित्र 7.3)। आरटिशियन परिस्थिति में जल कुआं प्रवेश्य परत में खोदा जाए तो उसे आरटिशियन कुआं कहते हैं। आरटिशियन कुएं को बहता कुआं (Flowing well) भी कहते है।

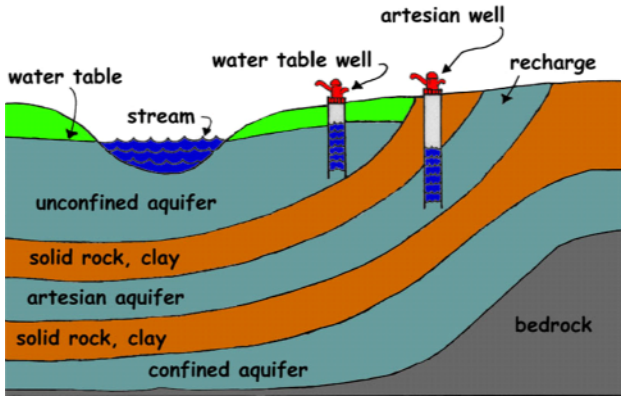

चित्र 7.3 : दाबीकृत, अदाबीकृत, अर्द्धदाबीकृत व आरटीशियन कुएं की परिस्थितियों को समग्रता के साथ दर्शाया गया है।

(ग) **अर्द्धदाबीकृत जलभृत** (Semiconfined aquifer) : यह जलभृत प्रकृति में सर्वाधिक पाये जाते हैं। इस प्रकार के जलभृत प्रायः जलोढ़ घाटियों, समतल क्षेत्र, झील या द्रोणी में देखे जाते हैं। इस जलभृत में प्रवेश्य परत के ऊपर या नीचे एक अप्रवेश्य परत मिलती है। यह परत एक से ज्यादा प्रकार की चट्टानों की बनी होती है जो या तो प्रवेश्य या फिर अप्रवेश्य श्रेणी की होती है।

प्रकृति में उपर्युक्त परिस्थिति सघनता से मिलती है परन्तु गणितीय गणना हेतु ऐसा माना जाता है कि जलभृत में मिलने वाली चट्टानें एक ही संगठन व संरचना युक्त है। ऐसी परिस्थिति को आदर्श जलभृत कहते हैं। ऐसे आदर्श जलभृत में समस्त स्थानों पर एक जैसे भूजलीय गुण होते हैं जो प्रायः प्राकृतिक रूप में नहीं पाये जाते हैं। आदर्श जलभृत को आइसोट्रोपिक जलभृत (Isotropic acquifer) भी कहा जाता है। आदर्श जलभृत और लीकी जलभृत (Leaky acquifer) में अन्तर को जानने के लिए रिसाव कारक (Leakage factor) का मान निकाला जाता है। यह जल निकासी (Drainage) के बदलाव (Deviation) और कोन ऑफ डिप्रेशन (Cone of depression) या विच्छेदित भू–जल (Disconneted water) के कम होने पर निर्भर करता है।

भू–जल का उर्ध्व वितरण
(Vertical Distribution of Groundwater)

भू–जल के उर्ध्व वितरण की प्रारंभिक जानकारी हम कक्षा 11वीं में ले चुके हैं। निम्न चित्र 7.4 में उसे विस्तार से समझाया गया है।

उपर्युक्त चित्र के अनुसार भू–जल को आंतरिक जल क्षेत्र (Internal water) या शैलीय भू–जल (Bedrock water) और अंतःजुड़ाव भू–जल क्षेत्रों में बांटा गया है। आंतरिक भू–जल क्षेत्र का अर्थ है रसायनिक रूप से संगठित जल, मेगमा में घुला हुआ

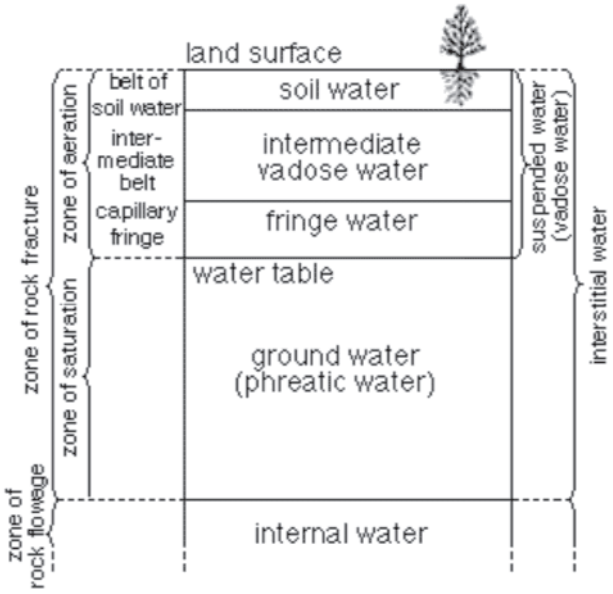

चित्र 7.4 : भू–जल का उर्ध्व वितरण

भू–जल या चट्टान में कणों के मध्य के खाली स्थानों का आपस में जुड़ा हुआ (Interconnected) जल, जो कि ऐरेशन क्षेत्र और संतृप्त क्षेत्र में बांटा गया है। ऐरेशन क्षेत्र तीन भागों में विभाजित है – पेलिकूलर क्षेत्र, वाडोस क्षेत्र और केपेलेरी क्षेत्र। इसी तरह संतृप्ति क्षेत्र भी तीन भागों में विभाजित है – सहजात (Connate) क्षेत्र, स्थिर क्षेत्र और दाबीकृत क्षेत्र जिनकी प्राथमिक जानकारी कक्षा 11वीं में ली जा चुकी है।

संतृप्ति क्षेत्र में समस्त खाली स्थान जब जल के कणों से परिपूर्ण हो जाते हैं, तो हाइड्रोस्टेटिक दाब का निर्माण होता है। यह संतृप्त क्षेत्र की ऊपरी परत से लेकर नीचे अप्रवेश्य परत की गहराई तक नापा जाता है। अगर संतृप्ति क्षेत्र में ऊपरी अप्रवेश्य परत हट जाए तो भू–जल स्तर की ऊपरी परत ही संतृप्ति क्षेत्र की सीमा को दर्शाती है जिसे फ्रिऐटिक (Phreatic) भू–जल स्तर भी कहते हैं।

संतृप्ति क्षेत्र में जितना भी भू–जल एकत्र होता है उसका उपयोग उस क्षेत्र की वनस्पति के लिए हो सकता है जिसे उपलब्ध भू–जल (Available water) कहा जाता है। इसकी अधिकतम सीमा को क्षेत्र क्षमता (Field capacity) कहा जाता है और न्यूनतम सीमा को ''शिथिलन बिन्दु'' (Wilting point) कहते है। सामान्य शब्दों में अधिकतम जलग्रहण क्षमता को ''क्षेत्र–क्षमता'' और वनस्पति मुरझाने के बिन्दु को ''शिथिलन बिन्दु'' कहा जाता है।

केपेलेरी जोन, ऐरेशन जोन की निचली परत है और संतृप्ति क्षेत्र से सम्पर्क में है। इसमें केपेलेरी जल और हाइग्रोस्कोपिक जल पाये जाते है। दोनों में कोई विशेष फर्क नहीं है। केपेलेरी जल मोटे दानों वाले जलभृत का हिस्सा है जहां पर पानी के कण

बड़े आकार के दानों के मध्य पतली आकार की केपेलेरी ट्यूब में पाये जाते है। जबकि हाइग्रोस्कोपिक जल कणों पर पतली परत के रूप में पाये जाते है। इस आधार पर गणक ज्ञात किया जाता है जो किसी भी सुखी मृदा के अंदर 25°C तापमान व 50% आर्द्रता पर जल को सोखने की क्षमता होती है। हाइग्रोस्कोपिक जल और क्षेत्र–क्षमता के मध्य के क्षेत्र को उपलब्ध जल कहा गया है।

भू–जल अन्वेषण की विधियां

भू–जल अन्वेषण की विधियों को सतही अन्वेषण व उपसतही अन्वेषण में विभाजित किया जा सकता है।

(क) **सतही अन्वेषण** (Surface investigation) : पृथ्वी की बाहरी सतह पर किये जाने वाले अन्वेषण को सतही अन्वेषण कहा जाता है। सतही अन्वेषण की विधियां निम्न प्रकार से है :–

(i) **भू–भौतिकी अन्वेषण :** भू–भौतिकी अन्वेषण के द्वारा पृथ्वी के अंदर की चट्टानों की परतों के भौतिक स्वरूप का अध्ययन किया जाता है। भूजल अन्वेषण में चट्टानों का प्रकार, संरचना, छिद्रों की मात्रा, आकार व आपस में जुड़ाव को जांचा जाता है।

भू–भौतिकी अन्वेषण में चट्टानों की सतह पर विद्युत धारा को चलायमान किया जाता है। इस प्रक्रिया में प्रतिरोधकता को अलग–अलग दूरी पर नापा जाता है। विद्युत विभव पैदा किया जाता है जिससे चट्टानों की प्रतिरोधकता को चट्टान के घनत्व, संगठन, छिद्रता के आधार पर ज्ञात किया जाता है। इलेक्ट्रोड को सतह पर अलग–अलग दूरी पर स्थापित किया जाता है और हर स्थान पर विभव को नापा जाता है। इलेक्ट्रोड को स्थापित करने के लिए शल्मबरगर विधि अपनाई जाती है।

भूकम्पीय अपवर्तन की विधि से चट्टानों में शॉक (Shock) तरंगें झटकों द्वारा भेजी जाती है जिनको अलग–अलग दूरी पर निश्चित स्थानों पर नापा जाता है। भूकम्पीय तरंगों की गति में परिवर्तन, चट्टानों के प्रकार व संगठन पर निर्भर करता है। भूकम्पीय तरंगों की गति में परिवर्तन चट्टानों की प्रत्यास्थता (Elasticity) पर भी निर्भर करता है। तरंग गति छिद्रों की संख्या के बढ़ने के साथ कम हो जाती है परन्तु अगर छिद्रों में पानी भरा हुआ हो तो तरंग गति बढ़ जाती है।

गुरुत्वाकर्षण व चुम्बकीय विधियों में भी सतही संरचनाओं में पानी की मात्रा व गहराई का पता लगाया जा सकता है। गुरुत्व (Gravity) से जलोढ़ निक्षेपों की गहराई की सीमा ज्ञात की जा सकती है और इसी प्रकार से अन्तर्वेधी (Intrusive) चट्टान की जानकारी भी प्राप्त की जा सकती है। चुम्बकीय तरीकों से विशेष रूप से लोह युक्त चट्टानों की संरचना ज्ञात की जा सकती है। उदाहरण के लिए बेसाल्टिक चट्टानों में पानी की गहराई ज्ञात करने में इस विधि का उपयोग किया जा सकता है।

(ii) **भू–वैज्ञानिक विधि :** भू–विज्ञान की मूलभूत जानकारी किसी भी क्षेत्र के भू–जल के आंकलन में सहायक होती है। चट्टानों के प्रकार, संरचना व गहराई तथा दूरी के साथ बदलाव का आंकलन भू–जल के स्तर में परिवर्तन का सूचक होता है। अवसादी चट्टानों में विशेष रूप से निक्षेपण और शीलायन की प्रक्रिया की जानकारी भू–जल के क्षेत्रों का पता लगाने में सहायक होती है। संस्तरों की मोटाई व आंतरिक संरचना पानी ग्रहण करने की क्षमता को ज्ञात करने में सहायक होती है। भू–जल की गुणवत्ता का अंदाजा भी चट्टानों के प्रकार से ज्ञात किया जा सकता है।

(iii) **एरियल फोटोग्राफ :** भू–जल संग्रह करने वाली चट्टानों की तलरूप (Topography) अलग सतही संरचना युक्त होती है इसलिए एरियल फोटोग्राफ की सहायता से ऐसी संरचनाओं का पता लगाया जा सकता है। तलरूपों के ऊपर वनस्पति, वन, जल निकासी रंग आदि कारकों के माध्यम से भू–जल की उपलब्धता का अंदाजा लगाया जा सकता है। अलग–अलग संरचना के फोटोग्राफों को एक साथ जमाकर मोज़ेक (Mosaic) बनाया जाता है और भू–जल मानचित्र का निर्माण किया जाता है।

(ख) **उपसतही अन्वेषण** (Subsurface investigation) : उपसतही अन्वेषण की विधियां निम्न प्रकार से है :–

(i) **छिद्रण परीक्षण** (Test drilling) **:** भू–जल की गहराई जानने के लिए कम व्यास के छिद्र जमीन के अन्दर कुछ गहराई तक किये जाते हैं, जिसे छिद्रण परीक्षण कहा जाता है। यह छिद्रण प्रक्रिया भू–जल की आंतरिक परिस्थितियों को जानने में सहायक सिद्ध होती है। इसमें गहराई पर पानी की उपस्थिति के साथ–साथ चट्टानों के प्रकार की गहराईयां और उनमें जल ग्रहण करने व प्रवाहित करने की क्षमताओं का भी आंकलन किया जाता है। जेटिंग (Jetting) भी एक प्रकार की ड्रीलिंग होती है जिसमें छोटे व्यास के छिद्र कम खर्चे में किये जाते हैं।

(ii) **प्रतिरोधकता–लॉगिंग** (Resistivity logging) **:** पूर्व में खुदे हुए कुएं के अन्दर दिवारों के सहारे गहराई में आसपास की चट्टानों की प्रतिरोधकता नापने के लिए इलेक्ट्रोड्स को कुएं के अन्दर उतारा जाता है। सामान्यतः चार इलेक्ट्रोड्स को भीतर उतारा जाता है, जिनमें दो करंट को पैदा करने के लिए और दो विभव को नापने के लिए होती है। इसे विद्युत कुआं लॉगिंग (Electric well logging) भी कहते है। बिना केसिंग (Casing) वाले कुएं की प्रतिरोधकता को दिवारों की गहराई के आधार पर नापा जाता है।

(iii) **विभव लॉगिंग** (Potential logging) **:** इस विधि में पृथ्वी के अंदर स्थित शैलों के विद्युत विभव को नापा जाता है। इसे तात्कालिक विभव लॉगिंग (Spontaneous potential logging)

भी कहते है। इनकी इकाई मिलीवॉल्ट होती है। एक इलेक्ट्रोड को कुएं के अन्दर और दूसरी इलेक्ट्रोड को सतह पर रखा जाता है। नापने का यह कार्य बहुत ही ध्यान से विशेषज्ञ द्वारा किया जाता है क्योंकि इसमें पृथ्वी के अन्दर पायी जाने वाली भिन्न–भिन्न प्रकार की असमानताओं का मिश्रित प्रभाव दिख सकता है। पानी की अशुद्धताएं भी इसको प्रभावित करती हैं।

(iv) **तापमान लॉगिंग** (Temperature logging) : भू–जल के तापमान को प्रतिरोधकता तापमापक द्वारा ज्ञात किया जा सकता है। इससे पानी की गुणवत्ता का पता चलता है। ऐसा माना जाता है कि प्रति सौ फीट की गहराई के साथ तापमान में 1°C की बढ़ोतरी होती है। तापमान में बदलाव जलभृत के स्रोत में बदलाव को दर्शाता है। तापमान में बढ़ोतरी भू–जल में आयनिक परागमता (Ionic mobility) को बढ़ा देती है जिसकी वजह से श्यनता (Viscosity) कम हो जाती है।

(v) **केलिपर लॉगिंग** (Caliper logging) : पानी के कुओं में व्यास नापने के लिए हॉल केलिपर (Hole caliper) का प्रयोग किया जाता है। इस विधि को केलिपर लॉगिंग कहते हैं। इसमें मापक के चार हाथ (Arms) होते हैं। एक विद्युतीय प्रतिरोधक होता है जो हाथों के हिलने से संचालित होता है। कुएं के अन्दर उपकरण को उतारा जाता है और गहराई में जाकर इसके हाथों को झटके के साथ खोला जाता है तथा कुएं के व्यास को नापा जाता है।

भू–जल प्रदूषण

(क) **कारण** : भूमिगत जल प्रदूषण के कारणों को निम्न प्रकारों में विभाजित किया गया है :–

(i) **रोगजनक** (Pathogenic) **कारक** : इन कारकों का जन्म मुख्य रूप से मानव व जानवर जनित अपशिष्ट से होता है जिसके कारण से भू–जल में कई प्रकार के कीटाणु जैसे कि बेक्टीरिया, वायरस आदि पैदा होते है। सबसे अधिक कोलीफॉर्म बेक्टीरिया भू–जल को प्रदूषित करता है।

(ii) **अकार्बनिक रसायनिक पदार्थ** : कई प्रकार के अकार्बनिक पदार्थ जैसे कि सीसा (Pb), पारा (Hg), क्रोमियम (Cr), फास्फेट (PO_4), नाइट्रेट (NO_3) आदि भू–जल में प्रदूषण का कारण बनते हैं जो कि मनुष्यजनित कृषि गतिविधियों से पैदा होते है और भू–जल को प्रदूषित करते हैं। इस प्रकार के तत्व कभी–कभी मातृशैल (Host rock) में से निकलकर भू–जल में घुलनशील पदार्थ बन जाते हैं, जिससे सम्पूर्ण पारिस्थितिकी तंत्र को हानि पहुंचती है।

(iii) **कार्बनिक रसायनिक पदार्थ** : उद्योगों, दवाइयों की फैक्ट्री व अन्य खाना बनाने के संयंत्रों से निकलने वाले कार्बनिक पदार्थ भी भू–जल को प्रदूषित करते हैं। इन प्रदूषणकारी पदार्थों में कम अणुभार वाले हाइड्रोकार्बन पदार्थ मिलते हैं। ऐसे पदार्थों का उत्सर्जन पेस्टीसाइड्स और अन्य प्रकार के उर्वरकों से भी होता है।

(iv) **रेडियोधर्मी पदार्थ** : कई प्रकार से रेडियोधर्मी पदार्थ जैसे कि ^{14}C, ^{3}H, ^{90}Sr, ^{131}I, ^{137}CS, ^{222}Rn, ^{235}U, ^{85}Kr आदि भिन्न प्रकार से प्राकृतिक स्रोतों से भू–जल को प्रदूषित करते हैं। रेडियोधर्मी पदार्थ में अर्द्धचक्र पूर्ण होने पर यह क्षय होकर भू–जल में प्रदूषण का कारण बनते हैं क्योंकि भू–जल इनके लिए उचित माध्यम का कार्य करता है।

(v) **पर्टिकुलेट पदार्थ** (Particulate matter) : कई प्रकार के छोटे आकार के कण जैसे मृदा कण (Clay fibre) आदि भू–जल में घुलकर प्रदूषण का कारण बनते हैं। इनका स्रोत या तो प्राकृतिक होता है या कोई भी खदान क्षेत्र होता है जहां इनका खनन किया जाता है। वहां से यह पानी में मिलकर भू–जल की गुणवत्ता को गिरा देते हैं।

उपर्युक्त समस्त भू–जल प्रदूषण के कारकों के स्रोतों को निम्न प्रकार से बिन्दुवार किया जा सकता है :–

(i) घरेलू कचरा, सेप्टिक टैंक, सेसपूल (Cesspool)।
(ii) सामुदायिक कचरा निवारण केन्द्र पर खुले कचरे के ढेर।
(iii) सिवरेज लाइन में बहाव व लिकेज।
(iv) पशु आहार का कचरा मृदा में मिलकर।
(v) अस्पतालों से निकलने वाला अपशिष्ट।
(vi) उद्योगों से जनित कचरा।
(vii) खनन क्षेत्रों से जनित प्रदूषण कारक।
(viii) समुद्र में होने वाला ऑयल रिसाव।

(ख) **निवारण** : भू–जल प्रदूषण के निवारण हेतु निम्न सुझाव सम्मिलित किये जा सकते हैं :–

(i) **प्रदूषण कारक पर उत्सर्जन के स्थान पर नियंत्रण** : लैण्ड–फिल (Land fills), खड्डे (Pits) आदि भू–जल प्रदूषण के मुख्य कारक हैं और इन स्थानों का उचित उपचार कर भू–जल प्रदूषण को स्रोत पर ही नियंत्रित किया जा सकता है। डिस्पोजल पिट (Disposal pit) को उचित ढंग से ढका जाना चाहिए जिससे कि हवा के माध्यम से बारिश का पानी उसमें मिल न सके। लैण्ड–फिल (Land fills), खड्डे (Pits) को अलग–अलग हिस्सों में विभाजित किया जा सकता है जिससे कि अलग–अलग उपचार किया जा सके। डिस्पोजल पिट के अन्दर सूक्ष्मजीवों को सड़ाने के लिए छोड़ा जा सकता है ताकि कचरे से खाद बन जाए और उसका उपयोग हो सके तथा भू–जल में सम्मिलित होने पर भी प्रदूषण नहीं करे।

स्रोत के स्थान पर भू–जल कचरे में मिलता है तो निक्षालितक (Leachate) का निर्माण होता है जो गुरुत्वाकर्षण द्वारा नीचे की ओर परागमन करता है। इस निक्षालितक को नीचे की तरफ जाने से रोक कर भू–जल को प्रदूषित होने से बचाया जा सकता है। इसके लिए भराव के स्थान पर निक्षालितक को अलग करने की व्यवस्था का निर्माण होना चाहिए। पिट (Pit) की बनावट करते समय इसकी क्षमता का पूर्वानुमान लगाकर निर्माण करना चाहिए जिससे कि निक्षालितक भू–जल में नहीं मिल पाए।

(ii) प्रदूषित भू–जल के पुनः शुद्धिकरण हेतु उचित संयंत्रों का निर्माण कार्य भी आवश्यक है। भू–जल में मिलने वाले प्रदूषण कारक की मात्रा का निर्धारण करके शुद्धिकरण संयंत्र की सीमा तय की जानी चाहिए। उद्योगों से निकलने वाले अपशिष्ट का रसायनिक अध्ययन कर उससे निपटने के लिए उचित रसायनों का प्रयोग कर प्रदूषण के प्रभाव को कम किया जा सकता है। आर्गेनिक प्रदूषण कारक जैसे कि हानिकारक बेक्टीरिया आदि क्लोरीनेशन द्वारा समाप्त किये जा सकते हैं। मृदा के साथ मिलकर भू–जल को प्रदूषित करने वाले कारकों को उचित मात्रा में उपयोग में लाकर या आर्गेनिक खाद का उपयोग कर प्रदूषण को घटाया जा सकता है।

(iii) कानून में नियम तथा धाराओं को विस्तृत रूप से प्रदूषण के कारकों के अनुसार बनाकर उचित माध्यमों द्वारा जनजागृति द्वारा अमल में लाया जा सकता है। भू–जल प्रदूषण से प्रभावित क्षेत्रों के लोगों को उचित मुआवजा देना भी एक उपाय हो सकता है। प्रदूषण रहित भू–जल की उपलब्धता प्रदान करना हर निकाय/निगम और पंचायत स्तर पर आवश्यक रूप से हो और इसकी लगातार समयबद्ध जांच के लिए एक निष्पक्ष एजेन्सी को नियुक्त किया जा सकता है।

(iv) प्राकृतिक रूप से विकसित जलनिकासी व्यवस्था (Drainage system) में आने वाले प्रदूषण कारकों को वैज्ञानिक तरीकों से हटाया या दिशा परिवर्तित किया जा सकता है जिससे कि झीलों, तालाबों, बांधों, एनिकट आदि में भू–जल प्रदूषित न हो।

(v) प्रदूषण कारक जैसे कि रेडियोधर्मी अप्रयुक्त पदार्थ को उचित माध्यम में संरक्षित रखा जाए जिससे की वह बाहरी वातावरण में शामिल न हो पाए। इसी प्रकार से तेल के कुओं में से तेल निकालते समय ड्रिलिंग रिग (Drilling rig) पर लीकेज को निरन्तर रूप से नियंत्रित कर समुद्री जल में तेलीय पदार्थ के फैलाव को कम किया जा सकता है। समुद्र के तल में खनन करते समय खनन क्षेत्रों में तकनीक के उचित इस्तेमाल द्वारा प्रदूषण को कम किया जा सकता है। प्रदूषण कारकों को लम्बे समय तक के लिए एकाकी करने की तकनीक का विकास किया जाना चाहिए।

भू–जल प्रदूषण निवारण के कार्यों में सबसे महत्वपूर्ण भू–जल के परागमन के मार्ग की ट्रेकिंग की तकनीक को विकसित करना है जिससे कि प्रदूषण के प्रभाव व फैलाव को कम किया जा सके।

राजस्थान में भू–जल
(Groundwater in Rajasthan)

(क) वितरण

राजस्थान प्रमुख रूप से मरू प्रदेश की श्रेणी में आता है परन्तु वहां के पूर्वी व दक्षिणी भाग में भू–जल वितरण मरूस्थल की श्रेणी में नहीं आते। पश्चिमी भागों में भू–जल अधिक गहराई में पाया जाता है तथा पूर्वी भागों में भू–जल कम गहराई में मिलता है। यहाँ स्थिति काफी विकट है। यहाँ पर भू–जल खारा पाया जाता है।

राजस्थान में भू–जल का विवरण

1.	कुल क्षेत्रफल	–	3,42,239 कि.मी.
2.	वार्षिक वर्षा (औसत)	–	504 मि.मी.
3.	कुल ब्लॉक	–	236
4.	अति व जल दोहन ब्लॉक	–	140
5.	क्रिटिकल ब्लॉक	–	50
6.	सेमीक्रिटिकल ब्लॉक	–	14
7.	वार्षिक भू–जल स्रोत	–	11.56 BCM
8.	वार्षिक भू–जल उपलब्धता	–	10.38 BCM
9.	वार्षिक भू–जल	–	12 PP BCM
10.	भूजल विकास	–	125%

भू–जल के क्षेत्रों को तीन भागों में बांटा गया है – सफेद क्षेत्र (White zone) ~ 66%, ग्रे–क्षेत्र (Grey zone) ~ 7.1%, डार्क क्षेत्र (Dark zone) ~ 27%। लगभग 500 MCM भू–जल का उपयोग पीने के पानी में किया जाता है। कुल भू–जल क्षमता युक्त क्षेत्र लगभग 2,13,000 वर्ग कि.मी. है। इनमें से लगभग 42% जलोढ़ जलभृत है, 23% अवसादी जलभृत व 35% क्रिस्टेलाइन जलभृत है।

भू–जल की उपलब्धता के आधार पर राजस्थान को 4 जोन में बांटा गया है।

प्रथम जोन (Zone-I) थार के शुष्क क्षेत्र : मुख्य रूप से जलोढ़, अर्द्ध–दृढ़ीकृत भूक्षेत्र जहां पर भूजल गहरा, अर्द्ध–दृढ़ीकृत रूप में पाया जाता है। इनमें भू–जल उपलब्धता मध्यम है। कुछ क्षेत्रों में अधिक गहराई पर पेलियोचैनल (Paleochannel) में से मीठे पानी की उपलब्धता मिलती है। नहरी क्षेत्र में पानी के कारण भू–जल स्तर कई स्थानों पर काफी ऊपर आ गया है। उदाहरण के लिए गंगानगर, जैसलमेर, बाड़मेर, बीकानेर।

द्वितीय जोन (Zone-II) : शुष्क से अर्द्ध शुष्क क्षेत्र जो कि जलोढ़ से निर्मित है और दृढ़ीकृत अवसादी तथा आग्नेय चट्टानों

का क्षेत्र है। भू–जल स्तर गहरा है, तथा जलभृत अर्द्ध–दृढ़ीकृत है तथा भू–जल की उपलब्धता मध्यम से अधिक है। उदाहरण के लिए चुरू, सीकर, झुंझुनू, नागौर, पाली, जालोर, जोधपुर।

तृतीय जोन (Zone-III) : अरावली पहाड़ी क्षेत्र : पूर्ण रूप से कायांत्रित व अवसादी चट्टानों का क्षेत्र जहां पर भू–जल कम से मध्यम गहराई में उपलब्ध है। उपलब्धता कम होती है क्योंकि ज्यादातर ढालयुक्त क्षेत्र है जिसकी वजह से पानी का ठहराव कम हो पाता है। उदाहरण के लिए अलवर, जयपुर, अजमेर, टोंक, उदयपुर, भीलवाड़ा, चित्तौड़, डूंगरपुर, बांसवाड़ा, सिरोही।

चतुर्थ जोन (Zone-IV) : पूर्वी पठारी क्षेत्र जहां पर जलभृत अवसादी चट्टानों में है जो कि विंध्यन महाकल्प और दक्खन के बेसाल्ट के बने है। भू–जल स्तर कम गहराई पर मिलता है तथा अदाबीकृत जलभृत अवसादी और आग्नेय चट्टानों में मिलते है। उदाहरण के लिए भरतपुर, धौलपुर, सवाई माधोपुर, करौली, कोटा, बारां, झालावाड़ व बूंदी।

(ख) उपयोग

(i) घरेलू कार्य : भू–जल का उपयोग पीने के पानी में ट्यूबवेल, बोरिंग व कुओं के द्वारा काम में लिया जाता है। खाना बनाने के कार्य, घर की साफ–सफाई, रोजमर्रा के कार्य, जानवरों के रख–रखाव व अन्य कार्य में भू–जल का उपयोग सर्वाधिक होता है।

(ii) खेती के कार्य में वर्षभर भू–जल ही प्रमुख स्रोत है क्योंकि राजस्थान का बड़ा हिस्सा शुष्क प्रदेश की श्रेणी में आता है। राजस्थान में भू–जल संग्रहण के लिए कुछ बड़े बांध क्षेत्र है। नहरों की सहायता से इनका जल दूरस्थ स्थानों तक पहुंचाया जाता है।

(iii) भू–जल का उपयोग उद्योगों विशेष रूप से मार्बल परिष्कृत इकाइयों में होता है। इसका उपयोग वस्त्र निर्माण इकाइयों, ऊर्जा उत्पादन इकाइयों आदि में भी व्यापक रूप से देखा जाता है।

(iv) पानी से बिजली पैदा करने का कार्य भी बड़े बांधों पर किया जाता है।

(ग) प्रबंधन

राजस्थान में जल प्रबंधन हेतु राजस्थान सरकार व केन्द्र सरकार के मंत्रालय के विभिन्न विभाग कार्यरत हैं। केन्द्र सरकार का जल स्रोत मंत्रालय (Ministry of Water Resources) व केन्द्रीय भूजल विभाग कार्यरत है। राजस्थान सरकार में भी जल स्रोत मंत्रालय और राज्य भू–जल विभाग कार्यरत है। इन विभागों के कार्यों की जानकारी http.gwd.rajasthan.gov.in वेबसाइट से प्राप्त की जा सकती है। राजस्थान में भू–जल का प्रबंधन राज्य जल नीति के माध्यम से सरकार द्वारा नीतिगत फैसले लेकर किया जाता है। इस नीति का निर्माण राज्य जल संसाधन आयोजन विभाग, राजस्थान सरकार, जयपुर द्वारा किया गया है।

राज्य में भू–जल प्रबंधन हेतु एकीकृत जल संसाधन प्रबंधन का गठन किया गया है जो जल उपयोग, प्रबंधन, जनभागीदारी, सामुदायिक स्तर पर तकनीकी प्रोत्साहन व सूचना प्रबंधन तंत्र (MIS) का कार्य देखता है। राज्य जल नीति के अनुसार जल संसाधन के मूल ढांचे में भू–जल का आधारभूत ढांचा, संरक्षण, गुणवत्ता व पर्यावरणीय पहलुओं का आंकलन किया जाता है।

राजस्थान में राज्य स्तरीय भू–जल विभाग प्रत्येक जिले में कार्यरत है और इसका केन्द्रीय कार्यालय जयपुर में है। यह विभाग प्रत्येक वर्ष में मानसून पूर्व व मानसून पश्चात् भू–जल स्तर मापने का कार्य करता है। राजस्थान में भू–जल स्रोतों के प्रबंधन को बेहतर बनाने के लिए जलभृत के मानचित्रण का कार्य भी किया जा रहा है। केन्द्रीय भू–जल विभाग ने राजस्थान के प्रत्येक जिले का भू–जल एटलस बनाया है जो कि जिलेवार व ब्लॉकवार भू–जल की वार्षिक स्थिति में परिवर्तन को दर्शाता है। राज्य में कुल बारह ब्लॉक का चयन विशेष रूप से भू–जल विभाग द्वारा किया गया है, जिनके चयन में भू–जल की उपलब्धता व गुणवत्ता मुख्य कारक रहे हैं – झोटवाड़ा (जयपुर), पुष्कर घाटी (अजमेर), जालोर, रानीवाड़ा, भीनमाल (जालोर), बुधाना, चिड़ावा, सूरजगढ़ (झुंझुनू), मुंडवा (नागौर), बहरोड़ (अलवर), टोड़, श्रीमाधोपुर (सीकर)।

राजस्थान सरकार ने वर्तमान में भू–जल की गंभीर स्थिति को भांपते हुए विशेष रूप से पूरे राजस्थान में ''मुख्यमंत्री जल स्वावलम्बन अभियान'' की शुरूआत की है जिससे कि भू–जल उपलब्धता तथा गुणवत्ता में बढ़ोतरी के लिए दीर्घकालीन परिणाम को सुनिश्चित करने का प्रयास किया जा रहा है। राजस्थान के कुछ क्षेत्रों में भू–जल संरक्षण व प्रबंधन के विशेष प्रयासों के तहत "MY WELL" मोबाईल 'एप' का निर्माण भी किया गया है।

भू–अभियांत्रिकी (Geo-Engineering)

बांध (Dam), सुरंग (Tunnel), पुल (Bridge) एवं सड़क (Road) निर्माण में भू–विज्ञान की भूमिका

बांध, सुरंग, पुल एवं सड़क निर्माण में भू–विज्ञान की अहम् भूमिका है। भू–विज्ञान की जानकारी के आधार पर इन सभी संरचनाओं के निर्माण का कार्य किया जा सकता है। इन समस्त संरचनाओं के निर्माण में तल की अवस्था, निर्माण सामग्री का प्रकार और निर्माण की भौगोलिक परिस्थितियों के निर्धारण व आंकलन करने के लिए भू–विज्ञान की जानकारी महत्वपूर्ण है।

(क) **भौगोलिक परिस्थितियां :** इन परिस्थितियों का निर्धारण व आंकलन भौतिक–भूविज्ञान के आधार पर होता है। भू–आकृति (Geomorphology) का अध्ययन प्रत्येक संरचना के निर्माण की जरूरतों के अनुसार किया जाता है।

(i) किसी भी बांध, सुरंग, पुल एवं सड़क के निर्माण के प्रथम चरण में सर्वप्रथम सबसे ऊपरी परत अर्थात् मृदा की जांच की जाती है जिसे मृदा परीक्षण (Soil-testing) कहा जाता है। सामान्यतः किसी भी स्थान की मृदा का निर्माण उसके नीचे स्थित चट्टान से ही होता है इसलिए मृदा परीक्षण से चट्टान की स्थिति का आंकलन भी किया जा सकता है।

(ii) अभियांत्रिकी संरचनाओं के निर्माण में स्थल की भू–आकृति की जानकारी नवीन तकनीकों द्वारा अलग–अलग मापनी (Scale) पर ली जाती है। नवीन तकनीकों में एरियल फोटोग्राफ, सुदूर संवदेन तकनीक व गूगल इमेजरी का उपयोग किया जाता है। उदाहरण के लिए बांध निर्माण हेतु घाटी के स्थान का विस्तृत चित्रण इन नवीन तकनीकों द्वारा ज्ञात किया जा सकता है। इसी प्रकार से सुरंग निर्माण हेतु पहाड़ों की भू–आकृति, घुमाव, चट्टानों की दिशा, नति व नतिलम्ब की जानकारी सुरंग की दिशा ज्ञात करने में सहायक होती है।

(iii) बांध, सुरंग, पुल व सड़क निर्माण में, निर्माण स्थल पर ढाल को भी निर्माण की आवश्यकता के अनुसार स्थिरीकृत (Stabilize) किया जाता है। यह सुनिश्चित किया जाता है कि निर्माण स्थल का ढाल निर्माण के पश्चात् भी स्थिर रहे तथा बांध, पुल, सड़क या सुरंग की संरचना को किसी भी प्रकार का नुकसान न पहुंचे। समस्त भू–अभियांत्रिकी संरचनाएं भिन्न भौगोलिक परिस्थितियों में अलग–अलग प्रकार से ढाल के नियंत्रण को ध्यान में रखकर निर्मित की जाती है। ढाल को नियंत्रित करने के लिए कंकरीट या लोहे की जाली की परत भी सतह पर बनाई जाती है।

(iv) भौतिक भू–विज्ञान (Physical geology) की जानकारी के आधार पर बर्फीले क्षेत्र, रेगिस्तानी क्षेत्र, नदी–घाटी क्षेत्र, तटीय क्षेत्र व पहाड़ी क्षेत्रों में अभियांत्रिकी निर्माण में अलग–अलग निर्धारकों व मानकों का उपयोग किया जाता है। निर्माण सामग्री का प्रकार व निर्माण तल की अवस्था भी इन्हीं कारकों पर आधारित रहती है। कम तापमान व अधिक तापमान पर चट्टानों का व्यवहार भिन्न होता है इसलिए निर्माण पूर्व इन पहलुओं को भी ध्यान में रखा जाता है। रेगिस्तानी क्षेत्रों में रेत के कण हवा के साथ बहकर निर्मित संरचनाओं को विखंडित कर सकते हैं और इसी प्रकार नदी–घाटी क्षेत्रों में बहता जल भी निर्माण सामग्री को खराब कर सकता है। इसलिए निर्माण सामग्री को रसायनिक व भौतिक रूप से परिष्कृत कर काम में लिया जाता है।

(ख) **तल की अवस्था :** तल की अवस्था के भू–वैज्ञानिक गुणों को जांचने के लिए तीन प्रकार के परीक्षण किये जाते हैं –

(i) **जैक परीक्षण** (Jack test) : यह परीक्षण चट्टान के अन्दर के विरूपण (Deformation) को जांचने के लिए किया जाता है। इसमें एक हाइड्रोलिक जैक (Hydraulic jack) का उपयोग किया जाता है जिससे चट्टानों के एक हिस्से को काटा जाता है। जैक को चट्टानों के अन्दर एक विशेष तरीके से बैठाकर उस पर वज़न डाला जाता है। यह वज़न धीरे–धीरे बढ़ाया जाता है और चट्टान पर पड़ने वाले स्ट्रेन (Strain) को नापा जाता है।

(ii) **अपरूपण परीक्षण** (Shear test) : इस परीक्षण में चट्टानों के छोटे–छोटे खंभे काटकर खड़े किये जाते हैं जिनका आकार तल के पास 1 स्क्वायर मी. होना चाहिए। एक निश्चित ऊंचाई का निर्धारण किया जाता है। ध्यान रखा जाता है कि उर्ध्वाधर बल सीमा से अधिक न हो जाए। जैक (Jack) की सहायता से प्रत्येक खंबे पर वज़न बढ़ाया जाता है। चट्टान के अपरूपण प्लेन (Shear Plain) की वज़न सहन करने की क्षमता का आंकलन भी किया जाता है।

(iii) **भूकम्पीय परीक्षण** (Seismic test) : यह परीक्षण एक प्रकार का अनुमानित परीक्षण (Approximation test) है। इसमें चट्टान के अंदर शॉक तरंगें (Shock waves) प्रवाहित की जाती है। इनसे चट्टानों की गति व समय को नापा जाता है। इससे चट्टान के अंदर के विरूपणता को भी नापा जाता है।

तल की अवस्था में अभियांत्रिकी कार्य के अनुसार बदलाव लाने के लिए निम्न कार्यों किए जाते है –

(i) तल की चट्टानें अगर कमजोर है तो उन्हें मजबूत बनाने के लिए ग्राऊटिंग (Grouting) और भराव (Filling) द्वारा कमजोर क्षेत्रों में भरा जाता है। इसका विस्तृत विवरण कक्षा 11वीं में लेख है।

(ii) मृदा स्थिरीकरण का कार्य भी सीमेन्टिंग, सोडियम सिलीकेट और कोयले की चूरी के उपयोग से किया जाता है। इसका भी विस्तृत विवरण कक्षा 11वीं में लेख है।

तल की अवस्था जानने में दूसरा महत्वपूर्ण पहलू शैलों के प्रकार है जिनकी उपयुक्तता (Suitability) निम्न प्रकार से विवरणित है –

(i) **आग्नेय चट्टान के उपयुक्तता :** वितलीय (Plutonic) और हिपॉबेसल (Hypabyssal) चट्टानें मजबूत तलीय संरचना (Foundation) का निर्माण करती है पर उन पर निर्माण कार्य करना कठिन है। यह दोनों चट्टानें कठोर और अप्रवेश्यता वाली होती है इसलिए इनके ऊपर किसी प्रकार की अस्तर (Lining) की जरूरत नहीं होती। ज्वालामुखी चट्टानें छिद्रयुक्त होती हैं इसलिए इनमें छिद्रों को सीमेन्टिंग द्वारा भरना पड़ता है। इनका घनत्व कम होता है इसलिए इनकी भार सहने की क्षमता कम

होती है परन्तु सुसंबद्धता (Compactness) कम होने की वजह से इनको काम में लेना आसान होता है।

(ii) **अवसादी चट्टानों की उपयुक्तता** : अवसादी चट्टानों को तलीय संरचना के लिए कम योग्य माना जाता है। परन्तु अगर अवसादी चट्टानों में सीमेन्टिंग अच्छी हो और मोटे संस्तर से बनी हो तो उन्हें तलीय संरचना के लिए उपयुक्त माना गया है। ऐसी चट्टानों में पतली परत बिछाने की आवश्यकता भी नहीं होती। ऐसी चट्टानों में अगर आंतरिक संरचना और भू–जल की मात्रा सीमित हो तो यह किसी भी अभियांत्रिकी निर्माण में कारगर सिद्ध होती है। उदाहरण के लिए बालुकाश्म में अगर भू–जल संतृप्ति से ज्यादा हो तो वह निर्माण कार्य में उचित नहीं माना जाता है। इसी प्रकार शेल (Shale) चट्टानों को भी अभियांत्रिकी के कार्यों के लिए कम उपयुक्त माना गया है। विशेष रूप से सुरंग निर्माण में शेल चट्टानों से बने पहाड़ों को अलग रखा जाता है। चूना पत्थर में डोलोमाइट युक्त चट्टानों को अधिक उपयोगी माना गया है, क्योंकि चूनापत्थर आसानी से रसायनिक अभिक्रिया द्वारा परिवर्तित होकर विकृत हो जाती है।

(iii) **कायांत्रित चट्टान की उपयुक्तता** : नीस (Gneiss) चट्टानों की उपयोगिता ग्रेनाइट चट्टानों के समकक्ष मानी जाती है। इन चट्टानों पर भी लाईनिंग की आवश्यकता नहीं होती है। फिलाइट (Phyllite) और माइलोनाईट (Mylonite) चट्टानें आसानी से टूटकर बिखर जाती है इसलिए इन्हें अभियांत्रिक कार्यों के लिए उपयुक्त नहीं माना जाता है। इसके विपरीत संगमरमर को निर्माण सामग्री अधिक काम में लिया जाता है और इसकी तलीय संरचना भी मजबूत बनती है। अधिक तापमान व दाब पर बनने वाली कायांत्रित चट्टानें अच्छी तलीय संरचना का कार्य करती है।

तल की अवस्था के आंकलन के लिए तीसरी सबसे महत्वपूर्ण पहलू तल की चट्टानों की आंतरिक संरचना है। निर्माण कार्य करने से पूर्व संरचनाओं के निम्न पहलुओं को जांचा परखा जाता है।

(i) **नति व नतिलम्ब** : निर्माण कार्य में चट्टानों के नति व नतिलम्ब की जानकारी खुदाई व डिज़ाइनिंग के कार्यों को आसान बना देती है। सामान्यतः खुदाई (Excavation) का कार्य नतिलम्ब के समान्तर या नति के 90° के कोण पर किया जाता है।

(ii) अगर **चट्टानें क्षितिजिय संस्तर के रूप में** मिलती है तो इनमें छोटी या कम दूरी की संरचनाओं जैसे कि छोटी सुरंग बनाने का कार्य आसानी से किया जा सकता है। सुरंग निर्माण की दिशा में क्षितिजिय संस्तर को इस प्रकार से डिज़ाइन किया जाता है कि वे सहायक धरणी (Beam) का कार्य करें या फिर मजबूत छत के रूप में सहायक हो।

(iii) अगर **चट्टानों की संरचना झुकी** हुई हो तो निर्माण कार्य को झुकाव के कोण के आधार पर निर्धारित किया जाता है। अगर झुकाव का कोण 45° से कम है और सुरंग का निर्माण नति के समान्तर है तो ऊपर की चट्टानें प्राकृतिक रूप से मजबूत छत का कार्य करेगी। और यदि सुरंग की दिशा नति से कोण बनाती है तो ऐसी परिस्थिति में फिसलने की संभावना बन जाती है जिससे बोल्टिंग (Bolting) द्वारा स्थिर किया जा सकता है। इसी प्रकार से यदि चट्टानों का झुकाव 45° से अधिक है और सुरंग की दिशा नति से कोण बनाती है तो यह सबसे सुरक्षित श्रेणी की परिस्थिति है। इसके विपरीत नति के समान्तर वाली परिस्थिति में सर्वाधिक कमजोर संस्तर पाये जाएंगे जिन्हें उचित तरीकों द्वारा बांधकर मजबूत बनाना होगा।

(iv) वलनीय (Folded) चट्टानों के क्षेत्र में निर्माण के दौरान वलन की धूरी का झुकाव (Plunge) जानना जरूरी है जिससे कि अभियांत्रिकी निर्माण में भार को उचित तरीके से बांटा जा सके और चट्टानों को बिखरने से बचाया जा सके। अपनत (Anticline) व अभिनत (Syncline) की परिस्थिति का विश्लेषण सही तरीके से ज्ञात कर भूजल की उपलब्धता व मात्रा का अनुमान लगाया जाना आवश्यक है।

(v) भ्रंश सतह (Fault plane) : यदि संरचना स्थल पर भ्रंश सतह पायी जाती है तो उसके समान्तर फिसलने की सम्भावनाएं बढ़ जाती है। ऐसी भ्रंश सतह जो दिशा के लम्बवत् हो उनको बोल्टिंग द्वारा सीमेन्ट से भरा जाता है तथा कमजोर सतह को मजबूती प्रदान की जाती है। भ्रंश क्षेत्र में भू–जल का परागमन आसान होता है इसलिए इस क्षेत्र को अप्रवेश्य बनाने का कार्य भी किया जाता है। भू–जल के स्थिर (Static) व गतिक (Dynamic) दाब को नियंत्रित करने के लिए प्रवाह मार्ग (Channel) का निर्माण किया जाता है।

(ग) **निर्माण सामग्री के भू–वैज्ञानिकी पहलू :** अभियांत्रिकी कार्यों में प्रयोग में ली जाने वाली सामग्री की गुणवत्ता जानने के लिए उनकी भू–वैज्ञानिकी पहलूओं की महत्ता जानना जरूरी है। निम्न पहलूओं के आधार पर निर्माण सामग्री की गुणवत्ता को परखा जाता है।

(i) **दबने की क्षमता** (Compressive or crushing strength) : अभियांत्रिकी कार्यों में काम में लिए जाने वाले पत्थर की दबाव बढ़ने के साथ न बिखरने की क्षमता का आंकलन दबाव के विपरीत प्रतिरोधकता से निकाला जाता है। कोई भी पत्थर प्रति वर्ग क्षेत्र में कितना भार सहन कर सकता है यह उसके खनिज संगठन, नमी की मात्रा और भीतरी संरचना से ज्ञात होता है। दबाव सहन करने की क्षमता के आधार पर पत्थर के आयतन में आने वाली कमी को आंका जाता है।

(ii) **तनन क्षमता** (Tensile or Transverse) : किसी भी निर्माण सामग्री को अभियांत्रिकी कार्यों में प्रयोग में लेने से पहले उसकी टेनसाईल क्षमता का पता लगाया जाता जो उसकी मुड़ने की क्षमता को दर्शाता है। पत्थर के 1" लम्बे बार को जो कि 1" की दूरी पर दो सिरों से टिका हुआ, को मोड़ने के बल (Force) से जाना जाता है जब भार मध्य में केन्द्रित हो।

$$R = \frac{3\ wl}{2bd^2}$$

जहाँ पर R = Modulus of rupture (विदर)
w = भार जिस पर पत्थर टूट सकता है।
l = पत्थर की लम्बाई
b = पत्थर की चौड़ाई
d = पत्थर की मोटाई

(iii) **छिद्रता** (Porosity) : निर्माण सामग्री में काम में लिए जाने वाले पत्थर में छिद्रों की संख्या को छिद्रता कहा जाता है। यह पत्थर के अन्दर जल ग्रहण करने की क्षमता को दर्शाता है। छिद्रों के आपस में जुड़े रहने और जल प्रवाह को प्रभावित करने की क्षमता भी छिद्रता से ज्ञात की जाती है। पत्थर के दानों का आकार, आकृति व सीमेन्ट सामग्री भी इसका निर्धारण करते हैं।

(iv) **घनत्व** (Density) : यदि छिद्रों की संख्या अधिक है तो घनत्व कम होगा जिससे पत्थर की वजन सहने की क्षमता कम मानी जाती है। जो चट्टानें अधिक घनत्व की होती हैं व ज्यादा सुसंबद्ध (Compact) और स्थूल (Massive) होती है। इनकी भौतिक क्षमता भी ज्यादा होती है।

(v) **एब्रेसिव प्रतिरोधकता** (Abrasive resistance) : निर्माण सामग्री निर्माण के दौरान कई प्रकार के मेकेनिकल बल का सामना करती है जैसे कि फटना, टूटना आदि जो कि उसकी एब्रेसिव क्षमता को दर्शाता है। पत्थर रगड़ खाकर व फटकर नहीं बिखरता है तो माना जाता है कि उसकी एब्रेसिव प्रतिरोधकता ज्यादा है।

(vi) **ठण्ड प्रतिरोधकता** (Frost resistance) : जब निर्माण सामग्री का बहुत कम व अधिक तापमान की परिस्थितियों में मूल स्वरूप स्थिर बना रहे तो उसकी ठण्ड प्रतिरोधकता को अधिक माना जाता है। अगर पत्थर के अन्दर छिद्र कम होंगे तो व पानी को कम सोखेगा और यह कम पानी बहुत कम तापमान पर कम बर्फ बनाएगा जिसकी वजह से भीतर के आयतन में परिवर्तन कम आएगा और पत्थर पर कम तापमान का असर कम दिखेगा। इसी प्रकार अधिक तापमान की परिस्थिति में पानी भाप बन जाएगा और इस कारण से भाप के दबाव से पत्थर अन्दर के दाब के कारण फट सकता है।

(vii) **आग प्रतिरोधकता** (Fire resistance) : अभियांत्रिकी परियोजनाओं में कुछ विशेष परिस्थितियों जैसे कि सुरंग निर्माण में आग प्रतिरोधकता के गुण का आंकलन निर्माण सामग्री के लिए विशेष रूप से किया जाता है। अगर कोई चट्टान समान रूप से फैलती और सिकुड़ती है तो वह ताप प्रतिरोधक होगी। यह निर्भर करता है कि चट्टान का खनिज संगठन एक समान हो, छिद्रों की संख्या अधिक हो और दानों का आकार एक समान हो। उदाहरण के लिए क्वार्टजाइट, बालूकाश्म और डोलोमाइट। अगर खनिज संगठन, आकृति व प्रकार में एक समानता न हो जैसे कि वितलीय आग्नेय चट्टानें, तो उनकी आग्नेय प्रतिरोधकता कम होती है क्योंकि उनमें गर्म होने पर एक समान सिकुड़न व फैलाव नहीं हो पाता है।

(viii) **स्थायीत्वता** (Durability) : किसी भी निर्माण की आयु इस बात पर निर्भर करती है कि उसमें काम में ली गयी निर्माण सामग्री कितनी स्थायीत्व युक्त है। निर्माण सामग्री यदि भौतिक व रसायनिक कारकों द्वारा जल्दी विघटित होती है तो उसकी स्थायीत्वता कम मानी जाती है। ज्यादातर अखंडज पत्थर जैसे कि चूनापत्थर को कम स्थायीत्व युक्त माना गया है जबकि संगमरमर ज्यादा सुसंबद्ध होने के कारण अधिक स्थायीत्व युक्त माना जाता है।

(ix) **इकट्ठा रहने का गुण** (Binding property) : निर्माण सामग्री को उसके जोड़ने की शक्ति से परखा जाता है। पत्थर के टुकड़े अगर आपस में अच्छी तरह से जुड़ जाते (Interlock) हैं तो उनकी Binding क्षमता को अच्छी माना जाता है। कोणाकार टूकड़े गोलाकार टूकड़ों के मुकाबले में आसानी से आपस में जुड़कर अच्छी मजबूती प्रदान करते है। इसी प्रकार से समुच्चय (Aggregate) की कठोरता, मजबूती और बिखरने की क्षमता (Crushing strength) आपस में अच्छी तरह जुड़ने पर निर्भर करती है।

बांधों के प्रकार का संक्षिप्त विवरण

बांधों के प्रकार का वर्गीकरण भू–वैज्ञानिकी परिस्थितियों के आधार पर किया जाता है। बांधों के दो मुख्य प्रकार हैं :–

(क) अरदन बांध (Earthern Dams)

(ख) मेसनरी बांध (Masonary Dams)

(क) **अरदन बांध** (Earthern Dams) : अरदन बांध को एमबेंकमेंट (Embankment) भी कहा जाता है। इन बांधों को प्रायः चौड़ी घाटियों में बनाया जाता है जिनकी चौड़ाई 150 मीटर से भी अधिक होती है। इनका आकार ट्रेपेजियम जैसा होता है (चित्र 7.5)। इन बांधों के केन्द्र (Core) में अप्रवेश्य चट्टानों की परत बनाई जाती है। यह दो प्रकार के होते हैं :–

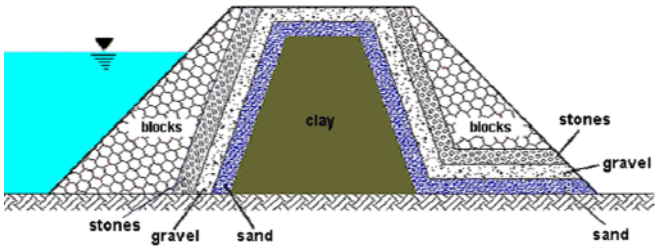

चित्र 7.5 : ट्रेपेजियम आकार का अरदन बांध

(i) **रॉक–फिल्ड बांध** (Rock-filled dams) : इन बांधों की तलीय संरचना में दृढ़िकृत चट्टानें होती हैं जिनकी प्रवेश्यता बहुत कम होती है। उदाहरण – तिहड़ी बांध, भागीरथ नदी पर।

(ii) **अर्थ–फिल्ड बांध** (Earth-filled dams) : इन बांधों की तलीय संरचना में अदृढ़िकृत चट्टानें होती हैं जिस कारण से इनकी अपरूपण शक्ति कम मानी जाती है। इनकी प्रवेश्यता (Permeability) ज्यादा मानी गयी है। उदाहरण – फरक्का बांध, गंगा नदी पर।

(ख) **मेसनरी बांध** (Masonary dam) : यह बांध चार प्रकार के होते हैं :–

(i) **ग्रेवेटी बांध** (Gravity Dams) : यह एक ठोस मेसनरी बांध है जिसके अन्दर कंक्रीट का भराव होता है। इसकी आकृति

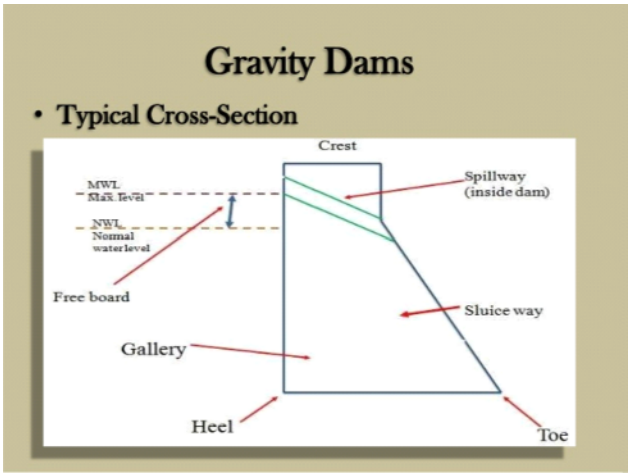

चित्र 7.6 : ग्रेविटी बांध के सेक्शन का चित्रण

त्रिकोणात्मक होती है (चित्र 7.6)। यह संकड़ी नदी घाटी में बनाया जाता है और विकट परिस्थितियों को भी झेल सकता है। इसकी ऊँचाई का निर्धारण इसके तल में पाये जाने वाली चट्टानों के भार व दबाव सहने की क्षमता के आधार पर किया जाता है। उदाहरण भाकड़ा बांध सतलज नदी पर।

(ii) **बटरेस बांध** (Buttress Dam) : इस बांध के निर्माण में कंक्रीट संरचनाओं में डेक (Deck) निर्मित किया जाता है जिसका ढाल धारा के विपरित तरफ (Upstream) होता है। यह

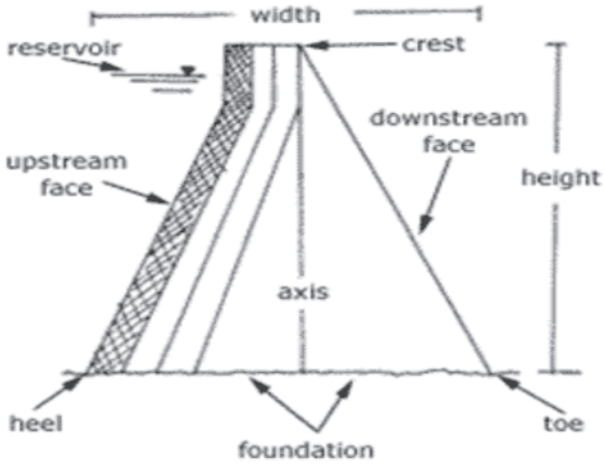

चित्र 7.7 : बटरेस बांध के सेक्शन का चित्रण

डेक सारा भार अपने ऊपर लेता है और इसके पीछे मजबूत दीवार बनाई जाती है जिसे बटरेस कहा जाता है (चित्र 7.7)। इस दीवार को और मजबूती प्रदान करने के लिए क्रॉस–वाल बनाई जाती है जिसे स्टर्ट कहते हैं।

(iii) **आर्च बांध** (Arch Dam) : इस बांध का निर्माण बहुत ही संकड़ी नदी–घाटी पर किया जाता है। नदी घाटी में चट्टानों का ढाल काफी अधिक होता है और तल काफी मजबूत रहता है। इस बांध में एक या एक से अधिक गोलाकार या आर्च आकार दीवार बनाई जाती है और उसकी अवतलीय दिशा ऊपरी तरफ होती है (चित्र 7.8)। अगर आर्च बांध की त्रिज्या पूरी संरचना में

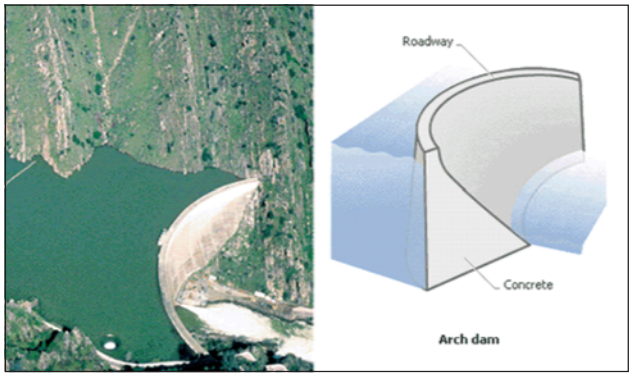

चित्र 7.8 : आर्च बांध की आकृति व सेक्शन

एक समान होता है तो उसे स्थिर (Fixed) त्रिज्या आर्च बांध कहा जाता है और यदि एक समान न हो तो उसे वेरियबल (Variable) त्रिज्या आर्च बांध कहते हैं। उदाहरण – इदुक्की बांध, पेरियर नदी, केरल।

(iv) **हूवर बांध** (Hoover Dam) : हूवर बांध, तीन बांधों ग्रेवेटी बांध, आर्च बांध और बटरेस बांध का मिश्रण है, इसलिए

इस मिश्रित बांध (Composite dam) भी कहते हैं। इसमें कंक्रीट, मेसनरी और मिट्टी के भराव (Earth fill) तीनों का परिस्थिति के अनुसार उपयोग में लिया जाता है। उदाहरण के लिए हीराकुण्ड बांध, महानदी पर।

सुदूर संवेदी (Remote Sensing)

एरियल फोटोग्राफी को सामान्यतः उर्ध्वाधर और ओबलिक (Oblique) दो प्रकारों में वर्गीकृत किया गया है। उर्ध्वाधर एरियल फोटोग्राफ में कैमरों की धूरी की दिशा को उर्ध्वाधर रखने का बेहतरीन प्रयास किया जाता है। इस प्रकार की फोटोग्राफी में एक लेंस की फ्रेम वाले कैमरे का सामान्यतः उपयोग किया जाता है। उर्ध्वाधर एरियल फोटोग्राफी लेना लगभग असंभव सा होता है क्योंकि कोणीय घुमाव प्रायः वायुयान के कोणीय ऊंचाई के साथ स्वाभाविकता के साथ आ ही जाते हैं। एरियल फोटोग्राफी लेते समय 1° से 3° का हल्का–सा झुकाव आ जाता है इसलिए इन्हें झुके हुए (Tilted) एरियल फोटोग्राफी भी कहते हैं। प्रायः सभी एरियल फोटोग्राफी झुके हुए की श्रेणी में ही आते हैं। जब एरियल फोटोग्राफी को झुका कर किया जाता है तो इसे ओबलिक (Oblique) एरियल फोटोग्राफी कहा जाता है। अगर क्षितिज के साथ एरियल फोटोग्राफी का कोण ज्यादा है तो उसे उच्चकोणीय ओबलिक एरियल फोटोग्राफी कहते हैं और यदि कोण कम है तो उसे निम्नकोणीय ओबलिक एरियल फोटोग्राफ कहते हैं।

एरियल फोटोग्राफी, सुदूर संवेदी के सिद्धांत

एरियल फोटोग्राफी और सुदूर संवेदी में मूलभूत सिद्धांत उसके उपयोग पर आधारित होता है। किसी भी एरियल फोटोग्राफी को लेने में सुदूर संवेदी की भिन्न–भिन्न तकनीकों का इस्तेमाल किया जाता है। इन सभी तकनिकों के अन्दर निम्न बातों का ध्यान रखा जाता है :–

(1) **आकृति** (Shape) : एरियल फोटोग्राफी लिए जाने वाले क्षेत्र की आकृति और उसके अन्दर की प्रत्येक वस्तु की ऊंचाई, मोटाई व लम्बाई के कोण का ध्यान रखा जाता है। प्रत्येक आकृति का अपना अलग महत्व होता है।

(2) **आकार** (Size) : किसी भी एरियल फोटोग्राफी का आकार उसकी मापनी के आधार पर किया जाता है। यह भी ध्यान रखा जाता है कि सबसे छोटे व सबसे बड़े आकार की वस्तु में अनुपातिक फर्क हो।

(3) **स्वरूप** (Pattern) : स्वरूप से वस्तुओं की स्थानिक जमावट का अध्ययन किया जाता है। उदाहरण के लिए बाग में उगाये गए पेड़ों का स्वरूप जंगल में उग रहे पेड़ों से भिन्न होता है इसलिए दोनों के एरियल फोटोग्राफी भी भिन्न–भिन्न नजर आएंगे।

(4) **तान** (Tone) : यह पारस्परिक चमक या रंग को दर्शाती है। हल्के तान या गहरे तान के एरियल फोटोग्राफी का गठन रोशनी की उपलब्धता पर भी निर्भर करता है।

(5) **गठन** (Texture) : किसी भी एरियल फोटोग्राफी का गठन तान के बदलाव की बारम्बारता को दर्शाता है। गठन बहुत सारी छोटी–छोटी इकाइयों को एक साथ जोड़कर देखने पर निर्मित होता है। गठन को दाने रहित (Smooth) या दानेदार (Coarse) भी कहा जाता है।

(6) **परछाई** (Shadow) : परछाई का परिणाम परछाई की बाह्य रेखा के खाका (Profile) और परछाई द्वारा परावर्तित किरणों के आधार पर किया जाता है। परछाई के प्रभाव का आंकलन रोशनी की तीव्रता तथा कोण को ध्यान में रखकर किया जाता है।

(7) **साईट** (Site) : साईट से स्थल या स्थान का तात्पर्य होता है। जिस स्थान का एरियल फोटोग्राफ लेना है उसका प्राकृतिक तलरूप या भौगोलिक परिस्थिति कैसी है उसका ध्यान जाता है।

(8) **संबंधता** (Association) : इसके अन्तर्गत एरियल फोटोग्राफ द्वारा खींचे जाने वाली वस्तुओं या स्थानों का आपस में किस प्रकार से जुड़ाव है उसका अध्ययन किया जाता है।

(9) **चाबियां** (Keys) : एरियल फोटोग्राफी के अध्ययन हेतु कई प्रकार की चाबियों को रखा जाता है जो कि अध्ययन को सार्थक बनाती है। उदाहरण के लिए सलेक्शन चाबी (Selection key), छंटनी चाबी (Elimination key), डाइकोटोमस चाबी (Dichotomous key)। यह सभी चाबियां एरियल फोटोग्राफ का कार्य करती है।

(10) **मापनी** (Scale) : एरियल फोटोग्राफ छोटी, मध्यम और बड़ी मापनी की श्रेणियों में फोटोग्राफी के क्षेत्रों और फोटोग्राफ के आकार के आधार पर वर्गीकृत किया गया है।

(11) **स्केनर** (Scanner) : सुदूर संवेदी में उष्मा आधारित (Thermal based), मल्टीस्पेक्ट्रल, माइक्रोवेव आधारित स्केनर का उपयोग अंकीकरण (Digitization) की तकनीक के साथ किया जाता है।

एरियल फोटोग्राफी और सुदूर संवेदी के भू–वैज्ञानिक उपयोग

कक्षा 11वीं में एरियल फोटोग्राफी व सुदूर संवेदी के महत्व को समझने के दृष्टिकोण से संक्षेप में कुछ भू–वैज्ञानिक उपयोग को संदर्भित किया था। एरियल फोटोग्राफी व सुदूर संवेदी की तकनीक का वर्तमान में बहुत ज्यादा उपयोग भू–विज्ञान के

साथ–साथ अन्य क्षेत्रों में किया जाने लगा है। निम्न बिन्दु भू–विज्ञान के क्षेत्र में एरियल फोटोग्राफी व सुदूर संवेदी के बढ़ते उपयोगों को विस्तार से दृष्टिगोचर करते हैं।

(1) **मृदा के गुण** (Soil character) : मृदा के विभिन्न पहलुओं जैसे कि मृदा का प्रकार, रंग, मोटाई, स्रोत, अपरदन तथा वनस्पति के साथ सहसंबंध को ज्ञात करने में एरियल फोटोग्राफी व सुदूर संवेदी की तकनीक का उपयोग भू–वैज्ञानिक की दृष्टि से खनिज व शैल संगठन ज्ञात करने में सहायक होता है। मृदा के साथ तलरूप, जलवायु अध्ययन, रसायनिक अवशेषों व परागमन की गतिविधियों का भी समेकित अध्ययन किया जाता है। मृदा के प्रकार तथा उपलब्धता, जलनिकासी व्यवस्था की पहचान करने में भी सहायक होती है। मृदा के कणों का आकार व आकृति का अध्ययन भी उच्च विभेदी (High Resolution) संवेदन द्वारा किया जाने लगा है।

(2) **भू–उपयोग–उपलब्धता का आंकलन** (Land-use-availability and evaluation) : भूमि के उपयोग की सार्थकता का आंकलन करने का कार्य भी एरियल फोटोग्राफी और सुदूर संवेदी की तकनीक से किया जा सकता है। इसमें किसी भी स्थान की तलरूपीय पहलुओं, भूआकृति पहलुओं, ढाल की गोलाई आदि का पारस्परिक अध्ययन किया जाता है। इस अध्ययन में प्रमाणिक रूप से यह सिद्ध किया जा सकता है कि किस भूमि का उपयोग कौनसे कार्य के लिए सर्वश्रेष्ठ रहेगा। नगर नियोजन, सीवरेज नियोजन व शहर के पानी बहाव की प्रणाली को एरियल फोटोग्राफी के माध्यम से सूक्ष्म रूप से अध्ययन किया जा सकता है। नगरीय निर्माण क्षेत्र, भूजल भराव नियोजन आदि का चिन्हिकरण ढाल की स्थिरता ज्ञात कर किया जा सकता है। प्राकृतिक रूप से किन स्थानों का संरक्षण होना चाहिए उन्हें भी एरियल फोटोग्राफी और सुदूर संवेदी द्वारा चिन्हित किया जा सकता है।

(3) **भू–भाग** (Terrain) **आंकलन** : भू–भाग आंकलन एक बड़ा ही व्यापक शब्द है जिसमें विभिन्न भू–वैज्ञानिक पहलुओं का समेकित व पारस्परिक अध्ययन किया जाता है। तलरूप अपरदन गठन, ढाल, रंगत व भू–उपयोग को समग्र रूप से अध्ययन कर किसी भी स्थान को किसी विशेष कार्य के उपयोग के लिए नियोजित तरीके के द्वारा विकसित किया जा सकता है। एरियल फोटोग्राफी व सुदूर संवेदी में किसी क्षेत्र को विकसित करने के लिए तापमान, वर्षा, जलवायु व अन्य भौगोलिक परिस्थितियों को भी ध्यान में रखकर मापदण्डों का निर्धारण किया जाता है।

(4) **शैल–प्रकार का आंकलन** (Rock type evalution) : एरियल फोटोग्राफी व सुदूर संवेदी की तकनीक से शैल–प्रकार को विभेदित कर अध्ययन किया जा सकता है। अवसादी शैलों जैसे कि बालूकाश्म शैल और चूनापत्थर अलग–अलग प्रकार के गठन व जलनिकासी व्यवस्था द्वारा पहचानी जा सकती है। खण्डज अवसादी शैल, अपरदन परागमन व निक्षेपण से अधिक प्रभावित होती है इसलिए इनके गठन अखण्डज अवसादी शैलों से अलग होता है। चूनापत्थर विशेष रूप से रसायनिक अपक्षय द्वारा अधिक प्रभावित होते हैं इसलिए इनके ऊपर जैव रसायनिक अभिक्रियाओं का ज्यादा प्रभाव दिखाई देता है। संस्तर संधि का भी भिन्न शैलों में अलग–अलग प्रभाव दिखाई देता है। रंग परिवर्तन साधारणतः संस्तर के कारण दिखाई देता है। संस्तर का आकार, आकृति, मोटाई, चौड़ाई व लम्बाई का भी एरियल फोटोग्राफी पर अध्ययन किया जाता है। अवसादी शैलों में संरचना का अध्ययन आसानी से सुदूर संवेदन द्वारा किया जा सकता है। आग्नेय चट्टानों में संधि संरचना, खनिज गठन व कृति (Forms) का अध्ययन एरियल फोटोग्राफी द्वारा किया जा सकता है। उदाहरण के लिए ग्रेनाइट चट्टान गोलाभ अपरदन द्वारा बहुत ही बड़े आकार की भू–आकृति के रूप में दिखाई देती है। ज्वालामुखी चट्टानों को संरचना कोन की आकृति की होती है। अन्तर्वेधी चट्टानें जैसे कि डाईक (Dyke) व सिल (Sill) व्यतिरेक (Contrast) तान के आधार पर आसानी से पहचानी जाती है। फ्लड बेसाल्ट सीढ़ीनुमा (Traps) आकृति का निर्माण करते हैं। ज्वालामुखी क्रेटर (Crator) के आसपास के क्षेत्रों में द्रोणी जैसी आकृति का निर्माण करते हैं जो एरियल फोटोग्राफी पर सुभिन्न तरीके से पहचानी जा सकती है (चित्र 7.9)।

खम्भाकार संधि की पहचान बेसाल्ट में बड़े–बड़े उर्ध्वाधर खम्भों के रूप में की जाती है। कायांत्रित चट्टानों की पहचान एरियल फोटोग्राफ पर कायंत्रण के प्रभावों के आधार पर की जाती है। मूल आकार, रंग, तान व गठन में जल पूर्ण परिवर्तन

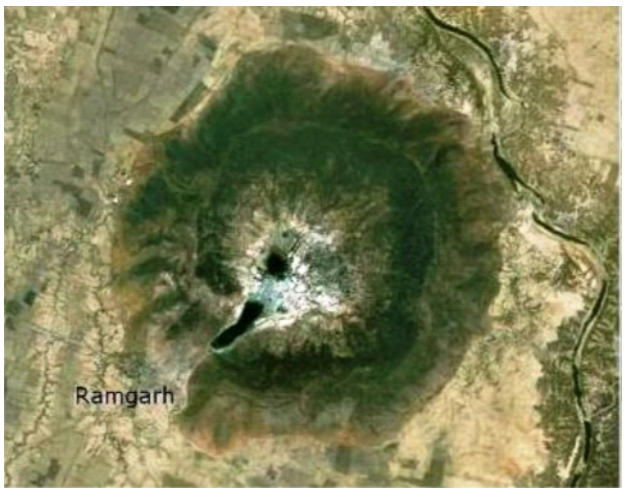

चित्र 7.9 : रामगढ़ क्रेटर (राजस्थान) का एरियल फोटोग्राफ

दिखाई दें, जैसे कि धारीदार स्वरूप आदि हो तो इनकी पहचान की जा सकती है। हालांकि कायांत्रित चट्टान अवसादी व आग्नेय चट्टानों के मुकाबले आसानी से पहचान में नहीं आती है।

(5) **स्थलाकृति** (Landforms) : वायुजनित स्थलाकृति जैसे कि रेत के धोरे/टीले, लोएस (Loess) आकृतियों का निर्माण रेगिस्तान क्षेत्र में देखा जाता है। इसी प्रकार से समुद्रीय किनारों पर रेत की दिवार, गुफाओं, तटों के निर्माण का अध्ययन एरियल फोटोग्राफ व सूदुर संवेदन द्वारा किया जा सकता है। हिमनद जनित भू–गठन जैसे कि टिल्स (Tills), मोरेन (Moraine), एस्कर (Eskers), ड्रमलिन (Drumlins) आदि की पहचान एरियल फोटोग्राफ पर गठन व रंगत के आधार पर की जा सकती है। नदी–घाटी क्षेत्रों की स्थालाकृति जैसे कि जलोढ़–पंख (Alluvial fans) फ्लड सतह (Flood Plain), डेल्टा, यारडांग (Yardangs) की पहचान भी एरियल फोटोग्राफ पर चिन्हित की जा सकती है।

पर्यावरण भू–विज्ञान (Environmental Geology)

खनन एवं पर्यावरण (Mining & Environment)

खनन खनिज को प्रकृति से प्राप्त करने की वैज्ञानिक पद्धति है। खनिज को खनन से प्राप्त करने में प्राकृतिक सम्पदा का दोहन होता है। खनिज दोहन के दौरान पर्यावरण में परिवर्तन आते है जिसे पुनःस्थापित करने का कार्य कठिन होता है। सामान्यतः पर्यावरण के पहलुओं की बारीकी से जानकारी न होने के कारण पर्यावरण में असन्तुलन देखा जा सकता है। इस कारण से खनन द्वारा पर्यावरण क्षति के पहलुओं को महत्व मिलता है।

खनन की प्रक्रिया के आधार पर खनन–जनित पर्यावरणीय क्षति को वैज्ञानिक उपायों से निपटा जा सकता है। खनिज के प्रकार के आधार पर भी खनन के पर्यावरण पर पड़ने वाले प्रभावों का आंकलन किया जाता है। सामान्यतः खनन की प्रणाली को खनिज की गहराई के आधार पर निर्धारित किया जाता है जिसके बारे में हम कक्षा 11वीं में अध्ययन कर चुके हैं। खनिज अगर तरलीय अवस्था में हो जैसे कि पेट्रोल तो अधिक गहराई के बावजूद भी कारगर खनन प्रणाली के उपयोग से लिकेज को रोका जा सकता है और पर्यावरण की क्षति को कम किया जा सकता है। समुद्रीय क्षेत्रों में तेल कुओं से पेट्रोल की प्राप्ति के दौरान तेल के रिसाव से व्यापक स्तर पर जीवों की मृत्यु होने की दुर्घटनाएं हो जाती है परन्तु उन्नत तकनीक के विकसित होने से इस प्रकार के पर्यावरणीय क्षति में अब कमी आयी है।

खनन से पर्यावरणीय संतुलन को पुनःस्थापित करने के लिए पूर्वानुमान लगाकर कार्य किया जाना चाहिए। अयस्क सामान्यतः कम प्रतिशत में शैलों में मिलता है इसलिए अनुपयुक्त चट्टानों/पत्थरों व अवशेषों का निस्तारण करने की योजना का वैज्ञानिकी आधार पर विकास किया जाना चाहिए। खदानों से निकलने वाले अपशिष्ट तथा दोहन के दौरान पैदा होने वाले नवीन पदार्थों के निस्तारण को टेलिंग बांध में सुरक्षित ढंग से रखा जाता है जो कि पर्यावरणीय क्षति को व्यापक स्तर पर फैलने नहीं देते। खनन अपशिष्ट को नियंत्रण में करने के लिए और उसके पुनःउपयोग के लिए भी भिन्न प्रकार की रसायनिक पद्धतियों को उपयोग में लिया जाता है। पर्यावरण को पुनःस्थापित करने के लिए खनन क्षेत्र व उसके आसपास के क्षेत्रों में सघन वृक्षारोपण भी किया जाता है। खनन क्षेत्र में भू–जल की समस्या को भी भू–वैज्ञानिकी तरीकों द्वारा नियंत्रित करने के प्रयास किये जाते है।

खनिज आधारित उद्योग एवं पर्यावरण (Mineral Based Industries and Environment)

खनिज कई उद्योगों के लिए अनिवार्य है और इनके बिना उन उद्योगों का अस्तित्व संभव नहीं है। कई उद्योगों में पत्थरों का भी उपयोग भी व्यापक रूप से होता है, इसलिए उन्हें भी खनिज की श्रेणी में इसी अध्याय में रखा गया है। ऐसे समस्त उद्योग जिसमें कच्चे माल (Raw material) के रूप में खनिज या पत्थरों का उपयोग किया जाता है, उन्हें खनिज आधारित उद्योग कहा गया है एवं उसके पर्यावरणीय प्रभावों का भू–वैज्ञानिकी अध्ययन इस पाठ में किया जा रहा है।

(1) **इमारती पत्थर उद्योग** : इमारती पत्थरों का चयन उनकी स्थायित्व, सामर्थ्य, कठोरता एवं खनन उपयुक्तता के आधार पर किया जाता है। इमारती पत्थरों का उपयोग व्यापक रूप से और अंधाधुंध किया जा रहा है जिसकी वजह से पर्यावरण को सर्वाधिक हानि हो रही है। कई स्थानों पर अवैध खनन का कार्य भी किया जा रहा है जिससे पर्यावरणीय क्षति अनुमान से भी कई गुना अधिक हो रही है। ग्रेनाइट, संगमरमर, बलुआ पत्थर, चूना पत्थर आदि के खनन से न केवल खनन क्षेत्र बल्कि इनके आसपस कई एकड़ क्षेत्रों में पर्यावरण संतुलन गड़बड़ा रहा है।

(2) **सीमेन्ट उद्योग** : सीमेन्ट निर्माण में चूना पत्थर के क्षेत्रों में होने वाले खनन से रसायनिक अभिक्रियाओं के कारण पर्यावरण पर विपरित प्रभाव पड़ता है। रसायनिक अपशिष्टों का असर व्यापक रूप से दिखाई देता है। अपशिष्ट भूजल में घुलकर गुणवत्ता को भी प्रभावित करते हैं। सीमेन्ट उद्योग के पैकेजिंग व खनन इकाइयों में वायु प्रदूषण का प्रभाव सर्वाधिक है। खनन में अनुपयुक्त प्रस्तरों को अनियंत्रित रूप से नवीन अस्थाई पहाड़ों का आकार मिल जाता है जो कि पूर्णतः अस्थिर होते हैं।

(3) **चीनी–मिट्टी उद्योग** में मुख्यतः मृतिका, फेल्सपार, क्वार्ट्ज व बाक्साइट का उपयोग किया जाता है जिनसे विभिन्न प्रकार के उत्पादों का निर्माण किया जाता है। इन औद्योगिक क्षेत्रों में रसायनिक पदार्थों का उपयोग भी किया जाता है जिनके

दुष्प्रभाव वहां काम करने वाले श्रमिकों पर भी पड़ते हैं। उच्च ताप व दाब पर भट्टियों का उपयोग किया जाता है जो कि लम्बे समय कार्य करने पर वातावरण का तापमान व छोटे कणों की मात्रा को वायुमण्डल में उत्सर्जित करते है।

(4) **उर्वरक उद्योग :** उर्वरक उद्योगों में कई खनिज रीढ की हड्डी का कार्य करते हैं। उदाहरण के लिए पोटाश, फास्फेट, नाइट्रेट, सल्फेट आदि। ग्रीनसेण्ड, मेग्नेटाइट, डोलोमाइट, जिप्सम आदि खनिजों की सहायता से उर्वरक निर्मित होते हैं। यह खनिज इन उद्योगों में रसायनिक अभिक्रिया द्वारा कई प्रकार के उर्वरकों के उत्पादन में सहायक होते हैं। इन खनिजों को खनन के पश्चात् बेनिफिसिएशन (Beneficiation) इकाई में रसायनिक अभिक्रिया द्वारा शैलों से अलग किया जाता है जिससे अपशिष्ट पैदा होता है। इसे अगर नियंत्रित तरीके से संरक्षित नहीं किया जा सके या उपयोग में नहीं लिया जा सके तो गंभीर पर्यावरणीय क्षति हो सकती है।

(5) **इस्पात एवं अन्य उद्योग :** इन उद्योगों में लोह खनिज के अतिरिक्त भी कई प्रकार के खनिज जैसे कि चूना, कोयला आदि का उपयोग होता है। इसलिए इन उद्योगों के विकास में पर्यावरणीय प्रभावों का असर व्यापक स्तर पर होता है। चूना, कोयला तथा लोह खनिज खनन क्षेत्रों से प्राप्त खनिजों को उच्च ताप व दाब पर इस्पात बनाने में कार्य में लेते हैं जिसकी वजह से पर्यावरण संरक्षण को बनाए रखना एक चुनौती है। बड़े–बड़े इस्पात उद्योग हमारे देश में कई स्थानों पर फैल हुए हैं जो कि बड़ी मात्रा में कई प्रकार के कच्चे माल का उपयोग करते है। इनके अलावा एल्यूमिनियम, तांबा, जिंक व अन्य खनिज उत्पादन की इकाइयां भी देशभर में कार्यरत है जो कि सीधे खनिज के लिए खनन क्षेत्र से जुड़ी हुई है और इनका व्यापक उपयोग पर्यावरणीय संतुलन में परेशानी पैदा कर रहा है।

(6) **सोपस्टोन व ऐस्बेसटोस से जुड़े उद्योग :** इन उद्योगों में कार्यरत श्रमिकों में कई प्रकार की फेफड़ों से जुड़ी बिमारियां जैसे कि ऐस्बेसटोसिस, सिलीकोसिस आदि देखी जा सकती है। यहां के खनन क्षेत्रों की वनस्पति भी बारीक पाउडर के दुष्प्रभाव से ग्रसित होती है। इन उद्योगों में रसायनों के उपयोग के कारण भी कार्मिकों को बिमारियां चपेट में ले लेती हैं।

(7) **कोयला क्षेत्र के उद्योग :** कोयला उष्मा पैदा करने के सर्वाधिक काम में आता है। भारत में कई प्रकार के कोयले व्यापक रूप से पाये जाते हैं। इनके खनन क्षेत्रों में कई बार दुर्घटनाएं और आग लगने के कारणों से पर्यावरणीय क्षति पहुंचती है। कोयला क्षेत्र भी अवैध खनन की मार से ग्रसित है।

प्राकृतिक आपदाएं एवं पर्यावरण
(Natural Disaster and Environment)

प्राकृतिक आपदाओं से पर्यावरण पर प्रभाव पड़ता है। साधारणतः यह प्रभाव नकारात्मक या हानिकारक की श्रेणी में आते है। विभिन्न प्राकृतिक आपदाओं से होने वाली पर्यावरणीय क्षति के प्रभावों को निम्न बिन्दुओं में विवरणित किया गया है।

(1) **बाढ़ :** बाढ़ जल चक्र का एक भाग है जिसमें किसी भी स्थान पर कम समय में अतिवृष्टि के कारण भू–जल की मात्रा में अचानक अभिवृद्धि देखी जाती है। बाढ़ के कारण पर्यावरणीय क्षति होती है या यह भी कहा जा सकता है कि पर्यावरणीय क्षति के सीमा से अधिक होने पर बाढ़ का कहर बढ़ जाता है। बाढ़ के कारण भू–जल की मात्रा में अत्यधिक इजाफा होता है जिसके कारण प्राकृतिक पारिस्थितिकी तंत्र को हानि पहुंचती है। भारी मात्रा में पानी की अचानक आवक होने व पानी के बहाव की गति अधिक होने की वजह से पानी के मार्ग में आने वाले समस्त चीजें जैसे कि मिट्टी, पत्थर, वनस्पति, जानवर, मानव जीवन व संरचनाएं ध्वस्त होकर बिखर जाती है तथा बह जाती है। बाढ़ का पानी अधिक समय तक किसी भी स्थान पर बने रहने से उस स्थान की पारिस्थिति तंत्र को नुकसान पहुंचता है और पर्यावरण संतुलन को खतरा पैदा हो जाता है। इस संतुलन को पुनःस्थापित करने के लिए समय, धन व मेहनत लगती है। बाढ़ का सर्वाधिक प्रभाव नदी घाटी क्षेत्र व समुद्रीय तटों पर देखा जाता है जहां पर पानी के बहाव के कारण कटाव, भूस्खलन और जमीन में बड़े गड्ढे बनने का खतरा पैदा हो जाता है।

(2) **भूस्खलन** (Landslides) : भूस्खलन भी एक प्रकार की प्राकृतिक आपदा है जिससे पर्यावरण को क्षति पहुंचती है। भूस्खलन में किसी बड़े स्थान की ज़मीन या मिट्टी खिसक जाती है या विस्थापित हो जाती है। यह कई कारणों से होता है। ऐसी घटनाएं मानवीय कारकों के कारण भी होती है। भूस्खलन की घटनाएं समुद्र के अन्दर भी देखी जा सकती है जिसे समुद्रीय भूस्खलन कहा जाता है। ऐसा प्रायः देखा गया है कि जमीन की ऊपरी सतह पर तापमान में बदलाव या वर्षा के कारण से भू–भाग फट (Rupture) जाता है और सतह की मृदा बिखर कर गुरुत्वाकर्षण के कारण ऊंचाई से निचाई की तरफ अग्रेषित होती है। इस प्रकार के परागमन बहुत अधिक गति या धीरे–धीरे मृदा को एक जगह से दूसरी जगह की ओर ले जाते हैं। जिस सतह पर फिसलन के कारण फटने से भूमि का कटाव शुरू होता है उसे ''फिसलन सतह'' (Slip surface) कहते हैं।

भूस्खलन की प्रक्रिया सामान्यतः तीव्र ढाल वाले पहाड़ी क्षेत्रों में देखी जाती है। भूस्खलन में स्थान परिवर्तन या विस्थापन (Displacement) को प्रमुख पहलू माना गया है। भूस्खलन से

होने वाले परागमन उर्ध्वाधर, कोणीय और घुमावदार प्रकार के होते हैं। इसमें मिट्टी का ढेर एक साथ एक निश्चित दिशा में परागमन करता है। अगर यह परागमन चपटी सतह के समान्तर है तो इसे स्थानान्तरीय फिसलन (Translational slide) कहते हैं। अगर परागमन गोलाकार सतह में समान्तर है तो उसे घुमावदार फिसलन (Rotational slide) कहते हैं। स्लम्प (Slump) या क्रीप (Creep) भी एक प्रकार का भूस्खलन है। इसमें मिट्टी के ढेर (Debris) का परागमन ढाल पर कम्बल–नुमा (Blanket shape) आकृति में देखा जा सकता है। बहाव में भूस्खलन पानी के बहने के साथ दिशाहीन होता है। इस प्रकार से भूस्खलन में असमानता युक्त भू–आकृति का जन्म होता है। भूस्खलन में सर्वाधिक महत्वपूर्ण ढाल स्थिरता होती है जिसमें बदलाव के कारण ही भूस्खलन होता है। ढाल स्थिरता में गिरावट का मुख्य कारण छिद्र दाब (Pore pressure) में बढ़ोतरी होना होता है। अत्यधिक वर्षा से छिद्र दाब बढ़ जाता है।

(3) **धंसना** (Subsidence) : यह एक ऐसी प्राकृतिक आपदा है जिसमें भूमि का स्तर अचानक गिर जाता है और बड़े गड्ढे बन जाते है। इसका प्रमुख कारण धंसने वाले स्थान के नीचे से भूमि का अचानक विलुप्त हो जाना होता है। प्रायः ऐसी घटनाएं ऊंचे प्रतिरेखा (High Contours) वाले क्षेत्रों में घटित होती है। धंसने के समय पानी के बहाव के कारण या खनन की प्रक्रिया के दौरान सतह के ठीक नीचे वाले पदार्थ (Material) अचानक हट जाता है। ऐसा कोयला खनन क्षेत्रों में देखा जाता है। तेल खनन के क्षेत्र के क्षेत्रों में भी भूमि का धंसना देखा जाता है। धंसने के कारण पर्यावरण संतुलन अचानक बिगड़ जाता है। तरलीय पदार्थ के हटने के कारण छिद्र दाब में बदलाव होता है जिससे चट्टानों की परतों के मध्य संसजन बल (Cohesive force) में परिवर्तन आता है। इस कारण से कुछ परतें फिसलकर अलग हो जाती है जिसकी वजह से नीचे का हिस्सा खोखला हो जाता है और ऊपरी सतह धंस जाती है।

(4) **भूकम्प** (Earthquake) : भूकम्प कम समय के लिए परन्तु जोरदार झटके के साथ पृथ्वी की सतह व आंतरिक संरचना को तहस–नहस कर देते हैं जिससे पर्यावरणीय क्षति होती है। भूकम्प का प्रभाव क्षेत्र भी व्यापक होता है जिससे पर्यावरण का नुकसान भी विस्तृत देखा जा सकता है। भूकम्प के केन्द्र स्थल (Epicenter) पर सर्वाधिक नुकसान पहुंचता है। भूकम्प पृथ्वी के ऊपर कमजोर सतहों पर अपना सर्वाधिक प्रभाव दिखाते है। भूकम्प के दौरान पृथ्वी के भीतर अचानक ही एक साथ बड़ी मात्रा में ऊर्जा उत्सर्जित होती है। भूकम्प की तीव्रता को रिक्टर मापनी पर नापा जाता है। पृथ्वी के ऊपर कई मानव निर्मित संरचनाएं होती हैं जो कि भूकम्प के कारण तबाह हो सकती है और इसी कारण से पर्यावरण में स्थानीय स्तर पर व्यापक प्रभाव देखे जा सकते हैं।

भूकम्प भ्रंश क्षेत्र में अधिक पाये जाते हैं जो कि कमजोर क्षेत्रों की श्रेणी में आते हैं। भूकम्प के कारण मिट्टी का ढेर, ऐवेलांच (Avalanche) और स्लम्प का भारी मात्रा में बहाव देखा जाता है। समुद्र की सतह से अन्दर सुनामी लहरें बन जाती हैं जो कि समुद्री तटों पर टकराकर पर्यावरण को तबाह कर देती है। भूकम्प के कारण कई स्थिर क्षेत्रों में भी दरारें आ जाती हैं, जिससे भूजल स्तर में तुरंत बदलाव देखा जा सकता है। भूकम्प के विनाशकारी प्रभावों में मानव, जानवर व वनस्पति की तबाही और हानि व्यापक स्तर पर देखी जाती है।

(5) **ज्वालामुखी का फटना** : ज्वालामुखी से निकलने वाले लावा व राख के कारण आसपास क्षेत्रों में व्यापक रूप से पर्यावरणीय क्षति दिखाई देती है। ज्वालामुखी के फटने पर आसपास के क्षेत्रों तथा वायुमण्डल का तापमान अचानक बढ़ जाता है और पर्यावरण असंतुलित हो जाता है। वायुमण्डल में बारीक राख के कणों (Particulate matter) की मात्रा बढ़ जाती है जिसके कारण तापमान में बदलाव आ जाता है। ज्वालामुखी फटने के दौरान लावा का फैलाव भी व्यापक होता है जिससे सतही वनस्पति व जीव–जन्तु पूर्णतः नष्ट हो जाते हैं। मेगमा के तरल पदार्थों का तापमान 600°C से लेकर 1250°C तक होता है जिस कारण से कोई भी वस्तु अपने मूलरूप में स्थिर नहीं रह पाती। ज्वालामुखी के फटने के दौरान बड़े आकार के पत्थरों के टुकड़े हवा में उछलकर दूर–दूर तक फैल जाते हैं और पर्यावरण को अनेक प्रकार से नुकसान पहुंचाते हैं। समुद्र के अन्दर निचली सतह पर जब ज्वालामुखी फूटता है तो उसे समुद्रीय ज्वालामुखी कहते हैं जिससे समुद्र के अन्दर के पर्यावरण को भारी क्षति पहुंचती है। समुद्र के तल का तापमान बढ़ जाता है जिससे गर्म पानी की लहरें निर्मित होती हैं और समुद्रीय पर्यावरण पर कुप्रभाव पड़ता है। समुद्रीय जल की रसायनिक अभिक्रिया बढ़ते ही प्राकृतिक संतुलन गड़बड़ा जाता है।

(6) **रेगिस्तानी तूफान** : मरूस्थलीय क्षेत्रों में रेत के तूफान प्राकृतिक संतुलन पर प्रभाव डालते हैं। इनसे न केवल रेगिस्तानी क्षेत्रों का विस्तार होता है बल्कि इन क्षेत्रों में रहने वाले मानव जीवन व जानवरों पर भी बुरा प्रभाव पड़ता है।

आपदा प्रबंधन (Disaster Management)

आपदा प्रबंधन में सर्वप्रथम आपदा की गहनता का आंकलन किया जाता है। आपदा के कारकों के अनुसार प्रबंधन की सूची बनाई जाती है। आपदा का प्रभाव मानव जाति और उसके सहचरों पर किस–किस प्रकार से और कितनी मात्रा में होगा उसका अनुमानित अध्ययन किया जाता है। आपदा के कारक मानवजनित तथा प्राकृतिक दोनों ही हो सकते हैं। आपदा सर्वप्रथम प्राकृतिक स्थिरता को प्रभावित करती है जिससे आपदा का प्रकोप अल्पकालिक या दीर्घकालिक होगा इसका अनुमान लगाया जा सकता है।

आपदा प्रबंधन में सर्वप्रथम प्राकृतिक पहलुओं को ध्यान में रखकर योजना बनाई जाती है। उदाहरण के लिए बाढ़ के प्रभाव को कम करने के लिए पहाड़ी क्षेत्रों में ढाल स्थिरता को नियंत्रण में रखने का कार्य किया जाता है। एनिकट और प्रतिकूल प्रतिरेखीय पद्धति द्वारा बहाव की गति को नियंत्रित किया जा सकता है।

ज्वालामुखी तथा भूकम्पीय क्षेत्रों में पूर्वानुमान की सहायता से उचित बचाव के उपाय किये जा सकते हैं। आम जनता को सचेत करने के साथ–साथ बचाव के उपायों को मॉक–ड्रील (Mock-Drill) द्वारा प्रशिक्षण भी दिया जा सकता है। नवीन तकनीकों द्वारा भूकम्पीय गतिविधियों पर नज़र रखी जा सकती है। धरातलीय सतहों का अध्ययन कर लावा के प्रवाह की भविष्यवाणी भी की जा सकती है।

नदियों के बहाव क्षेत्र व समुद्री तटों पर डेल्टा क्षेत्र में पानी की अचानक अधिक आवक के बारे में पूर्व में चेतावनी जारी की जा सकती है। समुद्री तूफान के बारे में मछुआरों को उपग्रह चित्रों के माध्यम से पूर्व में जानकारी उपलब्ध करायी जाती है।

मूसलाधार वर्षा से बचाव के लिए पानी के बहाव की गति व प्रभावित क्षेत्रों में जलनिकासी प्रबंधन (Drainage Management) पर ध्यान देकर आपदा से होने वाले नुकसान को कम किया जा सकता है। संभावित कटाव व भूस्खलन के क्षेत्रों की पूर्व में पहचान की जा सकती है और आम नागरिक को इस क्षेत्र में परिगमन से रोका जा सकता है। ऐसे स्थानों के भू–वैज्ञानिकी नक्शे के अनुसार ढाल स्थिरता को बनाए रखने के लिए उचित उपाय किये जा सकते हैं।

महत्वपूर्ण बिन्दु

1. जलभृत तीन प्रकार के होते है – दाबीकृत (Confined), अर्द्धदाबीकृत (Semiconfined) व अदाबीकृत (Unconfined)।
2. उपलब्ध भू–जल (Available water) की अधिकतम सीमा को ''क्षेत्र–क्षमता'' (Field capacity) और न्यूनतम सीमा को ''शुष्कता बिन्दु'' (Wilting point) कहते है।
3. भू–जल अन्वेषण की सतही तकनीकों में भू–भौतिकी परीक्षण, भू–वैज्ञानिकी परीक्षण व एरियल फोटोग्राफी का उपयोग किया जाता है।
4. भू–जल अन्वेषण की उपसतही तकनीकों में छिद्रण परीक्षण, प्रतिरोधकता परीक्षण, विभव परीक्षण, तापमान परीक्षण आदि का उपयोग किया जाता है।
5. भू–जल प्रदूषण के मुख्य कारक रोगजनक सूक्ष्मजीवी, कार्बनिक व अकार्बनिक पदार्थ, रेडियोधर्मी पदार्थ आदि है।
6. भू–जल प्रदूषण नियंत्रण हेतु पुनःशुद्धिकरण की नवीन तकनीक, अपशिष्ट का उचित उपचार, निकासी आदि को प्राथमिकता के साथ काम में लिया जाना चाहिए।
7. राजस्थान राज्य को भू–जल के वितरण की दृष्टि से चार क्षेत्रों (Zones) में बांटा गया है।
8. राजस्थान में भू–जल प्रबंधन में राज्य सरकार की ''मुख्यमंत्री जल स्वावलम्बन योजना'' के सराहनीय परिणाम अपेक्षित है।
9. भू–अभियांत्रिकी परियोजनाओं में निर्माण हेतु भौगोलिक परिस्थितियां, मृदा स्थिरीकरण, भौतिक भू–वैज्ञानिकी पहलुओं, तल की अवस्था आदि कारकों का अध्ययन किया जाना आवश्यक है।
10. आग्नेय चट्टान को अवसादी व कायांत्रित चट्टानों के मुकाबले भू–अभियांत्रिकी कार्यों के लिए श्रेष्ठ माना गया है।
11. भू–अभियांत्रिकी कार्यों में काम ली जाने वाली निर्माण सामग्री आग–प्रतिरोधकता युक्त, अधिक घनत्व, अधिक संपीड़न और अच्छी तनन क्षमता वाली होनी चाहिए।
12. बांधों के प्रकार को अरदन (Earthen) बांध व मेसेनरी (Masonary) बांध में विभाजित किया गया है।
13. एरियल फोटोग्राफ व सुदूर संवेदन के अध्ययन में आकृति, आकार, स्वरूप, तान, गठन, परछाई, सम्बद्धता, चाबी व अन्य कारकों के विभिन्न पहलुओं का ध्यान रखा जाता है।
14. खनिज आधारित उद्योगों से होने वाले पर्यावरणीय प्रभावों का निवारण भू–वैज्ञानिकी तकनीकों द्वारा किया जाता है।
15. आपदा प्रबंधन में आपदा का प्रकार व कारक दोनों का आकलन भू–वैज्ञानिकी तथ्यों के अध्ययन के आधार पर किया जा सकता है।

अभ्यासार्थ प्रश्न

वस्तुनिष्ठ प्रश्न

1. आरटिशियन कुआं कौनसे प्रकार के जलभृत में पाया जाता है –

   (अ) अदाबीकृत जलभृत (ब) दाबीकृत जलभृत

   (स) आदर्श जलभृत (द) अर्द्धदाबीकृत जलभृत

2. भूकम्पीय तरंगों की गति चट्टानों में छिद्रों की मात्रा बढ़ने के साथ –

   (अ) कम हो जाती है। (ब) बढ़ जाती है।

   (स) समान रहती है। (द) बढ़कर कम हो जाती है।

3. भू–जल की उपसतही परिस्थिति में तापमान बढ़ने से भूजल की श्यनता –

   (अ) समान रहती है। (ब) बढ़ती–घटती रहती है।

   (स) कम हो जाती है। (द) बढ़ जाती है।

4. राजस्थान में भू–जल प्रबंधन के सुधार की दृष्टि से कुल कितने ब्लॉकों का चयन किया गया है –
   (अ) 10 (ब) 11
   (स) 13 (द) 12
5. भू–अभियांत्रिकी निर्माण कार्यों के लिए किस चट्टान को सर्वश्रेष्ठ माना गया है –
   (अ) वितलीय आग्नेय चट्टान
   (ब) अवसादी चट्टान
   (स) ज्वालामुखी आग्नेय चट्टान
   (द) कायांत्रित चट्टान
6. चट्टानों की ठण्ड के प्रति प्रतिरोधकता छिद्रों की संख्या कम होने पर –
   (अ) बढ़ जाएगी
   (ब) कम हो जाएगी
   (स) कम होकर बढ़ जाएगी
   (द) न कम होगी न बढ़ेगी
7. हूवर (Hoover) बांध निम्न में से कौनसे प्रकार की श्रेणी में आता है –
   (अ) ग्रेवेटी बांध (ब) आर्च बांध
   (स) बटरेस बांध (द) उपर्युक्त सभी श्रेणियों में
8. एरियल फोटोग्राफ की छंटाई में कौनसी चाबी काम नहीं आती –
   (अ) मोनोकोटोमस चाबी (ब) डाईकोटोमस चाबी
   (स) सलेक्शन चाबी (द) ऐलिमिनेशन चाबी
9. गोलाभ (Spheroid) अपरदन की आकृति किस चट्टान के साथ जुड़ी हुई है –
   (अ) संगमरमर (ब) चूना पत्थर
   (स) ग्रेनाइट (द) बालूकाश्म
10. सिलीकोसिस की बीमारी किस प्रकार के पर्यावरण क्षय का नतीजा है –
   (अ) खनन क्षेत्र में जनित (ब) बाढ़ से जनित
   (स) भूस्खलन से जनित (द) भूकम्प से जनित

अतिलघुत्तरात्मक प्रश्न

1. दाबीकृत जलभृत को परिभाषित करें।
2. शिथिलन बिन्दु (Wilting point) को समझाइए।
3. छिद्रण परीक्षण क्या होता है?
4. केलिपर लॉगिंग को परिभाषित करें।
5. राजस्थान में भू–जल क्षमता युक्त क्षेत्रफल कितना है?
6. अर्द्धशुष्क भू–जल क्षेत्र वाले जिलों के नाम बताइए।
7. झुंझुनू जिले के उन ब्लॉक का नाम बताइए जिनका भू–जल विभाग द्वारा भू–जल प्रबंधन हेतु चयन किया गया है।
8. मृदा स्थिरीकरण क्या होता है?
9. चट्टान की एब्रोसिव क्षमता को परिभाषित करें।
10. बटरेस बांध को परिभाषित करें।
11. ओबलिक एरियल फोटोग्राफ के प्रकार बताएं।
12. हल्के और गहरे तान युक्त एरियल फोटोग्राफ में अन्तर स्पष्ट करें।
13. उच्च विभेदन संवेदन का उपयोग कहां होता है?
14. सीमेन्ट उद्योग में भू–जल किस प्रकार से प्रदूषित होता है?
15. ज्वालामुखी फटने से वायु की गुणवत्ता में क्या प्रभाव आता है?

लघुत्तरात्मक प्रश्न

1. ऐरेशन क्षेत्र और संतृप्ति क्षेत्र के भागों को समझाइए।
2. तापमान लॉगिंग को संक्षेप में समझाइए।
3. कौन–कौन से रेडियोधर्मी पदार्थ भू–जल के स्रोत है?
4. उत्सर्जन के स्थान पर प्रदूषण कारक कैसे कार्य करते है?
5. राजस्थान में भूजल वितरण को संक्षेप में समझाइए।
6. भू–जल उपयोग के प्रकार समझाइए।
7. तल की अवस्था किन परीक्षणों द्वारा की जाती है?
8. भू–अभियांत्रिक निर्माण के पूर्व निर्माण सामग्री के किन–किन पहलुओं की जांच की जानी चाहिए?
9. एरियल फोटोग्राफी व सुदूर संवेदन के सिद्धांत को संक्षेप में समझाइए।
10. सुदूर संवेदन में चट्टानों के गुणों का आकलन कैसे किया जाता है?

निबंधात्मक प्रश्न

1. बांध के प्रकारों को सचित्र समझाइए।
2. खनन आधारित उद्योगों से पर्यावरण क्षति को समझाइए।
3. भू–जल के उर्ध्व वितरण को सचित्र समझाइए।
4. राजस्थान में भू–जल वितरण के क्षेत्रों (Zones) को विस्तार से समझाइए।

उत्तरमाला : 1 (ब) 2 (अ) 3 (स) 4 (द) (5) अ 6 (ब) 7 (द) 8 (अ) 9 (स) 10 (अ)

प्रायोगिक भू–विज्ञान
(Practical Geology)

1. खनिजों के हस्त नमूनों का अध्ययन

क्वार्ट्ज (Quartz) एवं जस्पर (Jasper) के भौतिक गुण

	क्वार्ट्ज (Quartz)	**जस्पर** (Jasper)
रासायनिक संगठन	SiO_2	SiO_2
क्रिस्टल समुदाय	षट्कोणीय	अपारदर्शी, क्रिप्टोक्रिस्टलाईन
आकृति	प्रिज्मेटिक	ठोस
वर्ण	रंगहीन, भूरा, गुलाबी, जामुनी, धुँए जैसा	लाल, भूरा, पीला, सफेद
वर्ण रेखा	सफेद	सफेद या भूरी
चमक	काचाँभ	उपकाचाँभ
कठोरता	7	6.5 से 7
विभंग	शंखाभ	असमान
विदलन	नहीं होता है	नहीं
आपेक्षिक घनत्व	2.65	2.7
उपयोग	काँच, मृत्तिका, बर्तन, रेडियो, प्रकाशकीय उद्योग	

क्वार्ट्ज के कुछ रंगों के आधार पर प्रकार भी पाये जाते हैं। जैसे गुलाबी क्वार्ट्ज, सफेद को दुधिया क्वार्ट्ज, काले को धूमिल या स्मोकी क्वार्ट्ज, पीले को सिट्राइन क्वार्ट्ज, बैंगनी को एमेथिस्ट क्वार्ट्ज कहते हैं।

फेल्सपार (Feldspar)

फेल्सपार समूह में बहुत सदस्य होते हैं। फेल्सपार का सामान्य सूत्र WZ_4O_8 है। यहाँ

W = Na, K, Ca और Ba तत्व शामिल है और Z = Si और Al है

1. **क्रिस्टल समुदाय** : एकनत एवं त्रिप्रवण समुदाय। प्रिज्मेटिक एवं ठोस आकृति
2. **वर्ण** : ऑर्थोक्लेज : सफेद, माइक्रोक्लीन : हल्का गुलाबी एवं प्लेजियोक्लेज : सफेद से भूरा होता है
3. **वर्ण रेखा** : सफेद या रंगहीन
4. **चमक** : काँचाभ एवं मुक्ता
5. **पारदर्शिता** : पारभाषी से अपारदर्शी
6. **कठोरता** : 6
7. **विभंग** : असमान एवं शंखाभ
8. **विदलन** : दो दिशा में उत्तम
9. **आपेक्षिक घनत्व** : 2.5 से 3

ऑलिवीन (Olivine)

– **रा.स.** : $(MgFe)_2 (SiO_4)$
– **क्रि. स.** : विषमअक्षीय। प्रायः दानेदार छोटे–छोटे क्रिस्टल इनके सिरों पर पिरैमिड और डोम होते हैं।
– **रंग** : अंगूर की तरह गहरा हरा।

- **व.रे.** : रंगहीन
- **चमक** : काँचाभ
- **विदलन** : शंखाभ
- **कठोरता** : 6.5 से 7 तक
- **आ.घ.** : 3.27 से 3.37। यह खनिज बहुत ही जल्दी स्थूल आकृति के और रेशेदार सर्पेन्टीन खनिज में बदल जाता है।
- **उपस्थिति की अवस्था** : यह खनिज दानों या छोटे–छोटे क्रिस्टल के रूप में अत्यल्पसिलिक आग्नेय शैलों में पाये जाते हैं।
- **उपयोग** : कम लोहे वाला ऑलिवीन खनिज उच्च तापसह (refractory) है।

कायनाइट (Kyanite)

- **रा. स.** : ऐलुमिनियम सिलिकेट $Al_2O_3SiO_2$ or Al_2SiO_5
- **क्रि. स.** : त्रिप्रवण। इसके क्रिस्टल लम्बे पतले चाकू के फलक जैसे होते हैं।
- **रंग** : फीका नीला या आसमानी
- **व. रे.** : रंगहीन
- **चमक** : काँचद्युति
- **विभंग** : चपटी (Splintry)
- **विदलन** : प्रिज्मेटिक पूर्ण
- **कठोरता** : 5 एवं 7
- **आ.घ.** : 3.56 से 3.67 तक
- **उपयोग** : उच्च तापसह पदार्थ, विद्युत प्रतिरोधक आदि रूपों में इसका उपयोग होता है।

गार्नेट (Garnet)

गार्नेट कुल (family) या समूह में बहुत से सदस्य हैं। ये द्वि और त्रिसंयोजी धातुओं के सिलिकेट होते हैं। इसके रासायनिक संगठन को सामान्य सूत्र $R_3^{ii}\ R_2^{iii}(SiO_4)$ हैं। जहाँ R^{ii} = कैल्शियम, मैग्निशियम, लौह या मैंगनीज है एवं R^{iii} = लौह, ऐलुमिनियम, क्रोमियम या टाइटेनियम है। इसका उपयोग रत्नों के रूप में होता है।

- **क्रिस्टल समुदाय** : घनीय
- **वर्ण** : लाल, हरा, भूरा, काला
- **आकृति** : समचतुर्भज, दानेदार
- **वर्ण रेखा** : सफेद, पीली
- **चमक** : कांचाभ से रेजिनी
- **पारदर्शिता** : पारदर्शी, अपारदर्शी या पारभाष हो सकता है।
- **कठोरता** : 7 से 7.5
- **विभंग** : असमान से शंखाभ
- **विदलन** : अनुपस्थित
- **आपेक्षिक घनत्व** : 3.6 से 4.3
- **उपयोग :** रत्न एवं अपघर्षक उद्योग

मस्कोवाइट एवं बायोटाइट के भौतिक गुण

	मस्कोवाइट	बायोटाइट
रासायनिक संगठन	$KAl_2(AlS_{13}O_{10})\ OH_1)_2$	$K(Mg, Fe)_3(AlS_{13}O_{10})\ OH_1F)_2$
क्रिस्टल समुदाय	एकनत समुदाय में क्रिस्टलित होता है। दिखने में क्रिस्टल षटकोणी होते हैं। अधिकतर शल्की होते हैं।	ये भी कृत्रिम षट्कोणी एवं शल्कित पत्रक होते हैं। एकनत समुदाय में आता है।
रंग	इसे श्वेत अभ्रक कहते हैं पर पत्रक अधिकतर रंगहीन होते हैं।	काला, हरा एवं धुंए जैसा होता है।
वर्ण रेखा	सफेद	सफेद
चमक	मुक्ता	मुक्ता
पारदर्शिता	पारदर्शी	पारभाषी
विभंग	असमान	असमान
विदलन	(001) के समतल पूर्ण विदलन होता है।	(001) के समतल पूर्ण विदलन होता है।
कठोरता	2 से 2.5	2.5 से 3
आपेक्षिक घनत्व	2.8 से 2.9 तक	2.7 से 3
उपयोग	ताप एवं विद्युतरोधक इत्यादि	ताप एवं विद्युतरोधक इत्यादि

2. आग्नेय शैलों के हस्त नमूनों का अध्ययन

आग्नेय शैलें

आग्नेय शैलों के स्थूल दर्शीय अध्ययन हेतु महत्वपूर्ण बिन्दु

1. शैल के नमूने साफ और ताजा होने चाहिए तथा आकार कम से कम 4 इंच × 4 इंच होना चाहिए।
2. शैल के सामान्य गुण, वर्ण एवं खनिज घटकों की दृश्यता। वर्ण सामान्यतः खनिज संघटन पर निर्भर करता है। जिस वर्ण के खनिज की शैलें होगी उसमें विभिन्न वर्णों की शैलों का तुलनात्मक अध्ययन सहायक होगा।
3. गठन : यह देखिए कि दी हुई शैल दीर्घ कणीय, मध्यम कणीय, सूक्ष्मकणीय या कांचमय है। शैल समकणीय है या असमकणीय। कणों/क्रिस्टलों का आकार व रूप–पूर्णफलकीय, अर्धफलकीय है। यह भी देखिए कि वे समविमिय, पट्टित, प्रिज्मीय या सूच्याकार रूप में है। क्रिस्टलों की अधिकतम तथा न्यूनतम साइज देखिए।
4. संरचनाएँ : क्रिस्टलों की विशिष्ट व्यवस्था, प्रवाही संरचनाएँ, वातामकी संरचनाएँ, स्फोटगर्तिकाएँ, आदि उपस्थित हैं।
5. खनिज संघटन : खनिजों के घटते हुए क्रम में, उनका प्रतिशत देखिए। प्रधान एवं गौण खनिजों को पहचानिए। उनके विशिष्ट गुण लिखिए। इस हेतु आप लेन्स का प्रयोग भी करें। उपरोक्त गुणों के आधार पर शैल का नाम तथा उत्पत्ति दीजिए।

पेग्मेटाइट (Pegmatite)

पेग्मेटाइट का नाम वितलीय शैलों के समान संघटन वाले स्थूल एवं अति स्थूल क्रिस्टलीय शैलों के लिये प्रयुक्त किया जाता है। सामान्यतः श्वेतवर्णी होती है पर जिस खनिज की अधिकता होगी वही वर्ण होगा। गठन – दृश्यक्रिस्टलीय, बहुत बड़े, क्रिस्टल, पेग्मेटाइटी गठन। कभी–कभी आलेखी गठन। क्वार्ट्ज एवं आर्थोक्लेज या माइक्रोक्लीन के बीच। खनिज संघटन– अ. अनिवाय – खनिजिकीय दृष्टि से परिवर्तनशील। सामान्यतः क्वार्ट्ज, पोटाश फेलस्पार, प्लेजियोक्लेज, मस्कोव्हाइट, बायोटाइट। ब. सहायक– टूरमलीन, बेरिल, टोपाज, एपेटाइट, केसिटराइट।

इस शैल की उत्पत्ति वाष्पीय पदार्थों की उपस्थिति में अम्लीय मैग्मा के अवशिष्ट द्रव में मंद क्रिस्टलन से हुई है। आर्थिक महत्व– यह शैल अनेक आर्थिक खनिज निक्षेपों की जनक शैल मानी जाती है। टूरमैलिन, टोपाज, बेरिल, एपेटाइट, इमेरल्ड, गार्नेट, लेपिडोलाइट, रूटाइल, केसिटेराइट, लोराइट, यूरेनिनाइट कोलंबाइट एवं अनेक दुर्लभ मृदा खनिज प्रमुख है। इतने सारे खनिजों की उपस्थिति के कारण इसे खनिजों का संग्रहालय भी कहते हैं।

सायनाइट (Syenite)

शैल का वर्ण श्वेत, हल्का भूरा, गुलाबी लाल या फीका हरा होता है। सामान्यतः दृश्य क्रिस्टली शैल है जिसमें एल्कली फेल्सपार (आर्थोक्लेज, माइक्रोक्लीन और एल्बाइट) प्रमुख खनिज हैं। केल्सिक एल्कली प्लेजियोक्लेज (ऑलीगोक्लेज) भी पाया जाता है। क्वार्ट्ज या तो नहीं पाया जाता या 5% से कम होता है। सहायक खनिजों में बायोटाइट, हॉर्नब्लेंड, सोडाएम्फीबोल, डायोप्साइड, सोडियम पाइरॉक्सीन, ऑलीवीन पाये जाते हैं। शैल सामान्यतः मध्यम कणी होता है। गठन समकणिक अंश फलकी होता है। पोटाश फेल्सपार के दीर्घ क्रिस्टल, अन्तर्वेशी होते हैं।

मुख्य रूप से अल्कली फेल्स्पार की प्रचुरता के कारण इसे सायनाइट कहते हैं। इस प्रकार की शैल सर्व प्रथम मिस्र देश के सायन (syene) में पायी गई और इसलिए इस प्रकार की शैल का नाम सायनाइट पड़ा।

गेब्रो (Gabbro)

गेब्रो शैल मध्यम से स्थूल कणी, अंश फलकीय अथवा अफलकीय कणों से निर्मित पूर्ण क्रिस्टलीय, समकणी, सामान्यतः श्यामवर्णी, कभी कभी मध्यमवर्णी शैल है। प्लेजियोक्लेज (लेब्रेडोराइट) एवं पाइरॉक्सीन (ओजाइट) सामान्य खनिज होते हैं। डायलेज, हाइपरस्थीन, डायोप्साइड और ऑलीवीन भी पाये जाते हैं। इनके अतिरिक्त हॉर्नब्लेंड, बायोटाइट और क्वार्ट्ज भी गौण खनिजों के रूप में पाये जाते हैं। इसके अलावा इल्मेनाइट, क्रोमाइट, मैग्नेटाइट आदि अल्प मात्रा में तथा एपेटाइट, रूटाइल, स्फीन एवं जिरकन अत्यल्प मात्रा में उपस्थित रहते हैं। शैल मुख्यतः लेब्रेडोराइट (प्लेजियोक्लेज) एवं ऑगाइट (पायरॉक्सीन) से बनी होने पर गेब्रो कहलाती है। गेब्रो का उपयोग निर्माणकारी पदार्थ के रूप में सड़क, पुल, बाँध, भवन आदि निर्माणों में किया जाता है।

डोलेराइट (Dolerite)

सामान्यतः श्यामवर्णी गेब्रो के अनुरूप संघटन वाली मध्यम से सूक्ष्म कणी प्रायः डाइक और सिल के रूप में पायी जाने वाली शैल को डोलेराइट के नाम से जाना जाता है। गठन में दृश्य क्रिस्टलीय, मध्यम कणिक या लेन्स से देखने पर कभी कभी असमकणिक।

अनिवार्य खनिज – ऑगाइट (पायरॉक्सीन) तथा नीला लेब्रेडोराइट (प्लेजियोक्लेज फेल्सपार) लेन्स से पहचाने जा सकते है। सहायक खनिज – ऑलिवीन, हॉर्नब्लेन्ड। गौण खनिज – मेग्नेटाइट, इल्मेनाइट, एपेटाइट आदि। खनिज संघटन गैब्रो के समान ही होता है, परंतु स्थूल कणिक की तुलना में मध्यम कणिक होता है। इसकी उत्पत्ति बेसिक मैग्मा के क्रिस्टलन से अधिवितलीय अवस्था में हुआ। पॉर्फिरिटिक गठन यह दर्शाता है कि दीर्घ क्रिस्टल एवं मेट्रिक्स अलग–अलग स्थानों पर क्रिस्टलित हुए। इसका उपयोग निर्माणकारी पदार्थ के रूप में होता है।

रायोलाइट (Rhyolite)

यह अदृश्य क्रिस्टली ज्वालामुखी शैल है जो पूर्ण क्रिस्टलीय, अंश क्रिस्टलीय या पूर्ण कांचीय होती है। अधिकांश रायोलाइट सफेद पीतांभ हल्के भूरे या गुलाबी रंग के होते हैं। किन्तु पीले और गहरे लाल बैंगनी रंग भी पाये जाते हैं। मुख्यतः इसके खनिज ग्रेनाइट के समान ही होते है। क्वार्ट्ज तथा पोटाश फेल्सपार (सेनीडीन, ऑलीगोक्लेज) आवश्यक खनिज है। इनके साथ बायोटाइट, हॉर्नब्लेंड और पाइरॉक्सीन प्रमुख गौण खनिज हैं। मैग्नेटाइट, ट्रिडीमाइट, क्रिस्टोबेलाइट, गार्नेट, एपेटाइट, स्फीन, जिरकन आदि खनिज अत्यल्प मात्रा में पाये जाते हैं। इसका गठन पॉर्फिरीटिक– अदृश्य क्रिस्टली, महीन कणिक से कांचमय, असमकाणिक एवं स्फोटगर्ती संरचना युक्त होता है।

3. अवसादी शैलों के हस्त नमूनों का अध्ययन

कक्षा 11 में कुछ महत्वपूर्ण अवसादी शैलों का वर्णन किया जा चुका है, कुछ अन्य शैलों का विवरण निम्न है।

संगुटिकाश्म या कांग्लोमरेट (Conglomerate)

गोल कणों वाले असंपीडित गुटिकामय निक्षेप जिन्हें बजरी या शिंगिल (gravel) कहते हैं, इसके संपिडन से संगुटिकाश्म का निर्माण होता है। इसी प्रकार इनका संयोजन पदार्थ स्थलजात अपेक्षाकृत महीनकणी अथवा रासायनिक उत्पत्ति का हो सकता है। कण प्रायः क्वार्ट्ज, क्वार्ट्जाइट, चर्ट आदि के तथा संयोजन पदार्थ सिलिका होता है। इसके कणों का व्यास 2 मिलीमीटर से अधिक होता है। इसके कणों में गोलाई अधिक होती है।

संगुटिकाश्म मुख्यतः दो प्रकार के होते है।

अ. **आलिगोमिक्टिक** (Oligomictic) एक ही प्रकार की शैल गुटिकाएँ।

ब. **पॉलिमिक्टिक** (Polymictic) विभिन्न प्रकार की गुटिकाएँ।

गठन : अत्यधिक स्थूल कण, छँटाई अच्छी नहीं होती, कणों की गोलाईता तथा गोलाभता मध्यम।

खनिज संघटन : क्वार्ट्ज एवं फेल्सपार। जस्पर–लाल या हरा। विविध शैलों के टुकड़े।

मैट्रिक्स : फेलस्पार, माइका, सेरीसाइट, केओलिनाइट, एवं क्लोराइट

कांग्लोमरेट गोलाभता दर्शाते हैं। मुख्यतः क्वार्ट्ज की गुटिकाएँ होती है। इसकी छँटाई उत्तम होती है। कणों की गोलाईता अत्यधिक परिवहन एवं परिपक्वता की मात्रा को प्रदर्शित करती है।

संकोणाश्म (Breccia)

संकोणाश्म कोणीय या उपकोणीय गुटिकामय शैल खण्डों का संपिडित समुच्चय है। मुख्य रूप से इसकी उत्पत्ति अवसादी होती है। अवसादी संकोणाश्म कोणीय शैल खण्डों युक्त शैल मलबे (rock debris) के उसी जगह पर संपीडन (compression) और अश्मीभवन से निर्मित होते हैं। भ्रंश तलों पर और विवर्तनिक गतिविधियों के कारण उत्पन्न संकोणाश्म को विवर्तनिक संकोणाश्म कहते हैं।

आर्कोज (Arkose)

आर्कोज हल्के गुलाबी पीताभ या लाल रंग के बालुकाश्म है। जो कभी कभी भूरे रंग के भी होते हैं। इनका रंग फेल्सपार के रंग या संयोजक पदार्थ के फेरिकऑक्साइड की उपस्थिति पर आधारित होता है। खनिजात्मक रूप से अपरिपक्व इन शैलों में क्वार्ट्ज एवं फेल्सपार 80% से 95% तक होते हैं। फेल्सपार 25% से अधिक होता है। अभ्रक की उपस्थिति सामान्य होती है। आर्कोज पिण्डाकार (Massive) से संस्तरित (Stratified) तथा तिर्यक संस्तरित (Oblique Bedded) होते हैं।

गठन : संखण्डी प्रकृति दीर्घ बालू (Coarse Sand) से गाद या सिल्ट (Silt) साइज तक। मध्यम कणों की छँटाई उत्तम। गोलाईता एवं गोलाभता मध्यम से निम्न।

खनिज संघटन : प्रमुख खनिजों में क्वार्ट्ज एवं फेल्सपार। अन्य खनिजों में माइका, पायरॉक्सीन एवं एम्फिबोल।

मैट्रिक्स : केओलीन, लौह ऑक्साइड, सूक्ष्म गाद (सिल्ट) जिरकॉन, गार्नेट, मेग्नेटाइट, टूरमलीन

सीमेंट पदार्थ : अ. असंहत (non cohesive) (मृत्तिकामय) एवं ब. संहत (Cohesive) (केल्साइट या सिलिका)

आर्कोज की उत्पत्ति मुख्यतः वितलीय आग्नेय शैलों के अपरदन से प्राप्त अवसादों के निक्षेपण से मानी जाती है। ये फेलस्पारयुक्त बालुकाश्म के साहचर्य में मिलते हैं।

ग्रेवेक (Graywacke)

ग्रवेक कठोर दृढ भूरे गहरे, हरे रंग के शैल है जो गठनात्मक एवं खनिजात्मक रूप से अपरिपक्व बालुकाश्म जिनमें 15% से अधिक, संयोजक प्रकार के आधात्री (मुख्यतः मशीनकणी गाद और छोटे आकार के क्लोराइट, सेरिसाइट और क्वार्ट्ज) होते हैं। बालुकणों में फेल्सपार की अपेक्षा क्वार्ट्ज शैल खण्डों में अधिक होता है। शैल खण्ड अनेक प्रकार के शैलों से प्राप्त होते हैं। कण सामान्यतः कोणीय या अल्प गोलाभता दर्शाते हैं। मेफिक खनिजों में पाइरॉक्सीन, हार्नब्लेंड आदि के साथ साथ क्लोराइट, बायोटाइट, मस्कोवाइट आदि कणों की उपस्थिति सामान्य है। क्रमिक संस्तरण पाया जाता है। सीमेंट द्वितीयक सिलिका होती है।

गठन : कणों की आकार बजरी से सिल्ट तक। निकृष्ट छँटाई। गोलाईता एवं गोलाभता निम्न से मध्यम।

खनिज संघटन : 30 से 40% क्वार्ट्ज और 10 से 50% फेल्सपार। कार्बोनेट तथा पायराइट अल्प, मात्रा में। फायलाइट, ग्रीनशिस्ट, स्लेट, चर्ट के शैल टुकड़े 5 से 10% तक। भारी खनिज गौण एवं अल्प मात्रा में हॉर्नब्लेंड, ऑगाइट, एपिडोट, सर्पेन्टीन, बायोटाइट, मेग्नेटाइट, जिरकॉन एवं टूरमलीन।

शेल (Shale)

विभिन्न वर्णों में पायी जाती है विदल्यता (Fissility) उपस्थित मुँह से भाप देकर सूँघने पर मिट्टी सी गंध देती है। शेल के कणों का औसत आकार 0.01 मिलिमीटर से छोटा होता है। जब ये

कण सुप्रस्तरित और सुगमता से संस्तरण तलों के अनुप्रस्थ विपाटित हो तो उसे शेल कहते हैं।

गठन : संखण्डी प्रकृति की होती है। अत्यधिक सूक्ष्म कण, विदल्यता।

खनिज संघटन : स्थूलदर्शीय अध्ययन में खनिजों की पहचान कठिन होती है। विदल्यता के कारण मृत्तिका का अनुमान लगाया जा सकता है।

शैल अनेक वर्णों में मिलती है। ये वर्ण शैल की उत्पत्ति के विषय में बहुत कुछ कह जाते हैं। जैसे लाल वर्ण हेमेटाइट के कारण होता है जो ऑक्सीकरण वातावरण (Oxidation Environment) को दर्शाता है। काला या धूसर वर्ण अपचयन वातावरण (Reduction Environment) दर्शाता है और हरा वर्ण ठंडी जलवायु का द्योतक है।

4. कायान्तरित शैलों के हस्त नमूनों का अध्ययन

कक्षा 11 में कुछ महत्वपूर्ण कायान्तरित शैलों का वर्णन किया जा चुका है, कतिपय अन्य शैलों का वर्णन निम्न है।

स्लेट (Slate)

स्लेट धूसर अथवा काले रंग की अत्यधिक सूक्ष्म कणी मृण्मय पदार्थ से निर्मित शैल होती है जो कि माइका (सेरीसाइट), क्लोराइट तथा अपघटित पदार्थ यथा क्वार्ट्ज, फेल्सपार तथा एल्यूमिनियम और लौह के सिलिकेट और हाइड्राक्साइड के चूर्ण से बनी होती है। स्लेटी विदलन स्लेट का लाक्षणिक गुण है। इसमें विदलन तल पास–पास में होते हैं।

वर्ण : सामान्यतः धूसरी काला। हरा (क्लोराइट के कारण), लाल (लौह ऑक्साइडों के कारण) भी।

गठन एवं/ या संरचना : सामान्यतः सूक्ष्मक्रिस्टलीय। यह स्लेटी विदल्यता दर्शाती है।

खनिज संघटन : सूक्ष्मकणिक होने के कारण खनिजों को आसानी से नहीं पहचाना जा सकता है। द्युति के आधार पर माइका (सेरीसाइट) एवं क्लोराइट खनिजों को पहचानना संभव है। अपघटित पदार्थ क्वार्ट्ज एवं फेल्सपार भी होते है।

यह कई प्रकार की होती है यथा चूनामय (Calcareous) स्लेट, कार्बनी (Carbonaceous) स्लेट, तेलीय स्लेट, लाल स्लेट आदि। इस शैल की उत्पत्ति मृत्तिकामय अवसादों, ज्वालामुखीय राख एवं सूक्ष्मकणीय अवसादों के कायांतरण के फलस्वरूप हुई हैं। इसका उपयोग छतों को ढँकने की पट्टी बनाने में होता है। पुराने समय में स्कूल की स्लेट बनाने में होता था।

फायलाइट (Phyllite)

फायलाइट स्लेट और शिस्ट के बीच की ऐसी शिष्टाम शैल है जो स्लेट से थोड़े उच्च कायांतरण पर बनती है। यह स्लेट की तुलना में स्थूल कणी किंतु शिष्ट की तुलना में महीन कणी है। इसे पत्रित अभ्रक एवं क्लोराइट चमक (sheen) प्रदान करते हैं यह इसका लाक्षणिक गुण है। ये मृण्मय अवसाद के निम्न श्रेणी के कायांतरण से उत्पन्न होती हैं। क्लोराइट और माइका युक्त शैल में क्वार्ट्ज और फेलस्पार खनिज गौण रूप से पाय जाते हैं किंतु उन्हें बिना माइक्रोस्कोप की सहायता के उन्हें नहीं पहचाना जा सकता। कायांतरण की श्रेणी बढ़ने पर ये शिष्ट में परिवर्तित हो जाते हैं।

शिष्ट (Schist)

शिष्ट स्थूल लक्षणी पूर्ण क्रिस्टलीय कायांतरित शैल है। जिसमें शिष्टाभ संरचना स्पष्ट रूप से पायी जाती है। इस शैल में शिष्टाभ तलों (स्तरिकायन/foliation) के समानान्तर विपाटन (splitting) की प्रवृत्ति पायी जाती है।

वर्ण : विविध वर्ण। वर्ण घटकों पर निर्भर होता है। हल्के वर्ण मस्कोव्हाइट एवं टाल्क के कारण तथा गहरे वर्ण (काला, भूरा या हरा) एम्फीबोल, बायोटाइट एवं क्लोराइट के कारण होते हैं। खनिजों के पुनक्रिस्टलन के कारण सभी खनिज तीव्र काँचाभ द्युति दर्शाते हैं।

संरचना एवं/या गठन : सामान्यतः शिष्टाभ संरचना, वलित पत्रण संरचना, रेखण संरचना भी। मध्यम से दीर्घ क्रिस्टलीय। खनिज घटकों को खुली आँख से आसानी से पहचाना जा सकता है। अनेक शिष्टें पॉर्फिरोब्लास्टी गठन प्रदर्शित करती है।

खनिज संघटन : प्रमुख घटक माइका जो शैल को शिष्टाभता प्रदान करती है। माइका में बायोटाइट एवं मस्कोवाइट पाया जाता है। क्वार्ट्ज, एम्फीबोल, क्लोराइट व टाल्क प्रचुर मात्रा में होते है। गार्नेट मुख्य पॉर्फिरोब्लास्ट है। स्टॉरोलाइट भी दीर्घ क्रिस्टलों के रूप में मिलते है।

गार्नेट खनिजों में टूरमलीन, सिलिमेनाइट, पायराइट, हेमेटाइट, मेग्नेटाइट, इल्मेनाइट, ग्रेफाइट, एपेटाइट, जिरकॉन स्फीन, रूटाइल, केल्साइट, कॉर्डियराइट, एक्टिनोलाइट महत्वपूर्ण हैं।

नामकरण : जिस शैल में शिष्टाभ संरचना होती है वह शिष्ट कहलाती है। इसके अनेक प्रकार होते है। सामान्यतः शिष्ट का नामकरण प्रधान खनिजों या प्रचुर मात्रा में उपस्थित खनिजों के आधार पर किया जाता है। उदाहरण के लिये स्टॉरोलाइट–माइका शिष्ट, गार्नेटमय–बायोटाइट शिष्ट, हार्सब्लेन्ड, शिष्ट आदि।

उत्पत्ति : इस शैल की उत्पत्ति मृत्तिकामय अवसादों के क्षेत्रीय कायांतरण से होती है। खनिजों की एक ही दिशा में समानान्तर व्यवस्था दिष्ट दाब की प्रबलता दर्शाती है।

नाइस (Gneiss)

पूर्ण क्रिस्टलीय, स्थूल कणी कायांतरित शैल जिसमें नाइसी संरचना विकसित हो नाइस के नाम से जानी जाती है। यह एकांतर क्रम से उपस्थित समकणी परब्लास्टी कणिका में क्वार्ट्ज फेल्सपार और उससे भिन्न अन्य खनिजो के पट्ट अथवा पत्रित शिष्टाभ संरचना वाली परते पायी जाती हैं।

वर्ण : प्रायः सफेद या हल्के एवं गहरे पट्ट।

गठन एवं/या संरचना : स्थूल कणी। खनिजों के अलग अलग पट्ट मिलते हैं।

खनिज संघटन : गहरे वर्णों वाले बायोटाइट एवं हॉर्नब्लेंड तथा हल्के वर्णों वाले क्वार्ट्ज एवं फेलस्पार आसानी से पहचाने जा सकते है। कुछ प्रकारों में लाल वर्णी गार्नेट भी पहचाना जा

सकता है। गौण खनिजों में एपेटाइट, जिरकॉन, पायराइट, हेमेटाइट, मेग्नटाइट, स्फीन इल्मेनाइट, केल्साइट, टूरमलीन एलानाइट, सिलिमेनाइट तथा कायनाइट मिल सकते हैं। द्वितीयक खनिज मुख्यतः केओलिनाइट, सेरीसाइट एवं क्लोराइट होते हैं। इन्हें सूक्ष्मदर्शी की सहायता से ही पहचान सकते हैं।

नामकरण : इस शैल का मुख्य गुण नाइसी संरचना है। इसी के कारण इसका नाम नाइस रखा गया है। खनिजों की प्रधानता या नाइसी संरचना के साथ कोई विशिष्ट लक्षण (जैसे ऑगेन नाइस में फेलसिक खनिजों का मसूराकार आकार) पाये जाने पर उसका उपयोग उपसर्ग (Prefix) लगाकर किया जाता है। जैसे

1. क्वार्ट्ज – फेलस्पार नाइस : इसमें इन खनिजों की मात्रा 75 तक होती है।
2. मस्कोव्हाइट नाइस : नाइसी संरचना के साथ प्रमुख खनिजों में क्वार्ट्ज, फेलस्पार एवं माइका होते हैं। माइका में मस्कोव्हाइट की मात्रा बायोटाइट से अपेक्षाकृत अधिक होती है।
3. बायोटाइट नाइस : नाइसी संरचना के साथ प्रमुख खनिजों में क्वार्ट्ज, फेलस्पार एवं माइका होते हैं। माइका में अधिकांश मात्रा बायोटाइट की होती है।
4. हार्नब्लेंड नाइस : इसमें हार्नब्लेंड प्रचुर मात्रा में मिलता है।
5. ऑगेन नाइस : इसमें क्वार्ट्ज तथा फेलस्पार के कण आँख जैसे होते हैं।
6. उत्पत्ति : क्वार्ट्ज फेलस्पार नाइस की उत्पत्ति फेलसिक आग्नेय शैलों (जैसे ग्रेनाइट, एप्लाइट आदि), अशुद्ध बालुकामय अवसादों (जैसे आर्कोज, मृत्तिकामय सेंडस्टोन आदि) से मानी जाती है। कायांतरण क्षेत्रीय गहराई पर तथा उच्च कोटि की होती है।

5. धात्विक एवं गैर धात्विक खनिजों के हस्त नमूनों का अध्ययन

गेलेना

- **रासायनिक सूत्र** : PbS
- **क्रिस्टल समुदाय** : घन समुदाय
- **रंग** : धूसर
- **वर्ण रेखा** : सीसा रंग, धूसर
- **चमक** : धात्विक
- **विदलन** : उत्तम घनाकार
- **विभंग** : सम, शंखाभ
- **कठोरता** : 2.05
- **आपेक्षिक घनत्व** : 7.4 से 7.6
- **उपयोग** : सीसा धातु एवं लोहे व इस्पात उद्योग में

स्फेलेराईट

- **रासायनिक सूत्र** : ZnS
- **क्रिस्टल समुदाय** : घन समुदाय
- **रंग** : धूसर, काला या भूरा
- **वर्ण रेखा** : भूरी से हल्की श्वेत
- **चमक** : धात्विक या रेसिनी
- **विदलन** : उत्तम द्वादश फलकों के समान्तर
- **विभंग** : शंखाभ
- **कठोरता** : 3.5-4.00
- **आपेक्षिक घनत्व** : 4
- **उपयोग** : जस्ता धातु एवं जस्ता आधारित उद्योग में

चेल्कोपाइराइट

- **रासायनिक सूत्र** : $CuFeS_2$
- **क्रिस्टल समुदाय** : चतुष्कोणीय, प्रायः स्थूल रूप में पाया जाता है।
- **रंग** : पीला, पीतल जैसा या सुनहरा पीला
- **वर्ण रेखा** : हरी काली
- **चमक** : धात्विक
- **विदलन** : अनुपस्थित
- **विभंग** : शंखाभ
- **कठोरता** : 3.5-4.00
- **आपेक्षिक घनत्व** : 4.10-4.30
- **उपयोग** : ताम्र धातु एवं तांबा आधारित उद्योग में

जिप्सम

- **रासायनिक सूत्र** : $CaSO_4$-$2(H_2O)$
- **क्रिस्टल समुदाय** : एकनत समुदाय, सपाट प्रिस्मेटिक, दानेदार, स्थूल आकार में
- **रंग** : रंगहीन, सफेद, कभी–कभी धूसर
- **वर्ण रेखा** : सफेद
- **चमक** : मुक्ता, रेशेदार, रेशमी
- **विदलन** : उत्तम 010 फलक के समान्तर
- **विभंग** : विसम
- **कठोरता** : 1.5-2.00
- **आपेक्षिक घनत्व** : 2.3
- **उपयोग** : कृषि एवं महत्वपूर्ण औद्योगिक खनिज

लिग्नाइट

- **रासायनिक सूत्र** : लिग्नाइट में निश्चित कार्बन 25-65% और उच्चतम स्तर की नमी वजन के आधार पर 20-40% होती है। लिग्नाइट में सल्फर 1 प्रतिशत से भी कम और राख लगभग 4 प्रतिशत तक होती है, यह उच्चतर वायु प्रदूषण उत्सर्जन पैदा करता है।
- **क्रिस्टल समुदाय** : अक्रिस्टलीय स्थूल आकार में
- **रंग** : लिग्नाइट का रंग भूरा–काला होता है।
- **वर्ण रेखा** : भूरा–काला
- **चमक** : अधात्विक
- **विदलन** : अनुपस्थित
- **विभंग** : विसम
- **कठोरता** : 2-4
- **आपेक्षिक घनत्व** : 2.3-4.2
- **उपयोग** : ऊर्जा का महत्वपूर्ण स्रोत

रॉक फॉस्फेट

- **रासायनिक सूत्र** : यह एक प्रकार की जैविक क्रियाओं से बनी शैल है। इसका रासायनिक सूत्र $3Ca_3(PO_4)$ कहा जा सकता है। इसमें P_2O_5:34%, CaO:48% से 52%, Fluorides 3% से 4-7%, SiO_2:3% से 5% तक होता है।
- **क्रिस्टल समुदाय** : अक्रिस्टलीय, स्तम्भाकर स्ट्रोमेटोलाईट कवक, स्थूल आकार में पाया जाता है।
- **रंग** : सफेद, कबूतरी
- **वर्ण रेखा** : सफेद
- **चमक** : अधात्विक
- **विदलन** : अनुपस्थित
- **विभंग** : विसम
- **कठोरता** : 2-4
- **आपेक्षिक घनत्व** : 2.3-3.2
- **उपयोग** : कृषि एवं उर्वरक उद्योग

6. जीवाश्मों के नमूनों का अध्ययन एवं नामांकित चित्र बनाईये

सिडारिस (Cidaris)

यह वर्ग एकाईनोइडिया (उपवर्ग रेग्युलेरिया) का महत्वपूर्ण जीवाश्म है। इनका कवच गोलाभ जो शीर्ष और आधार की ओर चपटा होता है। शीर्ष–चक्रिका अत्यन्त बड़ी परन्तु जीवाश्म में यह परिरक्षित नहीं होती। वीथी–क्षेत्र सँकरे, सीधे या कुछ टेढ़े–मेढ़े और सरल तथा समान आकार की पट्टिकाओं से निर्मित होते हैं, जिसमें बहुधा शूल नहीं पाये जाते। रंध्र एक पंक्तिक्त होते हैं। सिडारिस का सर्वाधिक महत्वपूर्ण लक्षण अन्तरावीथी की प्रत्येक पट्टिका के मध्य एक दीर्घ शूल सहित मुख्य गुलिका की उपस्थिति है जो प्रायः रंध्रित होती है। यह गुलिका सूक्ष्मदन्ती (Crenulated) अथवा चिकनी होती है। ऐरियोला बड़ा तथा द्वितीयक गुलिकाओं से घिरा होता है। परिमुख बड़ा होता है जिसकी झिल्ली पट्टिकाओं से आच्छादित होती है। अरस्तू की लालटेन पाई जाती है। शूल लम्बे, बड़े विविध आकार के और बहुधा कणिकाओं से अलंकृत होते हैं। इनका भू–वैज्ञानिक वितरण जुरैसिक से वर्तमान तक है।

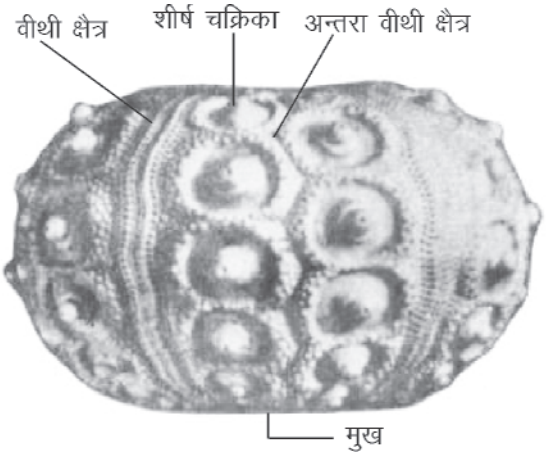

सिडेरिस (पश्च दृश्य)

माइक्रेस्टर (Micraster)

यह वर्ग एकाईनोइडिया (उपवर्ग इर्रेग्युलेरिया) का जीवाश्म है। क्रिटेशस स्पैटैंगाइड (Spatangoid) का यह सर्वाधिक प्रगत वंश है। कवच हृदयाकार अथवा अण्डाकार तथा पश्च की ओर रूंडित (Truncated) होता है। शीर्ष–चक्रिका छोटी तथा उत्केन्द्रित, मेड्रेपोरी पट्टिका केन्द्र तक बढ़ी हुई और पश्च जननिक अनुपस्थित होता है। वीथी–क्षेत्र प्रारूपित दलाभ न होकर यथार्थतः उपदलाभ होते हैं। अग्र वीथी गहरे धँसे क्षेत्र में स्थित होते हैं जिसके फलस्वरूप कवच की रूपरेखा में एक खाँच–सी बन जाती है। शेष वीथी भी शीर्ष चक्रिका से कुछ दूरी तक धँसे क्षेत्रों में पाये जाते हैं, परन्तु ये इतने अधिक धँसे नहीं होते कि कवच की रूपरेखा को प्रभावित करें। दो अग्रपार्श्व वीथी, शेष दो पच–पार्श्व से लम्बे होते हैं। अन्तरावीथी क्षेत्रों की पट्टिकाएँ दीर्घ, गुलिकाएँ छोटी, छिद्रित तथा सूक्ष्मदन्ती और फैसियोल अधोगुद (Sub-anal) होता है। पश्चअन्तरावीथी कुंठाग्र (Obtuse) कटक के रूप

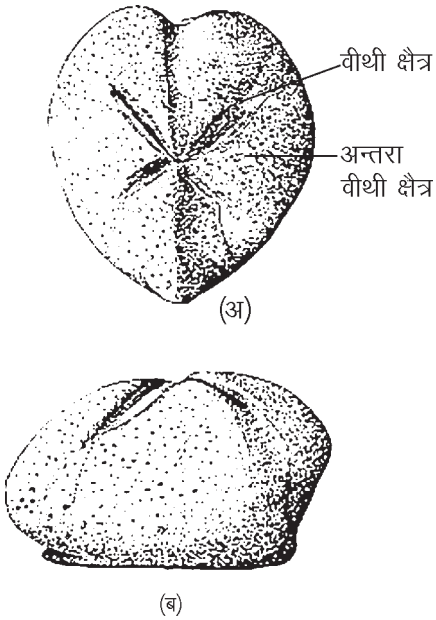

माइक्रेस्टर : (अ) उपदलाभ वीथी क्षेत्र (ब) पश्च दृश्य

में उठा हुआ होता है जिसे कील (Keel) या कूटक (Carina) कहते हैं। यह लगभग क्षैतिज रूप से शीर्ष–चक्रिका से पश्च उपान्त तक जाता है। परिमुख अग्र उपान्त के समीप प्रक्षिप्त, ओष्ठ तथा लैब्रम सहित तथा परिगुद ऊपरी भाग के पश्च छोर पर स्थित होता है। इनका भू–वैज्ञानिक वितरण क्रिटेशस से मध्य नूतन तक है।

न्युमुलाइटीज (Nummulites)

यह संघ प्रोटोजोआ (वर्ग सार्कोडिना) का जीवाश्म है। इनका कवच द्विपार्श्विक सममित, मसूराकार, अनेक समतल सर्पित चक्रों का बना होता है। यह प्रारम्भिक वृद्धि अवस्थाओं में प्रतिकेन्द्रज (Involute) और बाद की अवस्थाओं में सामान्यतः केन्द्रज (Evolute) होता है। बहुधा अग्रिम चक्रों को बाद के चक्र पूर्णरूपेण ढँक लेते हैं और इस प्रकार बाह्य रूप से केवल अंतिम चक्र ही दिखता है। चक्र, पटों द्वारा अनेक कोष्ठों में विभाजित होते हैं। प्रत्येक कोष्ठ अपने निकटस्थ कोष्ठ से एक मध्य विदर (Median fissure) से सम्बन्धित होता है। प्रत्येक पट दो अछिद्री पटों से निर्मित होता है तथा सूक्ष्मरूप से पीछे की ओर मुड़ा होता है। कुछ जातियों में द्वितीयक अस्थिपंजर तथा जटिल नाल–तंत्र विकसित पाया जाता है। द्वितीयक अस्थिपंजर की संरचना के कुछ भाग को उपान्तरज्जु (Marginal cord) कहते हैं। द्वारक

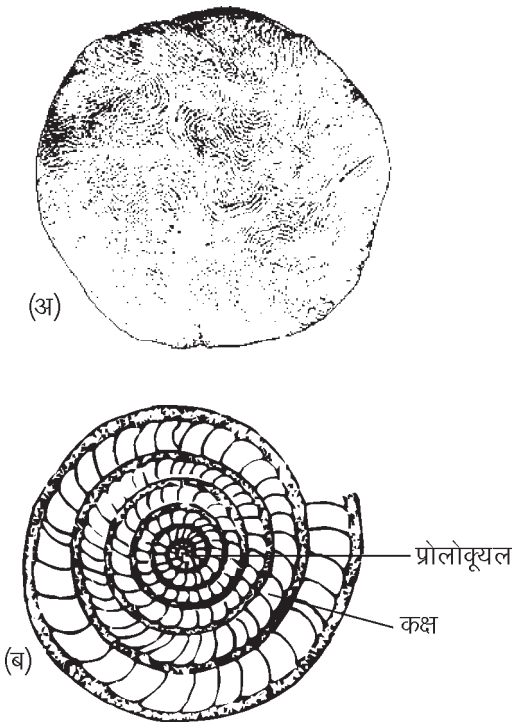

न्युमुलाइटीज : (अ) बाह्य दृश्य (ब) मध्यवर्ती काट

रेखा का रूप छिद्र जैसा होता है जो अंतिम कोष्ठ के उपान्त पर स्थित होता है। इनका भू–वैज्ञानिक वितरण आदिनूतन से अल्पनूतन तक है।

ऐसिलिना (Assilina)

यह संघ प्रोटोजोआ (वर्ग सार्कोडिना) का जीवाश्म है। इनका कवच दीर्घ जो कि 50 mm तक होता है। इनकी आकृति मसूराकार से चक्रिकाभ, कुण्डलीकृत एवं इनके बहुत कक्ष होते हैं जो कि सामान्यतः केन्द्रज ओर इनके पट तन्तु पूर्व में निर्मित चक्रों का अतिक्रमण नहीं करते हैं। इनके कक्षों की दीवारें कभी–कभी यौगिक होती है। इनकी आयु पेलियोसिन से वर्तमान तक है।

यूनियो (Unio)

यह संघ मोलस्का (वर्ग लैमेलीब्रेन्किया) का जीवाश्म है। इनका कवच मोटा, अण्डाकार या लम्बा–सा होता है। बाह्य सतह चिकनी, गुलिकीय, रेखित या वलित होती है। ककुद लगभग अग्र और बहुधा संक्षारित तथा स्नायु, बाह्य और लम्बा होता है। दायें कपाट में ककुद के सामने दो मोटे अनियमित और एक–पट्टित लम्बा पश्च दाँत तथा बायें कपाट में ककुद के समीप दो मोटे अनियमित और दो–पट्टि पश्च पार्श्व दाँत पाये जाते हैं। अग्र अभिवर्तनी छाप अत्यन्त गहरी और पश्च उथली तथा प्रावार–रेखा सरल होती है। इनकी आयु ट्राइएसिक से वर्तमान तक है।

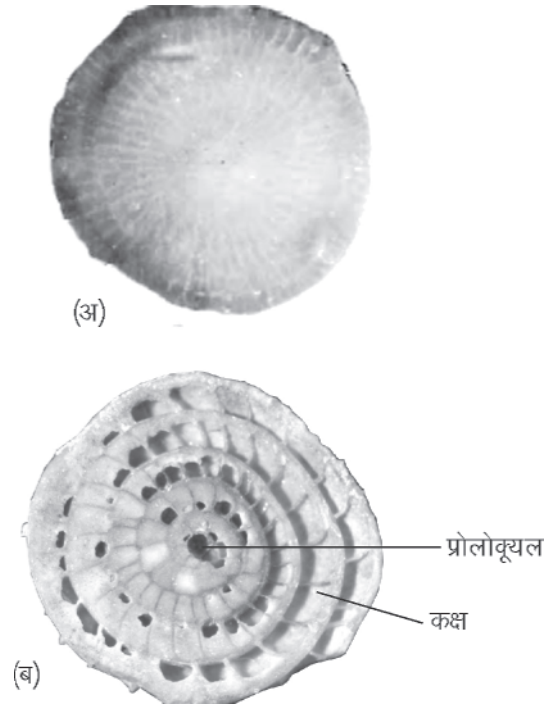

ऐसिलिना : (अ) बाह्य दृश्य (ब) मध्यवर्ती काट

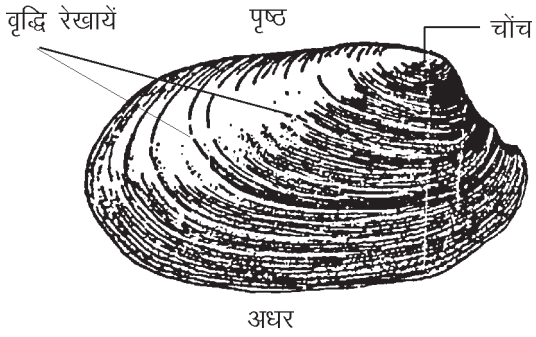

यूनियो (बाह्य दृश्य)

पेक्टेन (Pecten)

यह संघ मोलस्का (वर्ग लैमेलीब्रेन्किया) का महत्वपूर्ण जीवाश्म है। इनके कवच उप गोलाकार, अण्डाकार अथवा त्रिभुजीय, लगभग, समपार्श्विक तथा असमान कपाटीय या समान कपाटीय के निकट होता है। यह प्रायः अरीय पर्शुकाओं अथवा रेखांकन से अलंकृत या कभी–कभी चिकना अथवा संकेन्द्री कटकों सहित होता है। हिन्ज–रेखा सीधी तथा सुविकसित कर्णों सहित होती है। आन्तरिक स्नायु के लिए हिन्ज–रेखा के मध्य त्रिभुजीय गर्त (रेजिलिफर) पाया जाता है। अभिवर्तनी छाप दीर्घ (मोनोमाइएरिया) तथा सूक्ष्म रूप से उत्केन्द्रक होती है। इनकी आयु कार्बोनिफेरस से वर्तमान तक है।

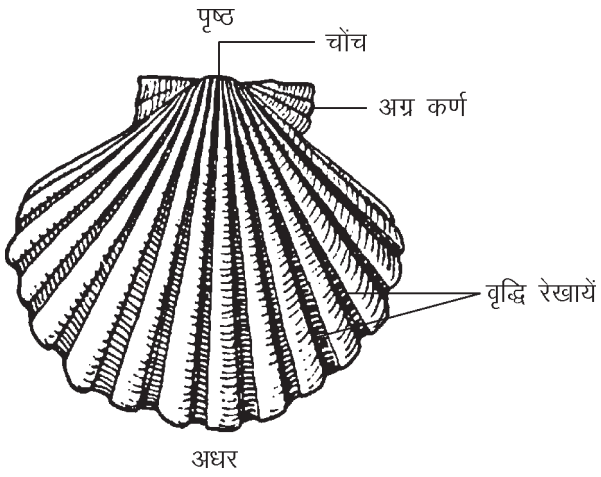

पेक्टेन (बाह्य दृश्य)

ग्लोसोप्टेरिस (Glossopteris)

यह संघ स्पर्मेटोफाइटा (गण साईकेडोफिलीकेल्स) का पादप जीवाश्म है। ग्लोसोप्टेरिस वनस्पति के पौधे अधिकांशतः पर्ण, स्तंभ, मूल और जननेन्द्रियाँ की छाप के रूप में परिरक्षित मिलते हैं। ग्लोसोप्टेरिस के पत्ते जिह्वाकार होते हैं। इनकी लम्बाई कुछ सेंटीमीटर से लेकर कई डेसीमीटर तक होती है। इनमें मध्य शिरा और जालिकारूपी शिराविन्यास होता है। ग्लोसोप्टेरिस निम्न गोंडवाना का महत्वपूर्ण पादप जीवाश्म है। इनकी आयु ऊपरी कार्बोनिफेरस से निम्न ट्राईसिक तक है।

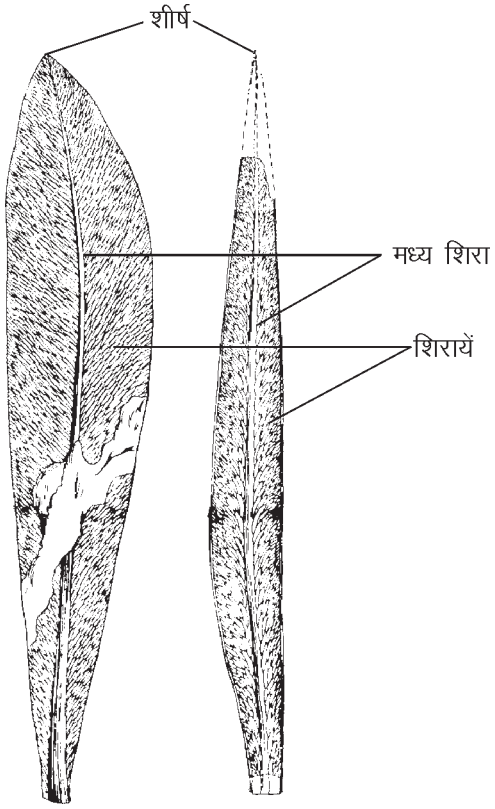

ग्लोसोप्टेरिस

टिलोफिलम (Ptilophyllum)

यह संघ स्पर्मेटोफाइटा (गण साईकेडेलीज) वर्ग का पादप जीवाश्म है। टिलोफिलम के पर्ण संयुक्त होते हैं जिनमें अनेक पिन्ना (Pinna) पाये जाते हैं। पिन्ना रेखीय (Linear) सीधे या सूक्ष्मरूप से हँसियाकार (Falcate) होते हैं, जो पिच्छाक्ष (Rachis) की ऊपरी सतह से संलग्न रहते हैं। पिन्ना का आकार गोलाई लिये हुए या सूक्ष्मरूप से चापाकार और चौड़ा होता है जो अपनी पूरी चौड़ाई से पिच्छाक्ष से संलग्न होता है। पिन्ना पिच्छाक्ष की पूरी लम्बाई में पाये जाते हैं, इस प्रकार उसे लगभग पूर्ण रूप से ढँक लेते हैं। पिन्ना की शिरायें समान्तर तथा यदा–कदा शाखित होती हैं। टिलोफिलम उपरि गोंडवाना के राजमहल और जबलपुर समूह में बहुतायत से मिलते हैं।

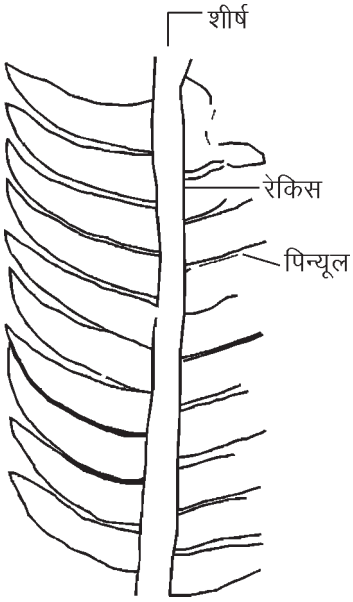

टिलोफाइलम

7. भारत के मानचित्र में निम्न खनिजों का वितरण

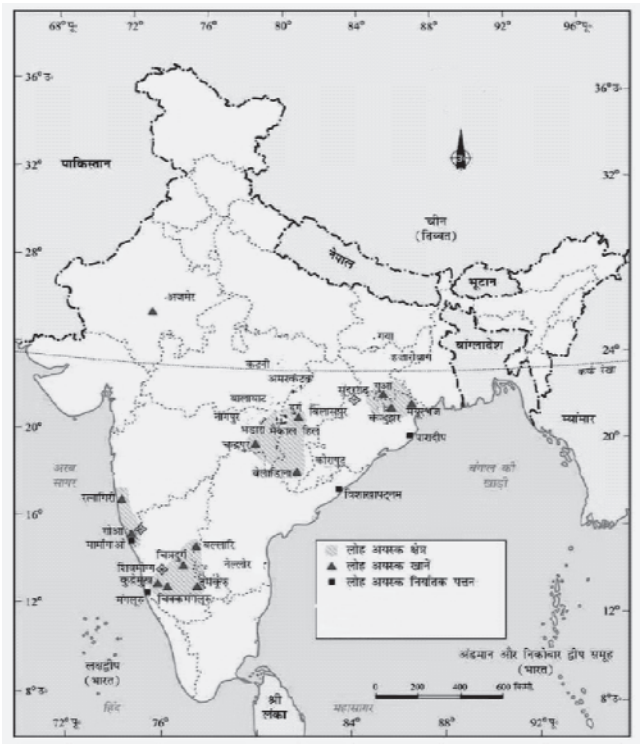

लोहा निक्षेप

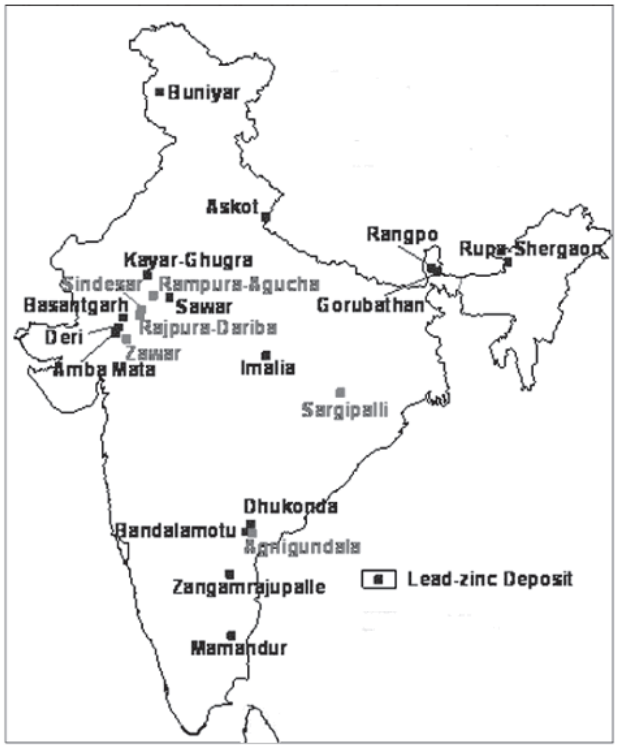

सीसा–जस्ता निक्षेप

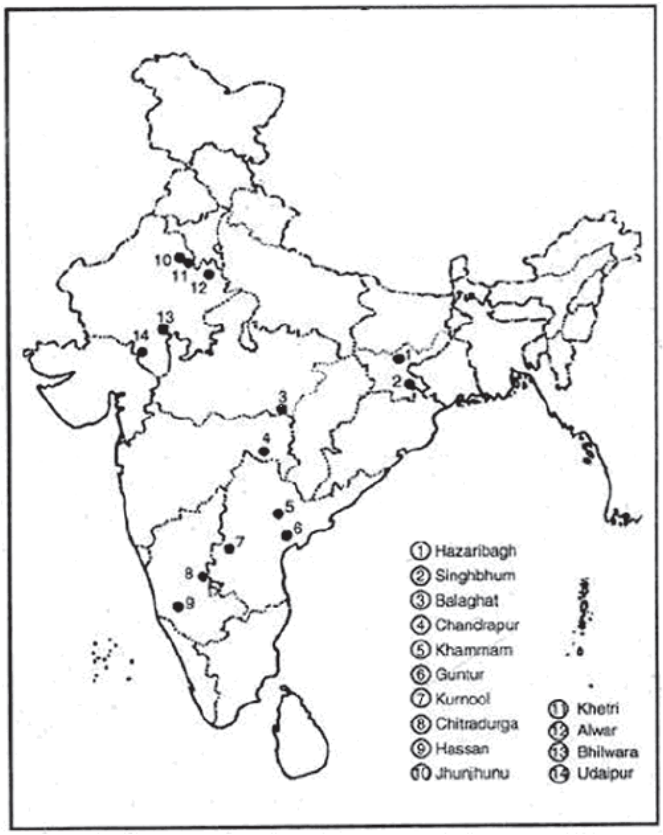

ताम्र निक्षेप

रॉक फॉस्फेट निक्षेप

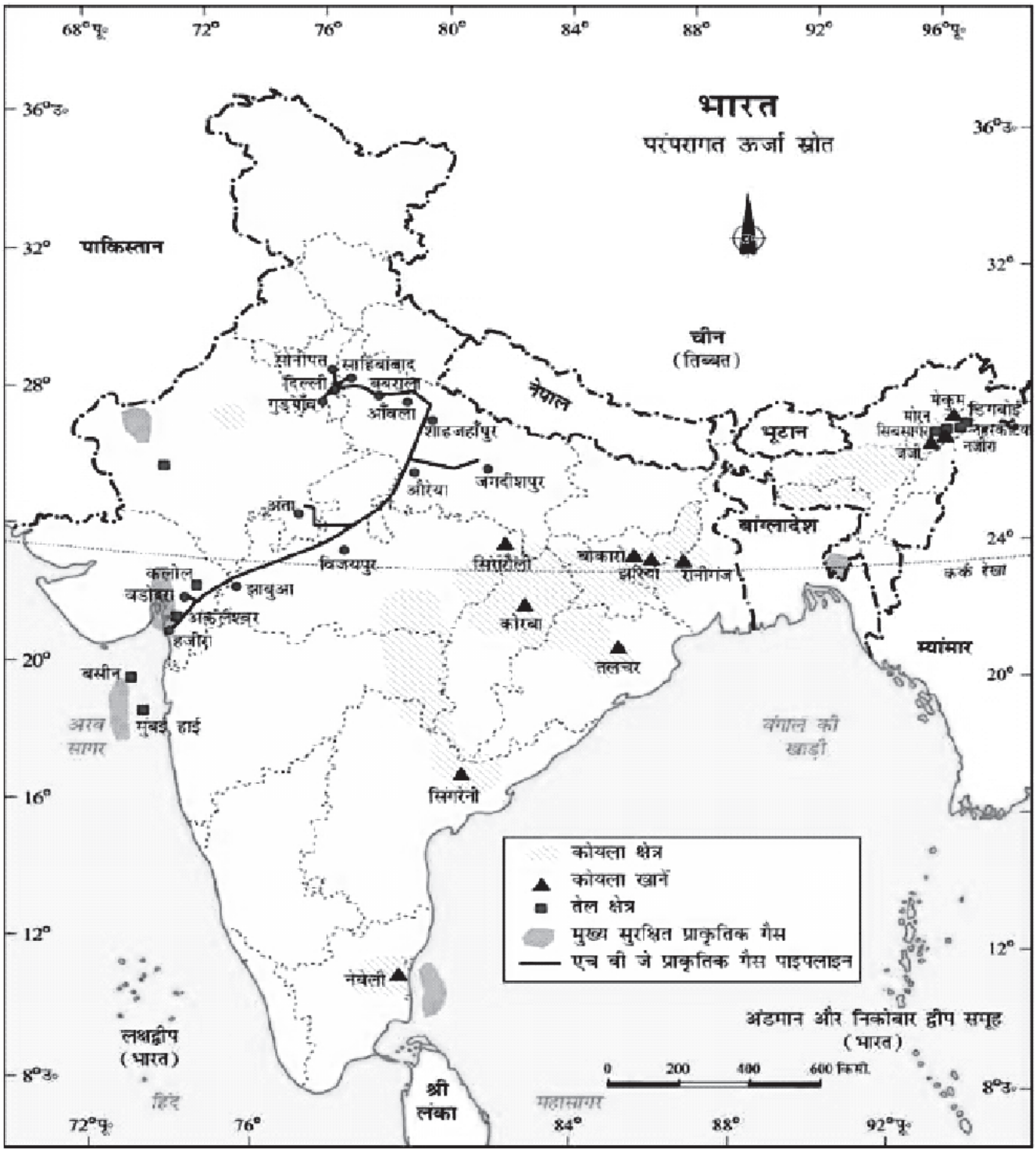

भारत
परंपरागत ऊर्जा स्रोत
पाकिस्तान
चीन
(तिब्बत)
नेपाल
भूटान
बांग्लादेश
म्यांमार
श्री लंका
अरब सागर
बंगाल की खाड़ी
हिंद महासागर
लक्षद्वीप (भारत)
अंडमान और निकोबार द्वीप समूह (भारत)
कर्क रेखा
कोयला क्षेत्र
कोयला खानें
तेल क्षेत्र
मुख्य सुरक्षित प्राकृतिक गैस
एच बी जे प्राकृतिक गैस पाइपलाइन
0 200 400 600 किमी.

RAJASTHAN
MINERAL MAP
PUNJAB
Ganganagar
Hanumangarh
HARYANA
PAKISTAN
N
Churu
Bikaner
Jhunjhunun
Sikar
Alwar
UTTAR PRADESH
Nagaur
Jaisalmer
Bharatpur
Dausa
JAIPUR
Dhaulpur
Karauli
Jodhpur
Ajmer
Tonk
Sawai Madhopur
Barmer
Pali
Jalor
Bhilwara
Bundi
Rajsamand
Kota
Baran
Sirohi
Chittaurgarh
Jhalawar
Udaipur
GUJARAT
MADHYA PRADESH
Dungarpur
Banswara
Agate
Asbestos
Cement Mortar
Crude Oil
Dolomite
Fire Clay
Graphite
Gypsum
Kaolin
Lignite
Limestone
Manganese
Mica
Quartz
Vermiculate
Salt
Silica Sand
Ochre
Others

8. राजस्थान के मानचित्र में शैल समूहों का भौगोलिक वितरण

राजस्थान में आद्य महाकल्प की
शैलों का भौगोलिक वितरण

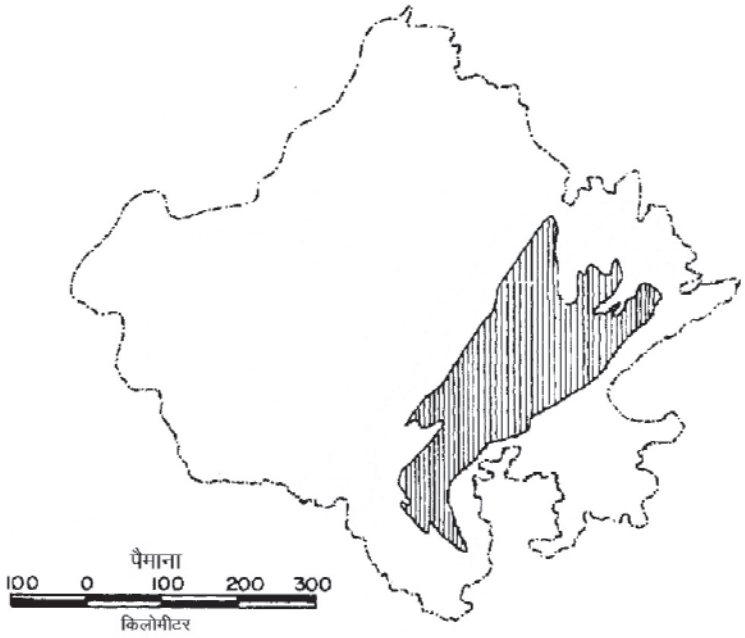

राजस्थान में अरावली महासंघ की
शैलों का भौगोलिक वितरण

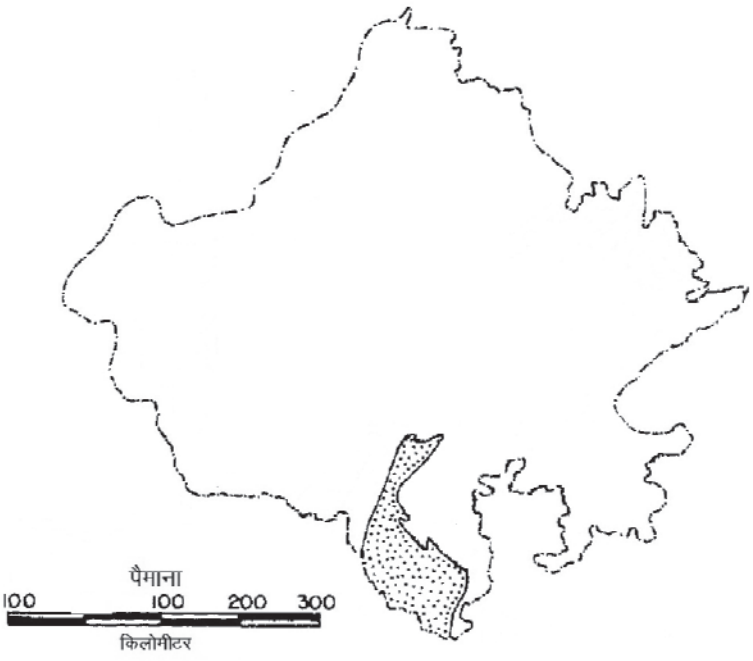

राजस्थान में देहली महासंघ की शैलों का भौगोलिक वितरण

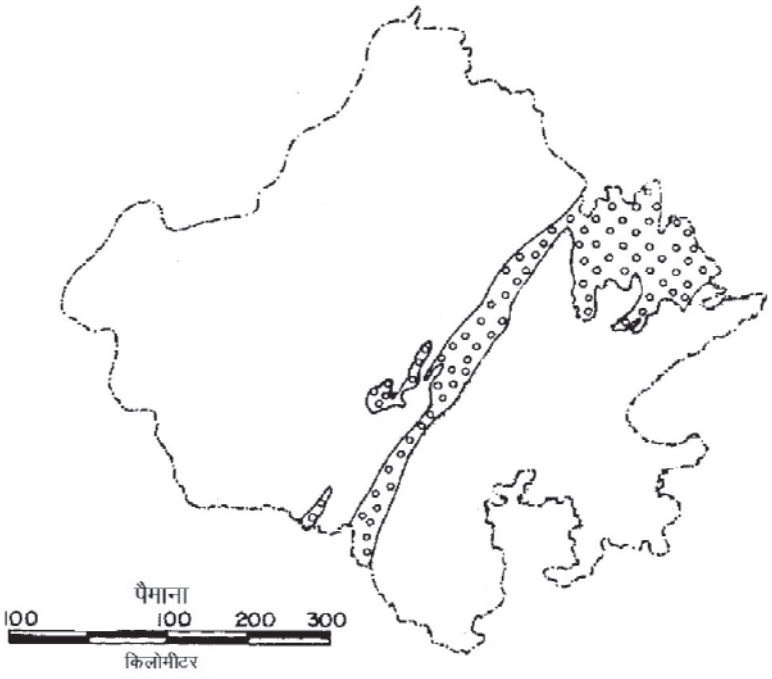

राजस्थान में विन्ध्यन महासंघ की शैलों का भौगोलिक वितरण

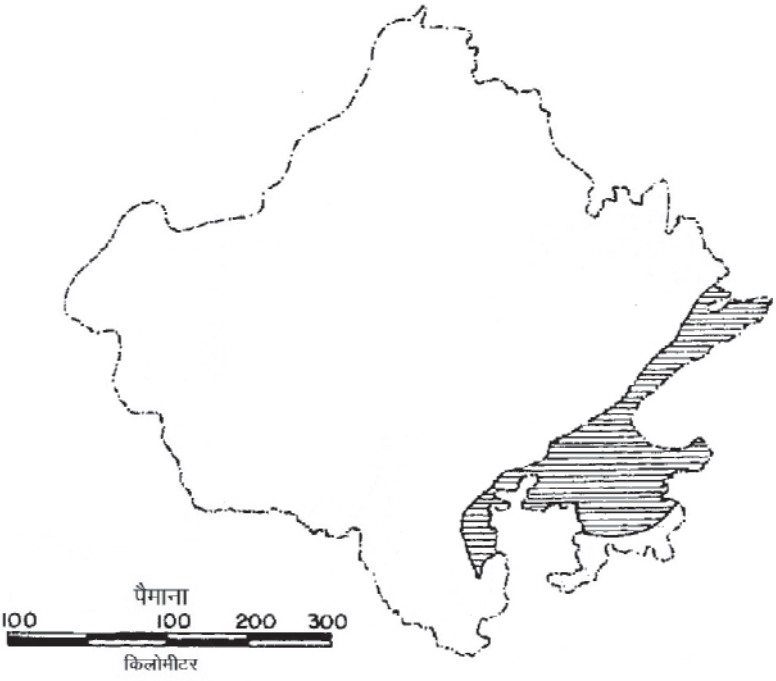

राजस्थान में मलानी आग्नेय संजाती की शैलों का भौगोलिक वितरण

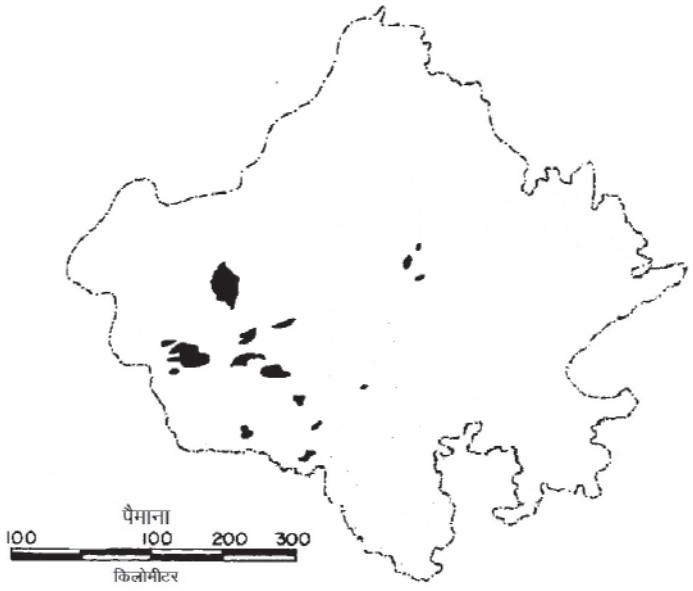

राजस्थान में मारवाड़ महासंघ की शैलों का भौगोलिक वितरण

राजस्थान में मध्यजीवी कल्प की शैल समूहों का भौगोलिक वितरण

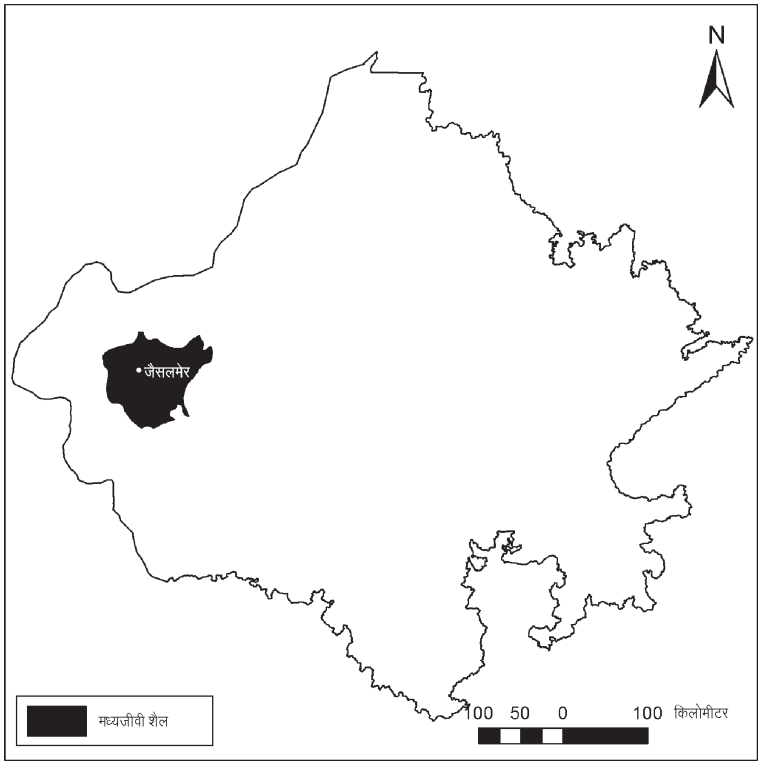

राजस्थान में तृतीय कल्प की शैल समूहों का भौगोलिक वितरण

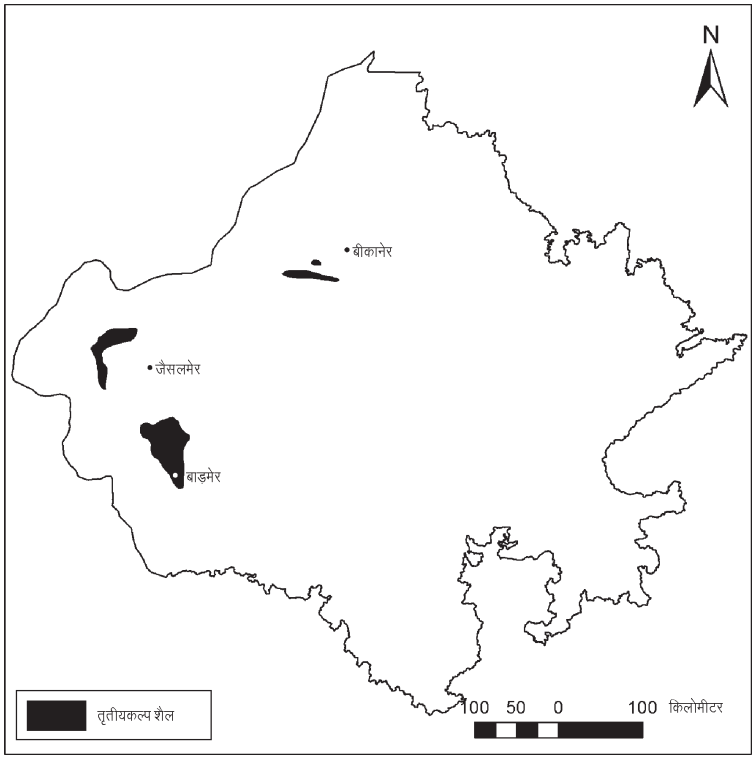

9. घन, अष्टफलक, प्रिज्म, डोम एवं पिरामिड का अध्ययन

कुछ क्रिस्टल आकृतियाँ
(Some Crystal Forms)

घन (Cube) : यह घनीय समुदाय की आकृति है। इसमें छः एक से वर्गाकार फलक होते हैं। प्रत्येक फलक एक क्रिस्टलीय अक्ष को काटता है और अन्य दो अक्षों के समानान्तर होता है। इस आकृति का सामान्य संकेत (100) है। इस आकृति में निम्न छः फलकों 100 (सम्मुख फलक), 00 (पश्च फलक), 010 (दायां फलक), 0 0 (बायां फलक), 001 (ऊपरी फलक), 00 (आधार या तली फलक) होते हैं।

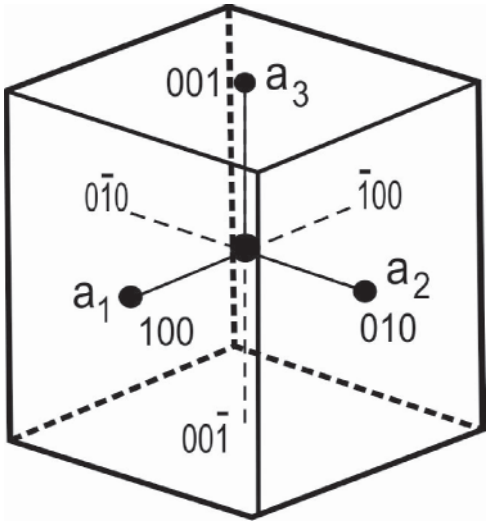

अष्टफलक (Octahedron) : यह भी घनीय समुदाय की आकृति है। यह ठोस 8 समान समबाहु त्रिभुजाकार फलकों से बना है। इसमें प्रत्येक फलक तीनों अक्षों को केन्द्र से समान दूरी पर काटता है। इसका मिलर संकेत या सूचकांक (111) है। यह गैलेना टाइप वर्ग की इकाई (unit) आकृति है।

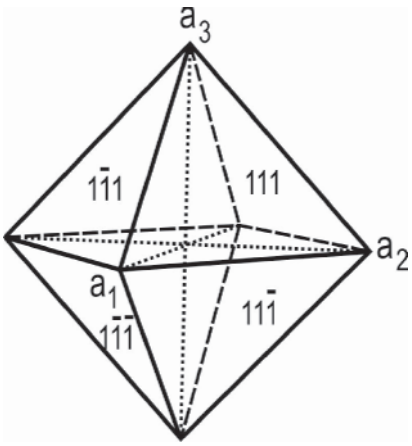

प्रिज्म (Prism) : यह सामान्यतरू 4 (6, 8 या 12 फलकों में भी) फलकों की खुली आकृति है जिसमें प्रत्येक फलक ऊर्ध्वाधर अक्ष के समानांतर होता है। क्षैतिज अक्षों में से किसी एक या अधिक अक्षों को काटते हुए उनके केन्द्र से गुजरती है।

चतुष्कोणीय समुदाय में तीन प्रकार के प्रिज्म होते हैं –

(i) **प्रथम क्रम का चतुष्कोणीय प्रिज्म** (Tetragonal Prism of First Order) : यह 4 फलकों वाली एक विवृत (open) आकृति है जिसमें प्रत्येक फलक दोनों क्षैतिज अक्षों को एकांक दूरियों पर काटता है और ऊर्ध्वाधर अक्ष के समानांतर होता है। क्षैतिज अक्ष फलकों के किनारों से गुजरती है। इसका सूचकांक (110) है।

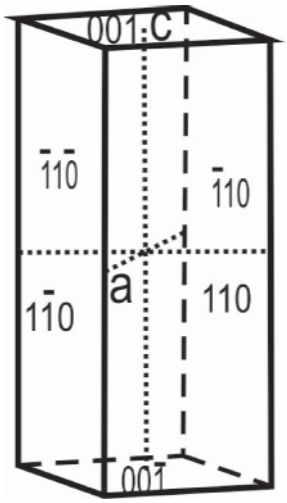

(ii) **द्वितीयक्रम का चतुष्कोणीय प्रिज्म** (Tetragonal Prism of Second Order) : यह 4 फलकों की खुली आकृति है जिसमें प्रत्येक फलक क्षैतिज अक्षों में से किसी एक क्षैतिज अक्ष एवं ऊर्ध्वाधर अक्ष के समानांतर होता है। दूसरी क्षैतिज अक्ष के फलकों को काटते हुए उनके केन्द्र से गुजरती है। इसका सूचकांक (100) हैं।

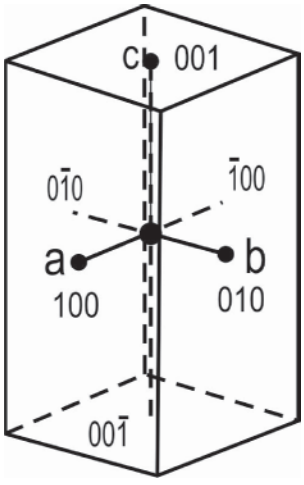

(iii) **द्विचतुष्कोणीय प्रिज्म** (Ditetragonal Prism) : यह 8 फलकों की विवृत आकृति है। इसमें प्रत्येक फलक दोनों क्षैतिज अक्षों को असमान दूरी पर काटता है तथा ऊर्ध्वाधर अक्ष के समानांतर होते है। इसका सूचकांक hko या (210) है।

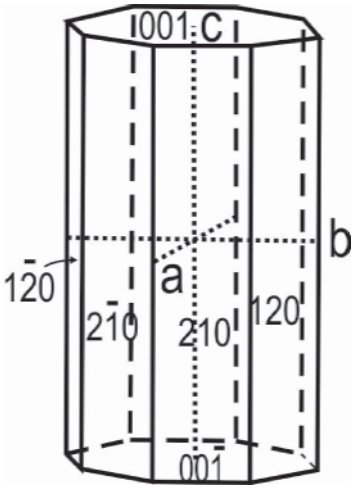

इसी तरह षट्कोणीय समुदाय में भी तीन प्रकार के प्रिज्म होते हैं।

डोम (Dome) : यह चार फलकों वाली खुली आकृति है जिसका प्रत्येक फलक ऊर्ध्वाधर अक्ष को अनिवार्य रूप से काटता है तथा क्षैतिज अक्षों में से किसी एक अक्ष को काटते है।

विषमलंबाक्ष समुदाय में डोम दो प्रकार के होते हैं।

(i) **दीर्घडोम** (Macrodome) : यह चार फलकों की खुली आकृति है। इसका हर एक फलक दीर्घअक्ष के समान्तर रहता है। अन्य दोनों अक्षों को काटता है। एकांक दीर्घडोम का संकेत (101) है।

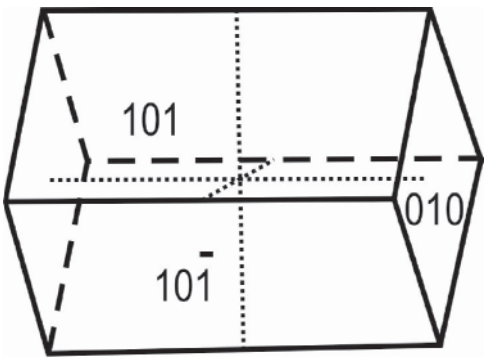

(ii) **लघुडोम** (Brachydome) : यह चार फलकों वाली खुली आकृति है जो कि लघुअक्ष के समान्तर रहती है तथा अन्य दोनों अक्षों को काटती है। इसकी एकांक आकृति का संकेत (011) है।

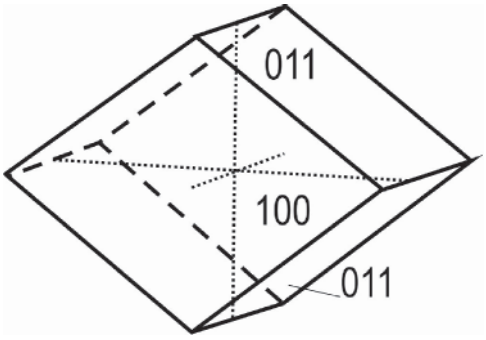

पिरैमिड (Pyramid) : यह 3, 4, 6, 8, 12, 16 या 24 फलकों वाली बंद (closed) आकृति है। प्रत्येक फलक त्रिभुजाकार होते हैं। इसका हर एक फलक ऊर्ध्वाधर अक्ष को अनिवार्य रूप से काटता है तथा क्षैतिज अक्षों को समान या असमान दूरी पर काटता है।

चतुष्कोणीय समुदाय में पिरैमिड या द्विपिरैमिड भी तीन प्रकार के होते हैं।

(i) **प्रथमक्रम चतुष्कोणीय द्विपिरैमिड** (Tetragonal Biyramid of First Order) : यह 8 फलकों वाली बंद (closed) आकृति है। प्रत्येक फलक समद्विबाहु त्रिभुज होते हैं। इसका हर एक फलक ऊर्ध्वाधर अक्ष को असमान दूरी पर तथा दोनों क्षैतिज अक्षों को समान दूरी पर काटता है। इसमें क्षैतिज क्रिस्टलीय अक्ष क्षैतिज किनारों के प्रतिच्छेदन से गुजरती है। इसकी सामान्य आकृति का सूचकांक (111) है।

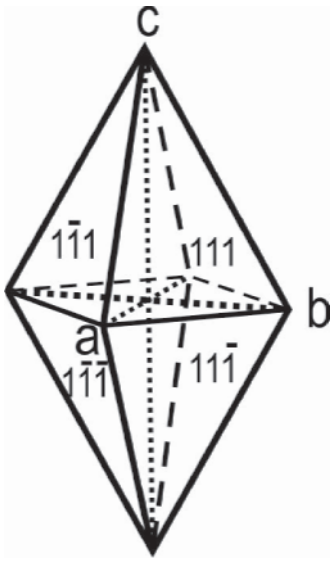

(ii) **द्वितीयक्रम चतुष्कोणीय द्विपिरैमिड** (Tetragonal Bipyramid of Second Order) : यह 8 फलकों की संवृत (closed) आकृति है। प्रत्येक फलक समद्विबाहु त्रिभुज होते है। इसका प्रत्येक फलक ऊर्ध्वाधर अक्ष तथा एक क्षैतिज

अक्ष को काटता है तथा दूसरे क्षैतिज अक्ष के समानांतर रहता है। इस पिरैमिड में क्षैतिज क्रिस्टलीय अक्ष, क्षैतिज किनारों के मध्य में रहती है। इसका सूचकांक (101) है।

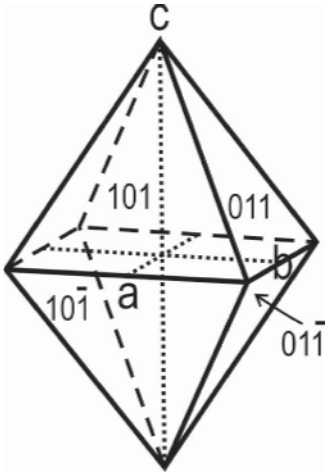

(iii) **द्विचतुष्कोणीय द्विपिरैमिड** (Ditetragonal bipyramid) : यह 16 समद्विबाहु त्रिभुजाकार फलकों की संवृत आकृति है। इसका प्रत्येक फलक तीनों अक्षों को असमान दूरी पर काटता है। इसका सामान्य सूचकांक hkl और (212) है

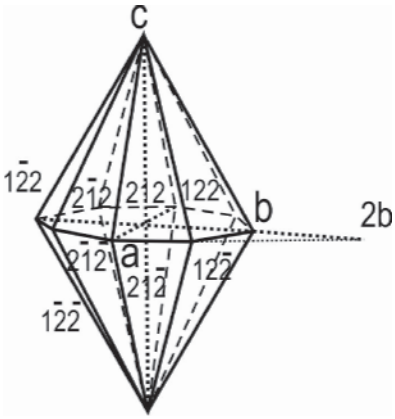

इसी तरह षट्कोणीय समुदाय में भी तीन प्रकार के पिरैमिड या द्विपिरैमिड होते हैं।

10. वास्तविक नति, आभासी नति एवं नति लम्ब ज्ञात करना।

फील्ड अथवा प्रयोगशाला में संस्तर तल या अन्य किसी तल की वास्तविक नति, नति दिशा एवं नतिलम्ब ज्ञात करने के लिए क्लाइनोमीटर कम्पास का उपयोग किया जाता है। क्लाइनोमीटर कम्पास की अंशाकित चक्रिका के बाह्य भाग में 0° से 360° के मध्य इनके माप से दिशा की जानकारी की जाती है। 0° अथवा 360° का कोणात्मक मान उत्तर दिशा, 90° का मान पूर्व दिशा, 180° का मान दक्षिण दिशा तथा 270° का मान पश्चिम दिशा को बताता है। इस चक्रिका में 45°, 135°, 225° तथा 315° के मान क्रमशः उत्तर–पूर्व, दक्षिण–पूर्व, दक्षिण–पश्चिम तथा उत्तर–पश्चिम दिशाओं को बताते हैं। अंशाकित चक्रिका के अन्दर वाले भीतरी दूसरे गोले में उत्तर (N) पर 90°, पूर्व (E) पर 0°, दक्षिण (S) पर 90° तथा पश्चिम (W) पर 0° अंकित रहते हैं, जिसके द्वारा नति के मान को मापा जाता है। कम्पास के सबसे भीतरी गोले में विभिन्न दिशाओं को 16 भागों में प्रदर्शित किया गया है।

फील्ड में कम्पास की मदद से संस्तर तल अथवा अन्य किसी तल की नति ज्ञात करने के लिए कम्पास की पट्टिका (पटल या ब्रिज) को संस्तर तल पर अधिकतम ढाल वाली दिशा में रखकर कम्पास के भीतरी गोले में 0° से 90° पर पीतल के सूचकांक (पेन्डूलम) द्वारा इंगित मान को पढ़कर वास्तविक नति का मान ज्ञात किया जाता है। संस्तर तल का अधिकतम ढाल वास्तविक नति को प्रदर्शित करता है, यह नतिलम्ब दिशा के लम्बवत् होता है। इसके अलावा अन्य दिशाओं में ज्ञात नति का मान कम होता है तथा उस दिशा की आभासीनति कहा जाता है। उदाहरणार्थ यदि फील्ड में संस्तर की नतिलम्ब उत्तर–दक्षिण दिशा है तो वास्तविक नति इसके लम्बवत् पूर्व या पश्चिम (दोनों में से एक) दिशा होगी। नति की दिशा झुके हुए संस्तर तल पर कम्पास को नतिलम्ब दिशा के लम्बवत् रखते हुए चुम्बकीय सुई की सहायता से ज्ञात किया जा सकता है। संस्तर तल के ढाल की दिशा में चुम्बकीय सुई के उत्तरी किनारे का पाठ्यांक नति दिशा को प्रदर्शित करता है।

संस्तर तल के नतिलम्ब (Strike) की दिशा ज्ञात करने के लिए झुके हुए संस्तर तल पर क्षैतिज दिशा में क्लाइनोमीटर कम्पास की पट्टिका (पटल या ब्रिज) को वास्तविक नति के लम्बवत् रखते हुए क्षैतिज करते हुए संस्तर तल के समानान्तर रखते हैं। इस स्थिति में चुम्बकीय सुई को कम्पास की अंशाकित चक्रिका के बाह्य भाग में (0° से 360° तक) पढ़कर नतिलम्ब ज्ञात करते हैं। चुम्बकीय सूई के दोनों किनारों को पढ़कर नतिलम्ब की दिशा बताई जाती है। उदाहरणार्थ यदि चुम्बकीय सूई के दो किनारे क्रमशः N 30°E व S 30° W नतिलम्ब की दिशा सूचित कर रही है। इसका मतलब यह हुआ कि उत्तर दिशा से पूर्व की ओर 30° पर एक बिन्दु है तथा दक्षिण से 30° पश्चिम की ओर दूसरा बिन्दु है, इन दोनों बिन्दुओं को जोड़ने पर जो रेखा प्राप्त होगी वह नतिलम्ब रेखा की दिशा (Strike N 30°E – S 30°W) को दर्शाएगी। नीचे दिये गए चित्रों के अनुसार क्लाइनोमीटर कम्पास की सहायता से संस्तर तल अथवा किसी भी तलीय संरचना की नति, नतिदिशा तथा नतिलम्ब ज्ञात करने का अभ्यास किया जा सकता है।

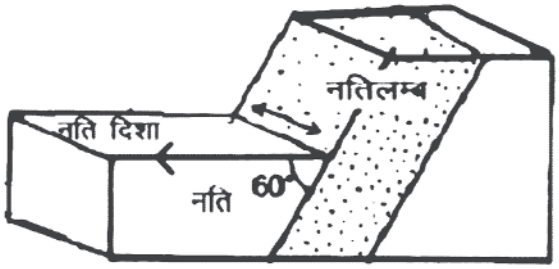

नति, नतिदिशा एवं नतिलम्ब दिशा ज्ञात करना

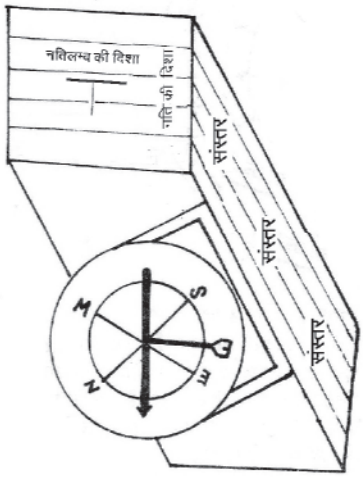

क्लाइनोमीटर कम्पास से नति ज्ञात करना

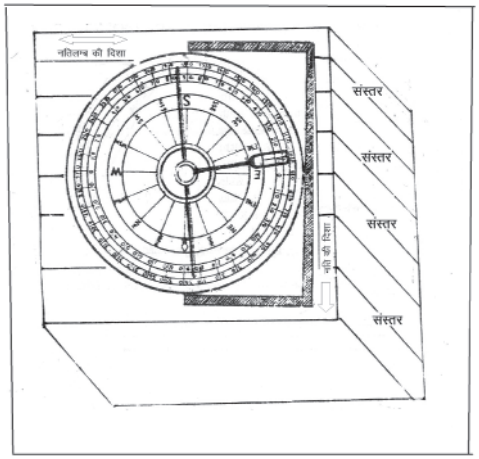

क्लाइनोमीटर कम्पास द्वारा नतिदिशा ज्ञात करना

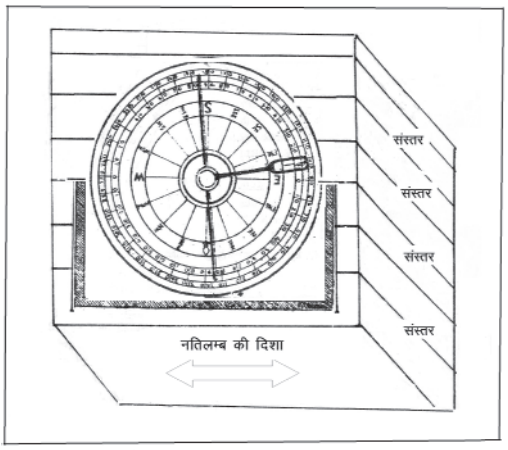

क्लाइनोमीटर कम्पास द्वारा संस्तर तल का नतिलम्ब ज्ञात करना

भूवैज्ञानिक मानचित्र (Geological Map) से भी वास्तविक नति (True Dip), आभासी नति (Apparent Dip) तथा नतिलम्ब (Strike) ज्ञात किया जा सकता है। इसका विस्तृत अध्ययन आगे की कक्षाओं में किया जा सकता है।